ब्रह्माण्ड पुराण

(प्रथम खण्ड)

॥ कृत्य-समुद्देश्य ॥

नमोनमः क्षये सृष्टौ स्थितौ सत्त्वमयाय वा ।
नमो रजस्तमः सत्त्वत्रिरूपाय स्वयंभुवे ॥१
जितं भगवता तेन हरिणा लोकधारिणा ।
अजेन विश्वरूपेण निर्गुणेन गुणात्मना ॥२
ब्रह्माणं लोककर्त्तारं सर्वज्ञमपराजितम् ।
प्रभुं भूतभविष्यस्य साम्प्रतस्य च सत्पतिम् ॥३
ज्ञानमप्रतिमं तस्य वैराग्यं च जगत्पतेः ।
ऐश्वर्यं चैव धर्मश्च सद्भिः सेव्यं चतुष्टयम् ॥४
इमान्नरस्य वै भावान्नित्यं सदसदात्मकान् ।
अविनश्यः पुनस्तान्वै क्रियाभावार्थमीश्वरः ॥५
लोककृल्लोकतत्त्वज्ञो योगमास्थाय योगवित् ।
असृजत्सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ॥६
तमहं विश्वकर्माणं सत्पतिं लोकसाक्षिणम् ।
पुराणाख्यानजिज्ञासुर्गच्छामि शरणं विभुम् ॥७

संसार के सृजन, उसके पालन अथवा उसके संहार काल में सत्व स्वरूप वाले के लिए बारम्बार नमस्कार है। रजोगुण-तमोगुण और सत्व-गुण के तीन स्वरूप वाले भगवान् स्वयम्भू के लिए नमस्कार है।१। जन्म न धारण करने वाले, विश्व के स्वरूप वाले, गुणों से रहित और गुणों के रूप वाले, विश्व के स्वरूप वाले, गुणों से रहित और गुणों के रूप वाले, लोकों के धारण करने वाले उन भगवान् हरि ने जय प्राप्त किया है।२। समस्त

लोकों के रचने वाले, सबके ज्ञाता, पराजित न होने वाले, भूत-भविष्यत् और वर्त्तमान काल के प्रभु सत्पति ।३। अनुपम ज्ञान के स्वरूप और उन जगतों के स्वामी का ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य और धर्म्म ये चारों सत्पुरुषों के द्वारा सेवन करने के योग्य हैं ।४। नित्य ही भले और बुरे स्वरूप वाले मनुष्य के इन भावों की क्रिया के भाव के लिए ईश्वर ने फिर रचना की थी ।५। लोकों की रचना करने वाले और लोकों के तत्वों के ज्ञाता, योग के जानने वाले भगवान् ने योग में समास्थित होकर समस्त स्थावर (अचर) और जङ्गम (चर) जीवों की रचना की थी ।६। पुराण के आख्यान की इच्छा वाले मैंने व्यापक सत्पति लोकों के साक्षी विश्वकर्मा उन प्रभु की शरण ग्रहण की है ।७।

पुराणं लोकतत्त्वार्थमखिलं वेदसंमितम् ।
प्रशशंस स भगवान् वसिष्ठाय प्रजापतिः ।।८
तत्त्वज्ञानामृतं पुण्यं वसिष्ठो भगवानृषिः ।
पौत्रमध्यापयामास शक्तेः पुत्रं पराशरम् ।।९
पराशरश्च भगवान् जातूकर्ण्यमृषिं पुरा ।
तमध्यापितवान्दिव्यं पुराणं वेदसंमितम् ।।१०
अधिगम्य पुराणं तु जातूकर्ण्यो विशेषवित् ।
द्वैपायनाय प्रददौ परं ब्रह्म सनातनम् ।।११
द्वैपायनस्ततः प्रीतः शिष्येभ्यः प्रददौ वशी ।
लोकतत्त्वविधानार्थे पंचभ्यः परमाद्भुतम् ।।१२
विख्यापनार्थं लोकेषु बह्वर्थं श्रुतिसंमतम् ।
जैमिनिं च सुमन्तुं च वैशंपायनमेव च ।।१३
चतुर्थं पैलवं तेषां पंचमं लोमहर्षणम् ।
सूतमद्भुतवृत्तान्तं विनीतं धार्मिकं शुचिम् ।।१४

लोकतत्व के अर्थ वाले, वेद के समान सम्पूर्ण पुराण की भगवान् प्रजापति ने वसिष्ठ मुनि के आगे प्रशंसा की थी अर्थात् उनको पढ़ाया था ।८। भगवान् वसिष्ठ ऋषि ने परम पुण्यमय अमृत के सदृश इस तत्व ज्ञान को शक्ति के पुत्र अपने पौत्र पराशर को पढ़ाना था ।९। प्राचीन काल में

भगवान् पराशर ने इस परम दिव्य और वेद के ही सदृश पुराण को जातूकर्ण्य ऋषि को पढ़ाया था ।१०। विशेष ज्ञान रखने वाले जातूकर्ण्य ऋषि के इसका ज्ञान प्राप्त करके इस सनातन पर ब्रह्म को द्वैपायन के लिए प्रदान किया था ।११। परम संयमी द्वैपायन ऋषि ने अत्यधिक प्रसन्न होकर अत्यन्त अद्भुत इस पुराण को लोक तत्व के विधान के लिए अपने पाँच शिष्यों को दिया था अर्थात् पढ़ाया था ।१२। विपुल अर्थों से समन्वित श्रुति के समान इसके लोकों में विख्यापन के लिए पढ़ाया था जिनमें जैमिनि, सुमन्तु और वैशम्पायन थे ।१३। चौथे पैलव और पाँचवें लोमहर्षण थे। सूत परम विनम्र, धार्मिक और पवित्र थे अतः उनको यह अद्भुत वृत्तान्त वाला पुराण पढ़ाया था ।१४।

अधीत्य च पुराणं च विनीतो लोमहर्षणः ।
ऋषिणा च त्वया पृष्टः कृतप्रज्ञः सुधार्मिकः ॥१५
वसिष्ठश्चापि मुनिभिः प्रणम्य शिरसा मुनीन् ।
भक्त्या परमया युक्तः कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ॥१६
अवाप्तविद्यः सन्तुष्टः कुरुक्षेत्रमुपागमत् ।
सत्रे सवितते यत्र यजमानानृषीञ्शुचीन् ॥१७
वियेनोहसंगसंम्य सत्रिणो रोमहर्षणम् ।
विधानतो यथाशास्त्रं प्रज्ञयातिजगाम ह ॥१८
ऋषयश्चापि ते सर्वे तदानीं रोमहर्षणम् ।
दृष्ट्वा परमसंहृष्टाः प्रीताः सुमनसस्तथा ॥१९
सत्कारैरर्च्ययामासुरर्घ्यपाद्यादिभिस्ततः ।
अभिवाद्य मुनीन्सर्वान् राजाज्ञामभिगम्य च ॥२०
ऋषिभिस्तैरनुज्ञातः पृष्टः सर्वमनामयम् ।
अभिगम्य मुनीन्सर्वांस्तेजो ब्रह्म सनातनम् ।
सदस्यानुमते रम्ये स्वास्तीर्णे समुपाविशत् ॥२१

परम विनयी लोमहर्षण मुनि ने इस परम श्रेष्ठ पुराण का अध्ययन करके जब समाप्त किया था तो ऋषि आपने उनसे पूछा था जो कि भली प्रकार से धर्म के समाचरण करने वाले और परम प्रज्ञावान् थे ।५१। अनेक

मुनियों के साथ संयुत होकर समस्त मुनियों को शिर झुकाकर प्रणाम किया था और परम भक्ति भाव से युक्त होकर प्रदक्षिणा की थी ।१६। सम्पूर्ण विद्या को प्राप्त करके ये परम सन्तुष्ट हुए और फिर वे कुरुक्षेत्र में पहुँच गये थे । जहाँ पर एक विशाल यज्ञ होरहा था और पवित्र बहुत से यजमान तथा ऋषिगण विद्यमान थे ।१७। सब याज्ञिकों ने परम नम्रता से रोमहर्षण ऋषि से भेंट की थी । शास्त्रों के अनुसार विधि पूर्वक प्रज्ञा से अतिगमन किया था ।१८। उस समय में उन समस्त ऋषियों ने भी रोमहर्षण मुनि का दर्शन प्राप्त कर अत्यन्त हर्ष प्राप्त किया था और सबके मन में विशेष प्रसन्नता हुई थी ।१९। सब ऋषियों ने उनका विशेष समादर एवं सत्कार करके अर्घ्यपाद्य आदि के द्वारा उनका समर्चन किया था । राजा के द्वारा आज्ञा प्राप्त करके समस्त मुनिगणों को प्रणाम किया था ।२०। कुशल-क्षेम पूछे जाने पर समस्त ऋषियों के द्वारा आज्ञा प्राप्त की थी । सनातन ब्रह्म के तेज स्वरूप उन सब ऋषियों के समीप जाकर सदस्यों के द्वारा अनुमत अपने आसन पर विराजमान हो गये थे ।२१।

उपविष्टे तदा तस्मिन्मुनयः शंसितव्रताः ।
मुदान्विता यथान्यायं विनयस्थाः समाहिताः ॥२२
सर्वे ते ऋषयश्चैनं परिवार्य महाव्रतम् ।
परमप्रीतिसंयुक्ता इत्यूचुः सूतनंदनम् ॥२३
स्वागतं ते महाभाग दिष्ट्या च त्वां निरामयम् ।
पश्याम धीमन्नत्रस्थाः सुव्रतं मुनिसत्तमम् ॥२४
अशून्या मे रमाद्यैव भवतः पुण्यकर्मणः ।
भवांस्तस्य मुनेः सूत व्यासस्यापि महात्मनः ॥२५
अनुग्राह्यः सदा धीमाञ्छिष्यः शिष्यगुणान्वितः ।
कृतबुद्धिश्च ते तत्त्वमनुग्राह्यतया प्रभो ॥२६
अवाप्य विपुलं ज्ञानं सर्वतश्छिन्नसंशयः ।
पृच्छतां नः सदा प्राज्ञ सर्वमाख्यातुमर्हसि ॥२७
तदिच्छामः कथां दिव्यां पौराणीं श्रुतिसंमिताम् ।
श्रोतुं धर्मार्थयुक्तां तु एतद्व्यासाच्छ्रुतं त्वया ॥२८

एवमुक्तस्तदा सूतस्त्वृषिभिर्विनयान्वितः ।
उवाच परमप्राज्ञो विनीतोत्तरमुत्तमम् ॥२९

उस समय में उनके अपने आसन पर बैठ जाने पर समस्त मुनियों ने व्रत धारण किया था और परम प्रसन्न होकर विनीत भाव से सावधान होकर उचित स्थान पर वे सब स्थित हो गये थे ।२२। उन समस्त ऋषियों ने महान व्रत धारण करके परम प्रीति से समन्वित होकर उन सूतनन्दन जी से पूछा था ।२३। हे महान् भाग वाले ! हम सब आपका स्वागत करते हैं। हे धीमन् ! यहाँ पर स्थित हुए हम सब परम कुशल, सुन्दर व्रतधारी और मुनियों में परम श्रेष्ठ आपका हम दर्शन कर रहे हैं ।२४। पुण्य कर्मों वाले आपके पदार्पण से आज ही यह भूमि हमारे लिए आनन्दमयी हुई है। हे सूतजी ! आप तो महान् आत्मा वाले उन श्रीव्यासजी के कृपा पात्र हैं ।२५। व्यासदेव जी के आप अनुग्रह के योग्य शिष्य हैं और सदा शिष्य में होने वाले गुण-गणों से युक्त है तथा परम बुद्धिमान् हैं। हे प्रभो ! आप बुद्धि से युक्त हैं और गुरुदेव के अनुग्रह के पात्र होने से आपको सम्पूर्ण तत्व ज्ञान है ।२६। आपने बहुत अधिक ज्ञान की प्राप्ति की है अतः आपके सभी प्रकार के संशय दूर हो गये हैं। हे प्राज्ञ ! हम लोग अब पूछ रहे हैं अतएव सभी कुछ हमारे सामने वर्णन करने के योग्य होते हैं ।२७। हम लोग सब श्रुति सम्मित परमदिव्य पुराण सम्बन्धिनी कथा का श्रवण करना चाहते हैं। आपने इस इसका श्रवण व्यासदेव जी से किया है उसी धर्मार्थ से युक्त पौराणिक कथा को हम सुनना चाहते हैं ।२८। उस समय में जब इस प्रकार के ऋषियों के द्वारा कहा गया तो विनय से संयुत और परम पण्डित सूतजी ने उत्तम विनीत उत्तर दिया था ।२९।

ऋषेः शुश्रूषणं यच्च तस्मात्प्रज्ञा च या मम ।
यस्माच्छुश्रूषणार्थं च तत्सत्यमिति निश्चयः ॥३०
एवं गतेऽर्थे यच्छक्यं मया वक्तुं द्विजोत्तमाः ।
जिज्ञासा यत्र युष्माकं तदाज्ञातुमिहार्हथ ॥३१
एतच्छ्रुत्वा तु मुनयो मधुरं तस्य भाषितम् ।
प्रत्यूचुस्ते पुनः सूतं बाष्पपर्याकुलेक्षणम् ॥३२
भवान् विशेषकुशलो व्यासं साक्षात्तु दृष्टवान् ।
तस्मात्त्वं संभवं कृत्स्नं लोकस्येमं विदर्शय ॥३३

यस्य यस्याऽन्वये ये ये तांस्तानिच्छाम वेदितुम् ।
तेषां पूर्वविसृष्टिं च विचित्रां त्वं प्रजापते ।
सत्कृत्य परिपृष्टः स महात्मा रोमहर्षणः ॥३४
विस्तरेणानुपूर्व्या च कथयामास सत्तमः । सूत उवाच ।
यो मे द्वैपायनप्रीतः कथां वै द्विजसत्तमाः ॥३५
पुण्यामाख्यातवान्विप्रास्तां वै वक्ष्याम्यनुक्रमात् ।
पुराणं संप्रवक्ष्यामि यदुक्तं मातरिश्वना ॥३६

ऋषि व्यासदेव से जो भी कुछ मैंने श्रवण किया है और उस श्रवण करने से जो ज्ञान मुझे प्राप्त हुआ है जिससे भली-भाँति श्रवण कराने के लिए वह ज्ञान पूर्णतया सत्य है—ऐसा मेरा निश्चय है ।३०। हे उत्तम द्विजगणो ! इस प्रकार से ज्ञान प्राप्त होने पर जो भी कुछ मेरे द्वारा कहा जा सकता है मैं कहूँगा । जिस विषय में आपकी जो भी जानने की इच्छा है । उसको आप आज्ञा देने के योग्य हैं ।३१। मुनिगणों ने उनके इस प्रकार के मधुर भाषण को सुनकर उन्होंने प्रेमाश्रुओं से भरी हुई आँखों वाले सूतजी से फिर कहा था ।३२। आप तो विशेष रूप से निपुण हैं और आपने साक्षात् रूप से श्री व्यासजी का दर्शन किया है । इस कारण से आप इस लोक की सम्पूर्ण उत्पत्ति को विशेष रूप से दिखलाने की कृपा कीजिए ।३३। जिसके वंश में जो-जो भी हुए हैं उन-उन सबको हम जानना चाहते हैं । और आप उनके पूर्व में होने वाली प्रजापति की विचित्र विशेष सृष्टि को भी बतलाइए—यह भी हम सब जानने की इच्छा करते हैं । सत्कार करके उन महात्मा सूतजी से जब पूछा गया था ।३४। तब उन परमश्रेष्ठ महापुरुष ने आनुपूर्वी से विस्तार के साथ कहा था । श्रीसूतजी ने कहा—हे द्विज-श्रेष्ठो ! परम प्रसन्न हुए द्वैपायन मुनि ने जो परम पुण्यमयी कथा मुझसे कही थी हे विप्रगणो ! उसको मैं अनुक्रम से कहूँगा । मातरिश्वा ने जो पुराण कहा है उसको मैं बतलाऊँगा ।३५-३६।

पृष्टेन मुनिभिः पूर्वैर्नैमिषीयैर्महात्मभिः ।
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वंतराणि च ॥३७
वंश्यानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम् ।
प्रक्रिया प्रथमः पादः कथायां स्यात्परिग्रहः ॥३८

अनुषंग उत्पोद्धात उपसंहार एव च ।
एवं पादास्तु चत्वारः समासात्कीर्तिता मया ।।३९
वक्ष्यामि तान्पुरस्तात्तु विस्तरेणं यथाक्रमम् ।
प्रथमं सर्वशास्त्राणां पुराणं ब्रह्मणा श्रुतम् ।।४०
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिःसृताः ।
अङ्गानि धर्मशास्त्रं च व्रतानि नियमास्तथा ।।४१
अव्यक्तं कारणं यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम् ।
महदादिविशेषांतं सृजामीति विनिश्चयः ।।४२

नैमिषारण्य के निवासी महात्मा मुनियों ने पहिले पूछा था। पुराण का लक्षण ही यह है—सर्ग अर्थात् सृष्टि और प्रतिसर्ग अर्थात् उस सृष्टि से होने वाली सृष्टि, वंशों का वर्णन, मन्वन्तर अर्थात् मनुओं का कथन तात्पर्य कौन-कौन मनु किस-किस के पश्चात् हुए ।३७। वंशों में होने वालों का चरित—यह ही पाँचों बातों का होना पुराण का लक्षण है। इसमें भी चार पाद होते हैं—प्रक्रिया पहिला पाद है जो कथा में परिग्रह होता है ।३८। अनुषङ्ग, उत्पोद्घात और उपसहार इस प्रकार से संक्षेप से मैंने चार पाद बतला दिये हैं ।३९। अब पहिले उनको क्रम के अनुसार विस्तार के साथ बतलाऊँगा। सबसे प्रथम सभी शास्त्रों से पूर्व ब्रह्माजी ने पुराण का श्रवण किया था ।४०। इसके पश्चात् उनके मुख से वेद निकले थे और वेद के अङ्ग शास्त्र, धर्मशास्त्र व्रत तथा नियम आदि उनके मुख से निकले थे ।४१। जो अव्यक्त कारण है वह नित्य है और सत् तथा असत् स्वरूप वाला है। महत् आदि लेकर विशेष के अन्त तक का मैं सृजन करता हूँ—ऐसा विशेष निश्चय किया था ।४२।

अंडं हिरण्मयं चैव ब्रह्मणः सूतिरुत्तमा ।
अंडस्यावरणं वार्धिरपामपि च तेजसा ।।४३
वायुना तस्य वायोश्च खेन भूतादिना ततः ।
भूतादिर्महता चैव अव्यक्तेनावृतो महान् ।।४४
अन्तर्वर्ति च भूतानामंडमेवोपवर्णितम् ।
नदीनां पर्वतानां च प्रादुर्भावोऽत्र पठ्यते ।।४५

मन्वंतराणां सर्वेषां कल्पानां चैव वर्णनम् ।
कीर्त्तनं ब्रह्मवृक्षस्य ब्रह्मजन्म प्रकीर्त्यते ॥४६

अतः परं ब्रह्मणश्च प्रजासर्गोपवर्णनम् ।
अवस्थाश्चात्र कीर्त्यंते ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥४७

कल्पानां संभवश्चैव जगतः स्थापनं तथा ।
शयनं च हरेरप्सु पृथिव्युद्धरणं तथा ॥४८

सविशेषः पुरादीनां वर्णाश्रमविभाजनम् ।
ऋक्षाणां ग्रहसंस्थानां सिद्धानां च निवेशनम् ॥४९

ब्रह्माजी की सर्वोत्तम प्रसूति हिरण्मय अण्ड है। उस हिरण्मय अण्ड का आवरण सागर है, जलों का आवरण तेज के द्वारा हुआ ।४३। उस तेज का वायु से और वायु का आकाश से आवरण हुआ था फिर भूत आदि से हुआ था। भूत आदि का महत् से और महान् का अव्यक्त के द्वारा आवरण हुआ था ।४४। भूतों के अन्दर रहने वाला अण्ड ही उपवर्णित है। इसमें नदियों का और पर्वतों का प्रादुर्भाव पढ़ा जाया करता है ।४५। समस्त मन्वन्तरों का और सब कल्पों का वर्णन है। इस ब्रह्म वृक्ष का कीर्त्तन ही ब्रह्म का जन्म कीर्त्तित किया जाया करता है ।४६। इसके आगे ब्रह्माजी की प्रजाओं का उपसर्ग का उप वर्णन है। अव्यक्त जन्म वाले ब्रह्माजी की इसमें अवस्था का कीर्त्तन किया जाता है ।४७। कल्पों की उत्पत्ति–जगत की स्थापना भगवान् हरि का जलों में शयन करना तथा पृथिवी के उद्धार का वर्णन है ।४८। पुर आदि का विशेषता के साथ वर्णन, चारों वर्णों और चारों आश्रमों का विभाजन, नक्षत्रों की स्थिति, ग्रहों का संस्थान और सिद्धों के निवास स्थलों का वर्णन है ।४९।

योजनानां यथा चैव संचरो बहुविस्तरः ।
स्वर्गस्थानविभागश्च मर्त्यानां शुभचारिणाम् ॥५०

वृक्षाक्षामोषधीनां च वीरुधां च प्रकीर्त्तनम् ।
देवतानामृषीणां च द्वे सृती परिकीर्तिते ॥५१

आम्रादीनां तरूणां च सर्जनं व्यजनं तथा ।
पशूनां पुरुषाणां च संभवः परिकीर्त्तितः ॥५२

तथा निर्वचनं प्रोक्तं कल्पस्य च परिग्रहः ।
नव सर्गा पुनः प्रोक्ता ब्रह्मणो बुद्धिपूर्वकाः ॥५३
त्रयो ये बुद्धिपूर्वास्तु तथा यल्लोककल्पनम् ।
ब्रह्मणोऽवयवेभ्यश्च धर्मादीनां समुद्भवः ॥५४
ये द्वादश प्रसूयंते प्रजाकल्पे पुनः पुनः ।
कल्पयोरंतरे प्रोक्तं प्रतिसंधिश्च यस्तयोः ॥५५
तमोमात्रा वृतत्वात्तु ब्रह्मणोऽधर्मसंभवः ।
सत्त्वोद्रिक्ताच्च देहाच्च पुरुषस्य च संभवः ॥५६

बहुत विस्तार से योजनों के संचरण का वर्णन स्वर्ग स्थान और विभाग जो कि शुभ समाचरण करने वाले मनुष्यों का है उसका वर्णन है ।५०। फिर वृक्षों की, औषधियों की, लताओं की सृष्टि का कीर्त्तन किया गया है । देवगणों और ऋषियों की दो प्रकार की उत्पत्ति बतलायी गयी है ।५१। आम्र आदि वृक्षों की सृष्टि तथा व्यञ्जन की सृजन और पुरुषों का एवं पशुओं का सृजन बताया गया है ।५२। उसी प्रकार से निर्वचन कहा गया है और कल्प का परिग्रहण किया है । इस प्रकार से ब्रह्मा के बुद्धि के साथ नौ सर्ग कहे गये हैं ।५३। जो ये तीन हैं वे बुद्धि से युक्त हैं और जो लोकों की कल्पना है ब्रह्मा के अवयवों से धर्म आदि की उत्पत्ति होती है ।५४। प्रजा के कल्प में जो द्वादश प्रसूत हुआ करते हैं और बार-बार उत्पन्न होते हैं जो उन दोनों की प्राप्ति सन्धि है वह कल्पों के अन्तर में कही गयी है ।५५। तमोगुण की मात्रा से समावृत होने से ब्रह्मा से अधर्म की उत्पत्ति हुआ करती है और सत्व के उद्रेक वाले देह से पुरुष की उत्पत्ति होती है ।५६।

तथैव शतरूपायां तयोः पुत्रास्ततः परम् ।
प्रियव्रतोत्तानपादौ प्रसूत्याकूतयः शुभाः ॥५७
कीर्त्यंते धूतपाप्मानस्त्रैलोक्ये ये प्रतिष्ठिताः ।
रुचेः प्रजापतेश्चोर्ध्वं माकूत्यां मिथुनोद्भवः ॥५८
प्रसूत्यामपि दक्षस्य कन्यानामुद्भवः शुभः ।
दाक्षायणीषु चाप्यूर्ध्वं शब्दाद्यासु महात्मनः ॥५९

धर्मस्य कीर्त्यते सर्गः सात्त्विकस्तु सुखोदयः ।
तथाऽधर्मस्य हिंसायां तामसोऽशुभलक्षणः ॥६०
भृग्वादीनामृषीणां च प्रजासर्गोपवर्णनम् ।
ब्रह्मर्षेश्च वसिष्ठस्य यत्र गोत्रानुकीर्त्तनम् ॥६१
अग्नेः प्रजायाः संभूतिः स्वाहायां यत्र कीर्त्यते ।
पितॄणां द्विप्रकाराणां स्वधायां तदनन्तरम् ॥६२
पितृवंशप्रसंगेन कीर्त्यते च महेश्वरात् ।
दक्षस्य शापः सत्याश्च भृग्वादीनां च धीमताम् ॥६३

उसी प्रकार से ही शतरूपा में उन दोनों के पुत्र समुत्पन्न हुए थे। इसके आगे प्रियव्रत और उत्तानपाद हुए थे। प्रसूति की परम शुभ आकृतियाँ थीं ।५७। त्रिभुवन में जो प्रतिष्ठा से युक्त थे वे पापों से रहित थे—ऐसा ही कहा जाता है। प्रजापति से रुचि की और फिर आकूति में मिथुन से उत्पत्ति हुई थी ।५८। प्रजापति दक्ष की कन्याओं का प्रसूति में जन्म परम शुभ हुआ शब्दाद्य दाक्षायणीओं में भी महान् आत्मा वाले धर्म का उद्भव हुआ था ।५९। यह धर्म का जन्म परम सात्विक और सुख के उदय वाला सर्ग कहा जाता है। उसी भाँति हिंसा में अधर्म का उद्भव हुआ है जो तामस और अशुभ लक्षण वाला है ।६०। भृगु आदि ऋषियों की प्रजा के सर्ग का उप वर्णन है और जिसमें ब्रह्मर्षि वसिष्ठजी के गोत्र का अनुकीर्त्तन किया है ।६१। जिसमें स्वाहा नाम धारिणी स्वाहा पत्नी में अग्नि की सन्तति का वर्णन किया जाता है। इसके उपरान्त स्वधा नाम की पत्नी में दो प्रकार के पितृगणों का वर्णन किया जाता है ।६२। पितृगणों के वंश के प्रसङ्ग से भगवान् महेश्वर से और सती से दक्ष प्रजापति के लिए शाप का वर्णन है और परम बुद्धिमान भृगु आदि ऋषियों को जो प्रतिशाप दिया गया है उसका वर्णन होता है ।६३।

प्रतिशापश्च दक्षस्य रुद्रादद्भुतकर्मणः ।
प्रतिषेधश्च वैरस्य कीर्त्यते दोषदर्शनात् ॥६४
मन्वन्तरप्रसंगेन कालाख्यानं च कीर्त्यते ।
प्रजापतेः कर्द्दमस्य कन्यायाः शुभलक्षणम् ॥५६

प्रियव्रतस्य पुत्राणां कीर्त्यंते यत्र विस्तरः ।
तेषां नियोगो द्वीपेषु देशेषु च पृथक् पृथक् ॥६६
स्वायंभुवस्य सर्गस्य ततश्चाप्यनुकीर्त्तनम् ।
वर्षाणां च नदीनां च तद्भेदानां च सर्वशः ॥६७
द्वीपभेदसहस्राणामन्तर्भावश्च सप्तसु ।
विस्तरान्मण्डलं चैव जंबूद्वीपसमुद्रयोः ॥६८
प्रमाणं योजनाग्रेण कीर्त्यंते पर्वतैः सह ।
हिमवान्हेमकूटश्च निषधो मेरुरेव च ।
नीलः श्वेतश्च शृङ्गी च कीर्त्यन्ते सप्त पर्वताः ॥६९
तेषामन्तरविष्कंभा उच्छ्रायायामविस्तराः ॥७०

अद्भुत कर्मों वाले भगवान् रुद्र से दक्ष के प्रतिशाप का कथन है और दोष के दर्शन से वैर के प्रतिषेध का कीर्त्तन किया जाता है ।६४। मन्वन्तर के प्रसङ्ग से काल का भी आख्यान कहा जाता है प्रजापति कर्दम की कन्या का शुभ लक्षण बताया जाता है ।६५। जहाँ पर प्रियव्रत राजा के पुत्रों का विस्तार कीर्त्तित किया जाता है और द्वीपों में तथा देशों में पृथक्-पृथक् उनके नियोग का वर्णन है ।६६। इसके अनन्तर स्वायम्भुव मनु के सर्ग का वर्णन किया जाता है और सब वर्षों का नदियों का और समस्त उनके भेदों का अनुकीर्त्तन किया जाता है ।६७। फिर सहस्रों द्वीपों के भेदों का सात द्वीपों में ही अन्तर्भाव का वर्णन तथा जम्बू द्वीप और समुद्र के मण्डल का विस्तार से वर्णन किया जाता है ।६८। योजनों के अग्रभाग से पर्वतों के साथ प्रमाण का कीर्त्तन किया जाता है । इसके अनन्तर हिमवान्-हेमकूट-निषध-मेरु-नील श्वेत और शृङ्ग-इन सात पर्वतों का वर्णन किया जाता है ।६९। उनके अन्तर विष्कम्भ, उच्छ्राय, आयाम और विस्तार का वर्णन किया जाता है ।७०।

कीर्त्यन्ते योजनाग्रेण ये च तत्र निवासिनः ।
भारतादीनि वर्षाणि नदीभिः पर्वतैस्तथा ॥७१
भूतैश्चोपनिविष्टानि गतिमद्भिर्ध्रुवैस्तथा ।
जम्बूद्वीपादयो द्वीपाः समुद्रैः सप्तभिर्वृताः ॥७२

तत: स्वर्णमयी भूमिर्लोकालोकश्च कीर्त्यते ।
सप्रमाणा इमे लोका: सप्तद्वीपा च मेदिनी ।।७३
रूपादय: प्रकीर्त्यन्ते करणात्प्राकृतै: सह ।
सर्वे चैतत्प्रधानस्य परिणामैकदेशिकम् ।।७४
पर्यायपरिमाणं च संक्षेपेणात्र कीर्त्यते ।
सूर्याचन्द्रमसोश्चैव पृथिव्याश्चाप्यशेषत: ।।७५
प्रमाणं योजनाग्रेण सांप्रतैरभिमानिभि: ।
महेन्द्राद्या: शुभा: पुण्या मानसोत्तरमूर्द्धनि ।।७६
अत ऊद्‌र्ध्वगतिश्चोक्ता सूर्यस्यालातचक्रवत् ।
नागवीथ्यक्षवीथ्योश्च लक्षणं च प्रकीर्त्यते ।।७७

योजनों की अग्रता से वहाँ पर उन पर्वतों में जो निवास किया करते हैं उनका भी वर्णन किया जाता है और भारत आदि वर्षों का नदियों के और पर्वतों के साथ वर्णन किया जाता है ।७१। जो कि भूतों से और मतिमान् प्रभुओं के साथ वहाँ पर उपनिविष्ट हैं उनका कीर्त्तन किया जाता है। जम्बू द्वीप आदि द्वीप सात समुद्रों के द्वारा घिरे हुए हैं ।७२। वहाँ पर स्वर्ण से परिपूर्ण है और वहाँ पर लोकालोक नाम वाला पर्वत है—यह बताया जाता है । ये सब लोक प्रमाणों से युक्त हैं और सप्तद्वीप तथा पृथिवी हैं—इनका भी प्रमाण बताया जाता है ।७३। करण से प्राकृतों के साथ-साथ प्रादिक का कीर्त्तन किया जाता है । यह सभी कुछ प्रधान के परिमाण का एक देशिक है अर्थात् यह सब प्रकृति के परिणाम के कारण ही होता है ।७४। इनका पर्याय-परिणाम यहाँ पर बहुत ही संक्षेप के साथ कीर्तित किया जाता है। सूर्य और चन्द्र का तथा पृथिवी का पूर्ण परिणाम बताया जाता है ।७५। इस समय में होने वाले उनके अभिमानी अर्थात् स्वामियों का प्रमाण योजनों के हिसाब से कहा जाता है । मानस के उत्तर में ऊपर परम शुभ और पुण्यमय महेन्द्र आदि हैं—उनका वर्णन है। इसके ऊपर अलात (मशाल) के चक्र की भाँति सूर्य की गति बतायी गयी है । और नागवीथी तथा अक्षवीथी का लक्षण बताया जाता है ।७६-७७।

कोष्ठयोर्लेखयोश्चैव मण्डलानां च योजनै: ।
लोकालोकस्य सन्ध्याया अह्नो विषुवतस्तथा ।।७८

लोकपालाः स्थिताश्चोर्द्ध्वं कीर्त्यन्ते ते चतुर्दिशम् ।
पितॄणां देवतानां च पन्थानौ दक्षिणोत्तरौ ॥७९
गृहिणां न्यासिनां चोक्तो रजः सत्त्वसमाश्रयः ।
कीर्त्यते च पदं विष्णोर्धर्माद्या यत्र च स्थिताः ॥८०
सूर्याचन्द्रमसोश्चारो ग्रहाणां ज्योतिषां तथा ।
कीर्त्यते धृतसामर्थ्यात्प्रजानां च शुभाऽशुभम् ॥८१
ब्रह्मणा निर्मितः सौरः सादनार्थं च स स्वयम् ।
कीर्त्यते भगवान्येन प्रसर्पति दिवः क्षयम् ॥८२
स रथाऽधिष्ठितो देवैरादित्यैर्ऋषिभिस्तथा ।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणीसर्पराक्षसैः ॥८३
अपां सारमयात्स्यन्दात्कथ्यते च रसस्तथा ।
वृद्धिक्षयौ च सोमस्य कीर्त्यते सोमकारितौ ॥८४

मण्डलों के योजनों के हिसाब से कोष्ठों और लेखों का वर्णन है। लोकालोक की सन्ध्या का, दिन का तथा विषुवत् का वर्णन किया जाता है।७८। ऊपर की ओर लोकपाल स्थित रहा करते हैं और उनका कीर्त्तन चारों दिशाओं में किया जाता है। पितृगणों और देवगणों के मार्ग क्रम से दक्षिण और उत्तर में बताये गये हैं।७९। गृहस्थियों और संन्यासियों का मार्ग रजोगुण और सत्वगुण के समाश्रय वाला कहा गया है और भगवान् विष्णु का स्थान बताया गया है जहाँ पर धर्म आदि स्थित रहा करते हैं।८०। सूर्य-चन्द्रमा, ज्योतिर्गण और ग्रहों का सञ्चरण कीर्त्तित किया जाता है जो कि सामर्थ्य के धारण करने से प्रजाजनों के लिए शुभ और अशुभ हुआ करते हैं। तात्पर्य यह है कि कुछ शुभ ग्रहों की चाल मानवों को शुभ होती है और कुछ पाप ग्रहों के चाल बुरी हुआ करती है।८१। ब्रह्माजी ने स्वयं ही सौर की रचना सदना करने के लिए की है—ऐसा कीर्त्तित किया जाता है। जिससे भगवान् भुवन भास्कर दिन के अन्त में क्षय को प्राप्त होते हैं।८२। वह भगवान् सूर्यदेव रथ पर अधिष्ठित हैं और वे देव-असुर-ऋषिगण-गन्धर्व-अप्सरा गण—ग्रामवासी-सूर्य और राक्षसों के द्वारा जलों के सार को प्राप्त करता है और स्यन्द होने से वह रस कहा जाया करता है। चन्द्र द्वारा किये गये सोम के वृद्धि तथा क्षय कहे जाते हैं।८३-८४।

सूर्यादीनां स्यन्दनानां ध्रुवादेव प्रवर्त्तनम् ।
कीर्त्यंते शिशुमारस्य यस्य पुच्छे ध्रुवः स्थितः ॥८५
ताराल्पाणि सर्वाणि नक्षत्राणि ग्रहैः सह ।
निवासा यत्र कीर्त्यंते देवानां पुण्यकर्मणाम् ॥८६
सूर्यरश्मिसहस्रं च वर्षशीतोष्णविश्रवः ।
प्रविभागश्च रश्मीनां नामतः कर्मतीर्थतः ॥८७
परिमाणं गतिश्चोक्ता ग्रहाणां सूर्यसंश्रयात् ।
वेश्यारूपात्प्रधानस्य परिमाणो महद्भवः ॥८८
पुरूरवस ऐलस्य माहात्म्यस्यानुकीर्त्तनम् ।
पितॄणां द्विप्रकाराणां माहात्म्यं वामृतस्य च ॥८९
ततः पर्वाणि कीर्त्यन्ते पर्वणां चैव संधयः ।
स्वर्गलोकगतानाञ्च प्राप्तानाञ्चाप्यधोगतिम् ॥९०
पितॄणां द्विप्रकाराणां श्राद्धेनानुग्रहो महान् ।
युगसंख्याप्रणाणं च कीर्त्यंते च कृतं युगम् ॥९१
त्रेतायुगे चापकर्षाद्वार्त्ताया: संप्रवर्त्तनम् ।
वर्णानामाश्रमाणां च संस्थितिर्धर्मतस्तथा ॥९२

सूर्यादि स्यन्दनों ध्रुव से ही प्रवर्तन होता है जिस शिशुमार के पुच्छ में स्थित ध्रुव कीर्तित किया जाता है ।८५। ताराओं के रूप वाले समस्त नक्षत्र ग्रहों के साथ रहते हैं जहाँ पर पुण्य कर्मों वाले देवों के निवास बतलाये जाया करते हैं ।८६। सूर्य की सहस्र किरणें, वर्षा, शीत, गर्मी का विस्रवण और रश्मियों का विभाग नाम से और कर्म तीर्थ से हैं ।८७। भगवान् सूर्यदेव के संश्रम से ग्रहों की गति और परिणाम कहे गये हैं । वेश्या रूप से प्रधान का परिमाण महद्भव है ।८८। पुरूरवा और ऐल के माहात्म्य का अनुकीर्त्तन है ।८९। इसके अनन्तर पर्व तथा पर्वों की सन्धियाँ कही जाती हैं । जो प्राणी स्वर्गलोक में प्राप्त होते हैं और जो अधोगति अर्थात् नरकगामी हैं उनका वर्णन है । दोनों प्रकार के पितृगणों का श्राद्ध करने से बड़ा भारी अनुग्रह होता है । सभी युगों की जितने समय की आयु है उसका

प्रमाण बताया गया है तथा कृतयुग (सत्ययुग) का वर्णन किया है ।९०-९१। और त्रेतायुग में अपकर्ष से वार्ता की सम्प्रवृत्ति होती है । उसी भाँति धर्म से चारों वर्णों की और चारों आश्रमों की संस्थिति होती है ।९२।

वज्रप्रवर्त्तनं चैव संवादो यत्र कीर्त्यते ।
ऋषीणां वसुना सार्द्धं वसोश्चाधः पुनर्गतिः ।
शब्दत्वं च प्रधानात्तु स्वायम्भुवमृते मनुम् ॥९३
प्रशंसा तपसश्चोक्ता युगावस्थाश्च कृत्स्नशः ।
द्वापरस्य कलेश्चापि संक्षेपेण प्रकीर्त्तनम् ॥९४
मन्वन्तरं च संख्या च मानुषेण प्रकीर्त्तिता ।
मन्वन्तराणां सर्वेषामेतदेव च लक्षणम् ॥९५
अतीतानागतानां च वर्त्तमानं च कीर्त्यते ।
तथा मन्वन्तराणां च प्रतिसंधानलक्षणम् ॥९६
अतीतानागतानां च प्रोक्तं स्वायम्भुवे ततः ।
ऋषीणां च गतिः प्रोक्ता कालज्ञानगतिस्तथा ॥९७
दुर्गसंख्याप्रमाणं च युगवार्तांप्रवर्त्तनम् ।
त्रेतायां चक्रवर्तीनां लक्षणं जन्म चैव हि ॥९८

और वज्र का प्रवर्तन है जहाँ पर सम्वाद कीर्त्तित किया जाता है । ऋषियों का वसु के साथ फिर वसु की अधोगति कही गयी है । और शब्दत्व स्वायम्भुव मनु के विना प्रधान से है ।९३। और तपश्चर्या की प्रशंसा कही गयी है तथा पूर्णतया युगों की अवस्था बतायी है । द्वापर और कलियुग का संक्षेप से कीर्त्तन किया गया है ।९४। मन्वन्तर और संख्या मानुष से कीर्त्तित की गयी है । समस्त मन्वन्तरों का यही लक्षण है ।९५। जो भूत काल में हो चुके हैं और जो भविष्य में होने वाले हैं तथा वर्त्तमान काल का कीर्त्तन किया जाता है । उसी भाँति मन्वन्तरों के प्रति सन्धान का लक्षण है ।९६। बीते हुए और आगतों के स्वायम्भुव के कहने पर फिर ऋषियों की गति कही गयी है तथा काल के ज्ञान की गति बतायी गयी है । दुर्गों की संख्या और प्रमाण तथा युग वार्ता का प्रवर्त्तन है । त्रेतायुग में जो चक्रवर्ती राजा हुए थे उनका लक्षण और जन्म कहा गया है ।९७-९८।

प्रमतेश्च तथा जन्म अथो कलियुगस्य वै ।
अंगुलेर्ह्रासनं चैव भूतानां यच्च चोच्यते ॥९९
शाखानां परिसंख्यान शिष्यप्राधान्यमेव च ।
वाक्यं सप्तविधं चैव ऋषिगोत्रानुकीर्तनम् ॥१००
लक्षणं सूतपुत्राणां ब्राह्मणस्य च कृत्स्नशः ।
वेदानां व्यसनं चैव वेदव्यासैर्महात्मभिः ॥१०१
मन्वन्तरेषु देवानां प्रजेशानां च कीर्त्तनम् ।
मन्वन्तरक्रमश्चैव कालज्ञानं च कीर्त्यते ॥१०२
दक्षस्य चापि दौहित्राः प्रियाया दुहितुः शुभाः ।
ब्रह्मादिभिस्ते जनिता दक्षेणैव च धीमता ॥१०३
सावर्णाश्चाव कीर्त्यन्ते मनवो मेरुमाश्रिताः ।
ध्रुवस्यौत्तानपादस्य प्रजासर्गोपवर्णनम् ॥१०४
चाक्षुषस्य मनो सर्गः प्रजानां वीर्यवर्णनम् ।
प्रभुणा चैव वैन्येन भूमिदोहप्रवर्त्तता ॥१०५

प्रमति के जन्म का कीर्त्तन और इसके अनन्तर कलियुग के जन्म का वर्णन है । जो व्यतीत हो चुके है उनका अँगुली से ह्रास का होना कहा जाता है ।९९। शाखाओं की परिसंख्यों और शिष्यों की प्रधानता कही गयी है । सात प्रकार के वाक्य और ऋषियों के गोत्र का कथन है ।१००। सूत पुत्रों का लक्षण और ब्राह्मण का पूर्ण लक्षण है । महान् आत्मा वाले वेद-व्यासों के द्वारा वेदों का व्यसन बताया गया है ।१०१। मन्वन्तरों में देवों का और प्रजापतियों का कीर्त्तन किया गया है । मन्वन्तर का क्रम और काल के ज्ञान का वर्णन किया है ।१०२। दक्ष-प्रजापति की प्यारी बेटी के परम शुभ दौहित्र (धेवते) वर्णित किये गये हैं । धीमान् दक्ष के ही द्वारा ब्रह्मादि से वे उत्पन्न किये थे ।१०३। यहाँ पर मेरु गिरि पर आश्रय लेने वाले सावर्ण मनुओं का कीर्त्तन किया जाता है । उत्तानपाद राजा के पुत्र ध्रुव की प्रजाओं के उपसर्ग का वर्णन है । चाक्षुष मनु के सर्ग का कथन है और प्रजाओं के वीर्य—पराक्रम का कथन है । प्रभु वैन्य के द्वारा जो भूमि के दोहन करने के लिए प्रवृत्ति हुई थी उसका वर्णन है ।१०४-१०५।

पात्राणां पयसां चैव वत्सानां च विशेषणम् ।
ब्रह्मादिभिः पूर्वमेव दुग्धा चेयं वसुन्धरा ॥१०६
दशभ्यश्च प्रचेतोभ्यो मारिषायां प्रजापतेः ।
दक्षस्य कीर्त्यते जन्म समस्यांशेन धीमतः ॥१०७
भूतभव्यभवेशत्वं महेंद्राणां च कीर्त्यते ।
मन्वादिका भविष्यंति आख्यानैर्बहुभिर्वृताः ॥१०८
वैवस्वतस्य च मनोः कीर्त्यते सर्गविस्तरः ।
ब्रह्मादिकोश उत्पत्तिर्भृग्वादीनां च कीर्त्यते ॥१०९
विनिष्कृष्य प्रजासर्गे चाक्षुषस्य मनोः शुभे ।
दक्षस्य कीर्त्यते सर्गो ध्यानाद्वैवस्वतांतरे ॥११०
नारदः कृतसंवादो दक्षपुत्रान्महाबलान् ।
नाशयामास शापाय मानसो ब्राह्मणः सुतः ॥१११
ततो दक्षोऽसृजत्कन्यां वैरिणा नाम विश्रुताः ।
मरुत्प्रवाहे मरुतो दित्यां देव्यां च संभवः ॥११२

पात्रों का, दुग्धों का और वत्सों का विशेषण बताया गया है। पूर्व में ही ब्रह्मा आदि के द्वारा इस वसुन्धरा का दोहन किया गया था।१०६। दश प्रचेताओं से मारिषा में अंश से समान धीमान् दक्ष के जन्म का कीर्तन किया जाता है।१०७। महेन्द्रों के भूतभव्य और भवेशत्व का कीर्तन किया जाता है। बहुत से आख्यानों से युक्त मन्वादिक होंगे।१०८। वैवस्वत मनु के सर्ग का विस्तार कहा जाता है और ब्रह्मादि कोश और भृगु आदि की उत्पत्ति का वर्णन किया जाता है।१०९। विनिष्कर्षक करके चाक्षुष मनु के शुभ प्रजा के सर्ग में वैवस्वत के अन्तर में ध्यान से दक्ष के सर्ग का वर्णन किया जाता है।११०। ब्रह्माजी के मानस अर्थात् मन से समुत्पन्न पुत्र श्री नारद जी ने सम्वाद करके महान् बलवान् दक्ष के पुत्रों को शाप के लिए विनाश युक्त कर दिया था।१११। इसके अनन्तर प्रजापति दक्ष ने कन्याओं को समुत्पन्न किया था जो कि वैरी के द्वारा नाम विश्रुत हुए थे। मरुत् के प्रवाह में मरुत देवी दिति में समुत्पन्न हुआ था।११२।

कीर्त्यन्ते मरुतां चात्र गणास्ते सप्त सप्तकाः ।

देवत्वमिन्द्रवासेन वायुस्कन्धेषु चाश्रमः ॥११३

दैत्यानां दानवानां च यक्षगंधर्वरक्षसाम् ।
सर्वभूतपिशाचानां यक्षाणां पक्षिवीरुधाम ॥११४

उत्पत्तितश्चाप्सरसां कीर्त्यंते बहुविस्तरात् ।
मार्तंडमण्डलं कृत्स्नं जन्मैरावतहस्तिनः ॥११५

वैनतेयसमुत्पत्तिस्तथा राज्याभिषेचनम् ।
भृगूणां विस्तरश्चोक्तस्तथा चांगिरसामपि ॥११६

कश्यपस्य पुलस्त्यस्य तथैवात्रेर्महात्मनः ।
पराशरस्य च मुनेः प्रजानां यत्र विस्तरः ॥११७

तिस्रः कन्याः सुकीर्त्यन्ते यासु लोकाः प्रतिष्ठिताः ।
इच्छाया विस्तरश्चोक्त आदित्यस्य ततः परम् ॥११८

किकुविच्चरितं प्रोक्तं ध्रुवस्यैव निवर्हणम् ।
बृहद्बलानां संक्षेपादिक्ष्वाक्वाद्याः प्रकीर्त्तितः ॥११९

इसमें मरुतों के गणों के सात सप्तक अर्थात् उनचास कीर्त्तित किये जाते हैं। इनको इन्द्र के वास होने से देवत्व है तथा वायु के स्कन्धों में आश्रम है।११३। दैत्यों की—दानवों की और यक्ष—गन्धर्व तथा राक्षसों की—सब भूत और पिशाचों की—यक्षों की—पक्षियों की और वीरुधों की उत्पत्तियाँ हुई थीं।११४। इन सबकी उत्पत्तियों का और अप्सराओं की उत्पत्ति का बहुत विस्तृत कोर्त्तन किया जाता है। सम्पूर्ण मार्तण्ड मण्डल का और ऐरावत हस्ती का जन्म बताया गया है।११५। वैनतेय की उत्पत्ति और राज्य पर अभिषेक का वर्णन है। भृगुओं का और अङ्गिराओं का विस्तार कहा गया है।११६। जहाँ पर कश्यप—पुलस्त्य और महात्मा अत्रि का तथा पराशर मुनि की प्रजाओं का विस्तार बताया गया है।११७। तीन कन्याऐं बतायी जाती हैं जिनमें सबलोक प्रतिष्ठित हैं। इच्छा का विस्तार कहा गया है और इसके बाद आदित्य का विस्तृत वर्णन है।११८। किकुवित् का चरित कहा गया है। ध्रुव का निवर्हण है। बृहद्बलों का वर्णन है और संक्षेप से इक्ष्वाकु आदि कहे गये हैं।११९।

निश्यादीनां क्षितीशानां पलांडुहरणादिभिः ।
कीर्त्यंते विस्तरात्सर्गो ययातेरपि भूपतेः ॥१२०

यदुवंशसमुद्देशो हैहयस्य च विस्तरः ।
क्रोधादनन्तरं चोक्तस्तथा वंशस्य विस्तरः ॥१२१
ज्यामघस्य च माहात्म्यं प्रजासर्गश्च कीर्त्यते ।
देवावृधस्यांधकस्य धृष्टेश्चापि महात्मनः ॥१२२
अनिमित्रान्वयश्चैव विशोर्मिथ्याभिशंसनम् ।
विशोधमनुसंप्राप्तिर्मणिरत्नस्य धीमतः ॥१२३
सत्राजितः प्रजासर्गे राजर्षेर्देवमीदुषः ।
शूरस्य जन्म चाप्युक्तं चरितं च महात्मनः ॥१२४
कंसस्यापि च दौरात्म्यमेकोवंश्यात्समुद्भवः ।
वासुदेवस्य देवक्यां विष्णोरमिततेजसः ॥१२५
अनन्तरमृषेः सर्गप्रजासर्गोपवर्णनम् ।
देवासुरे समुत्पन्ने विष्णुना स्त्रीवधे कृते ॥१२६
संरक्षता शक्रवधं शापः प्राप्तः पुरा भृगोः ।
भृगुश्चोत्थापयामास दिव्यां शुक्रस्य मातरम् ॥१२७

निश्चादिक नृपों का पलाण्ड हरण आदि के द्वारा भूपति ययाति का भी सर्ग विस्तार पूर्वक कहा गया है ।१२०। राजा यदु के वंश का समुद्देश और हैहय का विस्तार बताया गया है । क्रोध के अनन्तर वंश का विस्तार कहा गया है ।१२१। ज्यामघ का माहात्म्य और उसकी प्रजाओं की उत्पत्ति कीर्तित की जाती है । देवा वृध—अन्धक और महान आत्मा वाले धृष्टि का वर्णन किया जाता है ।१२२। अनमित्र का वंश–वर्णन, तथा विशु का मिथ्या अभिशंसन और धीमान् मणिरत्न का विरोध तथा अनुसम्प्राप्ति बतायी गयी है ।१२३। राजर्षि देवमीदु के प्रजा के सर्ग में सत्राजित् और शूर का भी जन्म कहा है तथा इस महात्मा का चरित भी बताया गया है ।१२४। राजा कंस की दुरात्मता और एकीवंश्य से समुत्पत्ति बतायी गयी है । वसुदेव का जन्म और देवकी के गर्भ से अपरिमित तेज वाले भगवान् विष्णु का आविर्भाव हुआ था ।१२५। इसके पश्चात् ऋषि का सर्ग है और प्रजाओं के सर्ग का उपवर्णन है । देवासुर के समुत्पन्न होने पर विष्णु भगवान् के द्वारा स्त्री का वध किये जाने पर ।१२६। इन्द्र के वध का संरक्षण करने वाले ने पहिले

भृगु का शाप प्राप्त किया था और भृगु ने शुक्र की दिव्य माता को उठाया था ।१२७।

देवानां च ऋषीणां च संक्रमा द्वादशाहृता: ।
नारसिंहप्रभृतयः कीर्त्यन्ते पापनाशना: ॥१२८
शुक्रेणाराधनं स्थाणोर्घोरेण तपसा तथा ।
वरप्रदानकृत्तेन यत्र शर्वस्तव: कृत: ॥१२९
अनन्तरं च निर्दिष्टं देवासुरविचेष्टितम् ।
जयंत्या सह शक्रेण यत्र शुक्रो महात्मति ॥१३०
असुरान्मोहयामास शक्ररूपेण बुद्धिमान् ।
बृहस्पति तं शुक्रं शशाप स महाद्युतिः ॥१३१
उक्तं च विष्णोर्माहात्म्यं विष्णोर्जन्मनि शब्यते ।
तुर्वसुश्चात्र दौहित्रो यवीयान्यो यदोरभूत् ॥१३२
अनुद्रुह्यादय: सर्वे तथा तत्तनया नृपाः ।
अनुवंश्या महात्मानस्तेषां पार्थिवसत्तमा: ॥१३३

देवों के और ऋषियों के संक्रम से द्वादश आहुत हुए थे । नारसिंह प्रभृति पापों के नाश करने वाले कीर्त्तित किये गये हैं ।१२८। अत्यन्त घोर तप के द्वारा शुक्र देव ने भगवान् शिव की आराधना की थी । फिर उसने वर के प्रदान करने वाले भगवान् शिव की स्तुति की थी ।१२९। इसके उपरान्त देवों और असुरों की विशेष चेष्टा का निर्देश किया गया है जहाँ पर महात्मा में शुक्र ने जयन्ती के साथ इन्द्र ने किया था ।१३०। बुद्धिमान् ने इन्द्र के रूप से असुरों को मोहित कर दिया था । और महती द्युति वाले बृहस्पति ने शुक्राचार्य को शाप दे दिया था ।१३१। भगवान् विष्णु के जन्म में विष्णु का माहात्म्य कहा जाता है । वहाँ पर तुर्वसु दौहित्र था जो यदु का सब से छोटा हुआ था ।१३२। अनुद्रुह्य आदि सब नृप उसके पुत्र हुए थे । उसके महात्मा श्रेष्ठ नृप उनके पीछे वंश में होने वाले हुए थे ।१३३।

कीर्त्यंते यत्र कार्त्स्न्येन भूरिद्रविणतेजस: ।
आतिथ्यस्य तु विप्रर्षे: सप्तधा धर्मसंश्रयात् ॥१३४
बार्हस्पत्यं सूरिभिश्च यत्र शापमुपावृतम् ।

हरवंशयश: स्पर्श: शंतनोर्वीर्यशब्दनम् ॥१३५
भविष्यतां तथा राज्ञामुपसंहारशब्दनम् ।
अनागतानां संघानां प्रभूणां चोपवर्णनम् ॥१३६
भौत्यस्यांते कलियुगे क्षीणे संहारवर्णनम् ।
नैमित्तिका: प्राकृतिका यथैवात्यंतिका: स्मृता: ॥१३७
विविध: सर्वभूतानां कीर्त्यंते प्रतिसंचर: ।
अनावृष्टिर्भास्करस्य घोर: संवर्त्तकानल: ॥१३८
सांख्ये लक्षणमुद्दिष्टं ततो ब्रह्म विशेषत: ।
भुवादीनां च लोकानां सप्तानां चोपवर्णनम् ॥१३९
अपाराद्धंपरैश्चैव लक्षणं परिकीर्त्यते ।
ब्रह्मणो योजनाग्रेण परिमाणविनिर्णय: ॥१४०
कीर्त्यन्ते चात्र निरया: पापानां रौरवादय: ।
सर्वेषां चैव सत्त्वानां परिणामविनिर्णय: ॥१४१

जहाँ पर पूर्णरूप से अधिक द्रव्य और तेज वाले विप्रर्षि के धर्म के संश्रय से आतिथ्य का कीर्त्तन किया जाता है ।१३४। जहाँ पर सूरियों ने वृहस्पति के शाप को प्राप्त किया था। हर वंश के यश का स्पर्श है और राजा शन्तनु के वीर्य पराक्रम का कथन है ।१३५। आगे भविष्य में होने वाले राजाओं के उपसंहार का कथन है । जो अनागत संघ है और प्रभु हैं उनका उपवर्णन है ।१३६। भौत्य के अन्त में कलियुग के क्षीण हो जाने पर संहार का वर्णन है । जो भी किसी निमित्त के कारण होने वाले थे, प्राकृतिक थे और जो आत्यन्तिक कहे गये हैं ।१३७। समस्त प्राणियों का अनेक प्रकार का प्रति सञ्चरण था उसका कीर्त्तन किया जाता है । भगवान् भास्कर का दृष्टि में न आने वाला परम घोर संवर्त्तक अनल था ।१३८। सांख्य में लक्षण उद्दिष्ट है इसके बाद विशेष रूप से ब्रह्म का वर्णन है । ध्रुव आदि सात लोकों का उप वर्णन है ।१३९। अपराद्धंपरों के द्वारा लक्षण का परिकीर्त्तन किया जाता है। योजनाग्र से ब्रह्म के परिमाण का विशेष निर्णय किया गया है ।१४०। रौरव आदि नरकों का तथा सभी प्राणियों के पापों के निर्णय का वर्णन किया गया है ।४१।

ब्रह्मण: प्रतिसंसर्गात्सर्वसंसारवर्णनम् ।
गतिरूर्ध्वमधश्चोक्ता धर्माधर्मसमाश्रया ॥१४२
कल्पे कल्पे च भूतानां महतामपि संक्षयम् ।
असंख्यया च दुःखानि ब्रह्मणश्चाप्यनित्यता ॥१४३
दौरात्म्यं चैव भोगानां संहारस्य च कष्टता ।
दुर्लभत्वं च मोक्षस्य वैराग्याद्दोषदर्शनात् ॥१४४
व्यक्ताव्यक्तं परित्यज्य सत्त्वं ब्रह्मणि संस्थितम् ।
नानात्वदर्शनाच्छुद्धस्तवस्तत्र निवर्त्तते ॥१४५
ततस्तापत्रयाद् भीतो रूपार्थो हि निरंजनः ।
आनंदं ब्रह्मण: प्राप्य न विभेति कुश्चन ॥१४६
कीर्त्यंते च पुनः सर्गो ब्रह्मणोऽन्यस्य पूर्ववत् ।
कीर्त्यंते जगतश्चात्र सर्गप्रलयविक्रिया: ॥१४७

ब्रह्मा के प्रति संसर्ग से सब संसार का वर्णन होता है। धर्म और अधर्म के समाश्रय वाली ऊर्ध्वगति और अधोगति कही गयी है।१४२। कल्प कल्प में महान् भूतों का भी संक्षय होता है और असंख्य दुःख होते हैं तथा ब्रह्मा की भी नित्यता नहीं है अर्थात् ब्रह्मा का भी विनाश होता है।१४३। भोगों की दुरात्मता है अर्थात् भोगों का बुरा प्रभाव होता है और संहार के समय में बड़ा कष्ट होता है। दोषों के देखने से जो वैराग्य उत्पन्न होता है वह बहुत कठिन है और मोक्ष होना महान दुर्लभ है।१४४। व्यक्त और अव्यक्त का पूर्ण सत्व ब्रह्म में संस्थित हो जाता है। नाना रूपता के दर्शन से वहाँ पर शुद्ध स्तव निवृत्त हो जाया करता है।१४५। इसके अनन्तर तीनों (आधिभौतिक-आधिदैविक आध्यात्मिक) तापों से भयभीत होता हुआ रूपार्थ निरञ्जन ब्रह्म के आनन्द को प्राप्त करके फिर कहीं से भी नहीं डरता है।१४६। फिर पूर्व की ही भाँति अन्य ब्रह्मा के सर्ग का कीर्त्तन किया जाता है। इसमें जगत की सृष्टि-प्रलय और विक्रिया का कीर्त्तन किया जाता है।१४७।

प्रवृत्तयश्च भूतानां प्रसूतानां फलानि च ।
कीर्त्यंते ऋषिवर्गस्य सर्गः पापप्रणाशनः ॥१४८

प्रादुर्भावो वसिष्ठस्य शक्तोर्जन्म तथैव च ।
सौदासास्थिग्रहश्चास्य विश्वामित्रकृतेन तु ॥१४९
पराशरस्य चोत्पत्तिरदृश्यन्त्यां तथा विभोः ।
संजज्ञे पितृकन्यायां व्यासश्चापि महामुनिः ॥१५०
शुकस्य च तथा जन्म सह पुत्रस्य धीमतः ।
पराशरस्य प्रद्वेषो विश्वामित्रऋषि प्रति ॥१५१
वसिष्ठसंभूतिश्चाग्नेर्विश्वामित्रजिघांसया ।
देवेन विधिना विप्र विश्वामित्रहितैषिणा ॥१५२
संतानहेतोर्विभुना गीर्णस्कंधेन धीमता ।
एकं वेदं चतुष्पादं चतुर्द्धा पुनरीश्वरः ॥१५३
तथा बिभेद भगवान् व्यासः शार्वादनुग्रहात् ।
तस्य शिष्यप्रशिष्यैश्च शाखा वेदायुताः कृताः ॥१५४

भूतगणों की प्रवृत्तियां और प्रसूत भूतों के फल कहे जाते हैं। ऋषियों के समुदाय के पापों का नाश कर देने वाला सर्ग कहा जाता है। ।१४८। वसिष्ठ मुनि का प्रादुर्भाव और शक्ति का जन्म उसी प्रकार से बतलाया गया है। विश्वामित्र के द्वारा किया हुआ इस सौदान की अस्थियों का ग्रहण कहा गया है।१४९। अदृश्यन्ती में विभु पराशर की उत्पत्ति कही गयी है। अपने पिता की कन्या के उदर से महामुनि व्यासदेव ने जन्म ग्रहण किया था।१५०। धीमान् सह पुत्र शुकदेव मुनि का जन्म कहा गया है। पराशर ऋषि का विश्वामित्र मुनि को प्रति प्रकृष्ट विद्वेष होता है।१५१। विश्वामित्र मुनि की हिंसा की इच्छा से अग्नि की वसिष्ठ सभूति का कथन है। विप्र विश्वामित्र के हित की इच्छा वाले देव विधाता ने ऐसा किया था।१५२। विभु बुद्धिमान् गीर्ण स्कन्ध ने सन्तान के हेतु से एक वेद के चार पाद किये थे और फिर ईश्वर ने चार प्रकार से किया था।१५३। भगवान् शिव के अनुग्रह से भगवान् व्यासदेव ने उसी भांति भेद किया था। उस वेद के शिष्यों और प्रशिष्टों ने वेद को अयुत शाखायें की थी।१५४।

प्रयोगे प्रह्वला नैव यथा दृष्टः स्वयंभुवा ।
पृष्टवन्तो विशिष्टास्ते मुनयो धर्मकांक्षिणः ॥१५५

देशं पुण्यमभीप्सतो विभुना तद्धितैषिणा ।
सुनाभं दिव्यरूपाभं सप्तांगं शुभशंसनम् ॥१५६
आनौपम्यमिदं चक्रं वर्त्तमानमतंद्रिताः ।
पृष्ठतो यात नियतास्ततः प्राप्स्यथ पाटितम् ॥१५७
गच्छतस्तस्य चक्रस्य यत्र नेमिर्विशीर्यते ।
पुण्यः स देशो मंतव्यः प्रत्युवाच तदा प्रभुः ॥१५८
उक्त्वा चैवमृषीन्सर्वानदृश्यत्वमुपागमत् ।
गंगा गर्भं यवाहारा नैमिषेयास्तथैव च ॥१५९
ईजिरे चैव सत्रेथ मुनयो नैमिषे तदा ॥१६०
मृते शरद्वति तथा तस्य चोत्थापनं कृतम् ।
ऋषयो नैमिषेयाश्च दयया परया युताः ॥१६१

प्रयोग में प्रस्खला नहीं है जैसा कि स्वयम्भू ने देखा है। धर्म की आकांक्षा रखने वाले उन विशिष्ट मुनियों ने पूछा था।१५५। जो कि पुण्य देश की इच्छा रखने वाले थे और विभु उनके हित की इच्छा रखने वाले थे। सुनाभ-दिव्यरूप और आभा से युक्त-सात अङ्गों वाला और शुभ को बताने वाला था।१५६। यह उपमा से रहित वर्तमान चक्र था। पीछे से अतन्द्रित होकर नियत वे गमन करें फिर पाटित को प्राप्त हो जायेंगे।१५७। गमन करते हुए उस चक्र की जहाँ पर ही नेमि विशीर्ण हो जाती है—उस समय में प्रभु ने यही उत्तर दिया था कि उसी देश को पुण्यमत मानना चाहिए।१५७। इस रीति से उन सब ऋषियों से कहकर वे अदृश्य हो गये थे। गङ्गा के गर्भ में वे नैमिषेय यवों का आहार करने वाले रहे थे।१५९। उस समय में नैमिष में मुनियों ने सत्र के द्वारा उपासना की थी।१६०। शरद्वान् के समाप्त हो जाने पर उसका उत्पादन किया था। वे नैमिषेय ऋषिगत परमाधिक दया से समन्वित थे।१६१।

निःसीमां गामिमां कृत्वा कृष्णं राजानमाहरत् ।
प्रीतिं चैव कृतातिथ्यं राजानं विधिवत्तदा ॥१६२
अंतः सर्गगतः क्रूरः स्वर्भानुरसुरो हरन् ।
हृते राजनि राजानु मद्रते मुनयस्ततः ॥१६३

गंधर्वरक्षितं दृष्ट्वा कलापग्रामकेतनम् ।
सन्निपातः पुनस्तस्य तथा यज्ञे महर्षिभिः ॥१६४
दृष्ट्वा हिरण्मयं सर्वं विवादस्तस्य तैरभून् ।
तदा वै नैमिषेयाना सत्रे द्वादशवार्षिके ॥१६५
तथा विवदमानैश्च यदुः संस्थापितश्च तैः ।
जनयित्वा त्वरण्यं वै यदुपुत्रमथायुतम् ॥१६६
समापयित्वा तत्सत्रं वायुं ते पर्युपासत ।
इति कृत्यसमुद्देशः पुराणांशोपवर्णितः ॥१६७
अनेनानुक्रमेणैव पुराणं संप्रकाशते ।
सुखमर्थः समासेन महानप्युपलक्ष्यते ॥१६८

इस भूमि को सीमा से रहित करके उन्होंने राजा कृष्ण का आहरण किया था। उस समय में उन्होंने विधि के साथ प्रीति को प्रवर्तित किया था और उनका भली-भाँति आतिथ्य भी किया था ।१६२। अन्दर से क्रूर और सब जगह जाने वाले स्वर्भानु असुर ने हरण किया था। राजा के शीघ्र जाने पर मुनि राजा के ही पीछे मद्रित हो गये थे ।१६३। कलाप ग्राम केतन को गन्धर्वों के द्वारा सुरक्षित देखकर फिर उसका सन्निपात हुआ था। उसी प्रकार से यज्ञ में महर्षियों ने देखा था ।१६४। वहाँ पर सभी कुछ सुवर्णमय उन्होंने देखा था और उनका उसके साथ विवाद हुआ था। उस अवसर पर नैमिषेयों का वह सत्र (यज्ञ) बारह वर्ष का था उस यज्ञ में ।१६५। उस भाँति परस्पर में विवाद करने वाले उन्होंने यदु को संस्थापित किया था। इसके अनतर अमृत यदु के पुत्रों वाले उस अरण्य को बचा दिया था ।१६६। उस यज्ञ की परिसमाप्ति करके उन्होंने वासुदेव की उपासना की थी। यह कृत्यों का समुद्देश है जो पुराण के इस अंश में उपवर्णित किया गया है। ।१६७। इसी अनुक्रम से यह पुराण संप्रकाशित होता है समास से सुख अर्थ होता है और इससे महान् भी उपलक्षित होता है ।१६८।

तस्मात्समासमुद्दिश्य वक्ष्यामि तव विस्तरम् ।
पादमाद्यमिदं सम्यग् योऽधीते विजितेन्द्रियः ॥१६९
तेनाधीतं पुराणं स्यात्सर्वं नास्त्यत्र संशयः ।
यो विद्याच्चतुरो वेदान् सांगोपनिषदान् द्विजाः ॥१७०

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।
विभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति ॥१७१
अभ्यसन्निममध्यायं साक्षात्प्रोक्तं स्वयंभुवा ।
नापदं प्राप्य मुह्येत यथेष्टां प्राप्नुयाद्गतिम् ॥१७२
यस्मात्पुरा ह्यभूच्चैतत्पुराणं तेन तत्स्मृतम् ।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१७३
अतश्च संक्षेपमिमं शृणुध्वं नारायणः सर्वमिदं पुराणम् ।
संसर्गकालेऽपि करोति सर्गं संहारकाले च न
वास्ति भूयः ॥१७४

इस कारण से समास का उद्देश्य करके आपको विस्तार से कहूँगा। जो अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर लेने वाला पुरुष इस आद्य पाद का भली-भाँति से अध्ययन किया करता है ।१६९। उसने इस सम्पूर्ण पुराण का ही मानों अध्ययन कर लिया है—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है। द्विज-गणों! अङ्गों और उपनिषदों के सहित जिसने चारों वेदों का ज्ञान प्राप्त कर लिया है ।१७०। इतिहास पुराणों से वेद को समुपबृंहित करना चाहिए। जो बहुत ही कम पढ़ा लिखा पुरुष है उससे वेद भी भय खाता है कि यह मेरे ऊपर प्रहार करेगा ।१७१। साक्षात् स्वयम्भू ने स्वयं कहा है कि इस अध्याय के अभ्यास करने वाला पुरुष आपदा को प्राप्त करके भी कभी मोह को प्राप्त नहीं हुआ करता है और अपनी अभीष्ट गति को प्राप्त कर लिया करता है ।१७२। कारण यह है कि यह पुराण प्राचीन काल में हुआ था और उनने यह कहा था कि जो इसके निरुक्त जानता है वह सब प्रकार के पापों से प्रमुक्त हो जाया करता है ।१७३। इसलिए इसके संक्षेप का श्रवण करो। यह सम्पूर्ण पुराण साक्षात् भगवान् नारायण का ही स्वरूप है। संसर्ग काल में भी सर्ग करता है और संहार के काल में फिर नहीं होता है ।१७४।

नैमिषाख्यान वर्णनम्

प्रत्यवोचन्पुनः सूतमृषयस्ते तपोधनाः ।
कुत्र सत्रं समभवत्तेषामद्भुतकर्मणाम् ॥१

कियन्तं चैव तत्कालं कथं च समवर्त्तत ।
आचचक्षे पुराणं च कथं तत्सप्रभंजनः ॥२
आचख्यौ विस्तरेणैव परं कौतूहलं हि नः ।
इति संचोदितः सूतः प्रत्युवाच शुभं वचः ॥३
शृणुध्वं यत्र ते धीरा मेनिरे सत्त्रमुत्तमम् ।
यावन्तं चाभवत्कालं यथा च समवर्तत ॥४
सिसृक्षमाणो विश्वं हि यजते विसृजत्पुरा ।
सत्रं हि तेऽतिपुण्यं च सहस्रपरिवत्सरान् ॥५
तपोगृहपतेर्यत्र ब्रह्मा चैवाभवत्स्वयम् ।
इडाया यत्र पत्नीत्वं शामित्रं यत्र बुद्धिमान् ॥६
मृत्युश्चक्रे महातेजास्तस्मिन्सत्रे महात्मनाम् ।
विबुधाश्चोषिरे तत्र सहस्रपरिवत्सरान् ॥७

तपश्चर्या के धन वाले उन ऋषियों ने श्रीसूतजी से फिर कहा था कि उन अद्भुत कर्मों के करने वालों का वह यज्ञ कहाँ पर हुआ था ।१। वह समय जिसमें यज्ञ का यजन हुआ था कितना था और वह किस प्रकार से सम्पन्न हुआ था ? । वायुदेव ने पुराण की किस रीति से कहा था ? ।२। उन्होंने बहुत विस्तार के साथ इस पुराण का कथन किया था—इसमें हम सबके हृदय में बड़ा भारी कौतूहल हो रहा है । इस प्रकार से जब प्रेरित किया गया था तो श्री सूतजी ने परम शुभ वचन से उत्तर दिया था ।३। हे मुनियो ! आप लोग श्रवण कीजिए । जहाँ पर उन धीरों ने उस उत्तम सत्र को किया था । और जितने समय पर्यन्त वह वहाँ पर हुआ था और जिस रीति से हुआ था ।४। इस विशाल विश्व का सृजन करने की इच्छा वाला यजन करता है तब पहिले विसृजन करता है । यह सत्र अत्यधिक पुण्य मय है जो कि एक सहस्र परिवत्सरों तक हुआ था ।५। जहाँ पर गृहपति का ब्रह्मा तप स्वयं ही हुआ था और जिसमें पत्नीत्व इडा का था और जहाँ बुद्धिमान् शामित्र था ।६। उन महान् आत्माओं वालों के यज्ञ में महातेज वाले मृत्यु ने सब किया था । सहस्र परिवत्सरों तक वहाँ पर देवगणों ने निवास किया था ।७।

भ्रमतो धर्मचक्रस्य यत्र नेमिरशीर्यत ।

कर्मणा तेन विख्यातं नैमिषं मुनिपूजितम् ॥८
यत्र सा गोमती पुण्या सिद्धचारणसेविता ।
रोहिणी ससुता तत्र गोमती साभवत् क्षणात् ॥९
शक्तिर्ज्येष्ठा समभवद्वसिष्ठस्य महात्मनः ।
अरुन्धत्याः सुतायात्रादानमुत्तमतेजसः ॥१०
कल्माषपादो नृपतिर्यत्र शक्रश्च शक्तिना ।
यत्र वैरं समभवद्विश्वामित्रवसिष्ठयोः ॥११
अदृश्यंत्यां समभवन्मुनिर्यत्र पराशरः ।
पराभवो वसिष्ठस्य यस्य ज्ञाने ह्यवर्त्तयत् ॥१२
तत्र ते मेनिरे शैलं नैमिषे ब्रह्मवादिनः ।
नैमिषं जज्ञिरे यस्मान्नैमिषीयास्ततः स्मृताः ॥१३
तत्सत्रमभवत्तेषां समा द्वादश धीमताम् ।
पुरूरवसि विक्रांते प्रशासति वसुन्धराम् ॥१४

भ्रमण करते हुए धर्म चक्र की नेमि जहां पर शीर्ण हो गयी थी । उस कर्म से मुनियों के द्वारा समर्चित नैमिष विख्यात हुआ था ।८। जहाँ परम पुण्यमयी गोमती नदी है जो कि सिद्धों और चारणों के द्वारा सदा सेवित रहा करती है । वहां पर ससुता रोहिणी एक ही क्षणमात्र में वह गोमती हो गयी थी ।९। महात्मा वसिष्ठ की शक्ति ज्येष्ठा हुई थी जो उत्तम तेज वाली अरुन्धती की सुता का यात्रा दान था ।१०। कल्माषपाद नृप और शक्ति के सहित इन्द्रदेव थे जहां पर विश्वामित्र और वसिष्ठ मुनि का वैर हुआ था ।११। जिस स्थल पर अदृश्यन्ती में पराशर मुनि ने जन्म ग्रहण किया था । जिसके ज्ञान में वसिष्ठ मुनि का पराभव हुआ था ।११। वहां पर उन ब्रह्म वादियों ने उस शैल को नैमिष माना था । क्योंकि वहां पर नैमिष यजन किया था अतएव तभी से वे सब नैमिष कहे गये थे ।१३। वह सत्र उन बुद्धिमानों का द्वादश वर्षों तक हुआ था जबकि विक्रमी पुरूरवा नृप इस वसुन्धरा पर शासन कर रहा था ।१४।

अष्टादश समुद्रस्य द्वीपानश्नन् पुरूरवाः ।
तुतोष नैव रत्नानां लोभादिति हि नः श्रुतम् ॥१५

उर्वशी चकमे तं च देवदूतप्रचोदिता ।
आजहार च तत्सत्रमुर्वश्या सह संगतः ॥१६
तस्मिन्नरपतौ सत्रे नैमिषीयाः प्रचक्रिरे ।
यं गर्भं सुषुवे गङ्गा पावकाद्दीप्ततेजसम् ॥१७
तत्तुल्यं पर्वते न्यस्तं हिरण्यं समपद्यत ।
हिरण्मयं ततश्चक्रे यज्ञवाटं महात्मनाम् ॥१८
विश्वकर्मा स्वयं देवो भावनो लोकभावनः ।
स प्रविश्य ततः सत्रे तेषाममिततेजसाम् ॥१९
ऐडः पुरूरवा भेजे तं देशं मृगयां चरन् ।
तं दृष्ट्वा महदाश्चर्यं यज्ञवाटं हिरण्मयम् ॥२०
लोभेन हतविज्ञानस्तदादातुमुपाक्रमत् ।
नैमिषेयास्ततस्तस्य चुक्रुधुर्नृपतिं भृशम् ॥२१

अट्ठारह समुद्र के द्वीपों का अशन करते हुए भी पुरूरवा लोभ से रत्नों से सन्तुष्ट न हुआ था—ऐसा हमने सुना है।१५। देवदूतों के द्वारा प्रेरित हुई उर्वशी ने उसको अपना पति बनाने की कामना की थी। उर्वशी के साथ संगत होकर उसने उस सत्र का आहरण किया था।१६। उस नर पति के होने पर नैमिषीयों ने सत्र किया था। गंगा ने पावक से दीप्त तेज वाले जिस गर्भ का प्रसव किया था।१७। उसके तुल्य पर्वत में न्यस्त किया हुआ हिरण्य (सुवर्ण) हो गया था। इसके अनन्तर उन महात्माओं को हिरण्मय कर दिया था।१८। लोकों को प्रसन्न करने वाले परम भावुक विश्वकर्मा स्वयं देव था। उन अपरिमित तेज वालों के सत्र में फिर उस विश्वकर्मा ने प्रवेश किया था। ऐड पुरूरवा ने शिकार करते हुए उस देश का सेवन किया था। उसने जब देखा था कि वह यज्ञ का स्थल एकदम सुवर्णमय है तो उसको महान् आश्चर्य हुआ था।१९-२०। लोभ के कारण उस राजा का सब ज्ञान नष्ट हो गया था और उसने उसको स्वयं ग्रहण करने का उपक्रम किया था। तब तो जो नैमिषीय मुनिगण वहाँ पर थे वे उस राजा पर बहुत क्रुद्ध हुए थे।२१।

निजघ्नुश्चापि तं क्रुद्धाः कुशवज्रैर्मनीषिणः ।
तपोनिष्ठाश्च राजानं मुनयो देवचोदिताः ॥२२

कुशवज्रं विनिष्पिष्टः स राजा व्यजहात्तनुम् ।
और्वंशेयैस्ततस्तस्य युद्धं चक्रे नृपो भुवि ॥२३
नहुषस्य महात्मानं पितरं यं प्रचक्षते ।
स तेष्ववभृथेष्वेव धर्म्मशीलो महीपतिः ॥२४
आयुरायभवायाग्र यमस्मिन् सत्रे नरोत्तमः ।
शान्तयित्वा तु राजानं तदा ब्रह्मविदस्तथा ॥२५
सत्रमारेभिरे कर्त्तुं पृथ्वीवत्सात्ममूर्तयः ।
बभूव सत्रे तेषां तु ब्रह्मचर्यं महात्मनाम् ॥२६
विश्वं सिसृक्षमाणानां पुरा विश्वसृजामिव ।
वैखानसैः प्रियसखैर्वालखिल्यैर्मरीचिभिः ॥२७
अजैश्च मुनिभिर्जातिं सूर्यवैश्वानरप्रभः ।
पितृदेवाप्सरः सिद्धैर्गंधर्वोरगचारणैः ॥२८

उन मनीषियों ने बहुत क्रोधित होते हुए कुश के वज्रों से उसका हनन किया था क्योंकि वे मुनिगण तपश्चर्या में निष्ठा रखने वाले और दैव के द्वारा प्रेरित थे ।२२। कुशाओं के वज्रों से पिसकर उस राजा ने अपना शरीर त्याग दिया था । उसके अनन्तर भूमि में उसके उर्वशी के पुत्रों के साथ नृप ने युद्ध किया था ।२३। नहुष के जिसको महात्मा पिता कहते हैं । उन अव-भृथों में ही वह महीपति बहुत ही धर्मशील था ।२४। इस सत्र में वह नर-श्रेष्ठ आयुराय और जन्म से बहुत श्रेष्ठ था । उस समय में ब्रह्म वेत्ताओं ने राजा को शान्त किया था ।२५। आत्म मूर्ति वाले उन्होंने पृथ्वी के समान सत्र करने का आरम्भ कर दिया था उनके सत्र में उन महात्माओं का ब्रह्म-चर्य हुआ था ।२६। विश्व के सृजन करने की इच्छा वाले का प्राचीनकाल में विश्व के स्रष्टाओं की भाँति वैखानस-प्रियसखा-बालखिल्य-मरीचियों-अज और मुनिगण-पितृगण-देव-अप्सरा-सिद्ध-गन्धर्व-उरग और चारण के साथ वह सूर्य तथा वैश्वानर के समान प्रभा वाला हुआ था ।२७-२८।

भारतैः शुशुभे राजा देवैरिन्द्रसमो यथा ।
स्तोत्रशस्त्रैर्गृहैर्देवान्पितृन्पिश्यच्च कर्मभिः ॥२९
आनर्चुः स्म यथाजाति गंधर्वादीन् यथाविधि ।

आराधने स सस्मार ततः कर्मान्तरेषु च ॥३०
जगुः सामानि गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
व्याजहृर्मुनयो वाचं चित्राक्षरपदां शुभाम् ॥३१
मन्त्रादि तत्र विद्वांसो जजपुश्च परस्परम् ।
वितंडावचनैश्चैव निजघ्नुः प्रतिवादिनः ॥३२
ऋषयश्चैव विद्वांसः शब्दार्थन्यायकोविदाः ।
न तत्र हारितं किंचिद्विविशुर्ब्रह्मराक्षसाः ॥३३
नैव यज्ञहरा दैत्या नैव वाजमुखास्त्रिणः ।
प्रायश्चित्तं दरिद्रं च न तत्र समजायत । ३४
शक्तिप्रज्ञाक्रियायोगैर्विधिराशीष्वनुष्ठितः ।
एवं च ववृधे सत्रं द्वादशाब्दं मनीषिणाम् ॥३५

भारतीयों के द्वारा राजा देवगणों से इन्द्र के समान शोभायुक्त हुआ था । शस्त्रों-स्तोत्रों और गृहों से देवगणों का तथा पित्र्य कर्मों से पितृगणों का और गन्धर्व आदि का जाति के अनुसार विधिपूर्वक किया करते थे । उसने आराधना में और फिर अन्य कर्मों में स्मरण किया था ।२९-३०। गन्धर्वगण सामवेद के मन्त्रों का गान कर रहे थे परम शुभ और विचित्र अक्षरों और पदों से युक्त वाणी का उच्चारण कर रहे थे जो परम शुभ थी ।३१। वहाँ पर विद्वान् लोग परस्पर में मन्त्रों का जप करते थे । प्रतिवादी गण वितण्डावाद के वचनों के द्वारा निहनन कर रहे थे ।३२। ऋषिगण और शब्दार्थ तथा न्याय के ज्ञाता वहाँ पर थे । वहाँ पर कुछ भी हारित नहीं था और ब्रह्मराक्षसों ने प्रवेश किया था ।३३। दैत्यगण यज्ञ के हरण करने वाले नहीं थे और वाजमुख अस्त्र आदि थे । प्रायश्चित्त और दरिद्रता वहाँ पर नहीं थे ।३४। शक्ति-प्रज्ञा और क्रिया के योगों से आशिषों में विधि अनुष्ठित की गयी थी । इस रीति से वह यज्ञ मनीषियों का बारह वर्ष पर्यन्त वृद्धि युक्त हुआ था ।३५।

ऋषीणां नैमिषीयाणां तदभूदिव वज्रिणः ।
वृद्धाद्या ऋत्विजो वीरा ज्योतिष्टोमान् पृथक्पृथक् ॥३६
चक्रिरे पृष्ठगमनाः सर्वानियुतदक्षिणान् ।

समाप्तयज्ञो यत्रास्ते वासुदेवं महाधिपम् ॥३७
पप्रच्छुरमितात्मानं भवद्भिर्यदहं द्विजः ।
प्रचोदितः स्ववंशार्थं स च तानब्रवीत्प्रभुः ॥३८
शिष्यः स्वयंभुवो देवः सर्वं प्रत्यक्षदृग्वशी ।
अणिमादिभिरष्टाभिः सूक्ष्मैरंगैः समन्वितः ॥३९
तिर्यग्वातादिभिर्वर्षैः सर्वाल्लोकान्बिभर्ति यः ।
सप्तस्कन्धा भृताः शाखाः सर्वतोयाजराजरात् ॥४०
विषयैर्मरुतो यस्य संस्थिताः सप्तसप्तकाः ।
व्यूहत्रयाणां सूतानां कुर्वन् सत्रं महाबलः ॥४१
तेजसश्चाप्युपायानां दधातीह शरीरिणः ।
प्राणाद्या वृत्तयः पञ्च धारणानां स्ववृत्तिभिः ॥४२

ऋषियों का जो कि नैमिषीय थे वह सत्र इन्द्र के समान हुआ था। वृद्धाद्य-ऋत्विज और वीर पीछे की ओर गमन करने वाले होते हुए ज्योतिष्टोमों को पृथक् २ सबको अयुत दक्षिणा वाले कर रहे थे। जहाँ पर यज्ञ समाप्त हुआ था वहाँ पर महान् आधिप भगवान् वासुदेव से जो कि अमित आत्मा वाले थे पूछा था कि आपने मुझ ब्राह्मण को प्रेरित किया था कि अपने वंश के लिए यह करो। और उन प्रभु ने उनसे कहा था ।३६-३८। शिष्य वशी देव स्वयंम्भुव है जो प्रत्यक्ष रूप से देखने वाला है और अणिमा आदि आठों सूक्ष्म अङ्गों से समन्वित रहते हैं ।३९। जोकि तिर्यग्वात आदि वर्षों से समस्त लोकों का भरण किया करते हैं। सात स्कन्धशाखाओं से भृत थे और विषयों से सर्व तो या जराजर युक्त थे जिसके मरुत् सप्त सप्तक संस्थित महाबल सूत तीनों व्यूहों का सत्र कर रहा था ।४०-४१। उपायों के शरीर धारी तेज का यहां पर धारण करता है। धारणाओं की प्राणाद्य पाँच वृत्तियां अपनी वृत्तियों से युक्त थी ।४२।

पूर्णमाणः शरीराणां धारणं यस्य कुर्वते ।
आकाशयोनिर्द्विगुणः शब्दस्पर्शसमन्वितः ॥४३
वाचोरणिः समाख्याता शब्दशास्त्रविचक्षणैः ।
भारत्याः श्लक्ष्णया सर्वान्मुनीन्प्रह्लादयन्निव ॥४४

पुराणज्ञाः सुमनसः पुराणाश्रययुक्तया ।
पुराणनियता विप्राः कथामकथद्विभुः ॥४५
एतत्सर्वं यथावृत्तमाख्यानं द्विजसत्तमाः ।
ऋषीणां च परं चैतल्लोकतत्त्वमनुत्तमम् ॥४६
ब्रह्मणा यत्पुरा प्रोक्तं पुराणं ज्ञानमुत्तमम् ।
देवतानामृषीणां च सर्वपापप्रमोचनम् ॥४७
विस्तरेणानुपूर्व्या च तस्य वक्ष्याम्यनुक्रमम् ॥४८

जिसका शरीरों का धारण को पूर्यमाण होता हुआ करता है। आकाश जिसकी योनि है वह द्विगुण है और शब्द तथा स्पर्श समन्वित ।४३। शब्द शास्त्र अर्थात् व्याकरण के विद्वानों के द्वारा वाचोरपि कही गयी है। परम नम्र और मधुर वाणी से सभी मुनिगणों को आनन्दित करते हुए ही ऐसा किया था ।४४। सुन्दर मन वाले जो पुराणों के ज्ञाता थे उन्होंने पुराणों के समाश्रय के युक्त होकर जो पुराणों के प्रवचन करने में नियत थे उनसे विभु ने कहा कही थी ।४५। हे द्विजश्रेष्ठो ! यह सब आख्यान जैसा भी हुआ था। ऋषियों का यह परम सर्वोत्तम लोक तत्व है ।४६। प्राचीन काल में ब्रह्माजी ने उत्तम ज्ञान पुराण कहा था वह देवताओं से और ऋषियों के सभी प्रकार के पापों का मोचन करने वाला है अब पूर्ण विस्तार से और आनुपूर्वी अर्थात् आरम्भ से अन्त तक क्रम से मैं अनुक्रम से बतलाऊँगा ।४७-४८।

—❀—

सर्ग-वर्णनम्

शृणु तेषां कथां दिव्यां सर्वपापप्रमोचिनीम् ।
कथ्यमानां मया चित्रां बह्वर्थां श्रुतिसंमताम् ॥१
य इमां धारयेन्नित्यं शृणुयाद्वाप्यभीक्ष्णशः ।
स्ववंशं धारणं कृत्वा स्वर्गलोके महीयते ॥२
विश्वतारा याञ्च पञ्चा यथावृत्तं यथाश्रुतम् ।
कीर्त्यमानं निबोधार्थ पूर्वेषां कीर्त्तिवर्द्धनम् ॥३

धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं शत्रुघ्नमेव च ।
कीर्त्तनं स्थिरकीर्तीनां सर्वेषां पुण्यकर्मणाम् ॥४
यस्मात्कल्पायते कल्पः समग्रं शुचये शुचिः ।
तस्मै हिरण्यगर्भाय पुरुषायेश्वराय च ॥५
अजाय प्रथमायैव वरिष्ठाय प्रजासृजे ।
ब्रह्मणे लोकतन्त्राय नमस्कृत्य स्वयंभुवे ॥६
महदाद्यं विशेषांतं सवैरूप्यं सलक्षणम् ।
पञ्चप्रमाणं षट्श्रोतः पुरुषाधिष्ठितं च यत् ॥७

श्री सूतजी ने कहा—समस्त पापों का प्रमोचन कर देने वाली उनकी परम दिव्य कथा का आप अब श्रवण कीजिए जो कि मेरे द्वारा कही जा रही है। यह कथा बहुत ही विचित्र है और श्रुति के संमत है। इसका प्रचुर अर्थ भी है।१। जो पुरुष इस कथा को नित्य धारण किया करता है और बारम्बार इसका श्रवण किया करता है वह अपने वंश को धारण करके अन्त में स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है।२। जिस प्रकार से हुआ है और जैसा सुना गया है जो यह पंच विस्व तारा है। ज्ञान प्राप्त करने के लिए कीर्तित किया हुआ यह पूर्व में होने वालों की कीर्त्ति का बढ़ाने वाला है।३। यह परम धन्यपण देने वाला—आयु के बढ़ाने वाला—स्वर्गलोक प्राप्त कराने वाला और शत्रुओं का नाशक है। स्थिर कीर्ति से युक्त-पुण्य कर्मों वाले सबका कीर्त्तन करना इन उपर्युक्त सभी के देने वाला होता है।४। जिसके कल्प भी कल्प का रूप धारण किया करता है और सम्पूर्ण शुचि के लिए भी शुचि है उन पुरुषों के स्वामी हिरण्यगर्भ के लिए जो अजन्मा है—सबसे प्रथम है—सबमें परमश्रेष्ठ है और प्रजाओं का सृजन करने वाले हैं उन लोह तन्त्र स्वयम्भू ब्रह्माजी के लिए नमस्कार है।५-६। जो महत् का आदि में होने वाला है, जो विशेष के अन्त वाला है जो वैरूप्य से युक्त है—जो लक्षण वाला है—जो पांच प्रणामों वाला है—जो षट् श्रान्त है और पुरुषाधिष्ठित है।७।

आसंयमात्प्रवक्ष्यामि भूतसर्गमनुत्तमम् ।
अव्यक्तं कारणं यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम् ॥८
प्रधानं प्रकृतिं चैव यमाहुस्तत्त्वचिंतकाः ।

गन्धरूपरसैर्हीनं शब्दस्पर्शविवर्जितम् ॥९
जगद्योनिर्म्महाभूतं परं ब्रह्म सनातनम् ।
विग्रहं सर्वभूतानामव्यक्तमभवत्किल ॥१०
अनाद्यंतमजं सूक्ष्मं त्रिगुणं प्रभवोप्ययम् ।
असांप्रतिकमज्ञेयं ब्रह्म यत्सदसत्परम् ॥११
तस्यात्मना सर्वमिदं व्याप्तमासीत्तमोमयम् ।
गुणसाम्ये तदा तस्मिन्नविभातं तमोमयम् ॥१२
सर्गकाले प्रधानस्य क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्य वै ।
गुणभावाद्भासमाने महातत्वं बभूव ह ॥१३
सूक्ष्म स तु महानग्रे अव्यक्तेन समावृतः ।
सत्वोद्रेको महानग्रे सत्वमात्रप्रकाशकः ॥१४

इस परमोत्तम भूतों के सर्ग को संयम से आरम्भ करने मैं बतलाऊँगा । जो अव्यक्त कारण है वह नित्य है और उसको स्वरूप सत् एवं जगत् दोनों ही प्रकार का है ।८। तत्वों का चिन्तन करने वाले विचारक लोग उस त्र्यम्बक को प्रधान तथा प्रकृति कहा करते हैं जो कि गन्ध-स्पर्श और रस से रहित है तथा शब्द से भी विवर्जित है ।९। इस सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति स्थान, महाभूत सनातन परब्रह्म तथा समस्त भूतों का विग्रह निश्चित रूप से अव्यक्त हो गया था ।१०। आदि और अन्त से रहित अजन्मा, सूक्ष्म रूप वाला सत्व-रज और तम-इन तीन गुणों से युक्त अर्थात् त्रिगुणात्मक, सबका प्रभाव भी यह है जो असाम्प्रतिक, न जानने के योग्य, सत् और असत् स्वरूप वाला, पर ब्रह्म है । जो सभी भूतों का निग्रह है वही अव्यक्त हो गया है । ।११। उसी की आत्मा से यह सम्पूर्ण विश्व व्याप्त है तम से परिपूर्ण है । उस समय में उस गुणों (तीनों गुणों) के साम्य होने पर यह तमोमय विभात नहीं होता है ।११। जब सृजन का समय होता है उस काल में क्षेत्र के ज्ञाता के द्वारा अधिष्ठित प्रधान के गुणों के भय से भासमान होने पर यह महातत्व होगया था ।१३। आगे वह सूक्ष्म रूप वाला महान् अव्यक्त से समावृत था । सत्व गुण की अधिकता से युक्त महान् केवल सत्व का ही प्रकाश करने वाला था ।१४।

सत्वान्महान्स विज्ञेय एकस्तत्कारणः स्मृतः ।

लिंगमात्रं समुत्पन्नं क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं महत् ॥१५
संकल्पोऽध्यवसायश्च तस्य वृत्तिद्वयं स्मृतम् ।
महासृष्टिं च कुरुते वीतमानः सिसृक्षया ॥१६
धर्मादीनि च भूतानि लोकतत्वार्थहेतवः ।
मनो महात्मनि ब्रह्म दुर्बुद्धिख्यातिरीश्वरात् ॥१७
प्रज्ञासंधिश्च सर्वस्वं संख्यायतनरश्मिभिः ।
मनुते सर्वभूतानां तस्माच्चेष्टफलो विभुः ॥१८
भोक्ता त्राता विभक्तात्मा वर्त्तनं मन उच्यते ।
तत्वानां संग्रहे यस्मान्महांश्च परिमाणतः ॥१९
शेषेभ्यो गुणतत्वेभ्यो महानिव तनुः स्मृतः ।
विभक्तिमानं मनुते विभागं मन्यतेऽपि वा ॥२०
पुरुषो भोगसंबंधात्तेन चासौ संति स्मृतः ।
बृहत्वाद् बृंहणत्वाच्च भावानामखिलाश्रयात् ॥२१

सत्र से वह महान् एक जानने के योग्य है। और एक ही कारण कहा गया है क्षेत्रज्ञ से अधिष्ठित महत् केवल लिङ्ग ही समुत्पन्न हुआ था ।१५। उसकी छै प्रकार की वृत्ति बतायी गयी है—एक तो सङ्कल्प और दूसरी वृत्ति अध्यवसाय है। सृजन करने की इच्छा से वीतमान वह इस महती सृष्टि को किया करता है ।१६। और धर्म आदि भूत लोकतत्वार्थ के हेतु हैं। महान् आत्मा में मन ही ब्रह्म है और ईश्वर से इसकी दुर्बुद्धि यह ख्याति है ।१७। सख्यायत रश्मियों से सब भूतों की प्रज्ञा सन्धि सर्वस्व मानता है। इस कारण से विभु चेष्टा के वाला होता है ।१८। भोक्ता (भोगने वाला) परित्राण करने वाला–विभक्त आत्मा वाला बरतने वाला जो है वही मन कहा जाता है। जिसमें तत्वों के संग्रह में है और परिणाम से महान् है ।१९। शेष जो गुणों के तत्व हैं उनके महान की ही भाँति तनु कहा गया है। विभक्ति स युक्त को मानता है अथवा विभाग को मानता है ।२०। यह पुरुष उसके द्वारा अर्थात् शरीर के द्वारा भोगों का सम्बन्ध होने से सत् में कहा गया है। बृहत् होने से और बृंहणत्व होने से और भावों का पूर्ण आश्रय होने से पैदा होता है ।२१।

यस्माद्बृंहयत भावान् ब्रह्मा तेन निरुच्यते ।
आपूरयति यस्माच्च सर्वान् देहाननुग्रहैः ॥२२
बुध्यते पुरुषश्चात्र सर्वान् भावान्पृथक् पृथक् ।
तस्मिस्तु कार्यकरणं संसिद्धं ब्रह्मणः पुरा ॥२३
प्राकृतं देवि वर्त्त मां क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंमितः ।
स वै शरीरी प्रथमः पुरा पुरुष उच्यते ॥२४
आदिकर्त्ता स भूतानां ब्रह्माग्रे समवर्त्तिनाम् ॥२५
हिरण्यगर्भः सोऽण्डेऽस्मिन्प्रादुर्भूतश्चतुर्मुखः ।
सर्गे च प्रतिसर्गे च क्षेत्रज्ञो ब्रह्म संमितः ॥२६
करणैः सह पृच्छते प्रत्याहारैस्त्यजंति च ।
भजंते च पुनर्देहांस्ते समाहारसंधिषु ॥२७
हिरण्मयस्तु यो मेरुस्तस्योद्धर्तुं महात्मनः ।
गर्तोदकं संबुदास्तु हरेयुश्चापि पञ्जला: ॥२८

जिससे भावों का बृंहण करना है उसी से ब्रह्मा—इस नाम से कहा जाया करता है । और जिस कारण से समस्त देवों को अनुग्रहों के द्वारा आपूरित करता है ।२२। यहाँ पर पुरुष सब भावों को पृथक् पृथक् जानता है । उसमें तो पहले ब्रह्म का कार्य और करण से सिद्ध हुआ है ।२३। हे देवि ! मुझको प्राकृत समझकर बतलाया करो । जो क्षेत्रज्ञ है वह ब्रह्म से समित है । वह शरीर धारी निश्चय ही पहिले पुरुष कहा जाया करता है ।२४। ब्रह्मा के आगे समवर्ती भूतों का वह आदि कर्त्ता है ।२५। वह हिरण्यगर्भ इस अण्ड में चार मुखों वाला प्रादुर्भूत हुआ था । सर्ग और प्रतिसर्ग में क्षेत्रज्ञ ब्रह्म संमित है ।२६। करणों के साथ पूछते हैं और प्रत्याहारों से त्याग करते और वे पुनः समाहार सन्धियों में देहों का सेवन करते हैं ।२७। हिरण्मय जो मेरु गिरि है उस महान आत्मा वाले के गर्त्तोदक का उद्धार करने के लिये संबुद पञ्जला का भी हरण करते हैं ।२८।

यस्मिन्नंड इमे लोकाः सप्त वै संप्रतिष्ठिताः ।
पृथिवी सप्तभिर्द्वीपैः समुद्रैः सह सप्तभिः ॥२९
पर्वतैः सुमहद्भिश्च नदीभिश्च सहस्रशः ।
अन्तः स्थस्य त्विमे लोका अंतर्विश्वमिदं जगत् ॥३०

चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रौ संग्रहः सह वायुना ।
लोकालोकं च यत् किंचिदण्डे तस्मिन्प्रतिष्ठितम् ॥३१
आपो दशगुणेनैव तेजसा बाह्यतो वृताः ।
तेजो दशगुणेनैव बाह्यतो वायुना वृतम् ॥३२
वायुर्दशगुणेनैव बाह्यतो नभसा वृतः ।
आकाशमावृतं सर्वं बहिर्भूतादिना तथा ॥३३
भूतादिर्महता चैव प्रधानेनावृतो महान् ।
एभिरावरणैरडं सप्तभिः प्राकृतैर्वृतम् ॥३४
इच्छया वृत्य चान्योन्यमरणे प्रकृतयः स्थिताः ।
प्रसर्गकाले स्थित्वा च ग्रसंतश्च परस्परम् ॥३५

जिस अणु में ये सात लोक संप्रतिष्ठित हैं। इनमें पृथिवी है जो सात द्वीपों से और सात समुद्रों से युक्त हैं इस पृथ्वी में महान् पर्वत है और सहस्रों नदियाँ भी विद्यमान है। अन्दर स्थित इसके ये सब लोक हैं और अन्दर में रहने विश्व में यह जगत रहता है।२९-३०। समस्त नक्षत्रों के साथ चन्द्रमा और सूर्य है तथा वायु के साथ संग्रह है। और लोकालोक है। जो कुछ भी है। वह सब उस अण्ड में प्रतिष्ठित हैं अर्थात् विद्यमान रहा करता है।३१। दश गुने तेज के साथ बाहिर की ओर जल आवृत रहते हैं। दश गुणित वायु के द्वारा वह तेज भी आवृत रहता है।३२। दश गुने नभ (आकाश) से वह वायु वृत रहता है जोकि बाहिर की ओर है। फिर वह आकाश सम्पूर्ण बाहिर भूतादि से आवृत है।३३। भूतादिक महान से समावृत है और महान प्रधान के द्वारा आवृत है। इन सात प्राकृत आवरणों के द्वारा यह अण्ड आवृत रहा करता है।३४। एक दूसरे के मरण में परस्पर में इच्छा से आवृत प्रकृतियाँ स्थित हैं और प्रसर्ग के अर्थात् प्रसृजन के समय में स्थित होकर परस्पर में ग्रसन किया करती हैं।३५।

एवं परस्परैश्चैव धारयंति परस्परम् ।
आधाराधेयभावेन विकारास्ते विकारिषु ॥३६
अव्यक्तं क्षेत्रमित्युक्तं ब्रह्म क्षेत्रज्ञमुच्यते ।
इत्येवं प्राकृतः सर्गः क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्तु सः ॥३७

अबुद्धिपूर्वः प्रथमः प्रादुर्भूतस्तडिद्यथा ।

एतद्धिरण्यगर्भस्य जन्म यो वेत्ति तत्वतः ।

आयुष्मान्कीर्तिमान्धन्यः प्रज्ञावांश्च न संशयः ।।३८

इस प्रकार से परस्पर में एक दूसरे को धारण किया करते हैं। ये विकार वालों में आधार और आधेय के भाव से ये सब विकार होते हैं। ।३६। इस अव्यक्त को ही क्षेत्र कहा जाता है और ब्रह्म क्षेत्रज्ञ कहा जाया करता है। इस रीति से यह प्राकृत सर्ग है और वह क्षेत्रज्ञ से अधिष्ठित होता है।३७। प्रथम अबुद्धि पूर्वक होता है जिस तरह से तड़ित होती है। हिरण्यगर्भ का जन्म तो तात्विक रूप से जानता है वह आयु वाला—कीर्ति से समन्वित-धन्य और प्रज्ञा वाला होता है—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है।३८।

।। लोक–वर्णन (१) ।।

सूत उवाच—आत्मन्यवस्थिते व्यक्ते विकारे प्रतिसंहृते ।

साधर्म्येणावतिष्ठेते प्रधानपुरुषौ तदा ।।१

तमः सत्त्वगुणावेतौ समत्वेन व्यवस्थितौ ।

अनुद्रिक्तावनुचरौ तेन प्रोक्तौ परस्परम् ।।२

गुणसाम्ये लयो ज्ञेय आधिक्ये सृष्टिरुच्यते ।

सत्त्ववृद्धौ स्थितिरभूद् ध्रुवं रथशिखास्थितम् ।।३

यदा तमसि सत्त्वे च रजोऽप्यनुगतं स्थितम् ।

रजः प्रवर्तकं तच्च बीजेष्विव यथा जलम् ।।४

गुणा वैषम्यमासाद्य प्रसंगेन प्रतिष्ठिताः ।

गुणेभ्यः क्षोभ्यमाणेभ्यस्त्रयो ज्ञेया हि सादरे ।।५

शाश्वताः परमा गुह्याः सर्वात्मानः शरीरिणः ।

सत्त्वं विष्णु रजो ब्रह्मा तमो रुद्रः प्रजापतिः ।।६

रजः प्रकाशको विष्णुर्ब्रह्मास्रष्टृत्वमाप्नुयात् ।

जायते च यतश्चित्रा लोकसृष्टिर्महौजसः ।।७

श्रीसूतजी ने कहा—व्यक्त के आत्मा में अवस्थित होने पर और विकार के प्रति सहृत हो जाने पर उस समय में प्रधान और पुरुष सहकर्मता के साथ अवस्थित हुआ करते हैं ।१। तमोगुण और सत्वगुण ये दोनों समता से व्यवस्थित हुआ करते हैं। उसके साथ ये उद्रिक्त नहीं होते हैं और परस्पर से उसके अनुगामी रहा करते हैं ।२। जब इन गुणों की समता होती है तो उस समय में लय जान लेना चाहिए और जब इनमें किसी भी अधिकता अर्थात् परस्पर में विषमता होती है तो उस अवस्था में सृष्टि कही जाया करती है सत्व की वृद्धि में स्थिति हुई थी और ध्रुव पद्म शिखा में होता है और वह बीजों में जल के ही समान प्रवर्त्तक होता है ।४। ये गुण विषमता की दशा को प्राप्त करके प्रसङ्ग से प्रतिष्ठित होते हैं। गुणों के क्षोभ्यमाण होने से ये तीनों गुण बड़े आदर में जानने के योग्य होते हैं ।५। ये शाश्वत अर्थात् नित्य रहने वाले हैं—परमगुह्य है—सबकी आत्मा है और शरीरधारी है। सत्वगुण विष्णु हैं—रजोगुण प्रजापति ब्रह्मा है और तमोगुण साक्षात् रुद्र देव हैं ।६। रजोगुण के प्रकाशक विष्णु ब्रह्मा के स्रष्टा होने की अवस्था को प्राप्त किया करते हैं। जिस महान् ओज वाले से यह विचित्र प्रकार की सृष्टि समुत्पन्न हुआ करती है ।७।

तमः प्रकाशको विष्णुः कालत्वेन व्यवस्थितः ।
सत्त्वप्रकाशको विष्णुः स्थितित्वेन व्यवस्थितः ।।८
एत एव त्रयो लोका एत एव त्रयो गुणाः ।
एत एव त्रयो वेदा एत एव त्रयोऽग्नयः ।।९
परस्परान्वया ह्येते परस्परमनुव्रताः ।
परस्परेण वर्तंते प्रेरयति परस्परम् ।।१०
अन्योन्यं मिथुनं ह्येते अन्योन्यमुपजीविनः ।
क्षणं वियोगो न ह्येषां न त्यजंति परस्परम् ।।११
प्रधानगुणवैषम्यात्सर्गकाले प्रवर्त्तते ।
अदृष्टाऽधिष्ठितात्पूर्वं तस्मात्सदसदात्मकात् ।।१२
ब्रह्मा बुद्धित्वमिथुनं युगपत्संबभूव ह ।
तस्मात्तमोव्यक्तमयं क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञकः ।।१३

अर्थों के तत्वों का ज्ञाता होगा ।४८। वह अपने पितरों के गौरव से सुसमन्वित होगा और महान यत्न से परम घोर तप करके निश्चय ही स्वर्ग से यहाँ पर गङ्गा को लावेगा ।४६।

तदंभसा पावितेषु तेषां गात्रास्थिभस्मसु ।
प्राप्नुवंति गतिं स्वर्गे भवतः पितरोऽखिला ॥५०
तथेति तस्या माहात्म्यं गंगाया नृपनन्दन ।
भागीरथीति लोकेऽस्मिन्सा विख्यातिमुपैष्यति ॥५१
यत्तोयप्लावितेष्वस्थिभस्मलोमनखेष्वपि ।
निरयादपि संयाति देही स्वर्लोकमक्षयम् ॥५२
तस्मात्त्वं गच्छ भद्रं ते न शोकं कर्त्तुमर्हसि ।
पितामहाय चैवैनमश्वं संप्रतिपादय ॥५३
जैमिनिरुवाच–
ततः प्रणम्य तं भक्त्या तथेत्युक्त्वा महामतिः ।
ययौ तेनाभ्यनुज्ञातः साकेतनगरं प्रति ॥५४
सगरं स समासाद्य तं प्रणम्य यथाक्रमम् ।
न्यवेदयच्च वृत्तांतं मुनेस्तेषां तथात्मनः ॥५५
प्रददौ तुरगं चापि समानीतं प्रयत्नतः ।
अतः परमनुष्ठेयमब्रवीत्कि मयेति च ॥५६

उस पतित पावनी गङ्गा के पुनीत जल से उन सबके गात्र-अस्थि और भस्म के पवित्र हो जाने पर वे समस्त आपके पितृगण स्वर्ग में गति को प्राप्त करेंगे ।५०। हे नृपनन्दन उस गङ्गा का माहात्म्य ही ऐसा अद्भुत है। राजा भगीरथ के द्वारा यहाँ लाने से इस लोक में उसका नाम भागीरथी प्रसिद्ध होगा ।५१। गङ्गा का बड़ा अद्भुत माहात्म्य होता है कि उसके जल में किसी भी प्राणी की अस्थि-भस्म-नख आदि कोई भी भाग जब प्लावित हो जाता है तो वह प्राणी नरक की यातनाओं से भी मुक्त होकर अक्षय स्वर्गलोक में चला जाया करता है ।५२। इस कारण से अब आप यहाँ से चले जाइए—आपका कल्याण होगा—आपको कुछ भी शोक नहीं करना चाहिए। अपने पितामह को यह अश्व ले जाकर दे दो ।५३। जैमिनि मुनि

एकधा स द्विधा चैव त्रिधा च बहुधा पुनः ।
योगीश्वरः शरीराणि करोति विकरोति च ॥२१

वह प्रथम ही शरीर था जो कि धारणत्व से व्यवस्थित था। यहाँ पर अनुपम ज्ञान से और वैराग्य से सम्प्तति था। इसके अव्यक्तता के लिए उस मन से वह जो-जो भी इच्छा करता था वही करता था क्योंकि इसके तीनों गुण वश में किये हुए थे और भाव से वे एक दूसरे की अपेक्षा करने वाले थे।१५-१६। चतुर्मुख ब्रह्मात्व को प्राप्त किया था और अन्त करनेवाले पुरुष हुए। इस प्रकार से स्वयम्भू की हो ये तीन अवस्थाएँ थीं।१७। ब्रह्मत्व की दशा में सब रजोगुण है और काल की अवस्था में रजोगुण और तमोगुण होता है। जब पुरुष की दशा में यह होते हैं तो तत्वगुण के युक्त होते हैं। इस प्रकार से 'स्वयम्भू में गुणों की वृत्ति होती है।१८। जब ब्रह्मा की दशा में यह रहते हैं तो यह लोकों का सृजन किया करते हैं। जब काल का स्वरूप धारण किया करते है तो उन सभी लोकों का सक्षय करते हैं। जब केवल पुरुष की दशा में होते हैं तो यह उदासीन रहते हैं। ऐसे स्वयम्भू की ही ये यीन भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ हुआ करती हैं।१९। ब्रह्मा कमल के दलों के समान नेत्रों वाले होते हैं और काल का जब उनका स्वरूप होता है तो अञ्जन के समान कृष्ण वर्ण होता है। जब उदासीन पुरुष के रूप में होते हैं तो यह परमात्मा के स्वरूप से पुण्डरीकाक्ष होते हैं।२०। एक प्रकार से—दो प्रकार से—तीन प्रकार से फिर बहुत प्रकार से योगीश्वर प्रभु अनेक शरीरों को बनाया करते हैं और बदलते रहा करते हैं।२१।

नानाकृतिक्रियारूपमाश्रयंति स्वलीलया ।
त्रिधा यद्वर्तते लोके तस्मात्त्रिगुण उच्यते ॥२२
चतुर्द्धा प्रविभक्तत्वाच्चतुर्व्यूहः प्रकीर्त्तितः ।
यदा शेते तदार्थाते यद्भक्ते विषयान्प्रभुः ॥२३
यत्स्वस्थाः सततं भावस्तस्मादात्मा निरुच्यते ।
ऋषिः सर्वगतश्चात्र शरीरे सोऽभ्ययात्प्रभुः ॥२४
स्वामी सर्वस्य यत्सर्वं विष्णुः सर्वप्रवेशनात् ।
भगवानग्रसद्भावान्नागो नागस्वसंश्रयात् ॥२५
परमः संप्रहृष्टत्वाद्देवतादोमिति स्मृतिः ।

सर्वज्ञः सर्वविज्ञानात्सर्वः सर्वं यतस्ततः ॥२६
नराणां स्वापनं ब्रह्मा तस्मान्नारायणः स्मृतः ।
त्रिधा विभज्य चात्मानं सकलः संप्रवर्त्तते ॥२७
सृजते ग्रसते चैव पाल्यते च त्रिभिः स्वयम ।
सोऽग्रे हिरण्यगर्भः सन् ादुर्भूतः स्वयं ुः ॥२८

अनेक क्रिया-आकार और स्वरूप का आश्रय ग्रहण किया करते हैं और यह सब अपनी ही लीला से करते रहा करते हैं। लोक में यह तीन प्रकार वाले होकर रहते हैं इसी कारण से इनको त्रिगुण कहा जाता है ।२२। चार प्रकार से प्रविभक्त होने से यह चतुर्व्यूह कहा गया है। जिस समय में यह शयन किया करते हैं उस समय में वह अधन्ति होते हैं प्रभु विषयों का भोग किया करते हैं ।२३। जो स्वस्थ होते हैं तब निरन्तर भाव होता है। इसी से आत्मा कहा जाता है और ऋषि इसमें सर्वगत हैं। यह शरीर में आते हैं ।२४। भगवान् विष्णु सबके स्वामी हैं क्योंकि विष्णु का सभी में प्रवेश होता है। भगवान् अप्रसद्भावसं नाग हैं और नाग का संश्रय नहीं होता है ।२५। संप्रहृष्ट होने से परम है और देवता होने से ओम् यह स्मृति है। सबके विज्ञान होने से यह सर्वज्ञ हैं क्योंकि यह सबमें हैं अतएव यह सर्व कहा जाता है ।२६। नरों में अर्थात् जलों में यह स्वपन किया करते हैं इस कारण से ब्रह्माजी नारायण कहे गये हैं और अपने आपके स्वरूप को तीन प्रकार से विभक्त करके यह सकल से संप्रवृत्त हुआ करते हैं ।२७। इन तीनों स्वरूपों से यह लोकों का सृजन पालन और क्रम से ग्रसन किया करते हैं। वही सबसे आगे हिरण्यगर्भ होते हुए स्वयं प्रादुर्भूत हुए हैं ।२८।

आद्यो हि स्वयशश्चेव अजातत्वादजः स्मृतः ।
तस्माद्धिरण्यगर्भश्च पुराणेषु निरुच्यते ॥२९
स्वयंभुवो निवृत्तस्य कालो वर्णाग्रतस्तु यः ।
न शक्यः परिसंख्यातुं मनुवर्षशतैरपि ॥३०
कल्पसंख्यानिवृत्तस्तु परार्धो ब्रह्मणः स्मृतः ।
तावत्त्वे सोऽस्य कालोऽन्यस्तस्यांते प्रतिबुद्धयते ॥३१
कोटिवर्षसहस्राणि गृहभूतानि यानि च ।
समतीतानि कल्पानां तावच्छेषात्परे तु ये ॥३२

यत्स्वयं वर्त्तते कल्पो वाराहस्तन्निबोधत ।
प्रथमं सांप्रतस्तेषां कल्पो वै वर्त्तते च यः ॥३३
पूर्णे युगसहस्रे तु परिपाल्यं नरेश्वरैः ॥३४

क्योंकि यह सबसे आदि काल में होने वाले हैं । अतएव यह स्ववशी हैं अर्थात् अपने ही वश में रहने वाले हैं ऐसा ही कहा गया है । उसी कारण से पुराणों में इनको हिरण्यगर्भ कहा जाया करता है ।२९। जो स्वयम्भुव है वह निवृत्त का वर्णों में अग्रकाल है । इसकी परिसंख्या मनु के सैकड़ों वर्षों में भी नहीं की जा सकती है ।३०। कल्पों की संख्या से निवृत्त ब्रह्मा का परार्ध कहा गया है । उतने ही में इसका वह काल है उसके अन्त में अन्य काल प्रतिबुद्ध होता है ।३१। करोड़ों सहस्र वर्ष जो कि इसके गृहभूत हैं। उतने कल्पों के समतीत हैं और जो शेष हैं वे दूसरे हैं ।३२। जो स्वयं कल्प है वह वाराह कल्प है—ऐसा ही समझ लो । प्रथम उनमें साम्प्रत है और जो कल्प होता है ।३३। एक सहस्र युगों के पूर्ण हो जाने पर नरेश्वरों के द्वारा परिपालन के योग्य है ।३४।

—×—

॥ लोककल्पनम् (२) ॥

सूत उवाच–आपोऽग्रे सर्वगा आसन्नेतस्मिन्पृथिवीतले ।
शांतवातैः प्रलीनेऽस्मिन्न प्राज्ञायत किंचन ॥१
एकार्णवे तदा तस्मिन्नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
विभुर्भवति स ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥२
सहस्रशीर्षा पुरुषो रुक्मवर्णो ह्यतींद्रियः ।
ब्रह्मा नारायणाख्यस्तु सुष्वाप सलिले तदा ॥३
सत्त्वोद्रेकान्निषिद्धस्तु शून्यं लोकमवेक्षत ।
इमं चोदाहरंत्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति ॥४
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।
अयनं तस्य ताः प्रोक्तास्तेन नारायणः स्मृतः ॥५
तुल्यं युगसहस्रस्य वसन्कालमुपास्यतः ।

स्वर्णपत्रे प्रकुरुते ब्रह्मत्वादर्शकारणात् ॥६
ब्रह्मा तु सलिले तस्मिन्नवाग् भूत्वा तदा चरत् ।
निशायामिव खद्योतः प्रावृट्काले ततस्ततः ॥७

श्रीसूतजी ने कहा—इस पृथिवी तत्व में सबसे पूर्व जल ही जल सर्वत्र था और यह शील तथा प्रलीन था। इसमें उस समय कुछ भी नहीं जाना जाता था ।१। केवल एक समुद्र ही था और उस सागर में सभी स्थावर (अचर) और जङ्गम (चर) नष्ट हो गये थे। विभु (व्यापक) वह ब्रह्मा जी उस समय में सहस्रों पादों और नेत्रों वाले हो जाया करते हैं ।२। सहस्रों शीर्षो वाले, सुवर्ण के समान जिनका वर्ण था और जो इन्द्रियों की पहुँच से परे थे अर्थात् अप्रत्यक्ष थे ऐसे पुरुष नारायण नाम वाले ब्रह्म उस समय में समुद्र में शयन कर रहे थे ।३। सत्व के उद्रेक से निषिद्ध होते हुए उन्होंने उस समय में इस लोक को शून्य देखा था। यहाँ पर भगवान् नारायण के विषय में इन निम्न लिखित श्लोक को उदाहृत किया करते हैं ।४। जलों को नारा कहा गया है और ये जल ही नर के आत्मज हैं। ये जल ही उन नारायण प्रभु के निवास स्थान हैं अतएव प्रभु का नाम नारायण कहा गया है ।५। सहस्रों युगों के तुल्य काल तक वे प्रभु वहाँ पर निवास करते हुए स्थित रहे थे। ब्रह्मत्व के अदर्शन के कारण से वे स्वर्ण पत्र किया करते हैं ।६। उस जल में ब्रह्माजी अवाक् होकर उस समय में विचरण कर रहे थे जिस तरह से वर्षा ऋतु में रात्रि में खद्योत चमकता हुआ यहाँ से वहाँ घूमा करता है ।७।

ततस्तु सलिले तस्मिन् विज्ञायांतर्गते महत् ।
अनुमानादसंमूढो भूमेरुद्धरणं प्रति ॥८
ॐकाराष्टतनुं त्वन्यां कल्पादिषु यथा पुरा ।
ततो महात्मा मनसा दिव्यरूपमचिंतयत् ॥९
सलिलेऽवप्लुतां भूमिं दृष्ट्वा स समचिंतयत् ।
किं तु रूपमहं कृत्वा सलिलादुद्धरे महीम् ॥१०
जलक्रीडासमुचितं वाराहं रूपमस्मरत् ।
अदृश्यं सर्वभूतानां वाङ्मयं ब्रह्मसंज्ञितम् ॥११

दशयोजनविस्तीर्णमायतं शतयोजनम् ।
नीलमेघप्रतीकाशं मेघस्तनितनिः स्वनम् ।।१२
महापर्वतवर्ष्माणं श्वेततीक्ष्णोग्रदंष्ट्रिणम् ।
विद्युदग्निप्रतीकाशमादित्यसमतेजसम् ।।१३
पीनवृत्तायतस्कन्धं विष्णुविक्रमगामि च ।
पीनोन्नतकटीदेशं वृषलक्षणपूजितम् ।।१४

इसके उपरान्त उस जल में अन्तर्गत में महत् का ज्ञान प्राप्त किया था भूमिका उद्धारण करने के विषय में मूढ़ता से रहित उन्होंने अनुमान किया था ।८। इसके पश्चात् अन्य ओंकाराग्र तनु का जैसे पहिले कल्पों के आदि में था उन महात्मा ने मन में ही उस दिव्य स्वरूप का चिन्तन किया था ।९। उस विशाल जल की राशि में उन्होंने डूबी हुई भूमि को देखकर भली भाँति चिन्तन किया था कि क्या स्वरूप धारण करके मैं इस भूमि का जल से उद्धार करूँ ।१०। जल में क्रीड़ा करना बहुत ही उचित है । इस तरह से उन्होंने वाराह के रूप का स्मरण किया था । जो कि समस्त प्राणियों के द्वारा न देखने के योग्य है और वाङ्मय ब्रह्म की संज्ञा वाला है ।११। उसका विस्तार दश योजन का था उसकी चौड़ाई अर्थात् फैलाव सौ योजन था । नीले मेघ के समान उसका वर्ण था और मेघ के गर्जन के सदृश ध्वनि थी ।१२। एक विशाल पर्वत के तुल्य उसका शरीर था और उसकी दाढ़ें श्वेत एवं उग्र और तीक्ष्ण थी । बिजली की अग्नि जैसी होती है उसी प्रकार चमक थी तथा सूर्य के समान उसमें तेज था ।१३। मोटे और चौड़े स्कन्ध थे और भगवान् विष्णु के विक्रम से गमनशील थे । उसकी कटि का भाग स्थूल और ऊँचा था । वह वृष के लक्षणों से पूजित था ।१४।

आस्थाय रूपमतुलं वाराहममितं हरिः ।
पृथिव्युद्धरणार्थाय प्रविवेश रसातलम् ।।१५
दीक्षासमाप्तीष्टिदंष्ट्रः क्रतुदंतो जुहूमुखः ।
अग्निजिह्वो दर्भरोमा ब्रह्मशीर्षो महातपाः ।।१६
वेदस्कन्धो हविर्गन्धिर्हव्यकव्यादिवेगवान् ।
प्राग्वंशकायो द्युतिमान् नानादीक्षाभिरन्वितः ।।१७

दक्षिणा हृदयो योगी श्रद्धासत्त्वमयो विभुः ।
उपाकर्मरुचिश्चैव प्रवर्ग्यावर्तभूषणः ॥१८
नानाछन्दोगतिपथो गुह्योपनिषदासनः ।
मायापत्नीसहायो वै गिरिश्रृङ्गमिवोच्छ्रयः ॥१९
अहोरात्रेक्षणधरो वेदांगश्रुतिभूषणः ।
आज्यगंधः स्रुवस्तुण्डः सामघोषस्वनो महान् ॥२०
सत्यधर्ममयः श्रीमान् कर्मविक्रमसत्कृतः ।
प्रायश्चित्तनखो घोरः पशुजानुर्महामखः ॥२१

हरि भगवान् ने अमित वाराह के रूप को धारण किया था जो अतुल था और पृथिवी के जल से उद्धरण करने के लिए उन्होंने रसातल में प्रवेश किया था । अब वाराह भगवान के स्वरूप को यज्ञ का रूप देते हुए बताया जाता है दीक्षा की समाप्ति इष्टि के दाढ़ों वाले थे । उनके दाँत क्रतु था और मुख में आहुति थी । जिह्वा अग्नि थी और उनके रोम दर्भों के समान थे । महान् तपस्वी ब्रह्म शीर्ष था ।१५-१६। वेदों के स्कन्धों वाले तथा हवि की गन्ध से युक्त और हव्य-कव्य आदि के वेग से संयुत है । प्राग्वंश के शरीर वाले—द्युति से युक्त हैं और नाना प्रकार की दीक्षाओं से समन्वित है ।१७। हृदय दक्षिणा है तथा श्रद्धा सत्त्व से परिपूर्ण विभु योगी हैं । उपाकर्म की रुचि वाले और प्रवर्ग्यावर्त्त भूषण वाले हैं ।१८। अनेक छन्द गति पथ है और गुह्य उपनिषद आसन है । मायारूपिणी पत्नी की सहायता वाले तथा पर्वत की शिखर के समान उच्च है ।१९। अहोरात्र अर्थात् दिन और रात्रि रूपी नेत्रों के धारण करने वाले हैं तथा वेदों के अङ्ग श्रुति वाले हैं । घृत गन्ध वाले हैं—तुण्ड ही स्रुव है तथा सामवेद का घोष ही ध्वनि है जो कि महान है ।२०। श्रीमान् सत्यधर्म से परिपूर्ण है और कर्मों के विक्रम से सत्कृत है । प्रायश्चित्तों के नखों वाले हैं और घोर पशु जानु हैं ऐसा यह महामख है ।२१।

उद्गातांत्रो होमलिंगः फलबीजमहौषधीः ।
वाद्यंतरात्मसत्रस्य नास्मिकासोमशोणितः ॥२२
भक्ता यज्ञवराहांताश्चापः संछादिता प्रभुना ।
अग्निसंछादितां भूमिं समामिच्छन्प्रजापतिम् ॥२३

उपगम्या जुहावैता सद्यश्चाद्यसमन्यसत् ।
सामुद्राश्च समुद्रेषु नादेयाश्च नदीषु च ।
पृथक् तास्तु समीकृत्य पृथिव्यां सोऽचिनोद्गिरीन् ।।२४
प्राक्सर्गे दह्यमानास्तु तदा संवर्तकाग्निना ।
तेनाग्निना विलीनास्ते पर्वता भुवि सर्वशः ।।२५
सत्यादेकार्णवे तस्मिन् वायुना यत्तु संहिताः ।
निषिक्ता यत्रयत्रासंस्तत्रतत्राचलोऽभवत् ।।२६
ततस्तेषु प्रकीर्णेषु लोकोदधिगिरींस्तथा ।
विश्वकर्मा विभजते कल्पादिषु पुनः पुनः ।।२७
ससमुद्रामिमां पृथ्वीं सप्तद्वीपां सपर्वताम् ।
भूराद्यांश्चतुरो लोकान्पुनः पुनरकल्पयत् ।।२८

अन्न ही उद्गान्त है—होमलिङ्ग और फलों के बीज महौषधि हैं। यावन्तर आत्मसत्र के हैं तथा नास्मिका सोमणोपिस है।२२। यज्ञवराहान्त भक्त हैं और फिर जलों में प्रवेश किया था। अग्नि से संच्छादित भूमि को समा चाहते हुए प्रजापति को प्राप्त हुए और वहाँ पहुँच कर इनका हवन किया था तथा मद्य का अद्य सन्यास किया था और सामुद्र समुद्रों में तथा जो नादेय थे वे नदियों ने उन सबको पृथक् सभी कृत करके उन्होंने पृथिवी में गिरियों को चुना था।२३-२४। पहिले सर्ग में प्रलय काल की संवर्तक अग्नि से जो उस समय में दह्यमान थे। उस अग्नि से सभी ओर भूमि में वे विलीन हो गये थे।२५। उस एक मात्र रहने वाले समुद्र में सत्य से जो वायु के द्वारा संहित थे। जहाँ-जहाँ पर निषिक्त थे वहाँ-वहाँ पर अचल हो गया था।२६। उसके अनन्तर उनके प्रकीर्ण होने पर लोक तथा अधि गिरियों को विश्वकर्मा ने कल्पादि में बार-बार विभाजित किया है।२७। समुद्र से इस पृथ्वी को जो सातों द्वीपों से युक्त और पर्वतों के सहित है। भू आदि चारों लोकों को बार-बार कल्पित किया था।२८।

लोकान्प्रकल्पयित्वा च प्रजासर्गं ससर्ज ह ।
ब्रह्मा स्वयंभूर्भगवान् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।।२९
ससर्ज सृष्टं तद्रूपं कल्पादिषु यथा पुरा ।

तस्याभिध्यायतः सर्गं तदा वै बुद्धिपूर्वकम् ॥३०
प्रधानसमकाले च प्रादुर्भूतस्तमोमयः ।
तमो मोहो महामोहस्तामिस्रो ह्यंधसंज्ञितः ॥३१
अविद्या पञ्चपर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः ।
पञ्चधावस्थित चैव बीजकुम्भलतावृता: ।।३२
सर्वतस्तमसा चैव बीजकुम्भलतावृता: ।
बहिरंतश्चाप्रकाशस्तथानिः संज्ञ एव च ॥३३
यस्मात्तेषां कृता बुद्धिर्दुःखानि करणानि च ।
तस्माच्च संवृतात्मानो नगा मुख्याः प्रकीर्तिताः ॥३४
मुख्यसर्गे तदोद्भूतं दृष्ट्वा ब्रह्मात्मसंभवः ।
अप्रतीतमनाः सोऽथ तदोत्पत्तिमयन्मत ॥३५

अनेक प्रकार की प्रजाओं का सृजन करने की इच्छा वाले ब्रह्माजी ने जो स्वयम्भू भगवान् हैं अनेक लोकों की कल्पना करके उन्होंने प्रजाओं का सृजन किया था ।२९। पहिले कल्प आदि में जो स्वरूप था उसी रूप की सृष्टि का सृजन किया था । उस सृजन का अभिध्यान करते हुए उन्होंने बुद्धि पूर्वक ही सर्ग किया था ।३०। प्रधान के समकाल में तम से पूर्ण प्रादुर्भूत हुआ था । उस तम का मोह-महामोह-तामिस्र और अन्ध—ये संज्ञाएँ थीं ।३१। उन महान् आत्मा वाले की पञ्च पर्वा अविद्या प्रादुर्भूत हुई थी अत-एव उन अभिमानी और ध्यान करने वाले ब्रह्माजी का वह सर्ग भी पाँच प्रकार का व्यवस्थित हुआ था ।३२। सभी ओर बीज-कुम्भ और लताएँ तम से आवृत थे और बाहिर तथा अन्दर प्रकाश नहीं था तथा सब निःसंज्ञ था ।३३। जिससे उनकी बुद्धि की गयी थी और दुःख तथा करण हुए थे और उससे संवृत आत्मा वाले नगर मुख्य कहे गये हैं ।३४। अपने आप ही समुत्पन्न हुए ब्रह्माजी ने उस समय में मुख्य सर्ग में उद्भूत को देखा था और अपने मन में अप्रतीति करने वाले उन्होंने उस समय में उत्पत्ति ही मान लिया था ।३५।

तस्याभिध्यायतश्चान्यस्तिर्यक्स्रोतोऽभ्यवर्तत ।
यस्मात्तिर्यग्विवर्तेत तिर्यक्स्रोतस्ततः स्मृतः ॥३६

तमोबहुत्वात्तो सर्वे ह्यज्ञानबहुलाः स्मृताः ।
उत्पाद्यग्राहिणश्चैव तेऽज्ञाने ज्ञानमानिनः ॥३७
अहंकृता अहंमाना अष्टाविंशद्द्विधात्मिकाः ।
एकादशेंद्रियविधा नवधात्मादयस्तथा ॥३८
अष्टौ तु तारकाद्याश्च तेषां शक्तिविधाः स्मृताः ।
अंतः प्रकाशास्ते सर्वे आवृताश्च बहिः पुनः ॥३९
तिर्यंक् स्रोतस उच्यंते वश्यात्मानस्त्रिसंज्ञकाः ॥४०
तिर्यंक् स्रोतस्तु वै द्वितीयं विश्वमीश्वरः ।
अभिप्रायमथोद्भूतं दृष्ट्वा सर्गं तथाविधम् ॥४१
तस्याभिध्यायतो योन्यः सात्त्विकः समजायतः ।
ऊर्द्ध्वस्रोतस्तृतीयस्तु तद्वै चोर्द्ध्वं व्यवस्थितम् ॥४२

अभिध्यान करने वाले उनका अन्य एक तिर्यक् स्रोत हुआ था। जिससे तिर्यक् विवर्तित होते थे इस कारण से वह फिर तिर्यक् स्रोत कहा गया था।३६। उस तिर्यक् स्रोत में तमोगुण की अधिकता थी इस कारण से वे सभी बहुत अधिक अज्ञान से समन्वित कहे गये हैं। वे सब उत्पाद्य के ग्राही थे और उस अज्ञान में ही ज्ञान के मानने वाले थे।३७। वे अहङ्कार से युक्त थे और आत्माहङ्कारी थे। ऐसे वे अट्ठाईस प्रकार के थे। इन द्वादश इन्द्रियों के भेद थे जो कि नेत्र, कान, नासिका, जिह्वा और त्वक्—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं और हाथ, पद, गुदा उपस्थ और जिह्वा—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं और एक मन है। तथा नौ प्रकार के आत्मा हैं।३८। और आठ तारकादि हैं और उनकी शक्ति के प्रकार कहे गये हैं। वे सब अन्दर में प्रकाश वाले हैं फिर वे बाहिर से समावृत हैं।३९। तिर्यक् स्रोत कहे जाया करते हैं और वश्यात्मा तीन संज्ञा वाले हैं।४०। तिर्यक् स्रोत का सृजन करके ईश्वर ने दूसरे विश्व की रचना की थी। इसके अनन्तर उद्भूत अभिप्राय को देखकर अर्थात् उस प्रकार के सर्ग का अवलोकन किया था।४१। इस तरह से अभिध्यान करने वाले उनके जो अन्य सात्त्विक सर्ग समुत्पन्न हुआ था। तीसरा तो ऊर्द्ध्व स्रोत था और वह निश्चित रूप से ऊपर की ही ओर व्यवस्थित था।४२।

यस्मादूर्द्ध्वं न्यवर्तंत तदूर्ध्वस्रोतसंज्ञकम् ।

ता: सुखं प्रीतिबहुला बहिरंतश्च वावृता: ।।४३
प्रकाशा बहिरंतश्च उद्ध्वंस्रोत: प्रजा: स्मृता: ।
नवधातादयस्ते वै तुष्टात्मानो बुधा: स्मृता: ।।४४
ऊद्ध्वंस्रोतस्तृतीयो य: स्मृत: सर्व: सदैविक: ।
उद्ध्वंस्रोत: सु सृष्टेषु देवेषु स तदा प्रभु: ।।४५
प्रीतिमानभवद्ब्रह्मा ततोऽन्यं नाभिमन्यत ।
सर्गमन्यं सिसृक्षुस्तं साधकं पुनरीश्वर: ।।४६
तस्याभिध्यायत: सर्गं सत्याभिध्यायिनस्तदा ।
प्रादुर्बभौ भौतसर्ग: सोऽर्वाक् स्रोतस्तु साधक: ।।४७
यस्मात्तेवक्प्रिवर्तंते ततोर्वाक्स्रोतसस्तु ते ।
ते च प्रकाशबहुलास्तमस्पृष्टरजोधिका: ।।४८
तस्मात्ते दु:खबहुला भूयोभूयश्च कारिण: ।
प्रकाशा बहिरंतश्च मनुष्या: साधकाश्च ते ।।४९

कारण यह है कि वह ऊर्ध्व में रहा था । इसीलिए उसकी ऊर्ध्व स्रोत संज्ञा होती है । ये सुख पूर्वक बहुत प्रीति पूर्ण थे और बाहर भीतर आवृत थे ।४३। बाहिर भीतर रहने वाले प्रकाश ऊर्ध्व स्रोत प्रजा कहे गये थे । जो नौ धाता आदिक थे वे तुष्ट आत्मा वाले बुध कहे गये हैं ।४४। जो ऊर्ध्वस्रोत तीसरा कहा गया है वह सब सदैविक है । उस समय में ऊर्ध्व स्रोतों के सृजन किये जाने पर वह प्रभु प्रसन्न हुए थे ।४५। ब्रह्माजी का मन बहुत प्रीतियुक्त हो गया था और फिर अन्य को नहीं माना था । फिर ईश्वर ने अन्य साधक सर्ग के सृजन की इच्छा की थी ।४६। सर्ग की रचना का अभिध्यान करने वाले और उस समय में स्रोत अर्वाक् साधक था ।४७। कारण यह है कि वे अवाक् प्रवृत्त हुआ करते हैं इसी से वे अर्वाक् स्रोत होते हैं इसी से वे अर्वाक् स्रोत होते हैं और उनमें प्रकाश की बहुलता हुआ करती है और तम से स्पर्श किये हुए रजोगुण को अधिकता से युक्त होते हैं ।४८। इस कारण उनमें दु:खों की अधिकता है और पुन: पुन: करने वाले हैं । बाहिर और अन्दर प्रकाश होते हैं और वे मनुष्य साधना करने वाले हैं ।४९।

लक्षणैर्नारकाद्यैस्तैरष्टधा च व्यवस्थिताः ।
सिद्धात्मानो मनुष्यास्ते गन्धर्वैः सह धर्मिणः ॥५०
पञ्चमोऽनुग्रहः सर्गश्चतुर्द्धा स व्यवस्थितः ।
विपर्ययेण शक्त्या च सिद्धमुख्यास्तथैव च ॥५१
निवृत्ता वर्तमानाश्च प्रजायंते पुनः पुनः ।
भूतादिकानां सत्त्वानां षष्ठः सर्गः स उच्यते ॥५२
स्वादनाश्चाप्यशीलाश्च ज्ञेया भूतादिकाश्च ते ।
प्रथमो महतः सर्गो विज्ञेयो ब्रह्मणस्तु सः ॥५३
तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गः स उच्यते ।
वैकारिकस्तृतीयस्तु चेंद्रियः सर्ग उच्यते ॥५४
इत्येते प्राकृताः सर्गा उत्पन्ना बुद्धिपूर्वकाः ।
मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः ॥५५
तिर्यक्स्रोतः ससर्गस्तु तैर्यग्योन्यस्तु पञ्चमः ।
तथोद्‌र्ध्वस्रोतसां सर्गः षष्ठो दैवत उच्यते ॥५६

वे नारक आदि लक्षणों से आठ प्रकार से व्यवस्थित होते हैं। वे मनुष्य गन्धर्वों के साथ धर्म वाले होते हुए सिद्ध आत्मा वाले हैं।५०। पाँचवाँ अनुग्रह नामक सर्ग है जो चार प्रकार का व्यवस्थित है। विपर्यय से और शक्ति से और शक्ति से उसी भाँति सिद्ध मुख्य हैं।५१। निवृत्त और वर्तमान बार-बार उत्पन्न हुआ करते हैं। भूतादिक सत्वों का जो सर्ग है वह छठा सर्ग कहा जाता है।५२। और भूतादिक स्वादन और आया शील जानने के योग्य हैं। प्रथम महत् का सर्ग है वह ब्रह्मा का सर्ग तन्मात्राओं का होता है और भूतसर्ग कहा जाया करता है और भूतसर्ग कहा जाया करता है। तीसरा सर्ग वैकारिक है जो इन्द्रिय सर्ग के नाम से पुकारा जाता है।५४। ये सभी प्राकृत सर्ग हैं जो बुद्धि पूर्वक समुत्पन्न हुए हैं। प्रमुख सर्ग चौथा है और निश्चय ही स्थावर मुख्य कहे गये हैं।५५। त्रियक् स्रोत तो तिर्यग् योनियों वाला पाँचवाँ होता है। उसी भाँति ऊर्ध्व स्रोतों का सर्ग छठा है जो दैवत सर्ग के नाम से कहा जाया करता है।५६।

तत्रोद्‌र्ध्वस्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः ।

अष्टमोनुग्रहः सर्गः सात्त्विकस्तामसश्च सः ।।५७
पंचैते वैकृताः सर्गाः प्राकृताद्यास्त्रयः स्मृताः ।
प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारो नवमः स्मृतः ।।५८
प्राकृता बुद्धिपूर्वास्तु त्रयः सर्गास्तु वैकृताः ।
बुद्धिपूर्वाः प्रवर्त्तेयुस्तद्वर्गा ब्राह्मणास्तु वै ।।५९
विस्तराच्च यथा सर्वे कीर्त्यमानं निबोधत ।
चतुर्द्धा च स्थितस्सोऽपि सर्वभूतेषु कृत्स्नशः ।।६०
विपर्ययेण शक्त्या च बुद्ध्या सिद्ध्या तथैव च ।
स्थावरेषु विपर्यासस्तिर्यग्योनिषु शक्तितः ।।६१
सिद्धात्मानो मनुष्यास्तु पुष्टिर्देवेषु कृत्स्नशः ।
अथो ससर्ज वै ब्रह्मा मानसानात्मनः समान् ।।६२
वैवर्त्येन तु ज्ञानेन निवृत्तास्ते महौजसः ।
संबुद्ध्य चैव नामाथो अपवृत्तास्त्रयस्तु ते ।।६३

वहीं पर ऊर्ध्व स्रोतों का सातवाँ सर्ग है वह मानुष सर्ग होता है। आठवाँ अनुग्रह नाम वाला सर्ग है और वह दो प्रकार का होता है—एक सात्विक सर्ग है और दूसरा तामस है।५७। ये पाँच वैकृत अर्थात् विकार से युक्त सर्ग होते हैं और जो प्राकृत सर्ग हैं वे तीन कहे गये हैं। प्राकृत और वैकृत दोनों प्रकार का जो सर्ग है वह नवम कौमार होता है।५८। प्राकृत तीनों सर्ग बुद्धि पूर्वक हैं। वैकृत सर्ग बुद्धि पूर्व प्रवृत्त होते हैं और उसके वर्ग ब्राह्मण हैं।५९। जिस प्रकार से ये सब हैं वे सब विस्तार से कीर्त्तित होने वाले हैं उनको समझ लीजिए। वह भी चार प्रकार से स्थित है और पूर्णरूप से समस्त भूतों में है।६०। विपरीतता से शक्ति से बुद्धि से और सिद्धि से होते हैं। स्थावरों में तो विपर्यास होता है—तिर्यग् योनियों में शक्ति से होता है।६१। सिद्धात्मा मनुष्य पूर्णतया देवों में पुष्टि है। इसके उपरान्त ब्रह्माजी ने अपनी आत्मा के ही समान मानस अर्थात् मन से समुत्पन्नों का सृजन किया था।६२। वे वैवर्त्य ज्ञान के द्वारा महान ओज वाले प्रवृत्ति के अर्थात् सृजन के कार्य से निवृत्त हो गये थे। नाम को भली भाँति जानकर वे तीनों अपवृत्त हो गये थे।६३।

असृष्ट्वैव प्रजासर्गं प्रतिसर्गं ततस्ततः ।
ब्रह्मा तेषु व्यरक्तेषु ततोऽन्यान्साधकान्सृजत् ॥६४
स्थानाभिमानिनो देवाः पुनर्ब्रह्मानुशासनम् ।
अभूतसृष्ट्यवस्था ये स्थानिनस्तान्निबोध मे ॥६५
आपोऽग्निः पृथिवी वायुरन्तरिक्षो दिवं तथा ।
स्वर्गो दिशः समुद्राश्च नद्यश्चैव वनस्पतीन् ॥६६
ओषधीनां तथात्मानो ह्यात्मनो वृक्षवीरुधाम् ।
लताः काष्ठाः कलाश्चैव मुहूर्ताः संधिरात्र्यहाः ॥६७
अर्द्धमासाश्च मासाश्च अयनाब्दयुगानि च ।
स्थाने स्रोतः स्वभीमानाः स्थानाख्याश्चैव ते स्मृताः ॥६८
स्थानात्मनः स सृष्ट्वा तु ततोऽन्यास तदाऽसृजत् ।
देवांश्चैव पितॄंश्चैव यैरिमा वर्द्धिताः प्रजाः ॥६९
भृग्वंगिरा मरीचिश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
दक्षोऽत्रिश्च वसिष्ठश्च सोऽसृजन्नव मानसान् ॥७०

प्रजा की सृष्टि को न देखकर ही फिर ब्रह्माजी ने अनन्तर में प्रतिसर्ग की रचना की थी । उनके विरक्त हो जाने पर उन्होंने अन्य साधकों का सृजन किया था ।६४। देवगण अपने स्थान के अभिमान रखने वाले थे । ब्रह्माजी का अनुशासन हुआ । न हुई सृष्टि की अवस्था वाले जो स्थानी थे उनका ज्ञान आप लोग मुझसे प्राप्त कर लेवें ।६५। जल-अग्नि—पृथिवी—वायु—अन्तरिक्ष—दिव—स्वर्ग—दिशा—समुद्र—नदियाँ—वनस्पति–औषधियों की आत्मायें—वृक्षों और वीरुधों की आत्मायें—लता—काष्ठा–कला–मुहूर्त—सन्धि—रात्रि—दिन—अर्धमास—मास अयन—अब्द-युग-ये स्थान में स्रोतों में अभिमान वाले हैं और वे स्थान नाम से कहे गये हैं ।६६-६८। उन ब्रह्माजी ने स्थानात्मा देखा तो ऐसा सेवलोकन करके उनका सृजन करके फिर उस समय में उन्होंने अन्नों का सृजन किया था । उन्होंने देवों की और पितृगणों की सृष्टि की थी जिनके द्वारा ये प्रजायें परिवर्धित हुई थीं ।६९। उन ब्रह्माजी ने अपने मन के द्वारा नौ पुत्रों की सृष्टि की थी । वे नौ ये हैं—भृगु—मरीचि—पुलस्त्य—पुलह—क्रतु–दक्ष–अत्रि और वसिष्ठ। उस समय में इनका सृजन किया था ।७०।

नव ब्राह्मण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः ।
ब्रह्मा यथात्मकानां तु सर्वेषां ब्रह्मयोगिनाम् ॥७१
ततोऽसृजत्पुनर्ब्रह्मा रुद्रं रोषात्मसंभवम् ।
संकल्पं चैव धर्मं च सर्वेषामेव पर्वतान् ॥७२
सोऽसृजद्व्यवसायं तु ब्रह्मा भूतं सुखात्मकम् ।
संकल्पाच्चैव संकल्पो जज्ञे सोऽव्यक्तयोनिनः ॥७३
प्राणाद्दक्षोऽसृजद्वाचं चक्षुर्भ्यां च मरीचिनम् ।
भृगुश्च हृदयाज्जज्ञे ऋषिः सलिलयोनिनः ॥७४
शिरसश्चांगिराश्चैव श्रोत्रादत्रिस्तथैव च ।
पुलस्त्यश्च तथोदानाद्व्यानात्तु पुलहस्तथा ॥७५
समानतो वसिष्ठश्च ह्यपानान्निर्ममे क्रतुम् ।
इत्येते ब्रह्मण श्रेष्ठाः पुत्रा वै द्वादश स्मृताः ॥७६
धर्मादयः प्रथमजा विज्ञेया ब्रह्मणः स्मृताः ।
भृग्वादयस्तु ये सृष्टा न च ते ब्रह्मवादिनः ॥७७
गृहमेधिपुराणास्ते विज्ञेया ब्रह्मणः सुताः ।
द्वादशैते प्रसूयंते सह रुद्रेण च द्विजाः ॥७८

ये नौ ब्रह्मा ही हैं—ऐसा पुराण में निश्चय को प्राप्त हुए थे। इन सब ब्रह्मयोगी आत्मकों का ब्रह्मा के ही समान प्रभाव था ।७१। इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने रोष रूपी अपने आत्मज रुद्रदेव का सृजन किया था। सङ्कल्प और धर्म का सृजन किया था और सभी के पर्वतों की रचना की थी ।७२। उन ब्रह्माजी ने व्यवसाय की सृष्टि की थी और ब्रह्मा ने सुखात्मक भूत की रचना की थी। उन्होंने अव्यक्त योगी सङ्कल्प से सङ्कल्प को जन्म दिया था ।७३। दक्ष ने प्राण वाक् का सृजन किया था और चक्षुओं से मरीचि को उत्पन्न किया था। सलिल योगी के हृदय से भृगु ऋषि उत्पन्न हुए थे ।७४। शिर से अङ्गिरा ने जन्म ग्रहण किया था। उदान वायु से पुलस्त्य उत्पन्न हुए व्यान से पुलह का उद्भव हुआ था ।७५। समान नामक वायु से वसिष्ठ ऋषि की उत्पत्ति हुई थी, अपान वायु से क्रतु ने जन्म ग्रहण किया था। ये इतने ब्रह्माजी के परमश्रेष्ठ बारह पुत्र समुत्पन्न हुए थे। हे

द्विजगणो ! ये ब्रह्माजी के द्वादश पुत्र परमश्रेष्ठ हुए थे ।७६। धर्म आदिक प्रथम उत्पन्न होने वाले ब्रह्माजी के पुत्र कहे गये जानने चाहिए। जो भृगु आदि की सृष्टि की गयी थी वे ब्रह्मवादी नहीं थे ।७७। वे गृहमेधी पुराण ब्रह्माजी के पुत्र समझने चाहिए। ये द्वादश रुद्र के साथ प्रसूत होते हैं ।७८।

क्रतुः सनत्कुमारश्च द्वावेतावूर्द्ध्वरेतसौ ।
पूर्वोत्पन्नौ पुरा ह्यतौ सर्वेषामपि पूर्वजौ ।।७९
व्यतीतौ सप्तमे कल्पे पुराणौ लोकसाधकौ ।
विरजेतेऽत्र वै लोके तेजसाक्षिप्य चात्मनः ।।८०
तावुभौ योगधर्माणावारोप्यात्मानमात्मना ।
प्रजाधर्मं च कामं च वर्तयेते महौजसौ ।।८१
यथोत्पन्नस्तथैवेह कुमार इति चोच्यते ।
ततः सनत्कुमारेति नाम तस्य प्रतिष्ठितम् ।।८२
तेषां द्वादश ते वंशा दिव्या देवगणान्विताः ।
क्रियावन्तः प्रजावन्तो महर्षिभिरलंकृता ।।८३
प्राणजांस्तु स दृष्ट्वा वै ब्रह्मा द्वादश सात्त्विकान् ।
ततोऽसुरान्पितॄन्देवान्मनुष्यांश्चासृजत्प्रभुः ।।८४

क्रतु और सनत्कुमार ये दो ब्रह्माजी के पुत्र ऊर्ध्वरेता थे। पूर्व की उत्पत्ति में प्राचीन काल में ये दोनों सबके पूर्व में जन्म ग्रहण करने वाले हुए थे ।७९। प्रथम कल्प में लोक साधक पुराण व्यतीत हो गये थे और इस लोक में आत्मा के तेज से आक्षिप्त होकर विरेजित होते हैं ।८०। योग के धर्म वाले वे दोनों आत्मा से आत्मा का आरोप करके दोनों महान् ओज वाले प्रजा के धर्म को और काम को वर्त्तित करते हैं ।८१। जैसे ही उत्पन्न हुआ था वैसे ही यहाँ पर कुमार—यह कहा जाया करता है। इसके अनन्तर उसका नाम सनत्कुमार-यह प्रतिष्ठित हुआ था ।८२। उनके द्वादश वंश थे जो परम दिव्य और देवगणों से समन्वित थे। वे सब क्रिया वाले थे और महर्षियों से अलंकृत थे ।८३। उन ब्रह्माजी ने उन बारह सात्विक प्राणजों को देख कर फिर प्रभु ने असुरों का-पितृगणों का-देवों को और मनुष्यों को सृजित किया था ।८४।

मुखाद्देवानजनयत् पितृ्श्चैवाथ वक्षसः ।
प्रजननान्मनुष्यान्वै जघनान्निर्ममेऽसुरान् ॥८५

नक्तं सृजन्पुनर्ब्रह्मा ज्योत्स्नाया मानुषात्मनः ।
सुधायाश्च पितृ्श्चैव देवदेवः ससर्ज ह ॥८६

मुख्यामुख्यान् सृजन्देवानसुरांश्च ततः पुनः ।
मनसश्च मनुष्यांश्च पितृवन्महतः पितॄन् ॥८६

विद्युतोऽशनिमेघांश्च लोहितेन्द्रधनूंषि च ।
ऋचो यजूंषि सामानि निर्ममे यज्ञसिद्धये ॥८

उच्चावचानि भूतानि महसस्तस्य जज्ञिरे ।
ब्रह्मणस्तु प्रजासर्गं देवर्षिपितृमानवम् ॥८९

पुनः सृजति भूतानि चराणि स्थावराणि च ।
यक्षान्पिशाचान् गन्धर्वान्सर्वशोऽप्सरसस्तथा ॥९०

नरकिन्नररक्षांसि वयः पशुमृगोरगान् ।
अव्ययं वा व्ययञ्चैव द्वयं स्थावरजङ्गमम् ॥९१

ब्रह्माजी ने अपने मुख से देवगणों को उत्पन्न किया था, अपने वक्षःस्थल से पितृगणों का जन्म ग्रहण कराया था—प्रजनन से मनुष्यों को और जघन से असुरों को निर्मित किया था ।७५। फिर देवताओं के भी देव ब्रह्मा जी ने मानुषात्मा की ज्योत्स्ना से रात्रि का सृजन किया था—सुधा की और पितृगणों की सृष्टि की थी ।८६। मुख्य और अमुख्य देवों का और असुरों का सृजन करते हुए इसके अनन्तर मन से मनुष्यों का और पिता के ही समान महान् पितृगणों का सृजन किया था ।८७। विद्युत् की—वज्र की—मेघों की और लोहित इन्द्र धनुषों की—ऋचाओं की अर्थात् ऋग्वेद की—यजुर्वेद की और सामवेद की—यज्ञ की सिद्धि के लिये निर्मित की थी अर्थात् रचना की थी अर्थात् रचना की थी ।८८। ब्रह्मा के तेज से उच्च और अवच प्राणी उत्पन्न हुए थे । प्रजा के सर्ग में देव ऋषि-पितृगण और मानव सभी हुए थे ।८९। फिर उन्होंने प्राणियों का—चरों का और स्थावरों का सृजन किया था यक्ष-पिशाच गन्धर्व और सब प्रकार की अप्सराओं का सृजन करते हैं । ।९०। नर-किन्नर-राक्षस-पक्षी-पशु-मृग और उरगों का सृजन किया करते हैं । अव्यय अथवा व्यय दोनों स्थावरों जंगमों का सृजन करते हैं ।९१।

तेषां ते यांति कर्माणि प्राक् सृष्टानि स्वयंभुवा ।
तान्येव प्रतिपद्यंते सृज्यमानाः पुनः पुनः ॥६२
हिंस्राहिंस्रे मृदुकूरे धर्माधर्मौ कृताकृते ।
तेषामेव पृथक् सूतमविभक्तं त्रयं विदुः ॥६३
एतदेवं च नैवं च न चोभे नानुभे तथा ।
कर्म स्वविषयं प्राहुः सत्वस्थाः समदर्शिनः ॥६४
नामात्मपञ्चभूतानां कृतानां च प्रपञ्चताम् ।
दिवशब्देन पञ्चैते निर्ममे स महेश्वरः ॥६५
आर्षाणि चैव नामानि याश्च देवेषु सृष्टयः ।
शर्वर्यां न प्रसूयन्ते पुनस्तेभ्यो दधत्प्रभुः ॥६६
इत्येवं कारणाद्भूतो लोकसर्गः स्वयंभुवः ।
महदाद्या विशेषान्ता विकाराः प्राकृताः स्वयम् ॥६७
चन्द्रसूर्यप्रभो लोको ग्रहनक्षत्रमण्डितः ।
नदीभिश्च समुद्रैश्च पर्वतैश्च सहस्रशः ॥६८

वे सब उनके कर्मों को प्राप्त होते हैं जिनका कि स्वयम्भुने पूर्व में ही सृजन कर दिया था। बार-बार सृजन को प्राप्त होते हुए उन्हीं कर्मों को प्रतिपन्न हुआ करते हैं।६२। हिंस्र और अहिंसा वाले, मृदु और क्रूर-धर्म और अधर्म और कृत तथा अकृत उनके ही पृथक् उत्पन्न हुए थे। यह अविभक्त तीन जान लीजिए।६३। यह इस प्रकार से है और इस प्रकार से नहीं है—दोनों ही नहीं हैं और दोनों हैं। सत्व में स्थित समदर्शी अर्थात् सबको एक ही समान देखने वाले अपने विषय को कर्म कहते हैं।६४। नामात्म पञ्च भूतों की और कृतों की प्रपञ्चता को बनाया था। उन महेश्वर ने दिन शब्द से ये ही पाँच हैं जिसका निर्माण किया था।६५। देवों में जो सृष्टियाँ हैं और आर्ष नाम हैं शर्वरी में प्रसूत नहीं होते हैं—फिर प्रभु ने उनके लिए धारण किया था।६६। यह इसी रीति से स्वयम्भू का कारण से लोकों का सर्ग हुआ था। महत् जिनके आदि में होने वाला है तथा विशेष के अन्त पर्यन्त विकार स्वयं प्राकृत हैं।६७। चन्द्रमा और सूर्य की प्रभा वाला लोक जो ग्रहों और नक्षत्रों से मण्डित है। जहाँ बहुत नदियाँ हैं—समुद्र है और सहस्रों पर्वत हैं—इन सबसे मण्डित है।६८।

पुरैश्च विविधै रम्यैः स्फीतैर्जनपदैस्तथा ।
अस्मिन् ब्रह्मवनेऽव्यो ब्रह्मा चरति सर्वविन् ॥९९
अव्यक्तबीजप्रभवस्तस्यैवानुग्रहे स्थितः ।
बुद्धिस्कन्धमयश्चैव इन्द्रियान्तरकोटरः ॥१००
महाभूतप्रकाशश्च विशेषैः पत्रवांस्तु सः ।
धर्माधर्मसुपुष्पस्तु सुखदुःखफलोदयः ॥१०१
आजीवः सर्वभूतानां ब्रह्मवृक्षः सनातनः ।
एतद्ब्रह्मवनं चैव ब्रह्मवृक्षस्य तस्य तत् ॥१०२
अव्यक्तं कारणं यत्र नित्यं सदसदात्मकम् ।
प्रधानं प्रकृतिं मायां चैवाहुस्तत्त्वचिंतकाः ॥१०३
इत्येषोऽनुग्रहः सर्गो ब्रह्मनैमित्तिकः स्मृतः ।
अबुद्धिपूर्वकाः सर्गा ब्रह्मणः प्राकृतास्त्रयः ॥१०४
मुख्यादयस्तु षट् सर्गा वैकृता बुद्धिपूर्वकाः ।
वैकल्पात्संप्रवर्तंते ब्रह्मणस्तेभिमन्यव ॥१०५

अनेक सुरम्य पुरों से तथा परम स्फीत जनपदों से समलंकृत हैं—इस ब्रह्मवन में सबके ज्ञाता अव्यक्त ब्रह्माजी सञ्चरण किया करते हैं ।९९। अव्यक्त के बीज से जो समुत्पत्ति है वह अनेक ही अनुग्रह में स्थित होता है। यह एक वृक्ष है—ऐसा ही रूपक यहाँ पर दिया जाता है—इसकी बुद्धि ही स्कन्धों से परिपूर्ण है और अन्य इन्द्रियाँ कोटर हैं ।१००। महाभूतों का प्रकाश है और विशेषों से वह पत्रों वाला है। इसके धर्म और अधर्म पुष्प हैं तथा उनका परिणाम रूप सुख और दुःख इसके फलों का उदय है ।१०१। यह सनातन अर्थात् सर्वदा से चला आने वाला ब्रह्म वृक्ष समस्त प्राणियों की आजीव होता है। उस ब्रह्म वृक्ष का यह ब्रह्मवन है ।१०२। जहाँ पर सत् और असत् स्वरूप वाला नित्य अव्यक्त ही कारण है। तत्वों के चिन्तन करने वाले मनीषी इसको प्रधान-प्रकृति और माया कहा करते हैं ।१०३। कृपा से होने वाला इस रीति से यह अनुग्रह सर्ग ब्रह्म के निमित्त वाला कहा गया है। अबुद्धि पूर्वक ब्रह्माजी के तीन सर्ग है जो प्राकृत कहे गये हैं ।१०४। मुख्य आदिक छै सर्ग हैं जो प्राकृत न होकर वैकृत कहे जाते हैं और बुद्धि

के योग से किये जाते हैं। ब्रह्मा के अभिमन्यु वे वैकल्प से संप्रवृत्त होते हैं।१०५।

इत्येते प्राकृताश्चैव वैकृताश्च नव स्मृता: ।
सर्गा: परस्परोत्पन्ना: कारणं तु बुधै: स्मृतम् ॥१०६
मूर्द्धानं वै यस्य वेदा वदंति वियन्नाभिश्चन्द्रसूर्यौं च नेत्रे ।
दिश: श्रोत्रे विद्धि पादौ क्षिति च सोऽचिंत्यात्मा
सर्वभूत-णेता ॥१०७
वक्त्राद्यस्य ब्राह्मणा: संप्रसूता वक्षसश्चैव क्षत्रिया: पूर्वभागे
वैश्या ऊरुभ्यां यस्य पद्भ्यां च शूद्रा: सर्वे वर्णा गात्रत:
संप्रसूता: ॥१०८
नारायणात्परोव्यक्तादंडमव्यक्तसंज्ञितम् ।
अंडजस्तु स्वयं ब्रह्मा लोकास्तेन कृता: स्वयम् ॥१०९
तत्र कल्पान् दश स्थित्वा सत्यं गच्छंति ते पुन: ।
ते लोका ब्रह्मलोकं वै अपरावर्तिनीं गतिम् ॥११०
आधिपत्यं विना ते वै ऐश्वर्येण तु तत्समा: ।
भवंति ब्रह्मणा तुल्या रूपेण विषयेण च ॥१११
तत्र ते ह्यवतिष्ठंते प्रीतियुक्ता: स्वसंयुता: ।
अश्वयंभाविनार्थेन प्राकृतं तनुते स्वयम् ॥११२

ये इस प्रकार से प्राकृत और वैकृत नौ सर्ग कहे गये हैं। ये सर्ग परस्पर में ही समुत्पन्न हुए हैं और बुधजनों ने तो कारण बताया है।१०६। वेद जिसके मूर्धा को कहते हैं—वियत इसकी नाभि है और चन्द्र तथा सूर्य जिसके दोनों नेत्र हैं। दिशायें इसके श्रोत्र हैं, भूमिको इसके चरण समझिए—वह न चिन्तन करने के योग्य आत्मा वाला और समस्त भूतों का प्रणेता है।१०७। जिसके मुखसे ब्राह्मण समुत्पन्न हुए हैं और जिसके वक्ष:स्थल से पूर्व भाग में क्षत्रियों की समुत्पत्ति हुई है। जिसके ऊरुओं से वैश्य और पदों से शूद्र समुद्भूत हुए हैं। सभी चारों वर्ण उसी के शरीर से उत्पन्न हुए हैं।१०८। व्यक्त नारायण से पर अण्ड है जो अव्यक्त संज्ञा वाला है। इस अण्ड से जन्म ग्रहण करने वाला स्वयं ब्रह्मा है और उसी के द्वारा स्वयं लोकों की

रचना की गयी है ।१०९। वहाँ पर दश कल्पों तक स्थित होकर वे फिर सत्य को चले जाया करते हैं। वे लोक ब्रह्मलोक को जाते हैं जो कि पति अपरा-वर्त्तिनी होती है ।११०। विना आधिपत्य के वे निश्चय ही ऐश्वर्य के द्वारा उसके समान होते हैं। वे सभी स्वरूप से और विषय से ब्रह्मा के ही तुल्य होते हैं। वहाँ पर वे स्वयंयुत प्रीति से युक्त होते हुए अवस्थित रहा करते हैं। अवश्यम्भावी अर्थ मे वे प्राकृत को स्वयं विस्तृत किया करते हैं ।१११-११२।

नानात्वेनाभिसंबंध्यास्तदा तत्कालभाविताः ।
स्वतोऽबुद्धिपूर्वं हि बोधो भवति वै यथा ॥११३
तत्कालभाविते तेषां तथा ज्ञानं प्रवर्त्तते ।
प्रत्याहारैस्तु भेदानां तेषां हि न तु भूमिणाम् ॥११४
तैश्च सार्धं वर्तंते कार्याणि कारणानि च ।
नानात्वदर्शिनां तेषां ब्रह्मलोकनिवासिनाम् ॥११५
विनिवृत्तविकाराणां स्वेन धर्मेण तिष्ठताम् ।
तुल्यलक्षणसिद्धास्तु शुभात्मानो निरञ्जनाः ॥११५
प्राकृते करणोपेताः स्वात्मन्येव व्यवस्थिताः ।
प्रस्थापयित्वा चात्मानं प्रकृतिस्त्वेष तत्त्वतः ॥११७
पुरुषान्यबहुत्वेन प्रतीता न प्रवर्तते ।
प्रवर्तते पुनः सर्गस्तेषां साकारणात्मनाम् ॥११८
संयोगः प्रकृतिर्ज्ञेया युक्तानां तत्त्वदर्शिनाम् ।
तत्रोपवर्गिणी तेषामपुनर्मार्गगामिनाम् ॥११९

उस समय में उस काल से भावित होते हुए नानात्व से अभि संबध्य होते हैं। अबुद्धि पूर्वक शयन करते हुए जैसे ही निश्चित बोध होता है। ।११३। उस काल से भावित होने पर उनको उस प्रकार का ज्ञान प्रवृत्त होता है। उन भेदों के प्रत्याहारों से ही होता, भूमियों का नहीं होता है ।११४। और उनके साथ ही कार्य तथा कारण प्रवृत्त हुआ करते हैं। नानात्व के दर्शी ब्रह्मलोक के निवासी उनका जो अपने धर्म मे विशेष रूप से निवृत्त विकारों वाले हैं और स्थित हैं तुल्य लक्षण वाले सिद्ध-शुभात्मा और

निरञ्जन हैं ।११५-११६। प्राकृत सर्ग में कारणों से उपेत हैं और अपनी आत्मा में ही व्यवस्थित है । और आत्मा को प्रख्यापित करके तत्व से यह प्रकृति है ।११७। पुरुषान्य से यह प्रतीत प्रवृत्त नहीं होती है । फिर उन साकारणात्माओं का सर्ग प्रवृत्त होता है ।११८। युक्त तत्व दर्शियों का संयोग प्रकृति जाननी चाहिए । अपुनर्भारगामी उनकी वह उपवर्गिणी है ।११९।

अभावत: पुन: सत्यं शांतानामर्चिषामिव ।
ततस्तेषु गतेषूर्द्ध्वं त्रैलोक्यात्तु मुदात्मसु ।।१२०
ते सार्द्धं यैर्महर्ल्लोकस्तदानासादितस्तु वै ।
तच्छिष्या ये ह तिष्ठंति कल्पदाह उपस्थिते ।।१२१
गन्धर्वाद्या: पिशाचाश्च मानुषा ब्राह्मणादय: ।
पशव: पक्षिणश्चैव स्थावरा: ससरीसृपा: ।।१२२
तिष्ठसु तेषु तत्कालं पृथिवीतलवासिषु ।
सहस्रं यत्तु रश्मीनां सूर्यस्येह विनश्यति ।।१२३
ते सप्त रश्मयो भूत्वा एकैको जायते रवि: ।
क्रमेण शतमानास्ते त्रींल्लोकान्प्रदहंत्युत ।।१२४
जङ्गमान्स्थावरांश्चैव नदी: सर्वाश्च पर्वतान् ।
शुष्कपूर्वानुवृष्ट्या यैस्तं श्चैव प्रतापिता: ।।१२५
तदा ते विवशा: सर्वे निर्दग्धा: सूर्यरश्मिभि: ।
जङ्गमा: स्थावराश्चैव धर्माधर्मादिकास्तु वै ।।१२६

अर्चियों की भाँति शान्तों के अभाव से फिर सत्य है । इसके अनन्तर मुदात्मा उनके त्रैलोक्य से ऊपर गत हो जाने पर वे जिनके द्वारा उस समय में महर्लोक अनासादित है । कल्पदाह के उपस्थित होने पर जो उनके शिष्य हैं स्थित रहा करते हैं ।१२०-१२१। गन्धर्व आदिक-पिशाच-मानुष और ब्राह्मण आदि पशु-पक्षी-स्थावर-सरीसृप उस समय में पृथ्वीतल वाली उनके स्थित रहने पर यहाँ पर सूर्य की सहस्र रश्मियाँ विनष्ट हो जाती हैं ।१२२-१२३। वे सब सूर्य की किरणें सात रश्मियाँ होकर एक-एक सूर्य हो जाया करता है वे क्रम से शत स्वरूप होकर तीनों लोकों को प्रदान किया करते हैं ।१२४। जङ्गम और स्थावर-नदी और सब पर्वतों को जो पूर्ण में ही

वृष्टि के न होने से शुष्क हो रहे थे और जिनके द्वारा वे शुष्क थे उन्हीं के द्वारा बहुत तापित किये गये थे अर्थात् शुष्क वे एकदम प्राप्त हो गये थे ।१२५। इस समय में कहीं पर भी परित्राण नहीं था और वे सब विवश होकर सूर्य के प्रखर प्रतप्त किरणों से निःशेष रूप से दग्ध हो गये थे। इनमें सभी स्थावर-जङ्गम और धर्म तथा अधर्म आदि थे ।१२६।

दग्धदेहास्तदा ते तु धूतपापा युगात्यये ।
ख्यातातपा विनिर्मुक्ताः शुभया चातिबंधया ॥१२७
ततस्ते ह्युपपद्यंते तुल्यरूपैर्जनैर्जना: ।
उषित्वा रजनीं ते च ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥१२८
पुनः सर्गे भवंतीह मानस्यो ब्रह्मणः प्रजाः ।
ततस्तेषु प्रपन्नेषु जनैस्त्रैलोक्यवासिषु ॥१२९
निर्दग्धेषु च लोकेषु तदा सूर्यैस्तु सप्तभिः ।
वृष्ट्या क्षितौ प्लावितायां विजनेष्वर्णवेषु वा ॥१३०
समुद्राश्चैव मेघाश्च आपश्चैवाथ पार्थिवाः ।
शरमाणा व्रजन्त्येव सलिलाख्यास्तथाचलाः ॥१३१
आगतागतिकं चैव यदा तु सलिलं बहु ।
संछाद्येमां स्थितां भूमिमर्णवाख्यं तदाऽभवत् ॥१३२
आभाति यस्माच्चाभासाद्भाशब्दः कांतिदीप्तिषु ।
स सर्वः समनुप्राप्ता मासां भाभ्यो विभाव्यते ॥१३३

उस अवसर पर युग के अत्यय में वे देहों के दग्ध हो जाने पर निष्पाप हो गये थे तथा ख्यातातप और शुभ बन्धा से विनिर्मुक्त थे ।१२७। इसके उपरान्त वे तुल्यरूप वाले जनों के स्वाका जन उत्पन्न होते हैं। और वे अव्यक्त जन्म वाले ब्रह्मा की रात्रि में वहाँ निवास करके फिर सृजन की वेला में ब्रह्माजी की मानसी प्रजा होती हैं। फिर जनों के साथ त्रैलोक्य वासी उनके प्रयत्न होने पर तथा संतप्त सूर्य की प्रखर किरणों से उस समय में लोकों के निर्दग्ध हो जाने पर वृष्टि के द्वारा सम्पात से भूमि के प्लावित होने पर तथा विजन अर्णवों में निमग्न हो जाने पर समुद्र-मेघ-जल और पार्थिव सब शरमाण होते तथा अचल सलिल से ज्ञान वाले होकर सब ही गमन कर जाया करते हैं अर्थात् विनष्ट हो जाते हैं ।१२८-१३१। जिस समय

में आगता गलिक जल प्रचुर मात्रा में हो जाता है तो वह इस भूमि को संच्छादित करके सभी समुद्र नाम वाला हो जाता है ।१३२। भी शब्द जिस आभास से कान्ति-दीप्तियों में आभात होता है । वह सभी भाओं को समनु प्राप्त हुए जो कि भाओं से विभावित होता है ।१३३।

तदंतस्तनुते यस्मात्सर्वां पृथ्वी समंततः ।
धातुस्तनोति विस्तारं ततोपतनवः स्मृताः ॥१३४
णार इत्येव शीर्णे तु नानार्थो धातुरुच्यते ।
एकार्णवे भवंत्यापो न शीर्णास्तेन ता नराः ॥१३५
तस्मिन् युगसहस्रांते संस्थिते ब्रह्मणोऽहनि ।
तावत्कालं रजन्यां च वर्तन्त्यां सलिलात्मनः ॥१३६
ततस्ते सलिले तस्मिन् नष्टाग्नौ पृथिवीतले ।
प्रशांतवातेऽन्धकारे निरालोके समंततः ॥१३७
येनैवाधिष्ठितं हीदं ब्रह्मणः पुरुषः प्रभुः ।
विभागमस्य लोकस्य प्रकर्तुं पुनरैच्छत ॥१३८
एकार्णवे ततस्तस्मिन्नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
तदा भवति स ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥१३९
सहस्रशीर्षा पुरुषो रुक्मवर्णो ह्यतींद्रियः ।
ब्रह्मा नारायणाख्यस्तु सुष्वाप सलिले तदा ॥१४०
सत्वोद्रेकात्प्रबुद्धस्तु स शून्यं लोकमैक्षत ।
अनेनाद्येन पादेन पुराणं परिकीर्तितम् ॥१४१

उसके अन्दर जिससे सभी ओर से इस पृथ्वी का विस्तार किया करता है । धातु विस्तार को फैलाता है उसके पश्चात् उपतनु कहे गये है । ।१३४। णार यही ही शीर्ण हो जाने पर अनेक अर्थ धातु कहा जाया करता है । एकमात्र समद्र में जल ही होते हैं । उससे वे नर शीर्ण नहीं होते हैं । ।१३५। उस एक सहस्र युगों के अन्त में ब्रह्मा के दिन के संस्थित होने पर तब तक के समय में सलिलात्मा की रात्रि के वसने पर रजनी ही रहती है ।१३६। इसके उपरान्त उस जलमें विनष्ट अग्नि वाले पृथ्वी तल में-वायु के एक दम प्रशान्त होने पर एक दम अन्धकार रहता है और सभी ओर आलोक

का अभाव होता है ।१३७। जिसके द्वारा यह अधिष्ठित है ब्रह्मा के पर पुरुष प्रभु ने इस लोक के विभाग करने की इच्छा की थी ।१३८। उस समय में केवल एक ही समुद्र था और सभी चर तथा अचर जगत् एकदम विनष्ट हो गया था । तब वह ब्रह्मा सहस्रों पादों वाले होते हैं ।१३९। वह पुरुष सहस्रों शीर्षों वाले हैं जिनका वर्ण सुवर्ण के समान है और जो इन्द्रियों की पहुँच से परे हैं । उस समय में नारायण नामधारी ब्रह्माजी जल में शयन कर रहे थे ।१४०। सत्व के उद्रेक से प्रकृष्ट ज्ञान वाले उन्होंने सम्पूर्ण लोक को शून्य देखा था । इस आद्य पाद ने पुराण को परिकीर्त्तित किया था ।१४१।

कल्प प्रतिसन्धि वर्णनम्

सूत उवाच—इत्येवं प्रथमं पादं प्रकृत्यर्थं प्रकीर्तितम् ।
श्रुत्वा तु संहृष्टमनाः कापेयः संशयागतः ॥१
आराध्य वचसा सूतं तस्यार्थं त्वपरां कथाम् ।
अथ प्रभृति कल्पज्ञ प्रतिसंधिः प्रचक्षते ॥२
समतीतस्य कल्पस्य वर्तमानस्य चानयोः ।
कल्पयोरंतरं यत्र प्रतिसंधिश्च यस्तयोः ।
एतद्वेदितुमिच्छामि यथावत्कुशलो ह्यसि ॥३
कापेयेनैवमुक्तस्तु सूतः प्रवदतां वरः ।
त्रैलोक्यस्योद्भवं कृत्स्नमाख्यातुमुपचक्रमे ॥४
सूत उवाच—अत्र वै वर्णयिष्यामि याथातथ्येन सुव्रताः ।
कल्पं भूतं भविष्यं च प्रतिसंधिश्च यस्तयोः ॥५
मन्वंतराणि कल्पेषु यानि यानि च सुव्रताः ।
यश्चायं वर्तते कल्पो वाराहः सांप्रतः शुभः ॥६
अस्मात्कल्पात्तु यः पूर्वः कल्पोऽतीतः सनातनः ।
तस्य चास्य च कल्पस्य मध्यावस्थां निबोधत ॥७

श्री सूतजी ने कहा—यह प्रकीर्त्ति के लिए प्रथम पाद कीर्त्तित किया है । इसका श्रवण करके कापेय के मन में बहुत ही संहर्ष हुआ था किन्तु उसके मन में संशय भी होता है ।१। उन्होंने वाणी के द्वारा सूतजी की

आराधना की थी और उसका अर्थ तथा दूसरी कथा को श्रवण करने की इच्छा की थी। आज से लेकर कल्पज्ञ प्रति सन्धि कहा जाता है।२। बीत हुए कल्प का और वर्तमान कल्प की इन दोनों का अन्तर और जहाँ पर उन दोनों की प्रतिसन्धि है। यह मैं जानना चाहता हूँ क्योंकि आप ठीक प्रकार से यह बताने के लिए परम कुशल हैं।३। कापेय के द्वारा इस प्रकार से पूछे जाने पर प्रवचन करने वालों में श्रेष्ठ सूतजी ने यह सम्पूण ही करने का उपक्रम किया था।४। श्री सूतजी ने कहा था—हे सुन्दर व्रतों वालो ! इस विषय में जो कुछ भी है वह सभी यथार्थ रूप से वर्णन करूँगा। कल्प जो हो गये हैं और आगे होने वाले हैं तथा इन दोनों की जो प्रति सन्धि है— इसको भी बताऊँगा।५। इन कल्पों में जो-जो भी मन्वन्तर है और जो यह कल्प वर्तमान है वह इस समय कल्प परम शुभ वाराह है।६। इस कल्प से पूर्व में होने वाला जो कल्प था जो कि सनातन व्यतीत हो गया है उसकी और इस कल्प की जो मध्य में होने वाली अवस्था है उसका ज्ञान अब प्राप्त करलो।७।

प्रत्यागते पूर्वकल्पे प्रतिसंधि विनाऽनघा: ।
अन्य: प्रवर्त्तते कल्पो जनलोकादय: पुन: ॥८
व्युच्छिन्नप्रतिसंधिस्तु कल्पात्कल्प: परस्परम् ।
व्युच्छिद्यंते प्रजा: सर्वा: कल्पांते सर्वशस्तदा ॥९
तस्मात्कल्पात्तु कल्पस्य प्रतिसंधिर्न विद्यते ।
मन्वंतरे युगाख्यानामविच्छिन्नास्तु संधय: ॥१०
परस्परात् प्रवर्तंते मन्वतरयुगं: सह ।
उक्ता ये प्रक्रियार्थेन पूर्वकल्पा: समासत: ॥११
तेषां परार्द्धकल्पानां पूर्वो यस्मात्तु य: पर: ।
आसीत्कल्पे व्यतीते वै परार्द्धात्परमस्तु य: ॥१२
कल्पास्त्वन्ये भविष्या ये ह्यपरार्द्धगुणीकृता: ।
प्रथम: सांप्रतस्तेषां कल्पो यो वर्तते द्विजा: ॥१३
अस्मिन्पूर्वे परार्द्धे तु द्वितीय: पर उच्यते ।
एष संस्थितकालन्तु प्रत्याहारस्ततः स्मृत: ॥१४

हे अनघो ! प्रतिसन्धि के बिना पूर्वकल्प के प्रत्यागत होने पर अन्य कल्प प्रवृत्त होता है और फिर जन लोकादिक होते हैं ।८। व्युच्छिन्न प्रतिसन्धि वाला कल्प से परस्पर में होता है । उस अवसर पर सभी ओर से कल्प के अन्त में सम्पूर्ण प्रजा व्युच्छिन्न हुआ करती है ।९। उस कल्प से कल्प की प्रतिसन्धि नहीं होती है । मन्वन्तर में युगाख्यों की सन्धियाँ अविच्छिन्न होती हैं ।१०। मन्वन्तर युगों के साथ परस्पर से प्रवृत्त होता है । जो सक्षेप से प्रक्रियार्थ के द्वारा पूर्व कल्प कहे हैं ।११। उन परार्द्ध कल्पों के पूर्ण जिससे जो पर है । पूर्ण कल्प के व्यतीत होने पर परार्द्ध से परम जो था ।१२। जो अन्य भविष्य में होने वाले कल्प हैं वे अपरार्द्ध गुणी कृत हैं । हे द्विजगणो ! उनमें अब होने वाला कल्प है जो कि इस समय में वर्तमान है ।१३। इसमें पूर्ण परार्द्ध में जो द्वितीय है वह पर कहा जाता है । यह संस्थित काल वाला है और फिर प्रत्याहार कहा गया है ।१४।

अस्मात्कल्पात्तत: पूर्वं कल्पोऽतीतः पुरातनः ।
चतुर्युगसहस्रांते सह मन्वंतरैः पुरा ।।१५

क्षीणे कल्पे ततस्तस्मिन् दाहकाल उपस्थिते ।
तस्मिन्काले तदा देवा आसन्वैमानिकास्तु ये ।।१६

नक्षत्रग्रहताराश्च चन्द्रसूर्यादयस्तु ते ।
अष्टाविंशतिरेवैता: कोटयस्तु सुकृतात्मनाम् ।।१७

मन्वंतरे यथैकस्मिन् चतुर्दशसु वै तथा ।
त्रीणि कोटिशतान्यासन् कोटयो द्विनवतिस्तथा ।।१८

अथाधिकासप्ततिश्च सहस्राणां पुरा स्मृता ।
एकैकस्मिंस्तु कल्पे वै देवा वैमानिका: स्मृता: ।।१९

अथ मन्वंतरेष्वासंश्चतुर्दशसु खे दिवि ।
देवाश्च पितरश्चैव ऋषयोऽमृतपास्तथा ।।२०

तेषामनुचराश्चैव पत्न्यः पुत्रास्तथैव च ।
वर्णाश्रमातिरिक्ताश्च तस्मिन्काले तु खे सुराः ।।२१

तैस्तैः सायुज्यगैः सार्द्धं प्राप्ते वस्तुमये तदा ।
तुल्यनिष्ठाभवन्सर्वे प्राप्ते ह्याभूतसंप्लवे ।।२२

फिर इस कल्प से पूर्व में होने वाला अतीत पुरातन कल्प है जो पहिले एक जहस्र चारों युगों की चौकड़ी के अन्त में मन्वन्तरों के साथ है। ।१५। फिर उस कल्प के क्षीण हो जाने पर और दाह काल के उपस्थित होता है। उस समय में तब जो वैमानिक देव हैं वे थे ।१६। वे नक्षत्र-ग्रह और नारायण तथा चन्द्र सूर्य आदिक हैं। वे सब अट्ठाईस हैं। सुकृतात्माओं की करोड़ों की संख्या है अर्थात् जिन्होंने सुकृत् किया है उन्हीं की करोड़ों संख्या है ।१७। जिस प्रकार से एक मन्वन्तर में तथा चौदहों में वे तीन करोड़ थे तथा बानवे करोड़ थे ।१८। इसके अनन्तर अर्थात् विमानों में रहने वाले देवगण कहे गये हैं ।१९। इसके अनन्तर आकाश में दिवलोक में चौदह मन्वन्तरों में थे। उनमें देवगण–पितृगण–ऋषिगण तथा अमृत के पान करने वाले थे ।२०। उनके अनुचर हैं, उनकी पत्नियाँ हैं और उनके पुत्र भी होते हैं। उस काल में आकाश में सुरगण वर्णों और आश्रमों से अतिरिक्त थे। ।२१। उस काल में वस्तुओं से परिपूर्ण प्राप्त होने पर उन-उन सायुज्य में गमन करने वालों के साथ में थे। आभूत संप्लव अर्थात् महा प्रलय के प्राप्त होने पर वे तुल्य निष्ठा वाले हुए थे ।२२।

ततस्तेऽवश्यभावित्वाद् बुद्ध्वाः पर्यायमात्मनः ।
त्रैलोक्यवासिनो देवा इह तानाभिमानिकः ।।२३
स्थितिकाले तदा पूर्ण आसन्ने पश्चिमोत्तरे ।
कल्पावसानिका देवास्तस्मिन्प्राप्ते ह्युपप्लवे ।।२४
तदोत्सुका विषादेन त्यक्तस्थानानि भागशः ।
महर्लोकाय संविग्नास्ततस्ते दधिरे मनः ।।२५
ते युक्तानुपपद्यंते महती च शरीरिके ।
विशुद्धिबहुलाः सर्वे मानसीं सिद्धिमास्थिताः ।।२६
ते कल्पवासिभिः सार्द्धं महानासादितस्तदा ।
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैस्तद्भवैश्चापरैर्जनैः ।।२७
गत्वा तु ते महर्लोकं देवसंघाश्चतुर्दश ।
ततस्ते जनलोकाय सोद्वेगा दधिरे मनः ।।२८

इसके उपरान्त वे तान के अभिमानी देवगण जो त्रैलोक्य के निवासी थे यहाँ पर आत्मा की बुद्धि के अवश्य भावी होने से थे ।२३। उस काल में

स्थिति का समय पूर्ण हो चुका था और पश्चिमोत्तर में आसन्न था। जो देव कल्प में अवसान प्राप्त होने वाले थे वे उस उपप्लव को प्राप्त हुआ देखने वाले थे।२४। उस अवसर में उत्सुक हुए और विषाद से भागों में स्थानों को व्यक्त करके फिर उन्होंने मविग्न होते हुए अयन भाग महर्लोक के लिए बनाया था।२५। वे युक्तों को उपपन्न होते हैं और शरीर में महती को प्राप्त होते हैं वे सब प्रचर विशुद्धि से समन्वित थे तथा मानसी सिद्धि में समास्थित हुए थे।२६। उस समय में उन कल्पवासियों के साथ महान आसादित हुआ था। उनके साथ में गमन करने वाले ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्य और अपरजन भी थे। वे चौदह देवों के संघ महर्लोक में प्राप्त हो गये थे। फिर उस महर्लोक से गमन करके बड़े उद्वेग के सहित उन्होंने अपना मन जनलोक में जाने के लिए किया था।२७-२८।

एतेन क्रमयोगेन ययुस्ते कल्पवासिनः।
एवं देवयुगानां तु सहस्राणि परस्परम् ॥२९
विशुद्धिबहुलाः सर्वे मानसीं सिद्धिमास्थिताः।
तैः कल्पवासिभिः सार्द्धं जन आसादितस्तु वै ॥३०
तत्र कल्पान्दश स्थित्वा सत्यं गच्छंति वै पुनः।
गत्वा ते ब्रह्मलोकं वै अपरावर्तिनीं गतिम् ॥३१
आधिपत्यं विमाने वै ऐश्वर्येण तु तत्समाः।
भवंति ब्रह्मणा तुल्या रूपेण विषयेण च ॥३२
तत्र ते ह्यवतिष्ठंते प्रीतियुक्ताश्च संयमात्।
आनंदं ब्रह्मणः प्राप्य मुच्यन्ते ब्रह्मणा सह ॥३३
अवश्यभाविनार्थेन प्राकृतेनैव ते स्वयम्।
मानार्चनाभिः संबद्धास्तदा तत्कालभाविताः ॥३४
स्वपतो बुद्धिपूर्वं तु बोधो भवति वै यथा।
तथा तु भाविते सेवां तथानंदः प्रवर्तते ॥३५

इसी क्रम के योग से वे कल्पवासी चले गये थे। इस प्रकार से सहस्रों ही देवों के युग थे।२९। सभी विशुद्धि की प्रचुरता वाले थे और अतएव वे सब मानसी सिद्धि में समास्थित थे। उनने कल्प वासियों के साथ जनलोक

को प्राप्त किया था ।३०। वहाँ जनलोक में दश कल्पों तक स्थित होकर फिर सत्य लोक को चले जाते हैं । वे ब्रह्मलोक को प्राप्त करके अपरावर्त्तिनी गति को प्राप्त हो जाते हैं ।३१। वे विमान में आधिपत्य पाकर ऐश्वर्य से उनके ही समान हो जाया करते हैं । फिर वे ब्रह्माजी के ही तुल्य हो जाया करते हैं और रूप तथा विषय के द्वारा ब्रह्मा के समान हैं ।३२। वहाँ पर वे प्रीति से युक्त होते हुए संयमों को अवस्थित हुआ करते हैं । वहाँ पर ब्रह्मा का आनन्द प्राप्त करके ब्रह्माजी के ही साथ मुक्ति को प्राप्त हो जाया करते हैं ।३३। प्राकृत अवश्य भावी अर्थ से वे स्वयं उस समय में उसका से भावित होते हुए सम्मान और अर्चन आदि के द्वारा सम्बद्ध होते हैं ।३४। जिस प्रकार से बुद्धिपूर्वक स्वपन करते हुए बोध होता है उसी भाँति सेवा के भावित होने पर वैसा ही आनन्द प्रवृत्त होता है ।३५।

प्रत्याहारैस्तु भेदानां येषां भिन्नानि शुष्मिणाम् ।
तैः सार्द्धं वर्द्धते तेषां कार्याणि करणानि च ।।३६
नानात्वदर्शिनां तेषां ब्रह्मलोकनिवासिनाम् ।
विनिवृत्ताधिकाराणां स्वेन धर्मेण तिष्ठताम् ।।३७
ते तुल्यलक्षणाः सिद्धाः शुद्धात्मानो निरंजनाः ।
प्राकृते करणोपेताः स्वात्मन्येव व्यवस्थिताः ।।३८
प्रख्यापयित्वा चात्मानं प्रकृतिस्त्वेषु तत्त्वतः ।
पुरुषान्यबहुत्वेन प्रतीता तत्प्रवर्तते ।।३९
प्रवर्तिते पुनः सर्गे तेषां साकारणात्मनाम् ।
संयोगे प्रकृतिर्ज्ञेया मुक्तानां तत्त्वदर्शिनाम् ।।४०
तत्रोपवर्गिणां तेषां न पुनर्मार्गगामिनाम् ।
अभावः पुनरुत्पन्नः शांतानामर्चिषामिव ।।४१
ततस्तेषु गतेषूर्ध्वं त्रैलोक्येषु महात्मसु ।
एतैः सार्द्धं महर्लोकस्तदानासादितस्तु वै ।।४२

जिन शुष्मियों के भेदों के प्रत्याहारों से भिन्न हैं उनके कार्य और करण बर्धित होते हैं ।३६। वे नानात्व के देखने वाले और ब्रह्मलोक के निवास करने वाले हैं । निवृत्त अधिकारों वाले और अपने धर्म में स्थित

रहने वाले हैं ।३७। वे समान लक्षणों वाले सिद्ध हैं शुद्ध आत्माओं वाले तथा निरञ्जन हैं। प्राकृत में वे करणों से उपेत हैं और अपनी आत्मा में ही व्यवस्थित हैं ।३८। और आत्मा को प्रख्यापित करके तात्विक रूप से यह प्रकृति अन्य पुरुषों के बहुत्व होने से प्रतीत होती हुई प्रवृत्त होती है ।३९। साकारणात्मा उनके फिर सर्ग के प्रवर्त्तित होने पर मुक्त तत्व दर्शियों के संयोग में प्रवृति जाननी चाहिए ।४०। वहाँ पर उपवर्गी और फिर मार्गगामी न होने वाले इनका पुनः शान्त अर्चियों के ही समान अभाव उत्पन्न हो गया है ।४१। इसके अनन्तर उन महान् आत्मा वाले त्रैलोकों के ऊपर की ओर गत होने पर उस समय में इनके साथ महर्लोक निश्चय ही आसादित नहीं हुआ था ।४२।

तच्छिष्या वै भविष्यंति कल्पदाह उपस्थिते ।
गंधर्वाद्याः पिशाचाश्च मानुषा ब्राह्मणादयः ॥४३
पशवः पक्षिणश्चैव स्थावराश्च सरीसृपाः ।
तिष्ठत्सु तेषु तत्कालं पृथिवीतलवासिषु ॥४४
सहस्रं यत्तु रश्मीनां स्वयमेव विभाव्यते ।
तत्सप्तरश्मयो भूत्वा एकैको जायते रविः ॥४५
क्रमेणोत्तिष्ठमानास्ते त्रींल्लोकान्प्रदहंत्युत ।
जङ्गमाः स्थावराश्चैव नद्यः सर्वे च पर्वताः ॥४६
शुष्काः पूर्वमनावृष्ट्या सूर्य्यैस्ते च प्रधूपिताः ।
तदा तु विवशाः सर्वे निर्दग्धाः सूर्यरश्मिभिः ॥४७
जङ्गमाः स्थावराश्चैव धर्माधर्मात्मकास्तु वै ।
दग्धदेहास्तदा ते तु धूतपापा युगांतरे ॥४८
ख्यातातपा विनिर्मुक्ताः शुभया चातिबंधया ।
ततस्ते ह्युपपद्यंते तुल्यरूपैर्जनैर्जनाः ॥४९

कल्पदाह के उपस्थित हो जाने पर उनके शिष्य होंगे। जो कि गन्धर्व आदि पिशाच—मानुष और ब्राह्मणादिक हैं ।४३। पशु-पक्षी-स्थावर और सरीसृप हैं। उस समय में पृथ्वी तल में निवास करने वाले उनके स्थित होने पर जो सहस्र किरणें हैं वे स्वयं ही विभावित हो जाया करती हैं। वे

सहस्रों किरणें सात किरणें होकर एक-एक किरण एक-एक सूर्य हो जाता है ।४४-४५। वे सबसे उत्थित होते हुए तीनों लोकों को प्रदग्ध कर देते हैं। उस दाह में चर प्राणी-स्थावर अर्थात् अचर और सब नदियाँ तथा समस्त पर्वत दग्ध होते हैं ।४६। पहिले वृष्टि के अभाव से सभी शुष्क हो जाते हैं और सरसता नाम मात्र को भी कहीं पर नहीं रहती है। इसके पश्चात् वे सब उक्त सूर्यों से जो अतीव प्रखर हैं प्रधूपित होते हैं। उस काल से सभी विवश होकर निर्दग्ध हो जाते हैं और सूर्यों की किरण से जल भुन आया करते हैं ।४७। जङ्गम और स्थावर जो भी धर्म और अधर्म के स्वरूप वाले हैं, उस समय में उन सबके देह प्रदग्ध होते हैं और अन्ययुग में उनके पाप विनष्ट होकर वे निष्पाप एवं शुद्ध हो जाते हैं ।४८। शुभ अतिबन्ध से वे ख्यातालप विनिर्मुक्त हो जाते हैं। इसके उपरान्त वे जन सब तुल्य रूप वाले जनों के ही साथ में उपपन्न हो जाते हैं ।४९।

उषित्वा रजनीं तत्र ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
पुनः सर्गे भवतीह मानसा ब्रह्मणः सुताः ॥५०
ततस्तेषूपपन्नेषु जनैस्त्रैलोक्यवासिषु ।
निर्दग्धेषु च लोकेषु तदा सूर्यैस्तु सप्तभिः ॥५१
वृष्ट्या क्षितौ प्लावितायां विजनेष्वर्णवेषु च ।
सामुद्राश्चैव मेघाश्च आपः सर्वाश्च पार्थिवाः ॥५२
शरमाणा व्रजंत्येव सलिलाख्यास्तथानुगाः ।
आगतागतिकं चैव यदा तत्सलिलं बहु ॥५३
संछाद्येमां स्थितां भूमिमर्णवाख्यं तदाभवत् ।
आभाति यस्मात् स्वाभासो भाशब्दो व्याप्तिदीप्तिषु ॥५४
सर्वतः समनुप्राप्त्या तासां चाम्भो विभाव्यते ।
तदंस्तनुते यस्मात्सर्वां पृथ्वीं समंततः ॥५५
धातुस्तनोति विस्तारे न चैतास्तनवः स्मृताः ।
शर इत्येष शीर्णे तु नानार्थो धातुरुच्यते ॥५६

फिर अव्यक्त जन्म वाले ब्रह्माजी की एक रात्रिपर्यन्त वहाँ निवास करके फिर जब सृष्टि की रचना होती है उसमें वहाँ पर ब्रह्माजी के मानस

अर्थात् मन से ही समुत्पन्न पुत्र होते हैं ।५०। इसके अनन्तर जनों के साथ त्रैलोक्य के निवासी उनके उत्पन्न होने पर और उस समय में उन प्रखरतम सात सूर्यों के द्वारा समस्त लोकों के निर्दग्ध हो जाने पर ।५१। वृष्टि के धारा सम्पात से इस पृथ्वीतल के पूर्णतया प्लावित हो जाने पर, सब समुद्रों के विजन हो जाने पर सब समुद्र-मेघ और सम्पूर्ण जल और सब पार्थिव शीर्ण होते हुए सलिल के नाम पर अनुग होकर गमन किया करते हैं और आगतागतिक जिस समय में बहुत वह जल हो गया था ।५२-५३। उस समय में इस सम्पूर्ण भूमि को संच्छादित करके जो यहाँ पर स्थित थी सभी कुछ एक अर्णव नामधारी हो गया था। जिससे स्व से आभास होने वाला भी शब्द दीप्तियों में व्याप्ति आभात होती है ।५४। सभी ओर उनकी समनुप्राप्ति से जल ही विभावित होता है। उसके अन्दर जिस कारण से सभी ओर से सम्पूर्ण पृथ्वी को विस्तृत करता है ।५५। विस्तार में धातु विस्तार किया करती है और ये तनु नहीं कहे गये हैं। शीर्ण होने पर शर यह नाना अर्थों वाला धातु कहा जाया करता है ।५६।

एकार्णवे भवत्यापो न शीघ्रास्तेन ते नराः ।
तस्मिन् युगसहस्रान्ते संस्थिते ब्रह्मणोऽहनि ।।५७
तावत्काले रजन्यां च वर्तत्यां सलिलात्मना ।
ततस्तु सलिले तस्मिन्नष्टाग्नौ पृथ्वीतले ।।५८
प्रशांतवातेऽन्धकारे निरालोके समंततः ।
एतेनाधिष्ठितं हीदं ब्रह्मा स पुरुषः प्रभुः ।।५९
विभागमस्य लोकस्य प्रकर्तुं पुनरैच्छत् ।
एकार्णवे तदा तस्मिन्नष्टे स्थावरजंगमे ।।६०
तदा भवति स ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
सहस्रशीर्षा पुरुषो रुक्मवर्णो जितेंद्रियः ।
इमं चोदाहरंत्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति ।।६१
आपो नारास्तत्तनव इत्यर्थो अनुशुश्रुम ।
आपूर्यमाणास्तत्रास्तो तेन नारायणः स्मृतः ।।६२
सहस्रशीर्षा सुमनाः सहस्रपात् सहस्रचक्षुर्वदनः सहस्रकृत् ।
सहस्रबाहुः प्रथमः प्रजापतिस्त्रयीमयोऽयं पुरुषो निरुच्यते ।।६३

एकमात्र अर्णव के होने पर आप शीघ्र नहीं है उससे वे नर हैं। उस एक सहस्र युगों के अन्त में जबकि ब्रह्माजी का दिन संस्थित होता है।५७। उतने समय में सलिल के स्वरूप से रजनी के वर्तमान होने का अवसर रहता है। फिर उस जल से इस पृथ्वी तल में अग्नि तल में अग्नि बिल्कुल नष्ट हो जाया करती है।५८। उस समय में वायु एकदम प्रशान्त होती है और सभी ओर घोर अन्धकार रहता है तथा सभी ओर आलोक का अभाव रहता है। यह सब इसके ही द्वारा अधिष्ठित रहता है और ब्रह्माजी ही वह प्रभु पुरुष होते हैं।५९। फिर उन्होंने इस लोक के विभाग करने की इच्छा की थी जिस समय में सभी जङ्गम और स्थावर विनष्ट हो चुके थे और केवल एक ही अर्णव सभी ओर था।६०। उस अवसर से वे ब्रह्माजी सहस्रों शिरों वाले और सहस्रों पादों वाले होते हैं। वे सहस्रों शिरों वाले पुरुष सुवर्ण के समान वर्ण वाले थे और सब इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने वाले थे। भगवान् नारायण के प्रति यहाँ पर इस श्लोक का उदाहरण दिया करते हैं।६१। आप (जल) जो उसके तनु है—यह अर्थ सुनते हैं। वहाँ पर वे आपूर्य माण हैं—इसलिए नारायण कहे गये हैं।६२। सहस्र शीर्षों से संयुत सुन्दर मन वाले—सहस्र चरणों से युक्त—सहस्र चक्षु और मुखों वाले सहस्र कृत हैं। सहस्र बाहुओं वाले हैं—ऐसे प्रथम प्रजापति हैं। यह पुरुष त्रयी से परिपूर्ण है—ऐसा कहा जाता है।६३।

आदित्यवर्णो भुवनस्य गोप्ता एको ह्यमूर्तः प्रथमस्त्वसौ
विराट्।
हिरण्यगर्भः पुरुषो महात्मा संपद्यते वै मनसः परस्तात् ॥६४
कल्पादौ रजसोद्रिक्तो ब्रह्मा भूत्वाऽसृजत्प्रभुः।
कल्पांते तमसोद्रिक्तः कालो भूत्वाग्रसत्पुनः ॥६५
स वै नारायणो भूत्वा सत्त्वोद्रिक्तो जलाशये।
त्रिधा विभज्य चात्मानं त्रैलोक्ये संप्रवर्त्तते ॥६६
सृजति ग्रसते चैव वीक्ष्यते च त्रिभिः स्वयम्।
एकार्णवे तदा तस्मिन्नष्टे स्थावरजंगमे ॥६७
चतुर्युगसहस्रान्ते सर्वतः स जलावृते।
ब्रह्मा नारायणाख्यस्तु स काशि च भवे स्वयम् ॥६८

चतुर्विधाः प्रजाः सर्वा ब्रह्मशक्त्या तमोवृताः ।
पश्यंति तं महर्लोके कालं सुप्तं महर्षयः ॥६९
भृग्वादयो यथोद्दिष्टास्तस्मिन् काले महर्षयः ।
सत्यादयस्तथा त्वष्टौ कल्पे लीने महर्षयः ।
तदा विवर्त्यमानैस्तैर्महत्परिगतं पराम् ॥७०

आदित्य के समान वर्ण से युक्त—इस भुवन के रक्षक एक—अमूर्त अर्थात् मूर्त्ति से शून्य यह प्रथम विराट् है। हिरण्यगर्भ—महान् आत्मा वाला पुरुष मन से परे सम्पन्न होता है ।६४। कल्प के आदि में रजो गुण से उद्रिक्त होकर प्रभु ब्रह्मा ने सृजन किया था। कल्प का जब अवसान होता है तो उस समय में तमोगुण के उद्रेक से समन्वित काल होकर फिर इस सम्पूर्ण सृष्टि का ग्रसन किया था ।६५। वही फिर भगवान् सत्व के उद्रेक से युक्त नारायण होकर जलाशय में विराजमान रहते हैं। आपने आपको तीन स्वरूपों में विभक्त करके भगवान् तीनों लोकों में सम्प्रवृत्त हुआ करते हैं ।६६। सृजन करते हैं—ग्रसन करते हैं और स्वयं ही तीन रूपों से वीक्षण करते हैं। उस समय में समस्त स्थावर और जङ्गम के नष्ट हो जाने पर जब एकमात्र अर्णव ही विद्यमान रहा करता है ।६७। एक सहस्र चारों युगों की चौकड़ियों का जब अन्त होता है उस समय में वह सभी ओर जल से समावृत होते हैं। उस समय में नारायण नामक वह ब्रह्मा इससे सार में स्वयं प्रकाशित रहते हैं ।६८। सब चारों प्रकार की प्रजा ब्रह्मा की शक्ति से तम से आवृत होती है। महर्षिगण उसको महर्लोक में सोये हुए काल को देखते हैं ।६९। उस काल में यथोद्दिष्ट भृगु आदि महर्षिगण हैं। उस समय में उनके विवर्त्यमानों के द्वारा महत परिगत होता है ।७०।

गत्यर्थादृषतेर्धातोर्नामनिष्पत्तिरुच्यते ।
यस्मादृषति सत्त्वेन महत्तस्मान्महर्षयः ॥७१
महर्लोकस्थितैर्दृष्टः कालः सुप्तस्तदा च तैः ।
सत्त्वाद्याः सप्त ये त्वासन्कल्पेऽतीते महर्षयः ॥७२
एवं ब्रह्मा तासु तासु रजनीषु सहस्रशः ।
दृष्टवन्तस्तदानीताः कालं सुप्तं महर्षयः ॥७३

कल्पस्यादौ सुबहुला यस्मात्संस्थाश्चतुर्दश ।
कल्पयामास वै ब्रह्मा तस्मात्कल्पो निरुच्यते ।।७४
स सृष्टा सर्वभूतानां कल्पादिषु पुनः पुनः ।
व्यक्ताव्यक्तो महादेवस्यस्य सर्वमिदं जगत् ।।७५
इत्येष प्रतिसंबन्धः कीर्तितः कल्पयोर्द्वयोः ।
सांप्रतं हि तयोर्मध्ये प्रागवस्था बभूव ह ।।७६
कीर्तितस्तु समासेन पूर्वकल्पे यथातथम् ।
सांप्रतं संप्रवक्ष्यामि कल्पमेतं निबोधत: ।।७७

गति के अर्थ वाली ऋषिति धातु नाम की निष्पत्ति होती है—ऐसा कहा जाता है। जिससे ऋषिति के सत्व होने से उससे महत है अतएव महर्षि होते हैं ।७१। अहर्लोक में स्थित होते हुए उन्होंने उस समय में सोये हुए काल को देखा था। जो कल्प के व्यतीत होने पर सत्वादि सात महर्षि थे ।७२। इस प्रकार से उन-उन सहस्रों रजनीयों में उस समय में आनीत महर्षियों ने सुप्तकाल को देखा था ।७३। कल्प के आदि में जिससे सुबहुल चौदह संस्था हैं। ब्रह्माजी ने क्योंकि कल्पन किया था इसी कारण से कल्प कहा जाता है ।७४। कल्पों के आदि काल में पुनः पुनः वही समस्त भूतों का सृजन करने वाला है। महादेव व्यक्त है। इसका ही यह सम्पूर्ण जगत है ।७५। यह दोनों कल्पों का प्रति सम्बन्ध कर दिया गया है। इस समय में उन दोनों के मध्य में पूर्व की अवस्था हुई थी ।७६। पूर्व में होने वाले कल्प में ठीक-ठीक कह दिया गया है। इस समय में इस कल्प के विषय में बतलाऊँगा, उसको समझ लीजिए ।७७।

—×—

।। पृथ्वी व्यायाम विस्तरः ।।

सूत उवाच—एवं प्रजासन्निवेशं श्रुत्वा वै शांशपायनिः ।
पप्रच्छ नियतं सूतं पृथिव्युदधिविस्तरम् ।।१
कति द्वीपा समुद्रा वा पर्वता वा कति स्मृताः ।
कियंति चैव वर्षाणि तेषु नद्यश्च काः स्मृताः ।।२
महाभूतप्रमाणं च लोकालोकं तथैव च ।

पर्यायं परिमाणं च गति चन्द्रार्कयोस्तथा ।
एतत्प्रब्रूहि नः सर्वं विस्तरेण यथार्थतः ॥३
सूत उवाच—हंत वोऽहं प्रवक्ष्यामि पृथिव्यायामविस्तरम् ॥४
संख्यां चैव समुद्राणां द्वीपानां चैव विस्तरम् ।
द्वीपभेदसहस्राणि सप्तस्वन्तर्गतानि च ॥५
न शक्यंते क्रमेणेह वक्तुं यैः सततं जगत् ।
सप्त द्वीपान्प्रवक्ष्यामि चन्द्रादित्यग्रहैः सहः ॥६
तेषां मनुष्यास्तर्केण प्रमाणानि प्रचक्षते ।
अचिंत्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण साधयेत् ॥७

श्री सूतजी ने कहा—इस रीति से शांशपायनि ने प्रजा के सन्निवेश का श्रवण करके फिर उसने श्री सूतजी ने नियत रूप से पृथिवी और उदधि के विस्तार के विषय में पूछा था ।१। द्वीप कितने हैं, समुद्र अथवा पर्वत कितने बताये गये हैं ? कितने वर्ष हैं और उन वर्षों में नदियाँ कौन-कौन बतायी गयी हैं ? ।२। महाभूतों का क्या प्रमाण है तथा लोकालोक प्रमाण क्या है ? चन्द्र और सूर्य का पर्याय-परिमाण और गति क्या है ? हे भगवान् ! यह सब आप विस्तार पूर्वक यथार्थ रूप से हमको बतलाइए ।३। श्री सूतजी ने कहा—हर्ष की बात है, मैं आपके सामने पृथ्वी का आयाम और विस्तार बतलाऊँगा ।४। समुद्रों की संख्या और द्वीपों का विस्तार भी बतलाऊँगा । यों तो द्वीपों के सहस्रों भेद होते हैं किन्तु वे भेद सात द्वीपों के सहस्रों भेद होते हैं किन्तु वे सभी भेद सात द्वीपों के ही अन्तर्गत है ।५। जिनके द्वारा निरन्तर यह जगत है वे सब क्रम से यहाँ पर नहीं बताये जा सकते हैं । मैं इस समय में तो आपके समक्ष में सात द्वीपों को ही बताऊँगा और उनके साथ चन्द्र-सूर्य और ग्रहों का वर्णन करूँगा ।६। मानव उनका प्रमाण तर्क के द्वारा कहा करते हैं। किन्तु निश्चित रूप से जो भाव चिन्तन करने के योग्य नहीं हैं उनका तर्क के सहारे साधन कभी नहीं करना चाहिए ।७।

प्रकृतिभ्यः परं यच्च तदचिन्त्यं प्रचक्षते ।
नववर्षं प्रवक्ष्यामि जंबूद्वीपं यथातथम् ॥८

विस्तरान्मण्डलाच्चैव योजनैस्तन्निबोधत ।
शतमेकं सहस्राणां योजनाग्रास्समंतत: ॥९
नानाजनपदाकीर्णः पुरैश्च विविधैश्शुभैः ।
सिद्धचारणसंकीर्णः पर्वतैरुपशोभित: ॥१०
सर्वधातुनिबद्धैश्च शिलाजालसमुद्भवैः ।
पर्वतप्रभवाभिश्च नदीभि: सर्वतस्तत: ॥११
जंबूद्वीप: पृथु: श्रीमान् सर्वत: पृथुमंडल: ।
नवभिश्चावृत: सर्वो भुवनैर्भूतभावनै: ॥१२
लवणेन समुद्रेण सर्वत: परिवारित: ।
जंबूद्वीपस्य विस्तारात् समेन तु समंतत: ॥१३
प्रागायता: सुपर्वाण: षडिमे वर्षपर्वता: ।
अवगाढा ह्युभयत: समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ ॥१४

जो प्रकृतियों से परे हैं वही चिन्तन न करने के योग्य नहीं है—ऐसा कहते हैं। नौ वर्षों से समन्वित जम्बू द्वीप को यथार्थ रूप से बतलाऊँगा ।८। उसको विस्तार से और मण्डल से योजनों के द्वारा समझ लीजिए। योजनाग्र से सभी ओर एक सौ सहस्र है। यह अनेक जनपदों से घिरा हुआ है और विविध परम शुभ नगरों से समन्वित है। यह सिद्धगण और चारणों से समाकीर्ण है और अनेक पर्वतों से उपशोभित है।९-१०। शिलाओं के समुदायों से समुत्पन्न समस्त धातुओं से निबद्ध यह द्वीप है। इसके सभी ओर अनेक नदियाँ हैं जो पर्वत से उद्भूत हुई हैं।११। यह जम्बूद्वीप बहुत विशाल है। श्री सम्पन्न है तथा इसका मण्डल भी महान् हैं। भूतों के करने वाले नौ भुवनों से यह सम्पूर्ण समावृत है।१२। इसके चारों ओर क्षार समुद्र है जिसका भी विस्तार जम्बू द्वीप के विस्तार के ही समान है।१३। प्रागायत सुपर्वा ये छे वर्ष पर्वत हैं जो दोनों ओर पूर्व और पश्चिम समुद्रों से अवगाढ हैं।१४।

हिमप्रायश्च हिमवान् हेमकूटश्च हेमवान् ।
सर्वर्त्तुषु सुखश्चापि निषध: पर्वतो महान् ॥१५
चतुर्वर्णश्च सौवर्णो मरुश्चारुतम: स्मृत: ।

द्वात्रिंशच्च सहस्राणि विस्तीर्णः स च मूर्द्धनि ॥१६
वृत्ताकृतिप्रमाणश्च चतुरस्रः समुच्छ्रितः ।
नानावर्णास्तु पार्श्वेषु प्रजापतिगुणान्वितः ॥१७
नाभिवंधनसंभूतो ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
पूर्वतः श्वेतवर्णश्च ब्राह्मणस्तस्य तेन तत् ॥१८
पार्श्वमुत्तरतस्तस्य रक्तवर्णः स्वभावतः ।
तेनास्य क्षत्रभावस्तु मेरोर्नानार्थकारणात् ॥१९
पीतश्च दक्षिणेनासौ तेन वैश्यत्वमिष्यते ।
भृंगपत्रनिभश्चापि पश्चिमेन समाचितः ॥२०
तेनास्य शूद्रभावः स्यादिति वर्णाः प्रकीर्त्तिताः ।
वृत्तः स्वभावतः प्रोक्तो वर्णतः परिमाणतः ॥२१

हिमवान् गिरि में प्रायः हिम समूह होता है और हेमकूट पर्वत हेम से संयुत है। निषध एक महान पर्वत है जो सभी ऋतुओं में सुखदायी होता है।१५। मरु पर्वत चार वर्णों वाला है और सुवर्ण से युक्त है यह अधिक सुन्दर कहा गया है और मूर्धा में बत्तीस सहस्र योजनों के विस्तार वाला है।१६। यह वृत्त आकृति और प्रमाण वाला है तथा चौकोर और समुच्छित अर्थात् ऊँचा है। इसके पार्श्व भागों में अनेक वर्ण हैं तथा यह प्रजापति के गुणों से संयुत है।१७। अव्यक्त जन्म वाले ब्रह्माजी के नाभिवन्धन से यह समुत्पन्न हुआ है। उसके पूर्व की ओर यह श्वेत वर्ण वाला है इससे ब्राह्मण है।१८। उत्तर की ओर पार्श्वभाग उसका स्वभाव से ही रक्तवर्ण है। इस कारण से मेरु के अनेक अर्थ कारण से इसका क्षत्र भाव है।१९। यह दक्षिण दिशा की ओर पीत है इससे इसका वैश्यभाव अभीष्ट होता है। पश्चिम की ओर पीत है इससे इसका वैश्यभाव अभीष्ट होता है। पश्चिम की ओर यह भृङ्गपत्र के सदृश समाचित है।२०। इस कारण से इसका शूद्रभाव होता है—इस तरह से इसके चार वर्ण कहे गये हैं। यह स्वभाव से वृत्त कहा है और वर्ण तथा परिमाण से भी बताया गया है।२१।

नीलश्च वैदूर्यमयः श्वेतः शुक्लो हिरण्मयः ।
मयूरबर्हवर्णस्तु शातकौम्भश्च शृंगवान् ॥२२

एते पर्वतराजानः सिद्धचारणसेविताः ।
तेषामंतरविष्कंभो नवसाहस्र उच्यते ॥२३
मध्ये त्विलावृतं नाम महामेरोः समंततः ।
नवैवं तु सहस्राणि विस्तीर्णं सर्वतस्तु तत् ॥२४
मध्ये तस्य महामेरुर्विधूम इव पावकः ।
वेद्यर्द्धं दक्षिणं मेरोरुत्तरार्द्धं तथोत्तरम् ॥२५
वर्षाणि यानि षट् चैव तेषां ये वर्षपर्वताः ।
द्वे द्वे सहस्रे विस्तीर्णा योजनानां समुच्छ्रयात् ॥२६
जंबूद्वीपस्य विस्तारात्तेषामायाम उच्यते ।
योजनानां सहस्राणि शतं द्वावायतौ गिरी ॥२७
नीलश्च निषधश्चैव ताभ्यां हीनास्तु ये परे ।
श्वेतश्च हेमकूटश्च हिमवाञ्छृंगवांस्तथा ॥२८

नील—वैदूर्यमय—श्वेत—हिरण्मय—मोर के बर्हण के वर्ण वाला और शातकौम्भ तथा शृङ्गवान् है ।२२। ये सब पर्वतों के शिरोमणि राजा पर्वत हैं जो कि सिद्धों और चारणों के द्वारा सेवित रहा करते हैं अर्थात् इनमें सिद्ध और चारण निवास किया करते हैं । उनका अन्तर निष्कम्भ नौ सहस्र योजन कहा जाता है ।२३। मध्य में इलावृत नाम वाला गिरि है जो महामेरु के समंतम है । यह भी इसी प्रकार से नौ सहस्र ही सब ओर से विस्तार वाला है ।२४। इसके मध्य में महा है जो धूम से रहित अग्नि के समान देदीप्यमान है । मेरु के वेदी का अर्ध दक्षिण है तथा उत्तर अर्ध भाग उत्तर है ।२५। जो छै वर्ण हैं उनके जो वर्ष पर्वत हैं ऊँचाई से दो-दो सहस्र योजन विस्तीर्ण हैं ।२६। जम्बू द्वीप के विस्तार से उनका आयाम कहा जाता है । दो गिरि सौ सहस्र योजन आयत हैं ।२७। नील और निषध उन दोनों से जो दूसरे हैं वो हीन हैं । श्वेत—हेमकूट—हिमवान तथा शृङ्गवान् हैं ।२८।

नवती द्वे अशीती द्वे सहस्राण्यायतास्तु तैः ।
तेषां मध्ये जनपदास्तानि वर्षाणि सप्त वै ॥२९
प्रपाताविषमैस्तैस्तु पर्वतैरावृतानि तु ।

संततानि नदीभेदैरगम्यानि परस्परम् ॥३०
वसंति तेषु सत्त्वानि नानाजातीनि सर्वशः ।
इदं हैमवतं वर्षं भारतं नाम विश्रुतम् ॥३१
हेमकूटं परं ह्यस्मान्नाम्ना किंपुरुषं स्मृतम् ।
नैषधं हेमकूटात्तु हरिवर्षं तदुच्यते ॥३२
हरिवर्षात्परं चापि मेरोश्च तदिलावृतम् ।
इलावृतात्परं नीलं रम्यकं नाम विश्रुतम् ॥३३
रम्यकात्परतः श्वेतं विश्रुतं तद्धिरण्मयम् ।
हिरण्मयात्परं चैव शृंगवत्तः कुरु स्मृतम् ॥३४
धनुः संस्थे तु विज्ञेये द्वे वर्षे दक्षिणोत्तरे ।
दीर्घाणि तत्र चत्वारि मध्यमं तदिलावृतम् ॥३५

उनसे दो सहस्र नब्बे और दो सहस्र अस्सी आयत हैं। उनके मध्य में जनपद हैं जो सात वर्ष है ।२९। उन प्रपातों से विषम पर्वतों से जो हैं। निरन्तर बहने वाली नदियों के बहुत से भेदों से जो परस्पर में गमन करने के अयोग्य है ।३०। उनमें अनेक जातियों वाले जीव निवास करते हैं और सभी ओर से वहाँ रहा करते हैं। यह हैमवत वर्ष है जो भारत—इस नाम से प्रसिद्ध है ।३१। इससे आगे हेमकूट है जो नाम से किम्पुरुष कहा गया है। हेमकूट से आगे नैषध है जो हरि वर्ष कहा जाया करता है ।३२। हरिवर्ष से परे मेरु का वह इलावृत है। इलावृत से आगे नील है जो रम्यक नाम से विख्यात है ।३३। रम्यक से आगे श्वेत है जो हिरण्मय नाम से विश्रुत है। हिरण्मय से आगे शृङ्गवत् हैं जो कुरु कहा गया है ।३४। दक्षिण और उत्तर दिशा में धनु:संस्थ दो वर्ष जानने चाहिए। वहाँ पर चार दीर्घ है जो मध्यम है वह इलावृत है ।३५।

अर्वाक् च निषधस्याथ वेद्यर्द्धं दक्षिणं स्मृतम् ।
परं नीलवतो यच्च वेद्यर्द्धं तु तदुत्तरम् ॥३६
वेद्यर्द्धे दक्षिणे त्रीणि त्रीणि वर्षाणि चोत्तरे ।
तयोर्मध्ये तु विज्ञेयो मेरुर्मध्ये इलावृतम् ॥३७
दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु ।

उदगायतो महाशैलो माल्यवान्नाम नामतः ॥३८
योजनानां सहस्रं तु आनील निषधायतः ।
आयामतश्चतुस्त्रिंशत्सहस्राणि प्रकीर्तितः ॥३९
तस्य प्रतीच्यां विज्ञेयः पर्वतो गंधमादनः ।
आयातमतोऽथ विस्तारान्माल्यवानिति विश्रुतः ॥४०
परिमंडलयोर्मेरुर्मध्ये कनकपर्वतः ।
चतुर्वर्णः स सौवर्णः चतुरस्रः समुच्छ्रितः ॥४१
सुमेरुः शुशुभे शुभ्रो राजवत्समधिष्ठितः ।
तरुणादित्यवर्णाभो विधूम इव पावकः ॥४२

इसके अनन्तर निषध के नीचे वेदी के अर्धभाग दक्षिण कहा गया है। नीलवान् है और जो वेद्यर्ध है वह उत्तर है।३६। वेद्यर्ध दक्षिण और उत्तर में तीन-तीन वर्ष है। उन दोनों के मध्य में मेरु जानना चाहिए और मध्य में इलावृत है।३७। नील के दक्षिण दिशा की ओर और निषध की उत्तर की ओर—उत्तर की ओर आयत एक महान् शैल है जो नाम से माल्यवान कहा जाता है।३८। एक सहस्र योजन नील और निषध तक आयत है और आयाम से यह चौबीस सहस्र योजन कहा गया है।३९। इसके पश्चिम में गन्धमादन नामक पर्वत जानने के योग्य है। आयाम (चौड़ाई) और विस्तार से माल्यवान्—इस नाम से यह प्रसिद्ध है।४०। परिमण्डलों के मध्य में मेरु पर्वत है जो कनक पर्वत है। वह चार वर्णों वाला और सुवर्ण का तथा चतुरस्र अर्थात् चौकोर समुच्छ्रित है।४१। सुमेरु शोभाशाली होता था जो परम शुभ्र है और एक राजा के ही समान समधिष्ठित रहता है। इसके वर्ण की आभा तरुण सूर्य के ही समान है तथा बिना धुँआ वाली अग्नि के तुल्य है।४२।

योजनानां सहस्राणि चतुरशीतिरुच्छ्रितः ।
प्रविष्टः षोडशाधस्ताद्विस्तृतः षोडशैव तु ॥४३
शरावसंस्थितत्वात्तु द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तृतः ।
विस्तारात्त्रिगुणस्तस्य परिणाहः समंततः ॥४४
मंडलेन प्रमाणेन त्र्यस्रे मानं तदिष्यते ।

चत्वारिंशत्सहस्राणि योजनानां समंततः ॥४५
अष्टाभिरधिकानि स्युस्त्र्यस्रे मानं प्रकीत्तितम् ।
चतुरस्रेण मानेन परिणाहः समंततः ॥४६
चतुःषष्टिसहस्राणि योजनानां विधीयते ।
स पर्वतो महादिव्यो दिव्योषधिसमन्वितः ॥४७
भुवनैरावृतः सर्वो जातरूपमयैः शुभैः ।
तत्र देवगणाः सर्वे गंधर्वोरगराक्षसाः ॥४८
शैलराजे प्रदृश्यंते शुभाश्चाप्सरसां गणाः ।
स तु मेरुः परिवृतो भुवनैर्भूतभावनैः ॥४९

वह चौरासी सहस्र योजन ऊँचा है। एक योजन चार कोस का होता है। सोलह योजन नीचे की ओर प्रविष्ट है और सोलह ही योजन विस्तार वाला है।४३। शराव संस्थित होने से बत्तीस योजन मूर्धा में विस्तृत है। विस्तार से सभी ओर उसका तिगुना परिणाम है।४४। मण्डल प्रमाण से उसका मान त्र्यस्र अभीष्ट होता है। सब ओर चौवालीस सहस्र योजन है।४५। त्र्यस्र में अर्थात् तीनों ओर में उसका मान आठ अधिक योजन कहा गया है। सभी ओर चतुरस्र मान से परिणाम होता है।४६। चौंसठ सहस्र योजन कहा जाता है। वह पर्वत बहुत ही अधिक दिव्य है और दिव्य ओषधियों से समन्वित है।४७। यह सम्पूर्ण सुवर्णमय परम शुभ भुवनों से घिरा हुआ है। वहाँ पर समस्त देवों के गण—गन्धर्व—और राक्षस निवास किया करते हैं।४८। उस शैलों के राजा के ऊपर शुभ अप्सराओं के समुदाय भी दिखलाई दिया करते हैं। वह मेरु पर्वत भूतों के भावन भुवनों से परिवृत रहा करता है।४९।

चत्वारो यस्य देशा वै चतुः पार्श्वेष्वधिष्ठिताः ।
भद्राश्वा भरताश्चैव केतुमालाश्च पश्चिमाः ॥५०
उत्तराः कुरवश्चैव कृतपुण्यप्रतिश्रयाः ।
गंधमादनपार्श्वे तु परैषाऽपरगंडिका ॥५१
सर्वर्त्तु रमणीया च नित्यं प्रमुदिता शिवा ।
द्वात्रिंशत्तु सहस्राणि योजनैः पूर्वपश्चिमात् ॥५२

आयामतश्चतुस्त्रिंशत्सहस्राणि प्रमाणतः ।
तत्र ते शुभकर्माणः केतुमालाः प्रतिष्ठिताः ॥५३
तत्र काला नराः सर्वे महासत्त्वा महाबलाः ।
स्त्रियश्चोत्पलपत्राभाः सर्वास्ताः प्रियदर्शनाः ॥५४
तत्र दिव्यो महावृक्षः पनसः षड्रसाश्रयः ।
ईश्वरो ब्रह्मणः पुत्रः कामचारी मनोजवः ॥५५
तस्य पीत्वा फलरसं जीवंति च समायुतम् ।
पार्श्वे माल्यवतश्चापि पूर्वोऽपूर्वा तु गंडिका ॥५६

जिसके चार देश हैं जो चारों पार्श्वों में समधिष्ठित हैं। जिनके नाम भद्राश्व—भरत—केतुपाल और पश्चिम है।५०। उत्तर और कुरु कृतपुण्य प्रतिश्रय हैं। गन्धमादन के पार्श्व में तो वह पर अपर गण्डिका है।५१। ये सभी ऋतुओं में परम रमणीय हैं और नित्य ही प्रमुदित तथा शिव हैं। पूर्व और पश्चिम से बत्तीस सहस्र योजनों से युक्त हैं।५२। प्रमाण से इनका आयाम चौंतीस सहस्र योजनों वाला है। वहाँ पर ये परम शुभ कर्मों वाले केतुमाल देश प्रतिष्ठित है।५३। वहाँ पर जब नर काल हैं जो महान् सत्व वाले और महान् बल से सम्पन्न है और वहाँ की स्त्रियाँ कमलदल की आभा वाली तथा देखने में बहुत प्रिय लगती हैं।५४। वहाँ पर एक बहुत ही उत्तम पनस का महान वृक्ष है जिसमें छैरस विद्यमान रहा करते हैं। उसकी स्वामी ब्रह्मा का पुत्र कामना से चरण करने वाले मनोजव है।५५। वहाँ पर समायुत काल पर्यन्त उसके फलों का रस का पान करके प्राणी जीवित रहा करते हैं। पूर्व में माल्यवान् के पार्श्व में एक अपूर्व गण्डिका है।५६।

—×—

॥ भारतदेश ॥

सूत उवाच—एवमेव निसर्गो वै वर्षाणां भारते शुभे ।
दृष्टः परमतत्त्वज्ञैर्भूयः किं वर्णयामि वः ॥१
ऋषिरुवाच—यदिदं भारतं वर्षं यस्मिन्स्वायंभुवादयः ।
चतुर्दशैते मनवः प्रजासर्गेऽभवन्पुनः ॥२

एतद्वेदितुमिच्छामस्तन्नो निगद सत्तम ।
एतच्छ्रुत्वचस्तेषामब्रवीद्रोमहर्षणः ॥३
अत्र वो वर्णयिष्यामि वर्षेऽस्मिन् भारते प्रजाः ।
इदं तु मध्यमं चित्रं शुभाशुभफलोदयम् ॥४
उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमवद्दक्षिणं च यत् ।
वर्षं तद्भारतं नाम यत्रेयं भारती प्रजा ॥५
भरणाच्च प्रजानां वै मनुर्भरत उच्यते ।
निरुक्तवचनाच्चैवं वर्षं तद्भारतं स्मृतम् ॥६
इतः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यश्चांतश्च गम्यते ।
न खल्वन्यत्र मर्त्यानां भूमौ कर्म विधीयते ॥७

श्रीसूतजी ने कहा—इस प्रकार से ही परम शुभ भारत में वर्षों का निसर्ग है जो कि परम तत्वों के ज्ञाताओं के द्वारा देखा गया है। अब फिर आपके सामने मैं क्या वर्णन करूँ? ।१। ऋषि ने कहा—जो यह भारतवर्ष है जिसमें ये चौदह स्वायम्भुव आदि मनुगण फिर प्रजा के सृजन करने में थे ।२। हे श्रेष्ठ पुरुषों में परमोत्तम ! हम लोग यही जानने की इच्छा करते हैं। वही आप हमारे समक्ष में वर्णन कीजिए। रोम हर्षणजी ने उन ऋषियों के इस वचन का श्रवण करके कहा था ।३। यहाँ पर इस भारतवर्ष में आप लोगों के सामने जो प्रजा हुई थी उनका मैं वर्णन करूँगा। यह तो मध्यम चित्र है जो शुभ और अशुभ फलों के उदय वाला है ।४। समुद्र के उत्तर में और हिमवान् के दक्षिण में है वह भारत नाम वाला वर्ष है जहाँ पर यह भारत की प्रजा है ।५। प्रजाओं के भरण करने से भरत मनु कहा जाया करते हैं। इसी निरुक्ति के वचन से यह वर्ष भारत—इस नाम से कहा गया है। यहाँ से स्वर्ग होता है और यहाँ से ही बारम्बार जीवन-मरण के आवागमन से मुक्त हुआ करता है और मध्य तथा अन्त का ज्ञान मनुष्यों का कर्म करने का क्षेत्र नहीं है अर्थात् कर्म करने की भूमि यही देश है ।६-७।

भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदान्निबोधत ।
समुद्रांतरिता ज्ञेयास्ते त्वगम्याः परस्परम् ॥८

इन्द्रद्वीपः कशेरुमांस्ताम्रवर्णो गभस्तिमान् ।
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गांधर्वस्त्वथ वारुणः ॥६

अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ।
योजनानां सहस्र तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरात् ॥१०

आयतो ह्याकुमार्य्या वै चागंगाप्रभवाच्च वै ।
तिर्यगुत्तरविस्तीर्णः सहस्राणि नवैव तु ॥११

द्वीपो ह्युपनिविष्टोऽयं म्लेच्छैरंतेषु सर्वशः ।
पूर्वे किराता ह्यस्यांते पश्चिमे यवनाः स्मृताः ॥१२

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च भागशः ।
इज्यायुधवणिज्याभिर्वर्त्तयंतो व्यवस्थिताः ॥१३

तेषां संव्यवहारोऽत्र वर्त्तते वै परस्परम् ।
धर्मार्थकामसंयुक्तो वर्णानां तु स्वकर्मसु ॥१४

इस भारत वर्ष के नौ भेद हैं उनको आप लोग भली-भाँति समझ लीजिए ? वे सब समुद्र से अन्तरित है—ऐसे ही जान लेने चाहिए और परस्पर में वे सब अगम्य हैं अर्थात् अज्ञेय एवं गमन न करने के योग्य है ।८। उनके नाम ये हैं—इन्द्रद्वीप—कशेरुमान्—ताम्रवर्ण—गभस्तिमान्—नाग द्वीप—सौम्य—गन्धर्व—वारुण ।९। यह नौवां उन द्वीपों में है जो सागर से संवृत है । यह द्वीप दक्षिण-उत्तर से एक सहस्र योजन है ।१०। भागीरथी गङ्गा के उद्गम स्थान से कन्या कुमारी तक यह आयत है । नौ सहस्र योजन तिरछा उत्तर की ओर विस्तीर्ण है ।११। यह द्वीप अन्तों में सभी ओर म्लेच्छों द्वारा उपनिविष्ट है । इसके अन्त में पूर्व में किरात रहा करते हैं और पश्चिम में यवन लोग वाले बताये गये हैं ।१२। मध्य के भागों में ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्य और शूद्र निवास करते हैं। जो यज्ञार्चन—शस्त्र—प्रयोग—वाणिज्य से अभिवर्त्तन करते हुए व्यवस्थित हैं ।१३। यहाँ पर इन चारों वर्णों में परस्पर में समानीन व्यवहार रहा करता है । अपने वर्ण के अनुसार जो इनके अपने कर्म हैं उन्हीं में यह व्यवहार धर्म अर्थ और काम से समन्वित होता है ।१४।

संकल्प: पंचमानो च ह्याश्रमाणां यथाविधि ।
इह स्वर्गापवर्गार्थं प्रवृत्तिर्येषु मानुषी ॥१५
यस्त्वयं नवमो द्वीपस्तिर्यगायाम उच्यते ।
कृत्स्नं जयति यो ह्येनं सम्राडित्यभिधीयते ॥१६
अयं लोकस्तु वै सम्राडंतरिक्षं विराट् स्मृतम् ।
स्वराडसौ स्मृतो लोक: पुनर्वक्ष्यामि विस्तरात् ॥१७
सप्तैवास्मिन्सुपर्वाणो विश्रुता: कुलपर्वता: ।
तेषां सहस्रशश्चान्ये पर्वतास्तु समीपगा: ॥१९
अविज्ञाता सारवंतो विपुलाश्चित्रसानव: ।
मंदर: पर्वतश्रेष्ठो वैहारो दुर्दुरस्तथा ॥२०
कोलाहल: ससुरसो मैनाको वैद्युतस्तथा ।
वातंधमो नागगिरिस्तथा पाण्डुरपर्वत: ॥२१

पंचमान इस आश्रमों के सङ्कल्प विधि के ही अनुसार होता है । वहाँ पर जिनमें स्वर्ग प्राप्ति और मोक्ष के लिये मानुषी प्रवृत्ति रहा करती है । ।१५। जो यह नवम द्वीप है वह तिर्यग् आयाम वाला कहा जाता है । इस सम्पूर्ण द्वीप पर अपने बल–विक्रम के द्वारा विजय प्राप्त कर लेता है वह यहाँ का सम्राट् चक्रवर्ती राजा के नाम से कहा जाया करता है ।१६। यह लोक तो सम्राट है और अन्तरिक्ष विराट् कहा गया है । यह लोक स्वराट् कहा गया है । मैं फिर विस्तार के साथ बतलाऊँगा ।१७। इस द्वीप में सुपर्व सात ही कुल पर्वत प्रसिद्ध हैं । महेन्द्र—मलय—सह्य—शुक्तिमान—ऋक्ष पर्वत—विन्ध्य और पारियात्र ये ही सात कुल पर्वत हैं । इनके समीप में रहने वाले अन्य भी सहस्रों पर्वत हैं ।१८-१९। बहुत से पर्वतों का ज्ञान ही नहीं है और वे सार सम्पन्न तथा विचित्र शिखरों वाले हैं । पर्वतों में परम श्रेष्ठ मन्दर—वैहार–दुर्दुर–कोलाहल—समुरस—मैनाक—वैद्युत—वातंधम—नागगिरि और पाण्डुर पर्वत हैं ।२०-२१।

तुंगप्रस्थ: कृष्णगिरिर्गोधनो गिरिरेव च ।
पुष्पगिर्युज्जयंतो च शैलो रैवतकस्तथा ॥२२
श्रीपर्वतश्चित्रकूट: कूटशैलो गिरिस्तथा ।

अन्ये तेभ्योऽपरिज्ञाता ह्रस्वाः स्वल्पोपजीविनः ॥२३

तैर्विमिश्रा जनपदा आर्या म्लेच्छाश्च भागशः ।
पीयंते यैरिमा नद्यो गंगा सिंधुः सरस्वती ॥२४

शतद्रुश्चंद्रभागा च यमुना सरयूस्तथा ।
इरावती वितस्ता च विपाशा देविका कुहूः ॥२५

गोमती धूतपापा च बुद्बुदा च दृषद्वती ।
कौशिकी त्रिदिवा चैव निष्ठीवी गंडकी तथा ॥२६

चक्षुर्लोहित इत्येता हिमवत्पादनिस्सृताः ।
वेदस्मृतिर्वेदवती वृत्रघ्नी सिंधुरेव ॥२७

कर्णाशा नंदना चैव सदानीरा महानदी ।
पाशा चर्मण्वतीनूपा विदिशा वेत्रवत्यपि ॥२८

तुङ्गप्रस्थ—कृष्णागिरि—गोवनगिरि—पुष्प गिरि—उज्जयन्त तथा श्वेतक शैल है ।२२। श्री पर्वत-चित्रकूट—कूट शैलगिरि हैं। उनसे भी अन्य छोटे-छोटे गिरि हैं जो भली-भांति परिज्ञात नहीं है और स्वल्पोप जीवी है ।२३। उन शैलों से मिले-जुले जनपद यह भी हैं जिनके भागों में आर्य तथा म्लेच्छ निवास किया करते हैं जिनके द्वारा इन नदियों का पान किया जाया करता है। उन नदियों के कुछ नामों का परिगणन किया जाता है जैसे—गङ्गा—सिन्धु—और सरस्वती हैं ।२४। शतद्रु—चन्द्रभागा—जमुना—सरयू—इरावती—वितस्ता—विपाशा—देविका—कुहू है ।२५। गोमती—धूतपापा—बुद्बुदा—दृषद्वती—कौशिकी—त्रिदिवा—निष्ठीवी—गण्डकी—चक्षु—लोहित—ये सब नदियाँ हिमवान् महाशैल के पाद से निकली हैं। वेदस्मृति—वेदवती—वृत्रघ्नी और सिन्धु है । कर्णाशा-नन्दना—सदानीरा-महानदी—पाशा—चर्मण्वती—नूपा—विदिशा—वेत्रवती है ।२६-२८।

क्षिप्रा ह्यवंति च तथा पारियात्राश्रयाः स्मृताः ।
शोणो महानदश्चैव नर्मदा सुरसा क्रिया ॥२९

मंदाकिनी दशार्णा च चित्रकूटा तथैव च ।
तमसा पिप्पला श्येना करमोदा पिशाचिका ॥३०

चित्रोपला विशाला च वंजुला वास्तुवाहिनी ।

सनेरुजा शुक्तिमती मंकुती त्रिदिवा क्रतुः ॥३१

ऋक्षवत्सप्रसूतास्ता नद्यो मणिजलाः शिवाः ।

तापी पयोष्णी निर्विन्ध्या सृपा च निषधा नदी ॥३२

वेणी वैतरणी चैव क्षिप्रा वाला कुमुद्वती ।

तोया चैव महागौरी दुर्गा वान्तशिला तथा ॥३३

विंध्यपादप्रसूतास्ता नद्यः पुण्यजलाः शुभाः ।

गोदावरी भीमरथी कृष्णवेणाथ वंजुला ॥३४

तुंगभद्रा सुप्रयोगा वाह्या कावेर्यथापि च ।

दक्षिणप्रवहा नद्यः सह्यपादाद्विनिः स्मृताः ॥३५

क्षिप्रा और अवन्ति ये नदियाँ पारिमात्र के समाश्रय वाली हैं—ऐसा कहा गया है—शोण महानन्द हैं। सुरसा–नर्मदा–क्रिया–मन्दाकिनी दशार्णा—चित्रकूटा–तमसा–पिप्पला–श्येना–करमोदा और पिशाचिका—ये नदियाँ हैं ।२९-३०। चित्रोपला—विशाला—वंजुला—वास्तुवाहिनी—सनेरुजा–शुक्तिमती–मंकुनी–त्रिदिवा–क्रतु नदियाँ हैं ।३१। ये सब ऋक्ष वत्स पर्वत से संभूत होने वाली हैं जिनका जल मणि के समान परम स्वच्छ और शिव है। तापी–पयोष्णी–निर्विन्ध्या—सृपा और निषधा नदी हैं ।३२। वेणी-वैतरणी–वाला–कुमुद्वती–तोया–महागौरी–दुर्गा-वान्तशिला नदियाँ हैं ।३३। ये सब नदियां विन्ध्य गिरि के पाद से प्रसूत होने वाली हैं जिनका जल परम पुण्यमय है और जो बहुत ही शुभ है। गोदावरी-भीमरथी-कृष्णवेणा-वंजुला-तुङ्गभद्रा-सुप्रयोगा-बाह्या-कावेरी—ये नदियाँ दक्षिणा की ओर प्रवाह करने वाली हैं और सह्य गिरि के पाद से निकलने वाली हैं ।३४-३५।

कृतमाला ताम्रपर्णी पुष्पजात्युत्पलावती ।

नद्योऽभिजाता मलयात्सर्वाः शीतजलाः शुभाः ॥३६

त्रिसामा ऋषिकुल्या च वंजुला त्रिदिवाबला ।

लांगूलिनी वंशधरा महेन्द्रतनयाः स्मृताः ॥३७

ऋषिकुल्या कुमारी च मंदगा मंदगामिनी ।

कृपा पलाशिनी चैव शुक्तिमत्प्रभवाः स्मृताः ॥३८

तास्तु नद्यः सरस्वत्यः सर्वा गंगाः समुद्रगाः ।
विश्वस्य मातरः सर्वा जगत्पापहराः स्मृताः ॥३९
तासां नद्युपनद्योऽन्याः शतशोऽथ सहस्रशः ।
तास्विमे कुरुपांचालाः शाल्वा माद्रेयजांगलाः ॥४०
शूरसेना भद्रकारा बोधाः सहपटच्चराः ।
मत्स्याः कुशल्याः सौशल्याः कुंतलाः काशिकोशलाः ॥४१
गोधा भद्राः कलिंगाश्च मागधाश्चोत्कलैः सह ।
मध्यदेश्या जनपदाः प्रायशस्तत्र कीर्त्तिताः ॥४२

कृतमाला-ताम्रपर्णी-पुष्पजाती-उत्पलावती—ये सब नदियाँ मलय पर्वत से अभिजात हुई हैं जिनका जल बहुत ही शीतल और शुभ है ।३६। त्रिसामा-ऋषिकुल्या-बंजुला-त्रिदिवा-बला-लांगूलिनी-वंशधरा-ये सब महेन्द्र-गिरि की तनया कही गयी हैं ।३७। ऋषिकुल्या-मन्दगा-मन्द गामिनी-कृपा-पलाशिनी-ये नदियां शुक्तिमान् पर्वत से समुत्पत्ति पाने वाली हैं ।३८। ये सब नदियाँ सरस्वती हैं और सब समुद्र में गमन करने वाली गङ्गा है । ये सभी इस विश्व की मातायें है और जगत् के समस्त पापों के हरण करने वाली कही गयी हैं ।२६। इन सब नदियों की अन्य सैंकड़ों और हजारों ही उप नदियाँ हैं । उनमें ये कुरु पाञ्चाल-शाल्व-माद्रेय-जांगल-शूरसेन-भद्रकार-बोध-सहपटच्चर-मत्स्य कुशल्य-कुन्तल-काशि-कोशल-गोध-भद्र-कलिंग-मागध -उत्कल-मध्य देश में होने वाले जनपद प्रायः करके वहाँ पर कीर्त्तित किये गये हैं ।४०-४२।

सह्यस्य चोत्तरांतेषु यत्र गोदावरी नदी ।
पृथिव्यामपि कृत्स्नायां स प्रदेशो मनोरमः ॥४३
तत्र गोवर्द्धनं नाम पुरं रामेण निर्मितम् ।
रामप्रियार्थं स्वर्गीया वृक्षा दिव्यास्तथौषधीः ॥४४
भरद्वाजेन मुनिना तत्प्रियार्थेऽवरोपिताः ।
अतः पुरवरोद्देशस्तेन जज्ञे मनोरमः ॥४५
वाह्लीका वाटधानाश्च आभीरा कालतोयकाः ।
अपरांताश्च सुह्याश्च पाञ्चालाश्चर्ममंडलाः ॥४६

पंड्याश्च केरलाश्चैव चोलाः कुल्यास्तथैव च ।
सेतुका मूषिकाश्चैव क्षपणा वनवासिकाः ॥५६

अत्रिगण-भरद्वाज-प्रस्थल-दशेरक-लमक-तालशाल-भूषिक-ईजिक-ये सब उत्तर दिशा में हैं। अब जो पूर्व दिशा में देश हैं उनका भी आप ज्ञान प्राप्त कर लीजिए। अङ्ग-दङ्ग-चोल भद्र-किरातों की जातियाँ-तोमर-हंसभंग-काश्मीर-तंगण-झिल्लिक-आहुक-हुणदर्व-अन्धगक-मुद्गर अन्तर्गिरि-बहिर्गिरि—इसके अनन्तर प्लवङ्गव-मलद और मलवत्तिक जानने के योग्य हैं। ।५०-५३। समंतर-प्रावृषेय-भार्गव-गोपपार्थिव-प्राग्ज्यो तिष-पुण्ड्र-विदेह-ताम्र लिप्तिक-मल्ल-मगध और गोनर्द—ये जनपद पूर्व दिशा में हैं ऐसा कहा गया है। इसके उपरान्त दूसरे दक्षिणा पथवासी जनपद हैं।५३-५४। पण्ड्य-केरल-चोल-कुल्य-सेतुक-मूषिक-क्षपण और वनवासिक देश हैं।५६।

माहाराष्ट्रा महिषिकाः कलिंगाश्चैव सर्वशः ।
आभीराश्च सहैषीका आटव्या सारवास्तथा ॥५७
पुलिंदा विंध्यमौलीया वैदर्भा दंडकैः सह ।
पौरिका मौलिकाश्चैव अश्मका भोगवर्द्धनाः ॥५८
कौंकणाः कंतलाश्चांध्राः पुलिन्दाङ्गारमारिषाः ।
दाक्षिणाश्चैव ये देशा अपरांस्तान्निबोधत ॥५९
सूर्पारिकाः कलिवना दुर्गालाः कुन्तलैः ।
पौलेयाश्च किराताश्च रूपकास्तापकैः सह ॥६०
तथा करीतयश्चैव सर्वे चैव करंधराः ।
नासिकाश्चैव ये चान्ये ये चैवांतरनर्मदाः ॥६१
सहकच्छाः समाहेयाः सह सारस्वतैरपि ।
कच्छिपाश्च सुराष्ट्राश्च आनर्ताश्चार्बुदैः सह ॥६२
इत्येते अपरांताश्च शृणुध्वं विंध्यवासिनः ।
मलदाश्च करूषाश्च मेकलाश्चोत्कलैः सह ॥६३

माहराष्ट्र-महिषिक-कलिङ्ग-सब ओर आभीर-सहैषीक-आटव्य-सारव-पुलिन्द-विन्ध्य मौलीय-वैदर्भ-दण्डक-पौरिक-मौलिक-अश्मक-भोग वर्द्धन-कोङ्कण-कन्तल-आन्ध्र-पुलिन्द-अंगार-मारिष-ये सब देश दक्षिणा पथ वासी

गांधारा यवनाश्चैव सिंधुसौवीरमण्डला: ।
चीनाश्चैव तुषाराश्च पल्लवा गिरिगह्वरा: ।।४७
शका भद्रा: कुलिंदाश्च पारदा विन्ध्यचूलिका: ।
अभीषाहा उलूताश्च केकया दशमालिका: ।।४८
ब्राह्मणा: क्षत्रियाश्चैव वंश्यशूद्रकुलानि तु ।
कांबोजा दरदाश्चैव बर्बरा अंगलौहिका: ।।४९

सह्य गिरि के उत्तरान्तों में जहाँ पर गोदावरी नदी बहती है इस सम्पूर्ण पृथिवी में वह प्रदेश परम सुन्दर है ।४३। वहाँ पुर है जिसका गोवर्धन नाम है और इसका निर्माण श्रीराम ने किया था । वहाँ पर श्रीराम के प्रिय स्वर्गीय और अत्युत्तम वृक्ष तथा औषधियाँ हैं ।४४। इन सबका अब रोपण श्रीराम की प्रीति के लिए भरद्वाज मुनि ने किया था । अतएव उन्होंने इस पुरवर का मनोरम उद्देश्य किया था। वाह्लीक-वाटधान-आभीर-कालतोयक-अपरान्त-सुह्य-पाञ्चाल-चर्ममंडल-गान्धार-यवन-सिन्धु सौवीर मण्डल-चीन-तुषार-पल्लव-गिरि गह्वरशक-भद्र-कुलिन्द-पारद-विन्ध्यचूलिका-अभीषाहु-उलूत-केकय-दशमालिक ये सब देश तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के कुल, काम्बोज-दरद-उर्वर और अङ्गलौहिक ये सब देश हैं।४६-४९।

अत्रय: सभरद्वाजा: प्रस्थलाश्च दशेरका: ।
लमकास्तालशालाश्च भूषिका ईजिकै: सह ।।५०
एते देशा उदीच्या वै प्राच्यान्देशान्निबोधत ।
अंगवंगाश्चोलभद्रा: किरातानां च जातय: ।
तोमरा हंसभंगाश्च काश्मीरास्तंगणास्तथा ।।५१
झिल्लिकाश्चाहुकाश्चैव हूणदर्वास्तथैव च ।।५२
अंध्रवाका मुद्गरका अंतर्गिरिबहिर्गिरा: ।
तत: प्लवंगवो ज्ञेया मलदा मलवर्तिका: ।।५३
समंतरा: प्रावृषेया भार्गवा गोपपार्थिवा: ।
प्राग्ज्योतिषाश्च पुंड्राश्च विदेहास्ताम्रलिप्तका: ।।५४
मल्ला मगधगोनर्दा: प्राच्यां जनपदा: स्मृता: ।
अथापरे जन पदा दक्षिणापथवासिन: ।।५५

हैं। और जो दक्षिण में होने वाले दूसरे जनपद हैं उनका भी ज्ञान प्राप्त करलो ।५७-५९। सूर्यारक-कलिवन-गुगालि-कुन्तल-पौलेय-किरात-रूपक-तापक-करीति और सब करन्धर और नासिक तथा जो अन्य नर्मदा के अन्तर में हैं ।६०-६१। सहकच्छ-समाहेय-सारस्वत-कच्छिप-सुराष्ट्र-आनर्त-अर्बुद—ये सब और अपरान्त जो विन्ध्य के वास करने वाले हैं उनको आप सुनिये। मलद-करुष-मेकल-उत्कल-ये जनपद विन्ध्य के वास करने वाले हैं। ।६२-६३।

उत्तमानां दशार्णाश्च भोजाः किष्किधकैः सह ।
तोशलाः कोशलाश्चैव त्रैपुरा वैदिशास्तथा ॥६४
तुहुण्डा बर्बराश्चैव षट्पुरा नैषधैः सह ।
अनूपास्तुंडिकेराश्च वीतिहोत्रा ह्यवंतयः ॥६५
एते जनपदाः सर्वे विंध्यपृष्ठनिवासिनः ।
अतो देशान्प्रवक्ष्यामि पर्वताश्रयिणश्च ये ॥६६
निहीरा हंसमार्गाश्च कुपथास्तंगणा शका ।
खपप्रावरणाश्चैव ऊर्णा दर्वाः सहूहुकाः ॥६७
त्रिगर्त्ता मंडलाश्चैव किरातास्तामरैः सह ।
चत्वारि भारते वर्षे युगानि ऋषयोऽब्रुवन् ॥६८
कृतं त्रेतायुगं चैव द्वापरं तिष्यमेव च ।
तेषां निसर्गं वक्ष्यामि उपरिष्टादशेषतः ॥६९

उत्तमों के दशार्ण-भोज-किष्किन्धक-तोशल-कोशप— त्रैपुर—वैदिश—तुहुण्ड—बर्बर—षट्पुर—नैषध—अनूप—तुण्डिकेर—वीतिहोत्र—अवन्ति—ये सब जनपद विन्ध्य गिरि के ऊपर निवास करने वाले हैं। इसके आगे मैं उन देशों का वर्णन करूँगा जो पर्वतों का आश्रय ग्रहण करके निवास किया करते हैं ।६४-६६। निहीर-हंसमार्ग-कुपथ-तङ्गण-शक-अप प्रावरण-ऊर्ण-दर्व-सहूहुक-त्रिगर्त-मण्डल-किरात-तामर-ये समस्त देश पर्वतों के ऊपर समाश्रय लेने वाले हैं। ऋषियों ने भारतवर्ष में चार युगों का होना बतलाया था। प्रथम कृतयुग अर्थात् सत्ययुग है—दूसरा त्रेता, तीसरा द्वापर और चौथा तिष्य है। इन सबका निसर्ग ऊपर से ही सम्पूर्ण में आपको बतलाऊँगा ।६७-६९।

———

युग संख्यावर्त

ऋषिरुवाच—चतुर्युगानि यान्यासन्पूर्वं स्वायंभुवेऽन्तरे ।
तेषां निसर्गं तत्त्वं च श्रोतुमिच्छामि विस्तरात् ॥१
सूत उवाच—पृथिव्यादिप्रसंगेन यन्मया प्रागुदीरितम् ।
तेषां चतुर्युगं ह्येतत्तद्वक्ष्यामि निबोधत ॥२
संख्ययेह प्रसंख्याय विस्तराच्चैव सर्वशः ।
युगं च युगभेदश्च युगधर्मस्तथैव च ॥३
युगसंध्यांशकश्चैव युगसंधानमेव च ।
षट्प्रकाशयुगाख्यैषा तां प्रवक्ष्यामि तत्त्वतः ॥४
लौकिकेन प्रमाणेन निष्पाद्याब्दं तु मानुषम् ।
तेनाशब्देन प्रसंख्यायै वक्ष्यामीह चतुर्युगम् ।
निमेषकालतुल्यं हि विद्याल्लघ्वक्षरं च यत् ॥५
काष्ठा निमेषा दश पंच चैव त्रिंशच्च काष्ठा गणयेत्कलां तु ।
त्रिंशत्कलाश्चापि भवेन्मुहूर्तस्तैस्त्रिंशता राज्यहनी समेते ॥६
अहोरात्रौ विभजते सूर्यो मानुषलौकिकौ ॥७

ऋषि ने कहा—जो चार युग हैं और पूर्व में स्वायम्भुव मन्वन्तर में थे। हे भगवन् ! उनका निसर्ग कैसे हुआ और उनका क्या तत्त्व है—यह मैं विस्तार के साथ श्रवण करना चाहता हूँ ।१। श्रीसूत जी ने कहा—पृथिवी आदि के प्रसंग से जो मैंने पूर्व में कहा था उनके चारों युगों के विषय में मैं अब बतलाऊँगा। उसको आप भली-भाँति समझ लीजिए ।२। यहाँ पर संख्या के द्वारा प्रसंख्यान करके और सब प्रकार से विस्तृत मैं कहूँगा। युग-युग का भेद-युग का धर्म-युग सन्धि का अंश-युग सन्धान-यह षट् प्रकाश युग की आख्या है। उन सबको मैं तात्त्विक रूप से आपको बतलाऊँगा ।३-४। लौकिक प्रमाण मनुष्य के वर्ष का निष्पादन करके उसी शब्द से प्रसंख्यान करके यहाँ पर मैं चारों युगों को बतलाऊँगा। निमेष काल उसे ही जानना चाहिए जो कि लघु अक्षर के तुल्य होता है ।५। पन्द्रह निमेषों का जितना काल होता है उसको एक काष्ठा होती है और तीस काष्ठाओं के समय को

कला गिनना चाहिए। तीस कलाओं का एक मुहूर्त होता है। तीस मुहूर्तों के सम रात्रि और दिन हुआ करते हैं।६। दिन और रात्रि का विभाग सूर्य किया करता है जो कि मनुष्य का लौकिक होता है।७।

तत्राह्नः कर्मचेष्टायां रात्रिः स्वप्नाय कल्पते ।
पित्र्ये राज्यहनी मासः प्रविभागस्तयोः पुनः ॥८
कृष्णपक्षस्त्वहस्तेषां शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी ।
त्रिंशद्ये मानुषा मासाः पित्र्यो मासस्तु सः स्मृतः ॥९
शतानि त्रीणि मासानां षष्ट्या चाप्यधिकानि वै ।
पित्र्यः संवत्सरो ह्येष मानुषेण विभाव्यते ॥१०
मानुषेणैव मानेन वर्षाणां यच्छतं भवेत् ।
पितॄणां त्रीणि वर्षाणि सख्यातानीह तानि वै ॥११
दश चैवाधिका मासाः पितृसंख्येह संज्ञिताः ।
लौकिकेनैव मानेन ह्यब्दो यो मानुषः स्मृतः ॥१२
एतद्दिव्यमहोरात्रं शास्त्रे स्यान्निश्चयो गतः ।
दिव्ये राज्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः ॥१३
अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम् ।
ये ते राज्यहनी दिव्ये प्रसंख्याने तयोः पुनः ॥१४

उनमें दिन तो कर्मों के करने की चेष्टा में लगाया जाता है और रात्रि का समय सोने के लिए कहा जाता है। दिव्य रात्रि और दिन मास होता है। उन दोनों या प्रविभाग फिर होता है।८। उनका कृष्ण पक्ष उनकी रात्रि होती है। मनुष्यों के जो तीस मास होते हैं वही पितृगणों का मास कहा गया है।९। तीन सौ साठ मासों का पितृगणों का एक वर्ष होता है। यह संख्या मनुष्यों के मासों से विभावित हुआ करती है।१०। मनुष्यों के मान से जो सौ वर्ष होते हैं वे पितृगणों के तीन वर्ष संख्यात किये गये हैं।११। यहाँ पर दश मास अधिक पितृ गणों की संख्या संज्ञा वाली हुई है। लौकिक मान से ही जो मनुष्यों का शब्द कहा गया है।१२। यह दिव्य अर्थात् देवों का अहोरात्र अर्थात् एक दिन और रात है जो शास्त्र निश्चय को प्राप्त हुआ है। दिव्य रात्रि और दिन वर्ष है और उन दोनों का फिर

प्रविभाग है ।१३। वहाँ पर जो दिन है वह उत्तरायण होता है और जो रात्रि है वह दक्षिणायन होता है जो वे दिव्य रात्रि और दिन हैं उनका पुनः प्रसंख्यान है ।१४।

त्रिंशद्यानि तु वर्षाणि दिव्यो मासस्तु स स्मृतः ।
यन्मानुषं शतं विद्धि दिव्या मासास्त्रयस्तु ते ॥१५
दश चैव तथाऽहानि दिव्यो ह्येष विधिः स्मृतः ।
त्रीणि वर्षशतान्येव षष्टिवर्षाणि यानि तु ।
दिव्यः संवत्सरो ह्येष मानुषेण प्रकीर्त्तितः ॥१६
त्रीणि वर्षसहस्राणि मानुषाणि प्रमाणतः ।
त्रिंशदन्यानि वर्षाणि मतः सप्तर्षिवत्सरः ॥१७
नव यानि सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि तु ।
अन्यानि नवतिश्चैव ध्रुवः संवत्सरः स्मृतः ॥१८
षड्विंशतिसहस्राणि वर्षाणि मानुषाणि तु ।
वर्षाणि तु शतं ज्ञेयं दिव्यो ह्येष विधिः स्मृतः ॥१९
त्रीण्येव नियुतान्याहुर्वर्षाणां मानुषाणि तु ॥२०
षष्टिश्चैव सहस्राणि संख्यातानि तु संख्यया ।
दिव्यवर्षसहस्रं तु प्राहुः संख्याविदो जनाः ॥२१

मनुष्यों के जो तीस वर्ष होते हैं उतने समय का देवों का दिव्य मास कहा गया है । जो मानवों के एक सौ वर्ष हैं उतने समय का दिव्य तीन मास हुआ करते हैं ।१५। तथा दश दिन हैं—यही दिव्य विधि कही गयी है । तीन सौ साठ जो वर्ष मनुष्यों के होते हैं यह एक दिव्य सम्वत्सर कहा गया है । ।१६। मनुष्यों के तीन हजार वर्ष प्रमाण से होते हैं और अन्य वर्ष हैं इतने समय का सप्तर्षियों का एक वत्सर होता है ।१७। मानवों के जो नौ हजार वर्ष होते हैं और अन्य नब्बे वर्ष हैं–इतने समय का ध्रुव सम्वत्सर हुआ करता है । मनुष्यों के छब्बीस हजार वर्षों का जो समय होता है वह समय होता है वह समय देवों का अर्थात् दिव्य सौ वर्ष हुआ करते हैं—यह विधि कही गयी है ।१८-१९। तीन नियुत ही मनुष्यों के वर्ष कहे जाते हैं ।२०। संख्या के द्वारा साठ सहस्र वर्ष ही संख्यात किये गये हैं । संख्या के ज्ञाता मनीषी गण दिव्य सहस्र वर्ष कहते हैं ।२१।

इत्येवमृषिभिर्गीतं दिव्यया संख्यया त्विह ।
दिव्येनैव प्रमाणेन युगसंख्याप्रकल्पनम् ॥२२
चत्वारि भारते वर्षे युगानि कवयोऽब्रुवन् ।
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुष्टयम् ॥२३
पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेता विधीयते ।
द्वापरं च कलिश्चैव युगान्येतानि कल्पयेत् ॥२४
चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां च कृतं युगम् ।
तस्य तावच्छती संध्या संध्ययाः संध्यया समः ॥२५
इतरेषु ससंध्येषु ससंध्यांशेषु च त्रिषु ।
एकन्यायेन वर्तन्ते सहस्राणि शतानि च ॥२६
त्रीणि द्वे च सहस्राणि त्रेताद्वापरयोः क्रमात् ।
त्रिशती द्विशती संध्ये संध्यांशौ चापि तत्समौ ॥२७
कलिं वर्षसहस्रं तु युगमाहुर्द्विजोत्तमाः ।
तस्यैकशतिका संध्या संध्यांश संध्याय समः ॥२८

ऋषियों ने यह इस प्रकार से दिव्य संख्या के साथ गान किया है और दिव्य प्रमाण के ही द्वारा युगों की प्रकृष्ट संख्या की कल्पना की जाया करती है ।२२। कविगणों ने भारत वर्ष में चार युग बताये थे । कृतयुग-त्रेता-द्वापर और कलियुग ये चार युगों की चौकड़ी है ।२३। सबसे प्रथम जो युग है उसका कृतयुग अर्थात् सत्ययुग है । इसके उपरान्त त्रेता युग का विधान किया जाता है । फिर द्वापर और इसके बाद कलियुग आता है—इन चार युगों की कल्पना की जाती है ।२४। कृतयुग के बरतने का काल चार सहस्र दिव्य वर्षों का होता है । उस युग की उतने ही सौ वर्षों की सन्ध्या होती है है और सन्ध्या का अंश सन्ध्या के ही समान होता है ।२५। सन्ध्या के सहित और सन्ध्यांशों के सहित अन्य तीनों में एक ही न्याय से सहस्र और शत बरता करते हैं ।२६। त्रेता और द्वापर में क्रम से तीन और दो सहस्र होते हैं । तीन सौ और दो सौ सन्ध्यायें और सन्ध्यांश भी उनके ही समान हुआ करते हैं ।२७। द्विजोत्तम कलियुग एक सहस्र वर्ष कहते हैं । उसकी एक सौ वर्षों वाली सन्ध्या होती है और सन्ध्या के ही समान सन्ध्या का अंश हुआ करता है ।२८।

तेषां द्वादशसाहस्री युगसंख्या प्रकीर्त्तिता ।
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चैव चतुष्टयम् ॥२९
अत्र संवत्सरा दृष्टा मानुषेण प्रमाणतः ।
कृतस्य तावद्वक्ष्यामि वर्षाणि च निबोधत ॥३०
सहस्राणां शतान्याहुश्चतुर्दश हि संख्यया ।
चत्वारिंशत्सहस्राणि तथान्यानि कृतं युगम् ॥३१
तथा शतसहस्राणि वर्षाणि दशसंख्यया ।
अशीतिश्च सहस्राणि कालस्त्रेतायुगस्य सः ॥३२
सप्तैव नियुतान्याहुर्वर्षाणां मानुषेण तु ।
विंशतिश्च सहस्राणि कालः स द्वापरस्य च ॥३३
तथा शतसहस्राणि वर्षाणि त्रीणि संख्यया ।
षष्टिश्चैव सहस्राणि कालः कलियुगस्य तु ॥३४
एवं चतुर्युगे काल ऋते संध्यांशकैः स्मृतः ।
नियुतान्येव षड्विंशन्निरसानि युगानि वै ॥३५
चत्वारिंशत्तथा त्रीणि नियुतानीह संख्यया ।
विंशतिश्च सहस्राणि स संध्यांशश्चतुर्युगः ॥३६
एवं चतुर्युगाख्यानां साधिका ह्येकसप्ततिः ।
कृतत्रेतादियुक्तानां मनोरंतरमुच्यते ॥३७

उनकी बारह सहस्रों वाली युगों की संख्या कीर्त्तित की गयी है। इस प्रकार से कृतयुग-त्रेता-द्वापर और कलियुग इन चार युगों की चौकड़ी है।२९। यहाँ पर मानुष प्रमाण से सम्वत्सर देखे गये हैं। अब कृत युग के वर्षों को बतलाऊँगा। उनको भली भाँति समझ लीजिए।३०। संख्या के द्वारा चौदह सौ सहस्र कहे गये हैं। तथा अन्य चालीस सहस्र कृतयुग हैं।३१। दश की संख्या से सौ सहस्र वर्ष हैं। वह अस्सी सहस्र काल त्रेतायुग का होता है।३२। मानुष प्रमाण से सात ही विपुल वर्ष कहे गये हैं। और द्वापर युग का काल बीस सहस्र वर्ष होता है।३३। संख्या से तीन शत सहस्र वर्ष कलियुग का काल होता है।३४। इस प्रकार से इन चार युगों में ऋत सध्यांशों

के सहित काल कहा गया है। युग निरस छब्बीस नियुत ही हैं।३५। इन चारों युगों का संख्या से तैंतालीस नियुत और बीस हजार वह सन्ध्यांश होता है।३६। इस प्रकार से कृत से लेकर त्रेता आदि चारों युगों की साधिका इकहत्तर होती है। इसी को एक मन्वन्तर कहा जाता है अर्थात् इकत्तर चारों युगों की चौकड़ियाँ जब समाप्त हो जाती हैं तभी एक मनु के शासन का समय पूर्ण होकर दूसरा मन्वन्तर आता है।३७।

अंतरिक्षे समुद्रे च पाताले पर्वतेषु च ।
इज्या दानं तपः सत्यं त्रेतायां धर्मं उच्यते ॥३८
तदा प्रवर्त्तते धर्मो वर्णाश्रमविभागशः ।
मर्यादास्थापनार्थं च दण्डनीतिः प्रवर्त्तते ॥३९
हृष्टपुष्टाः प्रजाः सर्वा अरोगाः पूर्णमानसाः ।
एको वेदश्चतुष्पादस्त्रेतायुगविधौ स्मृतः ॥४०
त्रीणि वर्षसहस्राणि तदा जीवन्ति मानवाः ।
पुत्रपौत्रसमाकीर्णा म्रियंते च क्रमेण तु ॥४१
एष त्रेतायुगे धर्मस्त्रेतासंध्यां निबोधत ।
त्रेतायुगस्वभावानां संध्यापादेन वर्त्तते ।
संध्यापादः स्वभावस्तु सोऽशपादेन तिष्ठति ॥४२

अन्तरिक्ष में—समुद्र में—पाताल में और पर्वतों में इज्या-दान, तप और सत्य का समाचरण ही त्रेतायुग में धर्म कहा जाया करता है।३८। उस समय में वर्णों और आश्रमों के विभाग के अनुसार धर्म की प्रवृत्ति हुआ करती है। मर्यादा की स्थापना करने के लिए दण्ड देने की नीति भी उस समय में प्रवृत्त होती है।३९। उस समय में समस्त प्रजा के जन समुदाय हृष्ट-पुष्ट, रोगों से रहित और पूर्ण मानस वाले होते हैं। त्रेतायुग की विधि में चार पादों वाला एक ही वेद कहा गया है।४०। उस समय में मानवों की आयु बड़ी होती थी और वे तीन हजार वर्षों तक जीवित करते रहा थे। वे सब अपने पुत्रों—पौत्रों से घिरे हुए रहा करते थे तथा उनकी मृत्यु भी आयु के अनुसार क्रम से ही हुआ करती थी।४१। त्रेतायुग में इसी प्रकार से धर्म होता था। अब त्रेता की सन्ध्या का भी ज्ञान प्राप्त कर लीजिए। त्रेता

युग के जो स्वभाव हैं उनकी सन्ध्या पाद से बरता करती है। सन्ध्यापाद का स्वभाव जो है वह अंश पाद से स्थित होता है।४२।

चतुर्युगाख्यान वर्णनम्

सूत उवाच—अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि द्वापरस्य विधिं पुनः।
तत्र त्रेतायुगे क्षीणे द्वापरं प्रतिपद्यते ॥१
द्वापरादौ प्रजानां तु सिद्धिस्त्रेतायुगे तु या।
परिवृत्ते युगे तस्मिंस्ततस्ताभिः प्रणश्यति ॥२
ततः प्रवर्त्तते तासां प्रजानां द्वापरे पुनः।
संभेदश्चैव वर्णानां कार्याणां च विपर्यय: ॥३
यज्ञावधारणं दण्डो मदो दंभः क्षमा बलम्।
एषा रजस्तमोयुक्ता प्रवृत्तिर्द्वापरे स्मृता ॥४
आद्ये कृते यो धर्मोऽस्ति स त्रेतायां प्रवर्त्तते।
द्वापरे व्याकुलीभूत्वा प्रणश्यति कलौ युगे ॥५
वर्णानां विपरिध्वंसः संकीर्यन्ते तथाश्रमाः।
द्वैविध्यं प्रतिपद्यन्ते युगे तस्मिञ्छ्रुतिस्मृती ॥६
द्वैधात्तया श्रुतिस्मृत्योर्निश्चयो नाधिगम्यते।
अनिश्चयाधिगमनाद्धर्मतत्त्वं न विद्यते ॥७

श्री सूतजी ने कहा—उसके आगे फिर द्वापर युग की विधि का वर्णन करूँगा। वहाँ पर त्रेता युग के क्षीण होने पर द्वापर युग प्रतिपन्न होता है।१। द्वापर युग के आदि में प्रजाओं की वही सिद्धि थी जो कि त्रेतायुग में में थी। उस युग के परिवर्त्तित हो जाने पर इसके पश्चात् उन सिद्धियों से विनष्ट हो जाता है।२। फिर द्वापर में उस प्रजाओं का संभेद प्रवृत्त हो जाता है और समस्त वर्णों का और कार्यों का विपर्यय हो जाया करता है।३। यज्ञों का अवधारण, दण्ड, दम्भ, क्षमा और बल द्वापर में यह प्रवृत्ति जो भी थी वह रजोगुण और तमोगुण से युक्त कही गयी है।४। सबसे आदि में होने वाले कृतयुग में जो धर्म है वह त्रेतायुग में प्रवृत्त होता है। द्वापर युग में वह धर्म व्याकुलित होकर कलियुग में विनष्ट हो जाता है।५। सभी वर्णों का विशेष रूप से परिध्वंस होता है तथा सब आश्रम भी बिगड़ जाया करते

हैं। उस युग में श्रुतियाँ और स्मृतियाँ दो प्रकारों को प्राप्त कर लिया करती हैं। श्रुति-स्मृतियों के दो प्रकार के स्वरूप हो जाने से किसी निश्चय का अधिगम नहीं हुआ करता है और अनिश्चय के अधिगम से धर्म का वास्तविक तत्व नहीं रहता है।६-७।

धर्मसत्वेन भिन्नाणां मतिभेदो भवेन्नृणाम् ।
परस्परविभिन्नैस्तैर्दृष्टीनां विभ्रमेण च ॥८
अयं धर्मो ह्ययं नेति निश्चयो नाधिगम्यते ।
कारणानां च वैकल्यात्कार्याणां चाप्यनिश्चयात् ॥९
मतिभेदेन तेषां वै दृष्टीनां विभ्रमो भवेत् ।
ततो दृष्टिविभिन्नैस्तु कृतं शास्त्राकुलं त्विदम् ॥१०
एको वेदश्चतुष्पाद्धि त्रेतास्विह विधीयते ।
संक्षयादायुषश्चैव व्यस्यते द्वापरेषु च ॥११
ऋषिमंत्रात्पुनर्भेदाद्भिद्यते दृष्टिविभ्रमैः ।
मंत्रब्राह्मणविन्यासैः स्वरवर्णविपर्ययैः ॥१२
संहिता ऋग्यजुः साम्नां संपठ्यन्ते महर्षिभिः ।
सामान्या वैकृताश्चैव दृष्टिभिन्ने क्वचित्क्वचित् ॥१३
ब्राह्मणं कल्पसूत्राणि मंत्रप्रवचनानि च ।
अन्येऽपि प्रस्थितास्तान्वै केचित्तान्प्रत्यवस्थिता: ॥१४

धार्मिकता के न रहने से भिन्न मनुष्यों की मति का भेद हो जाया करता है। वे सब आपस को भी किसी के साथ सहानुभूति नहीं होती है। सब की सृष्टि में विभ्रम हो जाया करता है।८। यह धर्म है अथवा यह अधर्म है—इसका कोई भी निश्चय नहीं हुआ करता है। कारणों के विकल्प होने से और कार्यों के निश्चय नहीं होने से धर्माधर्म का कोई निश्चय नहीं हुआ करता है।९। उन मनुष्यों की मति के विभेद होने से उनकी दृष्टियों का भी विभ्रम हो जाता है। फिर विभिन्न दृष्टियों वाले मनुष्यों के द्वारा शास्त्रों को भी आकुलित कर दिया था।१०। वेद एक ही था उसको त्रेता-युग में चार पादों वाला किया जाता है। आयु के संक्षय होने से द्वापर युग में यह व्यवस्थित हो जाता है।११। ऋषियों ने और मन्त्रों के फिर भेद

होने से यह दृष्टि के विभ्रमों से युक्त हो जाता है। जिस में मन्त्र भाग और ब्राह्मण भाग का विन्यास होता है और स्वरों तथा वर्णों का विपर्यय होता है।१२। महर्षियों के द्वारा ऋग्वेद-यजुर्वेद और सामवेद की संहितायें पढ़ी जाया करती हैं। कहीं पर सामान्य और कहीं-कहीं पर दृष्टि की भिन्नता होने पर वैकृत ये पढ़ी जाया है।१३। ब्राह्मण-कल्प सूत्र और मन्त्र प्रवचन और अन्य भी प्रस्थित हैं और कुछ उनके प्रति अवस्थित हैं।१४।

द्वापरेषु प्रवर्त्तन्ते निवर्त्तंते कलौ युगे ।
एकमाध्वर्यवं त्वासीत्पुनर्द्वेधमजायत ॥१५
सामान्यविपरीतार्थैः कृतशास्त्राकुलं त्विदम् ।
आध्वर्यवस्य प्रस्थानैर्बहुधा व्याकुलीकृतैः ॥१६
तथैवाथर्वऋक्साम्नां विकल्पैश्चापि संज्ञया ।
व्याकुले द्वापरे नित्यं क्रियते भिन्नदर्शनैः ॥१७
तेषां भेदाः प्रतीभेदा विकल्पाश्चापि संख्यया ।
द्वापरे संप्रवर्त्तंते विनश्यंति ततः कलौ ॥१८
तेषां विपर्ययोत्पन्ना भवन्ति द्वापरे पुनः ।
अवृष्टिर्मरणं चैव तथैव व्याध्युपद्रवाः ॥१९
वाङ्मनः कर्मजैर्दुःखैर्निर्वेदो जायते पुनः ।
निर्वेदाज्जायते तेषां दुःखमोक्षविचारणा ॥२०
विचारणाच्च वैराग्यं वैराग्याद्दोषदर्शनम् ।
दोषदर्शनतश्चैव द्वापरेऽज्ञानसंभवः ॥२१

यह सब कुछ द्वापर युग में प्रवृत्त होते हैं और कलियुग में भी सभी भेद-प्रभेद निवृत्त हो जाते हैं। एक आध्वर्यव था और फिर दो प्रकार हो गये थे।१५। साधारण और विपरित अर्थों के द्वारा यह शास्त्र आकुल कर दिया गया था यह बहुधा आध्वर्यव के व्याकुली कृत प्रस्थानों के द्वारा ही हुआ था।१६। तथा अर्थात् उसी प्रकार से संज्ञा के द्वारा अथर्व-ऋक् और सामों के विकल्पों से भी हुआ था। नित्य ही इस तरह से व्याकुल द्वापर में विभिन्न दर्शन शास्त्रों के द्वारा किया जाता है।१७। संख्या से उनके भेद-प्रतीभेद-और विकल्प द्वापर युग में भली-भाँति प्रवृत्त होते हैं और फिर जब कलियुग आ जाता है तो सभी विनष्ट हो जाया करते हैं।१८। द्वापर में फिर

उनके विपरीत समुत्पन्न हो जाते हैं। वृष्टि का अभाव-व्याधि-उपद्रव-मरण-ये सब होते हैं।१९। कायिक, वाचिक और मानसिक सभी प्रकार के दुःख होते हैं और उन दुःखों के समुदाय से फिर मनों निर्वेद उत्पन्न हो जाता है। यह सभी निस्सार है—ऐसा जब निर्वेद हृदयों में होता है तो फिर उन प्राणियों के हृदयों में इन सब दुःखों से छुटकारा पाने का विचार होता है।२०। ऐसी जब विचारणा होती है तो उससे सबके प्रति विरागता हो जाया करती है और उस वैराग्य से भोगोपभोगों में दोषों का दर्शन होने लगता है। दोषों के देखने से ही द्वापर में अज्ञान की उत्पत्ति हो जाती है।२१।

तेषामज्ञानिनां पूर्वमाद्ये स्वायंभुवेऽन्तरे।
उत्पद्यंते हि शास्त्राणां द्वापरे परिपन्थिनः ॥२२
आयुर्वेदविकल्पश्च ह्यङ्गानां ज्योतिषस्य च।
अर्थशास्त्रविकल्पाश्च हेतुशास्त्रविकल्पनम् ॥२३
प्रक्रियाकल्पसूत्राणां भाष्यविद्याविकल्पनम्।
स्मृतिशास्त्रप्रभेदश्च प्रस्थानानि पृथक्पृथक् ॥२४
द्वापरेष्वभिवर्त्तंते मतिभेदाश्रयान्नृणाम्।
मनसा कर्मणा वाचा कृच्छ्राद्वार्ता प्रसिद्ध्यति ॥२५
द्वापरे सर्वभूतानां कायक्लेशपुरस्कृता।
लोभो धृतिर्वणिक्पूर्वा तत्त्वानामविनिश्चयः ॥२६
वेदशास्त्रप्रणयनं धर्माणां संकरस्तथा।
वर्णाश्रमपरिध्वंसः कामक्रोधौ तथैव च ॥२७
द्वापरेषु प्रवर्त्तन्ते रागो लोभो वधस्तथा।
वेदं व्यासश्चतुर्द्धा तु व्यस्यते द्वापरादिषु ॥२८

उन ज्ञान से रहित मानवों से पहिले स्वायम्भुव मन्वन्तर में जो कि सबसे पहिला है उस द्वापर में सभी शास्त्रों के परिपन्थी अर्थात् विरोध करने वाले लोग समुत्पन्न हो जाया करते हैं।२२। रोगों के विषय में आयुर्वेद शास्त्र का विकल्प और ज्योतिष शास्त्र का विकल्प-अर्थशास्त्र के विषय में विकल्प और हेतु शास्त्र का विकल्प है।२३। कल्पसूत्रों की प्रक्रिया, भाष्य विद्या का विकल्प और स्मृति शास्त्रों के प्रभेद ऐसे अलग-अलग प्रस्थान हैं

।२४। ये सभी द्वापर युग में मनुष्यों की बुद्धियों के भेद होने से अभिवर्तित हैं। मन से-वचन से और कर्म से बड़ी कठिनाई से वार्त्ता प्रसिद्ध होती है ।२५। द्वापर में समस्त प्राणियों के कार्य शारीरिक क्लेश के साथ ही होते हैं। सबकी वृत्ति होती है जैसी कि वणिजों की हुआ करती है और किसी को भी तत्वों का निश्चय नहीं होता है ।२६। लोग स्वयं ही वेदों और शास्त्रों का प्रणयन किया करते हैं और धर्म सब मिलकर एकमेक आते हैं और धर्मों की सङ्करता हो जाती है। चारों वर्णों और चारों आश्रमों का पूर्णतया विध्वंस हो जाता है और प्राणियों में प्रायः काम और क्रोध उत्पन्न हो जाया करते हैं ।२७। द्वापर युग में लोगों के मनों में राग-लोभ और वध करने की भावनायें उत्पन्न हो जाया करती है। द्वापर के आदि में व्यासदेव जी ने वेद के चार भाग किये थे ।२८।

निःशेषे द्वापरे तस्मिंस्तस्य संध्या तु यादृशी ।
प्रतिष्ठितगुणैर्हीनो धर्मोऽसौ द्वापरस्य तु ॥२९
तथैव संध्या पादेन ह्यंगः संध्या इतीष्यते ।
द्वापरस्यावशेषेण तिष्यस्य तु निबोधत ॥३०
द्वापरस्यांशशेषेण प्रतिपत्तिः कलेरपि ।
हिंसासूयानृतं माया वधश्चैव तपस्विनाम् ॥३१
एते स्वभावास्तिष्यस्य साधयंति च वै प्रजाः ।
एष धर्मः कृतः कृत्स्नो धर्मश्च परिहीयते ॥३२
मनसा कर्मणा स्तुत्या वार्ता सिध्यति वा न वा ।
कलौ प्रमारको रोगः सततं क्षुद्भयानि च ॥३३
अनावृष्टिभयं घोरं देशानां च विपर्ययः ।
न प्रमाणं स्मृतेरस्ति तिष्ये लोकेषु वै युगे ॥३४
गर्भस्थो म्रियते कश्चिद्यौवनस्थस्तथापरः ।
स्थविराः केऽपि कौमारे म्रियन्ते वै कलौ प्रजाः ॥३५

द्वापरयुग के निःशेष होने पर उसकी सन्ध्या का काल भी वैसा ही था। द्वापर का यह धर्म गुणों से हीन प्रतिष्ठित होता है ।२९। उसी भाँति की पाद से सन्ध्या होती है। अङ्ग-ही सन्ध्या अभीष्ट हुआ करती है। द्वापर

के अवशेष से अब तिष्य के विषय में समझ लो ।३०। जब द्वापर युग का अंश शेष रहता है तभी कलियुग की भी प्रतिपत्ति हो जाया करती है । जो तपश्चर्या का समाचरण करने वाले हैं उनमें भी युग के प्रभाव से हिंसा—असूया—अनृत—माया और वध की भावनायें उत्पन्न हो जाती हैं ।३१। ये तिष्य (कलि) के स्वभाव हैं जिनका साधन प्रजा के जन किया करते हैं। मह ही किया गया पूर्ण धर्म है और वास्तविक जो भी धर्म है वह परिहीण हो जाया करता है ।३२। मन से-कर्म से और स्तुति से वार्त्ता सिद्ध होती है अथवा नहीं होती है। कलियुग में रोग प्रकृष्ट रूप से मारक होता है और क्षुधा तथा भय होते हैं ।३३। कलि में वृष्टि के समय पर न होने को घोर भय होता है तथा देशों का विपर्यय हो जाता है। कलियुग में लोगों में स्मृति का कोई भी प्रमाण नहीं माना जाता है। कोई तो माता के गर्भ में ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, कोई युवावस्था में ही मर जाया करता है, कोई-कोई वृद्ध होकर मर जाते हैं। इस कलियुग में प्रजाजन कुमारावस्था में ही परलोक में चले जाया करते हैं ।३४-३५।

दुरिष्टैर्दुरधीतैश्च दुष्कृतैश्च दुरागमैः ।
विप्राणां कर्मदोषैस्तैः प्रजानां जायते भयम् ॥३६
हिंसा माया तथेर्ष्या च क्रोधोऽसूयाक्षमा नृषु ।
तिष्ये भवन्ति जंतूना रोगा लोभश्च सर्वशः ॥३७
संक्षोभो जायतेऽत्यर्थं कलिमासाद्य वै युगम् ।
पूर्णे वर्षसहस्रे वै परमायुस्तदा नृणाम् ॥३८
नाधीयंते तदा वेदान्न यजंते द्विजातयः ।
उत्सीदंति नराश्चैव क्षत्रियाश्च विशः क्रमात् ॥३९
शूद्राणामंत्ययोनेस्तु संबंधा ब्राह्मणैः सह ।
भवंतीह कलौ तस्मिञ्छयनासनभोजनैः ॥४०
राजानः शूद्रभूयिष्ठाः पाखंडानां प्रवर्त्तकाः ।
गुणहीनाः प्रजाश्चैव तदा वै संप्रवर्त्तते ॥४१
आयुर्मेधा बलं रूपं कुलं चैव प्रणश्यति ।
शूद्राश्च ब्राह्मणाचाराः शूद्राचाराश्च ब्राह्मणाः ॥४२

बुरे मनोरथ-असद् विषयों का अध्ययन—बुरे पाप कर्म-बुरे शास्त्र और प्रजाओं के कुत्सित कर्मों के दोषों से ही भय उत्पन्न हो जाया करता है ।३६। हिंसा-माया-ईर्ष्या-क्रोध-निन्दा और अक्षमा—राग और सब प्रकार लोभ कलियुग में जन्तुओं में और मनुष्यों में होते हैं ।३७। अत्यधिक संक्षोभ कलियुग के प्राप्त होने पर समुत्पन्न हो जाता है । उस समय में मानवों की परमायु पूरे सहस्र वर्ष की होती है ।३८। उस समय में द्विजातिगण वेदों का अध्ययन नहीं किया करते हैं और न वे यजन ही किया करते हैं । सभी नर-क्षत्रिय और वैश्य क्रम से उत्पन्न हो जाया करते हैं ।३९। शूद्रों के ब्राह्मणों साथ अन्त्यजों से सम्बन्ध होते हैं और उस कलियुग में शय-आसन और भोजन का सब परस्पर में सम्बन्ध किया करते हैं ।४०। राजाओं में बहुधा शूद्र वर्ण वालों की अधिकता होती है जो कि पाखण्डों के प्रवर्त्तक ही हुआ करते हैं । उस समय में प्रजाजनों में भी गुणों की हीनता संप्रवृत्त होती है ।४१। न तो मानवों में मेधा होती है और न उनकी कुछ आयु ही होती है । बल-रूप और कुल सभी विनष्ट हो जाया करते हैं । जो शूद्र वर्ण वाले मानव हैं उनके आचार तो ब्राह्मणों के समान होते हैं और ब्राह्मण शूद्रों के तुल्य आचरण किया करते हैं ।४२।

राजवृत्ता: स्थिताश्चोराश्चोराचाराश्च पार्थिवा: ।
भृत्या एते ह्यसुभृतो युगान्ते समवस्थिते ॥४३
अशीलिन्योऽनृताश्चैव स्त्रियो मद्यामिषप्रिया: ।
मायाविन्यो भविष्यंति युगांते मुनिसत्तम ॥४४
एकपत्न्यो न शिष्यंति युगांते मुनिसत्तम ।
श्वापदप्रबलत्वं च गवां चैव ह्युपक्षय: ॥४५
साधूनां विनिवृत्तिं च विद्यास्तस्मिन्युगक्षये ।
तदा धर्मो महोदर्को दुर्लभो दानमूलवान् ॥४६
चातुराश्रमशैथिल्यो धर्म: प्रविचरिष्यति ।
तदा ह्यल्पफला भूमि: क्वचिच्चापि महाफला ॥४७
न रक्षितारो भोक्तारो बलिभागस्य पार्थिवा: ।
युगान्ते च भविष्यंति स्वरक्षणपरायणा: ॥४८

अरक्षितारो राजानो विप्राः शूद्रोपजीविनः ।
शूद्राभिवादिनः सर्वे युगान्तो द्विजसत्तमाः ॥४९

चौर्य कर्म करने वाले पुरुष राजाओं के समान आचरण वाले हैं और जो पार्थिव हैं वे चोरों के समान आचरण करने वाले हैं। इस युग के अन्त समय के उपस्थित होने पर भृत्यगण प्राणों का भरण करने वाले हैं।४३। नारियाँ शील से शून्य-मिथ्याचार वाली तथा मदिरा और मांस से प्रेम करने वाली होती हैं। हे मुनि श्रेष्ठ ! इस युग के अन्त में सभी स्त्रियाँ माया रखने वाली होती हैं।४४। पुरुष भी एक ही पत्नी रखने के व्रत वाले नहीं होते हैं। हे मुनिसत्तम ! युग के अन्त समय में सर्वत्र ऐसा ही दिखलाई देता है। सब जगह अन्य पशुओं की प्रबलता होती है और गौओं के कुल का क्षय होता है।४५। उस युग के क्षय में साधुजनों की विशेष रूप से निवृत्ति होती है। ऐसा ही जान लेना चाहिए। उस समय में अपने आपका बहुत ऊँचा उठाना ही धर्म है और दान के मूल वाला धर्म परम दुर्लभ होता है।४६। ब्रह्मचर्य गार्हस्थ्य-वानप्रस्थ और संन्यास—इन चारों आश्रमों की शिथिलता वाला धर्म ही सब जगह चलेगा। उस समय में भूमि भी अल्प फल देने वाली होती है और कहीं पर महान् फल वाली होगी।४७। राजा लोग केवल अपनी बलि का भोग करने वाले होंगे और प्रजा की रक्षा करने वाले नहीं होंगे। और युग के अन्त में ये नृपगण अपनी ही रक्षा करने में तत्पर रहा करेंगे। राजा लोग संरक्षण नहीं करने वाले और विप्रगण शूद्रों से उपजीविका चलाने वाले हो जायेंगे। और युग के अन्त में श्रेष्ठ द्विजगण भी शूद्रों के अभिवादन करने वाले हो जायेंगे।४८-४९।

अट्टशूला जनपदाः शिवशूला द्विजास्तथा ।
प्रमदाः केशशूलाश्च युगान्ते समुपस्थिते ॥५०
सर्पोऽन्नफलानां च विक्रेतारो द्विजोत्तमाः ।
यतयश्च भविष्यंति बहवोऽस्मिन्कलौ युगे ॥५१
चित्रवर्षी यदा देवस्तदा प्राहुर्युगक्षयम् ।
सर्वे वाणिजकाश्चापि भविष्यंत्यधमे युगे ॥५२
भूयिष्ठं कूटमानैश्च पण्यं विक्रीणते जनाः ।
कुशीलचर्यापाखंडैर्व्यर्थरूपैः समावृतम् ॥५३

पुरुषाल्पं बहुस्त्रीकं युगान्ते समुपस्थिते ।
बाहुयाचनको लोको भविष्यति परस्परम् ॥५४

अव्याकर्ता क्रूरवाक्यो नार्जवो नानसूयकः ।
न कृते प्रतिकर्त्ता च युगे क्षीणे भविष्यति ॥५५

अशंका चैव पतिते युगान्ते तस्य लक्षणम् ।
ततः शून्या वसुमती भविष्यति वसुन्धरा ॥५६

सभी जनपद अट्टालिकाओं के शूल वाले हैं और शिव के शूल वाले सब द्विजातिगण हैं। इस युगान्त से समुपस्थित होने पर सभी प्रमदायें केशों के शूल वाली हैं ।५०। श्रेष्ठ द्विज भी अपनी तपस्या और यज्ञों के फल को द्रव्य लेकर बेच देने वाले हो जायेंगे। इस कलियुग में काषाय वस्त्रों के धारण करने वाले बहुत से यतिगण हो जायेंगे ।५१। जिस समय में विचित्र ढङ्ग से इन्द्रदेव वर्षा करने वाले हो जायेंगे उस समय में इस युग की क्षय कहते हैं। इस आधार युग में सभी वर्णों के मानव वाणिज्य व्यवसाय करने वाले हो जायेंगे ।५२। मनुष्य कूटमानों के द्वारा अधिक पण्य वस्तुओं का विक्रय किया करते हैं वह पण्य कुशील चर्या-पाखण्ड-ईर्ष्या और अन्यों से समावृत होगा ।५३। पुरुष के रूप से युक्त मनुष्य बहुत स्त्रियों वाला इस युग के अन्त के उपस्थित होने पर होंगे। लोग परस्पर में बहुत याचना करने वाले होंगे ।५४। इस युग के क्षीण होने पर मनुष्य प्रायः अव्याकर्त्ता-क्रूर वाक्य बोलने वाला-कुटिल-निन्दक और किए हुए उपकार का प्रत्युपकार न करने वाला होगा ।५५। इस युग के अन्त में यही उसका लक्षण है कि पतित में कोई भी शंका नहीं होती है अर्थात् निश्शङ्क होकर पतित व्यक्ति से सम्बन्ध स्थापित रक्खा करते हैं। इसके पश्चात् यह वसुमती वसुन्धरा शून्य हो जायगी ।५६।

गोप्तारश्चाप्यगोप्तारः प्रभविष्यंति शासकाः ।
हर्त्तारः पररत्नानां परदारविमर्शकाः ॥५७

कामात्मानो दुरात्मानो ह्यधमाः साहसप्रियाः ।
प्रनष्टचेतना धूर्त्ता मुक्तकेशास्त्वशूलिनः ॥५८

ऊनषोडशवर्षाश्च प्रजायन्ते युगक्षये ।
शुक्लदंता जिताक्षाश्च मुण्डाः काषायवाससः ॥५९

शूद्रा धर्मं चरिष्यंति युगान्ते समुपस्थिते ।
सस्यचोरा भविष्यंति तथा चैलापहारिणः ॥६०
चोराच्चोराश्च हर्त्तारो हर्तुर्हर्त्ता तथापरः ।
ज्ञानकर्मण्युपरते लोके निष्क्रियतां गते ॥६१
कीटमूषकसर्पाश्च धर्षयिष्यंति मानवान् ।
अभीक्ष्णं क्षेममारोग्यं सामर्थ्यं दुर्लभं तथा ॥६२
कौशिकान्प्रतिवत्स्यंति देशाः क्षुद्भयपीडिताः ।
दुःखेनाभिप्लुतानां च परमायुः शतं तदा ॥६३

जो रक्षक हैं वे भी रक्षा नहीं करने वाले शासक हो जायेंगे। ये दूसरों के रत्नों का हरण करने वाले तथा दूसरों की स्त्रियों से विमर्श करने वाले हो जायेंगे ।५७। सभी लोग काम वासना से परिपूर्ण—दुष्ट भावों वाले—बहुत अशुभ और दुस्साहस से प्रेम करने वाले—नष्ट चेष्टा वाले—धूर्त—अमूली केशों को खुले हुए रखने वाले होंगे ।५८। इस युग के क्षय में सोलह वर्ष से भी छोटी उम्र वाले सन्तान का प्रजानन किया करते हैं। शुक्ल दन्तों वाले—जिताक्ष—मुण्डित शिर वाले और काषाय रङ्ग के वस्त्रों के धारण करने वाले होंगे ।५९। युगान्त के उपस्थित होने पर शूद्र लोग धर्म का आचरण करेंगे। लोग धान तथा फसल की चोरी करने वाले और वस्त्रों का अपहरण करने वाले होंगे ।६०। चोर से हरण करने वाले चोर तथा हरणकर्त्ता से दूसरे हरण करने वाले हो जायेंगे। ज्ञान पूर्वक कर्मों के उपरत हो जाने पर समस्त लोक निष्क्रियता को प्राप्त हो जायगा ।६१। कीड़े-मूषक और सर्प मानवों को प्रधर्षित करेंगे। उसी प्रकार से बराबर क्षेम कुशल-आरोग्य और सामर्थ्य सभी बहुत दुर्लभ हो जायेंगे। भूख के भय से पीड़ित मनुष्यों के देश कौशिकों को प्रति वास दिया करेंगे। इस प्रकार से दुःखों से जब मनुष्य पूर्ण रूप से अभिप्लुत होंगे तो उनकी उस समय से परमायु सौ वर्ष की ही रह जायगी ।६२-६३।

दृश्यंते च न दृश्यंते वेदा कलियुगेऽखिलाः ।
उत्सीदन्ते तथा यज्ञाः केवलाधर्मपीडिताः ॥६४
वेदविक्रयिणश्चान्ये तीर्थविक्रयिणोऽपरे ॥६५

वर्णाश्रमाणां ये चान्ये पाखण्डाः परिपंथिनः ।
उत्पद्यंते तदा ते वै संप्राप्ते तु कलौ युगे ॥६६
अधीयंते तदा वेदाञ्छूद्रा धर्मार्थकोविदाः ।
यजंते चाश्वमेधेन राजानः शूद्रयोनयः ॥६७
स्त्रीबालगोवधं कृत्वा हत्वान्ये च परस्परम् ।
अपहृत्य तथाऽन्योन्यं साधयंति तदा प्रजाः ॥६८
दुःखप्रवचनाल्पायुर्देहाल्पायुश्च रोगतः ।
अधर्माभिनिवेशित्वात्तमोवृत्तं कलौ स्मृतम् ॥६९
प्रजासु भ्रूणहत्या च तदा वैरात्प्रवर्त्तते ।
तस्मादायुर्बलं रूपं कलिं प्राप्य प्रहीयते ॥७०

इस कलियुग में समस्त वेद दिखलाई दिया करते हैं अथवा नहीं दिखाई देते हैं। उसी प्रकार से इसलिए यज्ञ अधर्म से पीड़ित होकर दुःखित होते हैं।६४। इस घोर कलियुग के सम्प्राप्त होने पर इस जगती तल में कषाय वर्ण को वस्त्र धारण करने वाले संन्यासी के वेषधारी—निग्रन्थ तथा कापालिक लोग बहुत दिखाई दिया करते हैं। कुछ अन्य वेदों का विक्रय करने वाले हैं अर्थात् धन लेकर वेद के मन्त्रों को पढ़ने वाले हैं और दूसरे तीर्थों को बेचने वाले हैं और अन्य लोग ऐसे हैं जो वर्णों और आश्रमों का कोश पाखण्ड दिखाया करते हैं और वास्तव में इन वर्णाश्रमों के विरोधी शत्रु होते हैं। ऐसे ही लोग बहुधा उत्पन्न हो जाता करते हैं।६५-६६। धर्म के अर्थ के पण्डित बनने वाले शूद्र लोग उस समय में वेदों का अध्ययन किया करते हैं जिनको वेदों के पढ़ने का शास्त्रानुसार कभी भी अधिकार नहीं होता है। शूद्र योनि वाले अश्वमेध यज्ञ का यजन किया करते हैं।६७। वह ऐसा महान् घोर समय होगा कि उसमें स्त्रियों का—गौओं का और छोटे-छोटे निरीह बालकों का वध करके और आपस में ही एक दूसरे का वध दूसरे लोग किया करते हैं तथा पारस्परिक वध करके ही प्रजा का साधन किया करते हैं।६८। दुःखों के तथा मिथ्या प्रवचनों के होने से अल्प आयु हो जाती है और रोगों के कारण भी उम्र छोटी हो जाया करती है। सबके हृदयों में अधर्म का ही विशेष अभिनिवेश होने से इस कलियुग में सर्वत्र तमोगुण का ही बोलबाला रहेगा ऐसा बताया गया है।६९। उस समय

में प्रजाओं में भ्रूणों की अर्थात् गर्भस्थ शिशुओं की हत्याएं बैर के कारण हुआ करेगी। इसी कारण से कलियुग को प्राप्त करके लोगों की आयु-बल विक्रम तथा रूप का सौन्दर्य सभी नष्ट हो जाया करते हैं।७०।

तदा चाल्पेन कालेन सिद्धिं गच्छंति मानवाः ।
धन्या धर्मं चरिष्यंति युगान्ते द्विजसत्तमाः ॥७१
श्रुतिस्मृत्युदितं धर्मं ये चरंत्यनसूयकाः ।
त्रेतायामाब्दिको धर्मो द्वापरे मासिकः स्मृतः ॥७२
यथाशक्ति चरन्प्राज्ञस्तदह्ना प्राप्नुयात्कलौ ।
एषा कलियुगावस्था संध्यांशं तु निबोधत ॥७३
युगे युगे तु हीयंते त्रित्रिपादास्तु सिद्धयः ।
युगस्वभावात्संध्यासु तिष्ठन्तीह तु यादृशः ॥७४
संध्यास्वभावाः स्वांशेषु पादशेषाः प्रतिष्ठिताः ।
एवं संध्यांशके काले संप्राप्ते तु युगांतिके ॥७५
तेषां शास्ता ह्यसाधूनां भृगूणां निधनोत्थितः ।
गोत्रेण वै चन्द्रमसो नाम्ना प्रमतिरुच्यते ॥७६
माधवस्य तु सोऽशेन पूर्वं स्वायंभुवेऽन्तरे ।
समाः स विंशतिः पूर्णाः पर्यटन्वै वसुंधराम् ॥७७

उस कलियुग में मनुष्य थोड़े समय में सिद्धि को प्राप्त कर लिया करते हैं—इस युग की विशेषता है। इस युग के अन्त में वे मानव और श्रेष्ठ द्विज परम धन्य हैं जो धर्म का समाचरण किया करते हैं।७१। जो अनिन्दित मानव श्रुति और स्मृतियों में कहे हुए धर्म का समाचरण किया करते हैं। ऐसा धर्म त्रेतायुग में एक वर्ष में बलवान् एवं पूर्ण होता है वही धर्म द्वापर में एक मास में साङ्ग सफल होता है और वही धर्म इस कलियुग में अपनी शक्ति के अनुसार समाचरित होने पर एक ही दिन में प्राज्ञ प्राप्त कर लिया करता है। यह कलियुग के समय की अवस्था है अब इस कलि के सन्ध्या का अंश समझ लो।७२-७३। युग-युग में सिद्धियाँ तीन-तीन पाद क्षीण हुआ करती हैं जैसा भी युग-स्वभाव से सन्ध्याओं में यहाँ पर स्थित रहा करती हैं जैसा भी युग का स्वभाव हो।७४। उनके अपने अंशों में संध्या के

स्वभाव पाद शेष प्रतिष्ठित होते हैं। इसी प्रकार से युगान्तिक काल के सम्प्राप्त होने पर सन्ध्या के अंश में होता है ।७५। उन असाधु भृगुओं का शासन करने वाला निम्नोल्लिखित है। वह चन्द्रमा के गोत्र से है और नाम से प्रमति कहा जाया करता है ।७६। वह पूर्व स्वायम्भुव अन्तर में माधव के अंश से पूर्ण बीस पर्यन्त इस वसुन्धरा पर पर्य्यटन करता था ।७७।

अनुकर्षन्स वै सेनां सवाजिरथकुंजराम् ।
प्रगृहीतायुधैर्विप्रैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥७८
स तदा तैः परिवृतो म्लेच्छान्हंति स्म सर्वशः ।
सह वा सर्वशश्चैव राज्ञस्ताञ्छूद्रयोनिजान् ॥७९
पाखण्डांस्तु ततः सर्वान् निःशेषं कृतवान्विभुः ।
तात्पर्थं धार्मिका ये च तान्सर्वान्हंति सर्वशः ॥८०
वर्णव्यत्यासजाताश्च ये च ताननुजीविनः ।
उदीच्यान्मध्यदेश्यांश्च पर्वतीयांस्तथैव च ॥८१
प्राच्यान्प्रतीच्यांश्च तथा विंध्यपृष्ठचरानपि ।
तथैव दाक्षिणात्यांश्च द्रविडान्सिंहलैः सह ॥८२
गांधारान्पारदांश्चैव पह्लवान्यवनाञ्छकान् ।
तुषारान्बर्बरांश्चीनाञ्छूलिकान्दरदान् खशान् ॥८३
लंपाकारान्सकलकान्किरातानां च जातयः ।
प्रवृत्तचक्रो बलवान्म्लेच्छानामंतकृत्प्रभुः ॥८४

वह घोड़े-रथ और हाथियों के सहित सेना का अनुकर्षण करके सैकड़ों सहस्रों की संख्या में हथियार ग्रहण करने वाले विप्रों से समन्वित था ।७८। उस समय में इन सबसे परिवृत होते हुए उसने सभी ओर से म्लेच्छों का हनन किया था। इनके साथ ही अथवा सभी ओर से उन शूद्र योनि में समुत्पन्न राजाओं का भी हनन कर दिया था ।७९। पाखण्ड से जो परिपूर्ण थे फिर उन सबका उस विभु ने कर दिया था। जो अत्यधिक कर्म के मानने वाले नहीं थे उन सबको सभी ओर से पूर्णतया हनन करता है ।८०। जो लोग वर्णों के व्यत्यास से समुत्पन्न हुए थे अर्थात् वर्णसङ्कर थे और जो उनके अनुजीवी थे। चाहे वे उत्तर दिशा में रहने वाले होवें या

अन्य देश के होवें तथा पर्वतों में निवास करने वाले होवें।८१। दिशा में रहने वाले हों या पश्चिम में रहते हों अथवा विन्ध्याचल के पृष्ठ पर सञ्चरण करने वाले भी होवें। उसी भाँति जो दाक्षिणात्य थे, द्रविड़ थे और सिंहल थे।८२। गान्धार-पारद-पह्नव-यवन-शक-तुषार-बर्बर-चीन-शूलिक-दरद-खश। लम्पाकार-सकतक और जो भी किरातों की जातियाँ थीं। इन सभी का म्लेच्छों का वह बलशाली प्रभु चक्र ग्रहण करके अन्त कर देने वाला था।८३-८४।

अदृष्टः सर्वभूतानां चचाराथ वसुन्धराम्।
माधवस्य तु सोंऽशेन देवस्येह विजज्ञिवान्॥८५
पूर्वजन्मनि विख्यातः प्रमतिर्न्नाम वीर्यवान्।
गोत्रतो वै चंद्रमसः पूर्वे कलियुगे प्रभुः॥८६
द्वात्रिंशेऽभ्युदिते वर्षे प्रक्रांतो विंशतीः समाः।
विनिघ्नन्सर्वभूतानि मानवानेव सर्वशः॥८७
कृत्वा बीजावशेषां तु पृथ्व्यां क्रूरेण कर्मणा।
परस्परं निमित्तेन कोपेनाकस्मिकेन तु॥८८
सुसाधयित्वा वृषलान्प्रायशस्तानधार्मिकान्।
गंगायमुनयोर्मध्ये निष्ठां प्राप्तः सहानुगः॥८९
ततो व्यतीते कल्पे तु सामान्ये सहसैनिकः।
उत्साद्य पार्थिवान्सर्वान्म्लेच्छांश्चैव सहस्रशः॥९०
तत्र संध्यांशके काले संप्राप्ते तु युगांतके।
स्थितस्वल्पावशिष्टासु प्रजास्विह क्वचित्क्वचित्॥९१

समस्त प्राणियों के दर्शन में न आने वाला वह सम्पूर्ण वसुन्धरा पर विचरण किया करता था। वह वहाँ पर देव माधव के अंश से जाना गया था।८५। वह पूर्व जन्म में महान् वीर्य वाला प्रमति के नाम से प्रसिद्ध था। वह प्रभु पूर्व कलियुग में चन्द्रमा के गोत्र से था।८६। बत्तीसवें वर्ष के अभ्युदित हो जाने पर वह बीस वर्ष तक प्रक्रान्त हुआ था। सभी प्राणियों का और सभी ओर में मानवों का विहनन करते हुए उसने परिभ्रमण किया था।८७। अकस्मात् परस्पर में समुत्पन्न कोप से उसने क्रूर कर्म से पृथ्वी में बीजावशेष कर दिया था। उसमें जो वृषल थे उनको और प्रायः अधार्मिक

माधवों का सुसाधित किया था उसने अपने अनुचरों के साथ गंगा और यमुना के मध्य में बड़ी निष्ठा प्राप्त करली थी ।८८-८९। इसके अनन्तर सामान्य कल्प के व्यतीत हो जाने पर अपने सैनिकों के साथ रहकर सभी सहस्रों म्लेच्छों को और राजाओं का उत्पादन कर दिया था ।९०। यहाँ पर युग के अन्त कर लेने वाले सन्ध्या के अंश के सम्प्राप्त होने पर यहाँ पर कहीं-कहीं पर बहुत ही थोड़ी प्रजा अवशिष्ट रह गयी थी ।९१।

अपग्रहास्ततस्ता वै लोभाविष्टास्तु वृंदशः ।
उपहिंसंति चान्योन्यं पीथयंतः परस्परम् ।।९२
अराजके युगवशात्संक्षये समुपस्थिते ।
प्रजास्ता वै ततः सर्वाः परस्परभयार्दिताः ।।९३
व्याकुलाश्च परिभ्रांतास्त्यक्त्वा दारान्गृहाणि च ।
स्वान्प्राणाननपेक्षंतो निष्कारणसुदुःखिताः ।।९४
नष्टे श्रौते स्मृतौ धर्मे परस्परहतास्तदा ।
निर्मर्यादा निराक्रन्दा निःस्नेहा निरपत्रपाः ।।९५
नष्टे धर्मे प्रतिहता ह्रस्वकाः पंचविंशतिम् ।
हित्वा पुत्रांश्च दारांश्च विषादव्याकुलेंद्रियाः ।।९६
अनावृष्टिहताश्चैव वार्त्तामुत्सृज्य दुःखिताः ।
प्रत्यंतास्ता निषेवंते हित्वा जनपदान्स्वकान् ।।९७
सरितः सागरानूपान्सेवंते पर्वतांस्तथा ।
मांसैर्मूलफलैश्चैव वर्तयंतः सुदुःखिताः ।।९८

वे अप ग्रहण करने वाले तथा झुण्ड के झुण्ड लोभ में आविष्ट हुए परस्पर में एक दूसरे का पीथन करते हुए उपहनन किया करते हैं ।९२। जब कोई भी समुचित शासन करने वाला नहीं था और सर्वत्र अराजकता फैली हुई थी तथा युग के प्रभाव के कारण सर्वत्र संशय प्राप्त हो गया था । फिर वह सभी प्रजा आपस में भय से उत्पीड़ित हो गये थे ।९३। वे सब बहुत व्याकुल हो गये थे और अपनी पत्नियों तथा गृहों को भी छोड़कर इधर-उधर परिभ्रमण कर रहे थे । बिना ही किसी कारण के बहुत अधिक दुःखित होकर अपने प्राणों की अपेक्षा नहीं करने वाले हो गये थे ।९४। श्रौत

और स्मार्त्त धर्म के विनष्ट हो जाने पर वे उस समय में हत हो रहे थे। उन्होंने अपनी मर्यादा का त्याग कर दिया था और वे निराक्रन्द हो गये थे उनमें किसी के प्रति भी स्नेह नहीं था तथा वे लज्जाहीन हो गये थे ।९५। धर्म के विनष्ट हो जाने पर वे छोटे पच्चीस वर्ष में ही प्रतिहृत हो जाते हैं। वे अपने पुत्रों को—पत्नियों को छोड़कर विवाद से व्याकुलित इन्द्रियों वाले हो जाते हैं ।९६। वर्षा न होने के कारण बहुत हत हो जाया करते हैं और वार्त्ता को त्याग कर परम दुःखित होते हैं। वे सब प्रजाजन अपने जनपदों को त्याग कर प्रत्यन्तों का सेवन किया करते हैं ।९७। कुछ लोग नदियों का—सागरों का—अनूपों का और पर्वतों का सेवन किया करते हैं और परम दुःखित होते हुए अपनी उदरपूर्ति मांस और मूलों के द्वारा किया करते हैं ।९८।

चीरपत्राजिनधरा निष्क्रिया निष्परिग्रहाः ।
वर्णाश्रमपरिभ्रष्टाः संकरं घोरमास्थिताः ।
एतां काष्ठामनुप्राप्ता अल्पशेषाः प्रजास्ततः ॥९९
जराव्याधिक्षुधाविष्टा दुःखान्निर्वेदमागमन् ।
विचारणा तु निर्वेदात्साम्यावस्था विचारणात् ॥१००
साम्यावस्थात्मको बोधः संबोधाद्धर्मशीलता ।
तासूपशमयुक्तासु कलिशिष्टासु वै स्वयम् ॥१०१
अहोरात्रं तदा तासां युगान्ते परिवर्त्तिनि ।
चित्तसंमोहनं कृत्वा तासां वै सुप्तमत्तवत् ॥१०१
भाविनोऽर्थस्य च बलात्ततः कृतमवर्त्तत ।
प्रवृत्ते तु ततस्तस्मिन्पूते कृतयुगे तु वै ॥१०३
उत्पन्नाः कलिशिष्टासु प्रजाः कार्तयुगास्तदा ।
तिष्ठंति चेह ये सिद्धा अदृष्टा विचरंति च ।ऽ१०४
सह सप्तर्षिभिश्चैव तत्र ते च व्यवस्थिताः ।
ब्रह्मक्षत्रविशः शूद्रा बीजार्थं ये स्मृता इह ॥१०५

वस्त्रों के अभाव में सब लोग चीर, पत्र और चर्म को धारण करने वाले हैं। उनके पास कोई भी काम नहीं है अर्थात् एअदम कर्म शून्य है

और न उनके पास कुछ समान है। वर्णों और आश्रमों से परिभ्रष्ट हैं अर्थात् न उनका कोई वर्ण है और न कोई आश्रम ही रहा गया है। वे सब परम घोर सङ्कुर में समास्थित है। बहुत ही थोड़े से बचे ने प्रजाजन फिर इस दिशा में आकर प्राप्त हुए हैं।९९। वे बुढ़ापे और व्याधियों तथा भूख से समाविष्ट हैं और परमाधिक दुःख से निर्वेद को प्राप्त हो गये हैं। निर्वेद से उनको विचारणा उत्पन्न हुई और विचारणा से वे साम्य की अवस्था को प्राप्त हो गये हैं।१००। साम्यावस्था के स्वरूप वाला उनको बोध हो गया था और उस भले ज्ञान से धर्म का स्वभाव हो गया था। कलि में शिष्ट वे स्वयं उपशम से अवस्था में प्राप्त हो गये थे।१०१। उस समय में उनके अहो-रात्र (रात दिन) युगान्त के परिवर्त्तित होने पर उनके चित्त का संमोहन हो गया था और वे सब एक सोये हुए तथा प्रमम्त्त व्यक्ति के समान ही हो गये थे।१०२। यह सब आगे होने वाले अर्थ के ही कारण से बलात् हुआ था। इसके अनन्तर कृतयुग हुआ था। फिर उस परम पूत कृतयुग के प्रवृत्त हो जाने पर उस समय में जो कलियुग में अवशिष्ट प्रजाएँ थीं उनमें सतयुग में होने वाली प्रजा ने जन्म ग्रहण किया था। जहाँ पर जो भी सिद्ध स्थित रहते हैं वे बिना किसी के द्वारा देखे गुप्त स्वरूप से विचरण किया करते हैं। वहाँ पर वे सप्तषियों के साथ व्यवस्थित हैं। वहाँ पर जो बीज के लिये ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य और शूद्र कहे गये हैं।१०३-१०४-१०५।

कलिजैः सह ते संति निर्विशेषास्तदाभवन् ।
तेषां सप्तर्षयो धर्मं कथयंतीतरेषु च ॥१०६
वर्णाश्रमाचारयुक्तः श्रौतः स्मार्त्तो द्विधा तु सः ।
ततस्तेषु क्रियावत्सु वर्तंते वै प्रजाः कृते ॥१०७
श्रौतस्मार्त्ते कृतानां च धर्मे सप्तर्षिदर्शिते ।
केचिद्धर्मव्यवस्थार्थं तिष्ठंतीहायुगक्षयात् ॥१०८
मन्वंतराधिकारेषु तिष्ठंति मुनयस्तु वै ।
यथा दावप्रदग्धेषु तृणेष्विह तपेन तु ॥१०९
वनानां प्रथमं वृष्ट्या तेषां मूलेषु संभवः ।
तथा कार्तयुगानां तु कलिजेष्विह संभवः ॥११०
एवं युगो युगस्येह संतानस्तु परस्परम् ।

वर्त्तंते ह्यव्यवच्छेदाद्यावन्मन्वंतरक्षय: ॥१११

सुखमायुर्बलं रूपं धर्मोऽर्थ: काम एव च ।
युगेष्वेतानि हीयंते त्रित्रिपादा: क्रमेण च ॥११२

ये सब कलियुग में समुत्पन्न हुओं के साथ ही हैं और उस समय में विशेषता से रहित ही हैं। उनके इतरों में यहाँ पर सप्तर्षिगण धर्म को कहते हैं ।१०६। वह धर्म वर्णों और आश्रमों से आचार से युक्त वैदिक तथा स्मृतियों के द्वारा प्रतिपादित दो प्रकार का है । इसके अनन्तर कृतयुग में उन क्रियाशीलों में निश्चय ही प्रजा होती है ।१०७। कृतयुग के मनुष्यों का सप्तर्षियों के द्वारा प्रदर्शित श्रौत और स्मार्त धर्म हैं। यहाँ पर कुछ लोग धर्म की व्यवस्था के लिए युगक्षय से स्थित रहते हैं ।१०८। मन्वन्तर के अधिकारों मुनिगण स्थित रहा करते हैं जिस प्रकार से ताप दावाग्नि के द्वारा प्रदग्ध तृणों में रहते हैं ।१०९। प्रथम वृष्टि से उन वनों के भूतों में समुत्पित्ति होती है। ठीक उसी भाँति कलियुग में समुत्पन्न व्यक्तियों से कृतयुग के व्यक्तियों की उत्पत्ति होती है ।११०। इसी रीति से यहाँ पर युग की ही सन्तान परस्पर में युग हुआ करता है । जब तक वर्तमान मन्वन्तर का क्षय होता है तब तक बिना किसी व्यवच्छेद के इसी प्रकार से युग से दूसरे युग की समुत्पत्ति हुआ करती है ।१११। निम्न सब बातें सुख-आयु-बल रूप-धर्म-अर्थ और काम ये सभी क्रम से युगों में तीन-तीन पाद क्षीण हुआ करते हैं ।११२।

ससंध्यांशेषु हीयंते युगानां धर्मसिद्धय: ।
इत्येष प्रतिसंधिर्य: कीर्त्तितस्तु मया द्विजा: ॥११३
चतुर्युगानां सर्वेषामेतेनैव प्रसाधनम् ।
एषा चतुर्युगावृत्तिरासहस्राद्गुणीकृता ॥११४
ब्रह्मणस्तदह: प्रोक्तं रात्रिश्चैतावती स्मृता ।
अत्रार्जवं जडीभावो भूतानामायुगक्षयात् ॥११५
एतदेव तु सर्वेषां युगानां लक्षणं स्मृतम् ।
एषा चतुर्युगानां च गुणिता ह्येकसप्ततिः ॥११६
क्रमेण परिवृत्ता तु मनोरंतरमुच्यते ।

चतुर्युगे यथैकस्मिन्भवतीह यथा तु यत् ।।११७
तथा चान्येषु भवति पुनस्तद्वद्यथाक्रमम् ।
सर्गे सर्गे तथा भेदा उत्पद्यंते तथैव तु ।।११८
पंचत्रिंशत्परिमिता न न्यूना नाधिकाः स्मृताः ।
कथा कल्पा युगैः सार्द्धं भवंति सह लक्षणैः ।
मन्वंतराणां सर्वेषामेतदेव तु लक्षणम् ।।११९

सन्ध्यांशों में युगों की धर्म सिद्धियों का ह्रास हुआ करता है। इस प्रकार से यह जो प्रति मन्धि है। हे द्विजो ! मैंने कीर्त्तित कर दी हैं।११३। इसी से चारों युगों का सबका प्रसाधन है। यह चारों युगोंकी आवृत्ति सहस्र से लेकर गुणीकृत है।११४। यह ब्रह्मा का दिन कहा गया है। जितना बड़ा दिन होता है उतनी ब्रह्माजी की रात्रि हुआ करती है। यहाँ पर युग क्षय से लेकर भूतों का जो सोधापन है वह जड़ी मान होता है।११५। यही ही समस्त युगों का लक्षण कहा गया है। यह चारों युगों की चौकड़ी अब इकहत्तर हो जाया करती।११६। जब क्रम से यह चौकड़ियाँ इकहत्तर समाप्त होकर दूसरी बदलती हैं तभी दूसरे मनु का अन्तर हुआ करता है। चारों युगों की चौकड़ी में किस प्रकार से यहाँ होती है उसी प्रकार से यह होता है।११७। उसी भाँति अन्यों में होता है और फिर उसी के समान यथा क्रम से हुआ करता है। उसी प्रकार से प्रत्येक सर्ग में भेद उत्पन्न हुआ करते हैं।११८। ये पैंतीस परिमित ही हैं और न इनसे कम हैं और न अधिक होते हैं ऐसा ही बताया गया है। उसी रीति से कल्प युगों के साथ लक्षणों के होते हैं। समस्त मन्वन्तर का यह ही लक्षण होता है।११९।

यथा युगानां परिवर्त्तनानि चिरप्रवृत्तानि युगस्वभावात् ।
तथा न संतिष्ठति जीवलोकः क्षयोदयाभ्यां परिवर्त्तमानः।१२०
इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं युगानां वै समासतः ।।१२१
अतीतानागतानां हि सर्वमन्वंतरेष्विह ।
मन्वंतरेण चैकेन सर्वाण्येवांतराणि वै ।।१२२
ख्यातानीह विजानीध्वं कल्प कल्पेन चैव ह ।
अनागतेषु तद्वच्च तर्कः कार्यो विजानता ।।१२३

मन्वंतरेषु सर्वेषु अतीतानागतेष्विह ।
तुल्याभिमानिनः सर्वे नामरूपैर्भवंत्युत ।।१२४
देवा ह्यष्टविधा ये वा इह मन्वंतरेश्वराः ।
ऋषयो मनवश्चैव सर्वे तुल्याः प्रयोजनैः ।।१२५
एवं वर्णाश्रमाणां तु प्रविभागं पुरा युगे ।
युगस्वभावांश्च तथा विधत्ते वै सदा प्रभुः ।।१२६
वर्णाश्रमविभागाश्च युगानि युगसिद्धयः ।
अनुषंगात्समाख्याताः सृष्टिसर्गं निबोधत ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च स्थितिं वक्ष्ये युगेष्विह ।।१२७

जिस तरह से युगों के परिवर्त्तन युगों के स्वभाव से चिरप्रवृत्त होते हैं उस प्रकार से क्षय और उदय से परि-वर्त्तमान जीव लोक भली भाँति स्थित नहीं रहता है ।१२०। बहुत ही संक्षेप के साथ यह इतना ही युगों का लक्षण बताया गया है ।१२१। यहाँ पर मन्वन्तरो में जो बीत चुके हैं तथा जो अनागत हैं उनका सब यही है और एक मन्वन्तर के द्वारा ही समस्त अन्तर होते हैं ।१२२। कल्प से कल्प जो होता है वे सब विख्यात हैं उनको जान लो । जो अभी तक नहीं आये हैं उनमें ज्ञान पुरुष के द्वारा उसी प्रकार से तर्क कर लेना चाहिए ।१२३। समस्त मन्वन्तरों में व्यतीत हो गये हैं और जो अनागत हैं उनमें यहाँ पर नाम और रूपों से सब तुल्य अभिमान वाले हैं ।१२४। जो आठ प्रकार के देवगण हैं अथवा यहाँ पर मन्वन्तरेश्वर हैं । ऋषिगण और मनुगण सब प्रयोजनों से तुल्य हैं ।१२५। इस तरह से पहिले युग में वर्णों और आश्रमों के प्रकृष्ट विभाग को और युगों के स्वभावों को सदा प्रभु किया करते हैं ।१२६। वर्णाश्रमों के विभाग युग और युगों की सिद्धियाँ अनुषंग से यह कह दिये गये हैं । अब सृष्टि के सर्ग को समझ लो । यहाँ पर युगों में विस्तार के साथ और आनुपूर्वी से अर्थात् आरम्भ से अन्त तक क्रम में से स्थिति का वर्णन करूँगा ।१२७।

—×—

।। परशुराम का संवाद ।।

वसिष्ठ उवाच—इत्थं प्रवर्त्तमानस्य जमदग्नेर्महात्मनः ।
वर्षाणि कतिचिद्राजन्व्यतीयुरमितौजसः ।।१

रामोऽपि नृपशार्दूल सर्वधर्मभृतां वरः ।
वेदवेदांगतत्त्वज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः ॥२
पित्रोश्चकार शुश्रूषां विनीतात्मा महामतिः ।
प्रीतिं च निजचेष्टाभिरन्वहं पर्यवर्त्तयत् ॥३
इत्थं प्रवर्त्तमानस्य वर्षाणि कतिचिन्नृप ।
पित्रोः शुश्रूषयानैषीद्रामो मतिमतां वरः ॥४
स कदाचिन्महातेजाः पितामहगृहं प्रति ।
गन्तुं व्यवसितो राजन्देवेन च नियोजितः ॥५
निपीड्य शिरसा पित्रोश्चरणौ भृगुपुंगवः ।
उवाच प्रांजलिर्भूत्वा सप्रश्रयमिदं वचः ॥६
कंचिदर्थमहं तात मातरं त्वां च साम्प्रतम् ।
विज्ञापयितुमिच्छामि मम तच्छ्रोतुमर्हथः ॥७

श्री वसिष्ठजी ने कहा—हे राजन् ! अमित ओज से समन्वित महान् आत्मा वाले जमदग्नि के इस प्रकार से प्रवृत्तमान होते हुए कुछ वर्ष व्यतीत हो गये थे ।१। हे नृपशार्दूल ! समस्त धर्मों के धारण करने वालों में परम-श्रेष्ठ राम भी वेदांग के तत्वों के ज्ञाता और सब शास्त्रों के विशारद थे ।२। महान् मति से समन्वित और विनीत आत्मा वाले उनने अपने माता-पिता की शुश्रूषा की थी और निज की चेष्टाओं से प्रतिदिन प्रीति को बढ़ा दिया था ।३। बुद्धिमानों में परम श्रेष्ठ राम ने हे नृप ! माता-पिता की शुश्रूषा के द्वारा इस तरहसे प्रवृत्त मान होते हुए कुछ वर्ष बिता दिये थे ।४। हे राजन् ! किसी समय में महान् तेज वाले पितामह ने उस परम इढ़ की ओर गमन करने का निश्चय देव के द्वारा नियोजित होते हुए किया था ।५। भृगु पुंगव ने माता-पिता के चरणों में अपना शिर रखकर अपने दोनों हाथ जोड़ते हुए नम्रता पूर्वक यह वचन बोले थे ।६। हे तात ! इस समय में आपके और माता के समक्ष में कुछ अर्थ विज्ञापित करने की अभिलाषा रखता हूँ । आप मेरी उस अभिलाषित को श्रवण करने के योग्य होते हैं ।७।

पितामहमहं द्रष्टुमुत्कंठितमनाश्चिरम् ।
तस्मात्तत्पार्श्वमधुना गमिष्ये वामनुज्ञया ॥८
आहूतश्चासकृत्तात सोत्कंठं प्रीयमाणया ।

पितामह्या बहुमुखैरिच्छंत्या मम दर्शनम् ॥९
पितॄन्पितामहस्यापि प्रियमेव प्रदर्शनम् ।
मदीयं तेन तत्पार्श्वं गन्तुं मामनुजानत ॥१०
वसिष्ठ उवाच—इति तस्य वचः श्रुत्वा संभ्रांतं समुदीरितम् ।
हर्षेण महता युक्तौ साश्रुनेत्रौ बभूवतुः ॥११
तमालिंग्य महाभागं मूर्ध्न्युपाघ्राय सादरम् ।
अभिनंद्याशिषा तात ह्युभौ ताविदमाहतुः ॥१२
पितामहगृहं तात प्रयाहि त्वं यथासुखम् ।
पितामहपितामह्योः प्रीतये दर्शनाय च ॥१३
तत्र गत्वा यथान्यायं तं शुश्रूषापरायणः ।
कंचित्कालं तयोर्वत्स प्रीतये वस तद्गृहे ॥१४

मैं अधिक समय से पितामह के दर्शन करने के लिए उत्कण्ठित मन वाला हो रहा हूँ। इस कारण से आप दोनों की आज्ञा से इस समय में उनके समीप में गमन करूँगा ।८। हे तात ! बड़े प्रसन्न मन वाली पितामही के द्वारा मैं कितनी ही बार बुलाया गया हूँ और उनके हृदय में मुझसे मिलने की अधिक उत्कण्ठा है। बहुत लोगों के द्वारा उन्होंने यह कहलाया है कि वे मुझे देखने की अधिक इच्छा करती है ।९। मेरा मिलना पितृगण और पितामह को भी प्रिय है। इस कारण से उनके समीप में जाने की आप मुझे आज्ञा प्रदान कीजिए ।१०। श्री वसिष्ठजी ने कहा—इस प्रकार से उनके इस परम सम्भ्रान्त कहे हुए वचन का श्रवण करके वे दोनों माता-पिता बहुत ही प्रहर्षित हुए थे और उनके नेत्रों में अश्रुओं के कण झलक उठे थे ।११। उन दोनों ने उस महान् भाग वाले पुत्र का आलिंगन किया था और बड़े आदर के साथ उसके मस्तक का उपाघ्राण किया था। आशीर्वाद से उसका अभिनन्दन करके उन दोनों ने उससे कहा था ।१२। हे तात ! पितामह के गृह को तुम सुख पूर्वक जाओ जिससे पितामह और पितामही के दर्शन प्राप्त करोगे और उनकी प्रीति भी होगी ।१३। वहाँ पहुँच कर न्यायपूर्वक उनकी शुश्रूषा में तत्पर रहना। कुछ समय तक हे वत्स ! उनकी प्रीति को प्राप्त करने के लिए उनके घर में निवास करो ।१४।

स्थित्वा नातिचिरं कालं तयोर्भूयोऽप्यनुज्ञया ।
अत्रागच्छ महाभाग क्षेमेणास्मद्दिदृक्षया ॥१५
क्षणार्द्धमपि शक्ताः स्थो न विना पुत्रदर्शनम् ।
तस्मात्पितामहगृहे न चिरात्स्थातुमर्हसि ॥१६
तदाज्ञयाथ वा पुत्र प्रपितामहसन्निधिम् ।
गतोऽपि शीघ्रमागच्छ क्रमेण तदनुज्ञया ॥१७
वसिष्ठ उवाच—इत्युक्तस्तौ परिक्रम्य प्रणम्य च महामतिः ।
पितरावप्यनुज्ञाप्य पितामहगृहं ततः ॥१८
स गत्वा भृगुवर्यस्य ऋचीकस्य महात्मनः ।
प्रविवेशाश्रमं रामो मुनिशिष्योपशोभितम् ॥१९
स्वाध्यायघोषैर्विपुलैः सर्वतः प्रतिनादितम् ।
प्रशांतवैरसत्त्वाढ्यं सर्वसत्त्वमनोहरम् ॥२०
स प्रविश्याश्रमं रम्यमृचीकं स्थितमासने ।
ददर्श रामो राजेंद्र स पितामहमग्रतः ॥२१

बहुत समय तक वहाँ स्थित न रहकर फिर उन दोनों की अनुज्ञा से हे महाभाग ! हम लोगों के देखने की इच्छा से कुशलता के साथ यहीं पर आ जाना ।१५। अपने पुत्र के देखने के बिना हम लोग आधे क्षण भी नहीं रह सकते हैं । इसी कारण से आप पितामह के घर में अधिक लम्बे समय तक ठहरने के योग्य नहीं होते हैं ।६१। पितामह के समीप में गये हुए भी हे पुत्र ! उनकी ही आज्ञा प्राप्त कर उनकी अनुज्ञा से क्रम से शीघ्र ही यहाँ पर आ जाओ ।१७। वसिष्ठजी ने कहा—इस प्रकार से जब उससे कहा गया तो वह महान् बुद्धिमान् था । उसने उनको प्रणाम करके परिक्रमा की थी और माता-पिता की आज्ञा पाकर वहाँ से वह पितामह के घर को चल दिया था ।१८। वहाँ पर जाकर उस राम ने महात्मा भृगुवर्य ऋचीक के आश्रम में प्रवेश किया था जो कि अनेक मुनिगण और शिष्यों से उपशोभित था ।१९। वह आश्रम सभी ओर वेदाध्ययन के बहुत बड़े उद्घोष से प्रतिध्वनित हो रहा था और वहाँ के सभी प्राणियों में सर्वथा वैर भाव नहीं था तथा सभी जीवोंके द्वारा वह अतीव मनोहर था ।२०। उस परशुराम ने परम

सुन्दर आश्रम में प्रवेश करके हे राजेन्द्र ! आसन पर विराजमान ऋचीक का दर्शन किया था और आगे स्थित पितामह को देखा था।२१।

जाज्वल्यमानं तपसा धिष्ण्यस्थमिव पावकम् ।
उपासितं सत्यवत्या यथा दक्षिणयाऽध्वरम् ।।२२
स्वसमीपमुपायांतं राममालोक्य तौ नृप ।
सुचिरं तं विमर्शंतां समाज्ञापूर्वदर्शनौ ।।२३
कोऽयमेष तपोराशिः सर्वलक्षणपूजितः ।
बालोऽयं बलवान्भाति गांभीर्यात्प्रश्रयेण च ।।२४
एवं तयोश्चिन्तयतोः सहर्षं हृदि कौतुकात् ।
आससाद शनैः रामः समीपे विनयान्वितः ।।२५
स्वनामगोत्रे मतिमानुक्त्वा पित्रोर्मुदान्वितः ।
संस्पृशंश्चरणौ मूर्ध्ना हस्ताभ्यां चाभ्यवादयत् ।।२६
ततस्तौ प्रीतमनसौ समुत्थाप्य च सत्तमम् ।
आशीर्भिरभिनन्देतां पृथक् पृथगुभावपि ।।२७
तमाश्लिष्यांकमारोप्य हर्षाश्रुप्लुतलोचनौ ।
वीक्षंतौ तन्मुखांभोजं परं हर्षमवापतुः ।।२८

उनका स्वरूप धिष्ण्यमें स्थित पावकके ही समान तपसे जाज्वल्यमान था। दक्षिणा के द्वारा अध्वर की ही भाँति सत्यवती के द्वारा वे उपासित थे।२२। हे नृप ! उन दोनों ने अपने समीप में समागत हुए राम को देखा था और समाज्ञा पूर्वक देखने वाले उन दोनों ने उसके विषय में बहुत समय तक मनमें विमर्श किया था।२३। यह तपश्चर्या के राशि के ही सदृश कौन है जो कि सभी लक्षणों से पूजित है। है तो यह बालक परन्तु गम्भीरता और विनय से युक्त बहुत बलवान् प्रतीत होता है।२४। उन दोनों के हृदय में बड़ा कुतूहल हो रहा था और वे हर्ष के साथ यही मन में चिन्तन कर रहे थे कि राम परम विनीत भाव से समन्वित होते हुए धीरे से उनके समीप में पहुँच गया था।२५। उस बुद्धिमान् रामने अपने नाम और गोत्र का उच्चारण करके परमानन्दित होते हुए उन दोनों के चरणों का स्पर्श मस्तक के द्वारा किया और दोनों हाथों से उनका अभिवादन किया था।२६। इसके अनन्तर परम प्रीतियुक्त मन वाले उनने उस श्रेष्ठतम को उठा लिया था

और दोनों ने अलग-अलग आशीर्वाद के द्वारा उसका अभिनन्दन किया था ।२७। उसको अपने वक्षःस्थल से लगाकर आलिंगन किया था और अपनी गोद में बिठाकर उन दोनों के हृदय में इतना हर्ष हुआ था कि उनके नेत्र अश्रुओं से समाप्लुत हो गये थे । उस राम के मुख कमल को देखते हुए उन दोनों ने बहुत अधिक हर्ष प्राप्त किया था ।२८।

ततः सुखोपविष्टं तमात्मवंशसमुद्वहम् ।
अनामयपृच्छेतां तावुभौ दंपती तदा ॥२९
पितरौ ते कुशलिनौ वत्स किंभ्रातरस्तथा ।
अनायासेन ते वृत्तिर्वर्त्तते चाथ कर्हिचित् ॥३०
समस्ताभ्यां ततो राजन्नाचचक्षे यथोदितः ।
तथा स्वानुगतं पित्रोर्भ्रातॄणां चैव चेष्टितम् ॥३१
एवं तयोर्महाराज सत्प्रीतिजनितैर्गुणैः ।
प्रीयमाणोऽवसद्रामः पितुः पित्रोर्निवेशने ॥३२
स तस्मिन्सर्वभूतानां मनोनयननन्दनः ।
उवास कतिचिन्मासांस्तच्छुश्रूषापरायणः ॥३३
अथानुज्ञाप्य तौ राजन्भृगुवर्यो महामनाः ।
पितामहगुरोर्गंतुमियेषाश्रयमाश्रमम् ॥३४
स ताभ्यां प्रीतियुक्ताभ्यामाशीर्भिरभिनंदितः ।
यथा चाभ्यां प्रदिष्टेन ययावौर्वाश्रमं प्रति ॥३५

इसके उपरान्त जब वह सुख पूर्वक बैठ गये तो उस आत्मवंश के समुद्वहन करने वाले से उस समय में उन दोनों दम्पति ने क्षेम कुशल पूछा था ।२९। उन्होंने पूछा था कि हे वत्स ! तुम्हारे माता-पिता सकुशल हैं और तुम्हारे सब भाई सानन्द तो हैं । तुम्हारी वृत्ति अनायास से ही कम हो गई हैं ।३०। इसके अनन्तर हे राजन् ! जैसा कहा गया था वह सम्पूर्ण उसने कह दिया था । अपने माता-पिता की अनुगामिता और भाइयों का जो चेष्टित था वह भी कह दिया था ।३१। हे महाराज ! इस तरह से उन दोनों की सम्प्रीति से समुत्पन्न गुणगणों से बहुत ही प्रसन्न राम पिता के, पिता के घर में रहा था ।३२। वह घर में सभी प्राणियों के मन और नेत्रों को आनन्द

देने वाला होगया था। उनकी सुश्रुषा में तत्पर होकर उसने वहाँ पर कुछ मास तक निवास किया था।३३। हे राजन् ! इसके पश्चात् महान् मन वाले भृगु वर्य ने उन दोनों की आज्ञा प्राप्त करके पितामह के गुरु के निवास स्थल आश्रम में गमन करने की इच्छा की थी।३४। परम प्रीति से संयुत उन दोनों के द्वारा उसका आशीर्वचनों से अभिनन्दन किया गया था और उन दोनों ने जिस प्रकार में औपश्रिम के प्रति प्रदर्शन कर दिया था।३५।

तं नमस्कृत्य विधिवच्च्यवनं च महातपाः ।
सप्रहर्षं तदाज्ञातः प्रययावश्रमं भृगोः ॥३६
स गत्वा मुनिमुख्यस्य भृगोराश्रममंडलम् ।
ददर्श शांतचेतोभिर्मुनिभिः सर्वतो वृतम् ॥३७
सुस्निग्धशीतलच्छायैः सर्वर्तुकगुणान्वितैः ।
तरुभिः संवृतं प्रीतः फलपुष्पोत्तरान्वितैः ॥३८
नानाखगकुलारावैर्मनः श्रोत्रसुखावहैः ।
ब्रह्मघोषैश्च विविधैः सर्वतः प्रतिनादितम् ॥३९
समंत्राहुतिहोमोत्थधूमगंधेन सर्वतः ।
निरस्तनिखिलाघौघं वनांतरविसर्पिणा ॥४०
समित्कुशाहरैर्दण्डमेखलाजिनमंडितैः ।
अभितः शोभितं राजन्रम्यैर्मुनिकुमारकैः ॥४१
प्रसूनजलसंपूर्णपात्रहस्ताभिरंतरा ।
शोभितं मुनिकन्याभिश्चरंतीभिरितस्ततः ॥४२

उस महान तपस्वी ने विधिपूर्वक च्यवन की सेवा में प्रणाम किया था और बड़े हर्षपूर्वक उनसे आज्ञा प्राप्त कर वह राम भृगु के आश्रम की ओर रवाना हो गया था।३५। वह समस्त मुनिगणों में मुख्य भृगु के आश्रम मण्डल में जाकर देखा था कि वह आश्रम परम शान्त चित्त वाले मुनियों से सभी ओर घिरा हुआ है।३७। अतीव घनी और शीतल छाया वाले और सभी ऋतुओं के गुणों से समन्वित तथा प्रीतिदायक फलों और पुष्पों से युक्त तरुवरों से वह आश्रम संयुत था।३८। विविध प्रकार के पक्षियों की ध्वनियाँ पर हो रही थी जो मन और कानों को परम सुख प्रदान करने वाली थीं।

वेद मन्त्रों के समुच्चारण के घोष से वह आश्रम सभी ओर से प्रतिध्वनित हो रहा था।३९। मन्त्रोच्चारण पूर्वक दी हुईं आहुतियों के द्वारा जो होम किया जाता है उसका अन्य वनों में फैलने वाले गन्ध से जो सभी ओर है उससे समस्त पापों का समूह जिससे निरस्त हो गया है ऐसा वह आश्रम है ।४०। हे राजन् ! समिधाओं और कुशाओं के आहरण करने वाले तथा दण्ड, मेखला और मृगछालाओं से विभूषित, परम सुन्दर मुनियों के कुमारों से सायने वह आश्रम शोभा युक्त है।४१। बीच में इधर-उधर हाथों में पुष्प और जल लिए हुए सञ्चरण करने वाली कन्याओं से वह आश्रम उपशोभित है।४२।

सपोतहरिणीयूथैर्विस्त्रंभादविशंकिभिः ।
उटजांगणपर्यन्ततरुच्छायास्नधिष्ठितम् ॥४३
रोमंकतः परामृष्टियूथसाक्षिकमुत्प्रदैः ।
प्रारब्धताडवं केकीमयूरैर्मधुरस्वरैः ॥४४
प्रविकीर्णकणोद्देशं मृगशब्दैः समीपगैः समीपगैः ।
अनालीढातपच्छायाशुष्यन्नीवारराजिभिः ॥४५
हूयमानानलं काले पूज्यमानातिथिव्रजम् ।
अभ्यस्यमानच्छंदौघं चिन्त्यमानागमोदितम् ॥४६
पठ्यमानाखिलस्मार्त्तं श्रौतार्थप्रविचारुणम् ।
प्रारब्धपितृदेवेज्यं सर्वभूतमनोहरम् ॥४७
तपस्विजनभूयिष्ठमकापुरुषसेवितम् ।
तपोवृद्धिकरं पुण्यं सर्वसत्त्वसुखास्पदम् ॥४८
तपोधनानन्दकरं ब्रह्मलोकमिवापरम् ।
प्रसूनसौरभभ्राम्यन्मधुव्रातावनादितम् ॥४९

अहिंसा के पूर्ण विश्वास से शङ्का से रहित अपने छोटे-छोटे बच्चों के सहित हरिणियों के झुण्ड जिससे मुनियों कुटियों के आँगन में लगे हुए वृक्षों की छाया में बैठे हुए हैं।४३। रोमन्थ मे परामृष्टि यूथ के साक्षिक आनन्द के प्रदान करने वाले तथा मधुर स्वर से समन्वित वाणी बोलने वाले मयूरों का नृत्य जिस आश्रम में प्रारम्भ होगया है।४४। समीप में गमन

करने वाले मृगों के शब्दों से जहाँ पर कण फैले हुए हैं तथा अनालीढ आतप की छाया में नीवारों की राशि जहाँ पर सूख रही है ऐसा वह सुरम्य आस्रय आस्रय है ।४५। जिस आश्रम में समय पर अग्नि में आहुतियाँ दी जाती हैं और जहाँ पर अतिथियों के समुदाय का अर्चन एवं सत्कार किया जाया करता है । जिस आस्रम में भेदों के छन्दों का अभ्यास किया जाता है तथा जो कुछ भी शास्त्रों में कहा गया है उसका चिन्तन किया जाता है ।४६। पढ़े जाने वाले सम्पूर्ण स्मृति प्रतिपादित तथा वैदिक अर्थों का विचार किया जाता है । जिसमें देवों और पितृगणों का यजन प्रारम्भ कर दिया गया है तथा जो आश्रम सभी प्राणियों के लिए परम सुन्दर है ।४७। जिस परम सुरम्य आश्रम में बहुत से तपस्वी गण विद्यमान है और जो कापुरुष नहीं हैं उन्हीं के द्वारा सेवित है यह तपश्चर्या की वृद्धि करने वाला—परम पुण्यमय और सभी जीवों के सुखों का स्थल है ।४८। जिनका एकमात्र तप ही धन है उन तापसों के आनन्द का यह आश्रय देने वाला है और यह ऐसा दिखलाई देता है मानो यह दूसरा ब्रह्मलोक ही हो । पुष्पों की सुगन्ध से भ्रमण करते हुए भ्रमरों की गुञ्जार से यह आश्रम गुञ्जित है ।४९।

सर्वतो वीज्यमानेन विविधेन नभस्वता ।
एवंविधंगुणोपेतं पश्यन्नाश्रममुत्तमम् ॥५०
प्रविवेश विनीतात्मा सुकृतीवामरालयम् ।
संप्रविश्याश्रमोपांतं रामः स्वप्रपितामहम् ॥५१
ददर्श परितो राजन्मुनिशिष्यशतावृतम् ।
व्याख्यानवेदिकामध्ये निविष्टं कुशविष्टरे ।
सितश्मश्रु जटाकूर्चब्रह्मसूत्रोपशोभितम् ॥५२
वामेतरोरुमध्यास्त वामजंघेन जानुना ॥५३
योगपट्टेन संवीतस्वदेहम् षिपुंगवम् ।
व्याख्यानमुद्राविलसत्सव्यपाणितलांबुजम् ॥५४
योगपट्टोपरिन्यस्तविभ्राजद्वामपाणिकम् ।
सम्यगारण्यवाक्यानां सूक्ष्मतत्त्वार्थसंहतिम् ॥५५
विवृत्य मुनिमुख्येभ्यः श्रावयंतं तपोनिधिम् ।
पितुः पितामहं दृष्ट्वा रामस्तस्य महात्मनः ॥५६

सभी ओर विविध प्रकार की वायु से यह वीज्यमान है अर्थात् वहाँ पर नाना भाँति की वायु सर्वत्र वहन किया करती है। इस रीति से अनेक प्रकार के गुणों से यह आश्रम समन्वित है। ऐसे आश्रम को जो बहुत ही उत्तम है उस राम ने देखा था।५०। जिस तरह कोई सुकृत करने वाला पुरुष स्वर्ग में प्रवेश किया करता है उसी तरह से परम विनीत उस राम ने वहाँ पर आश्रम में प्रवेश किया था। उस आश्रम के उपान्त में प्रवेश करके राम ने अपने प्रपितामह का दर्शन प्राप्त किया था।५१। हे राजन् ! वे प्रपितामह सैकड़ों ही मुनियों और शिष्यों से चारों ओर घिरे हुए थे। वे व्याख्यान करने की जो वेदिका थी उसके मध्य में एक कुशा के आसन पर विराजमान थे। उनके श्मश्रु-जटा और कूर्च (दाढ़ी) एकदम सफेद थे तथा ब्रह्मसूत्र से उपशोभित थे।५२। वामजंघा और जानु से दक्षिण ऊरु से वे अध्यस्त थे।५३। योग पट्ट से संवीत अपने देह वाले वे ऋषियों में परम श्रेष्ठ थे तथा व्याख्यान करने की मुद्रा से शोभित सव्य करकमल वाले थे।५४। योग पट्ट के ऊपर रक्खे हुए परम शोभित वाम कर वाले और भली भाँति आरण्यक उपनिषद् के वाक्यों के सूक्ष्म तत्व के अर्थ की संहृति का विशेष विवरण कर रहे थे।५५। और उनका विवरण करके वे तपोनिधि मुख्य मुनियों को श्रवण करा रहे थे। राम ने पितामह का दर्शन किया था।५६।

शनैरिव महाराजसमीपं समुपागमत् ।
तमागतमुपालक्ष्य तत्प्रभावप्रधर्षिताः ॥५७
शंकामवापुर्मुनयो द्रुहादेवाखिलं नृप ।
तावद्भृगुरमेयात्मा तदागमनतोषितः ॥५८
निवृत्तान्यकथालापस्तं पश्यन्नास पार्थिव ।
रामोऽपि तमुपागम्य विनयावनताननः ॥५९
अवंदत यथान्यायमुपेन्द्र इव वेधसम् ।
अभिवाद्य यथान्यायं ख्याति च विनयान्वितः ॥६०
तांश्च संभावयामास मुनीन्रामो यथावयः ।
तैश्च सर्वैर्मुदोपेतैराशीर्भिरभिवर्द्धितः ॥६१
उपाविवेश मेधावी भूमौ तेषामनुज्ञया ।
उपविष्टं ततो राममाशीर्भिरभिनंदितम् ॥६२

प ृच्छ कुशल ंश्नं तमालोक्य भृगुस्तदा ।
कुशलं खलु ते वत्स पित्रोश्च किमनामयम् ।।६३

हे महाराज ! फिर वह राम उन महान आत्मा वाले के समीप में धीरे से प्राप्त हुआ था । उसको समागत हुआ देखकर वहाँ पर जो भी स्थित थे वे सभी राम के प्रबल प्रभाव से धर्षित हो गये थे ।५७। हे नृप ! समस्त मुनिगण दूर से ही शङ्का को प्राप्त हो गये थे तब तक अमेय आत्मा वाले भृगु उसके आगमन से तोषित हुए थे ।५८। हे पार्थिव ! उसको देखते हुए ही अन्य कथा की बात चीत को उन्होंने बन्द कर दिया था । राम भी उनके समीप में पहुँचकर विनय से विनम्र मुख कमल वाला हो गया था ।५९। जिस प्रकार से उपेन्द्र ब्रह्माजी की वन्दना किया करते हैं ठीक उसी तरह से न्याय पूर्वक राम ने उनकी वन्दना की थी । विनम्रता समन्वित राम ने न्याय पूर्वक सबका अभिवादन किया था ।६०। राम ने समस्त मुनियों को अवस्था के अनुसार क्रम से सम्भावित किया था । और उन सब मुनियों ने भी आनन्द से समन्वित होकर आशीर्वादों के द्वारा उस रामको परिवर्धित किया था ।६१। वह परम मेधा से सुसम्पन्न राम भी उन सबकी अनुज्ञा से भूमि पर समीप में बैठ गया था । फिर जब बैठ गया तो सबने राम को आशीर्वचनों से अभिनन्दित किया था ।६१। उस समय में भृगु ने उस राम का अवलोकन करके उससे कुशल प्रश्न पूछा था कि हे वत्स ! तुम्हारा कुशल तो है और तुम्हारे माता-पिता-पिता का स्वास्थ्य सुखमय है ।६३।

भ्रातॄ णां चैव भवतः पितुः पित्रोस्तथैव च ।
किमर्थमागतोऽत्र त्वमधुना मम सन्निधिम् ।।६४
केनापि वा त्वमादिष्टः स्वयमेवाथवागतः ।
ततो रामो यथान्यायं तस्मै सर्वमशेषतः ।।६५
कथयामास यत्पृष्ट ं तदा तेन महात्मना ।
पितुर्मातुश्च वृत्तांतं भ्रातॄ णां च महात्मनाम् ।।६६
पितुः पित्रोश्च कौशल्यं दर्शनं च तयोर्नृ प ।
एतदन्यच्च सकलं भृगोः सप्रश्रयं मुदा ।।६७
न्यवेदयद्यथान्यायमात्मनश्च समीहितम् ।
श्रु त्वैतदखिलं राजन्रामेण समुदीरितम् ।।६८

तं च दृष्ट्वा विशेषेण भृगुः प्रीतोऽभ्यनन्दत ।
एवं तस्य प्रियं कुर्वन्नुत्कृष्टैरात्मकर्मभिः ॥६९

तत्राश्रमेऽवसद्रामो दिनानि कतिचिन्नृप ।
ततः कदाचिदेकांते रामं मुनिवरोत्तमः ॥७०

तुम्हारे भाइयों का आपके पिता के माता-पिता का कुशल-मङ्गल तो है ? इस समय में तुम किस प्रयोजन के लिए यहाँ पर मेरे समीप में समागत हुए हो ? ।६४। क्या किसी ने तुम को यहाँ आने की आज्ञा दी है अथवा तुम स्वयं अपनी ही इच्छा से यहाँ पर आये ? इसके पश्चात् राम ने उनकी सेवा में न्यायपूर्वक सभी कुछ पूर्णतया निवेदित कर दिया था। उन महात्मा ने उस वक्त जो भी पूछा था वह सब कह दिया था जो भी कुछ पिता-माता का और महान् आत्मा वाले भाइयों का वृत्तान्त था ।६५-६६। हे नृप ! उन दोनों पिता के माता-पिता की कुशलता से दर्शन का होना-यह और आय भृगु का नम्रता के साथ आनन्द से सब बता दिया था। और अपना जो भी कुछ अभीष्ट था उसका निवेदन कर दिया था। हे राजन् ! राम के द्वारा वर्णित यह सब श्रवण करके और विशेष रूप से उसको देखकर भृगु बहुत ही प्रसन्न हुए थे और उसका अभिनन्दन किया था। इस तरह से अतीव उत्कृष्ट अपने कर्मों के द्वारा उसका प्रिय करते हुए राम ने वहाँ निवास किया था। हे नृप ! राम उस आश्रम में कुछ दिन तक रहा था। इसके उपरान्त मुनिवर ने राम को किसी समय में एकान्त में बुलाया था। ।६७-७०।

वत्सागच्छेति तं राजन्नुपाह्वयदुपह्वरे ।
सोऽभिगम्य तमासीनमभिवाद्य कृतांजलिः ॥७१

तस्थौ तत्पुरतो रामः सुप्रीतेनांतरात्मना ।
आशीर्भिरभिनंद्याथ भृगुस्तं प्रीतमानसः ॥७२
प्राह नाधिगताशंकं राममालोक्य सादरम् ।
शृणु वत्स वचो मह्यं यत्त्वां वक्ष्यामि सांप्रतम् ॥७३
हितार्थं सर्वलोकानां तव चास्माकमेव च ।
गच्छ पुत्र ममादेशाद्धिमवंतं महागिरिम् ॥७४

अधुनैवाश्रमादस्मात्तपसे धृतमानसः ।
तत्र गत्वा महाभाग कृत्वाऽश्रमपदं शुभम् ॥७५
आराधय महादेवं तपसा नियमेन च ।
प्रीतिमुत्पाद्य तस्य त्वं भक्त्यानन्यगयाचिरात् ॥७६
श्रेयो महदवाप्नोषि नात्र कार्या विचारणा ।
तरसा तव भक्त्या च प्रीतो भवति शङ्करः ॥७७

मुनि ने कहा था—हे वत्स ! उपह्वर में आओ। वह रामभी उन मुनि के समीप में जाकर अपने हाथ जोड़कर उनका उसने अभिवादन किया था।७१। राम परम प्रसन्न आत्मा से उनके आगे स्थित हो गया था और प्रसन्न मन वाले भृगु ने आशीर्वादों के द्वारा अभिनन्दन किया था ।७२। उसने न अधिगत अंश वाले राम को आदर के साथ देखकर कहा था। हे वत्स ! आप मेरा वचन श्रवण करो जो इस समय में मैं आपको कहूँगा ।७३। यह वचन समस्त लोकों के तुम्हारे और हमारे हित के लिये है। हे पुत्र ! मेरे आदेश से अब महान् पर्वत हिमवान् को चले जाओ ।७४। तपश्चर्या करने के लिये अपने मन में निश्चय करके इसी समय इस आश्रम से चले जाओ। हे महाभाग, वहाँ जाकर उस आश्रम के स्थान को शुभ बना दो ।७५। यहाँ पर तपस्या और नियम से महादेवजी की समाराधना करो। चिरकाल तक अनन्य भक्ति से आप उनकी प्रीति का समुत्पादन करो ।७६। इसके करने से आप महान् श्रेय की प्राप्ति करेंगे—इस विषय में लेशमात्र भी सन्देह नहीं करना चाहिए। शीघ्र ही आपकी भक्ति से भगवान् शङ्कर परम प्रसन्न हो जायेंगे ।७७।

करिष्यति च ते सर्वं मनसा यद्यदिच्छसि ।
तुष्टे तस्मिञ्जगन्नाथे शङ्करे भक्तवत्सले ॥७८
अस्त्रग्राममशेषं त्वं वृणु पुत्र यथेप्सितम् ।
त्वया हितार्थं देवानां करणीयं सुदुष्करम् ॥७९
विद्यतेऽभ्यधिकं कर्म शस्त्रसाध्यमनेकशः ।
तस्मात्त्वं देवदेवेशं समाराधय शङ्करम् ॥८०
भक्त्या परमया युक्तस्ततोऽभीष्टमवाप्स्यसि ॥८१

वे भगवान् शङ्कर तुम्हारा सभी कुछ कार्य पूर्ण कर देंगे जो-जो भी आप अपने मन में चाहेंगे। उन भक्तों पर प्यार करने वाले जगत् के स्वामी भगवान् शङ्कर के सन्तुष्ट हो जाने पर तुम को यह करना चाहिए ।७८। हे पुत्र ! जो भी तुम्हारा अभीप्सित हो वह समस्त अस्त्रों के समुदाय को आप उनसे वरदान में माँग लेना। तुमको समस्त देवों की भलाई के लिए इस परम दुष्कर कार्य को कर ही लेना चाहिए ।७९। शस्त्रों के द्वारा साधन करने के योग्य अनेक कर्म होते हैं और विशेष अधिक होते हैं। इस कारण से तुम देवों के भी आराध्य देव भगवान् शङ्कर की आराधना करो। परमाधिक भक्ति से जब तुम संयुत हो जाओगे तो तुम सम्पूर्ण अपना प्राप्त कर लोगे ।८०-८१।

परशुराम की तपश्चर्या

वसिष्ठ उवाच—इत्येवमुक्तो भृगुणा तथेत्युक्त्वा प्रणम्य तम् ।
रामस्तेनाभ्यनुज्ञातश्चकार गमने मनः ॥१
भृगुं ख्यातिं च विधिवत्परिक्रम्य प्रणम्य च ।
परिष्वक्तस्तथा ताभ्यामाशीर्भिरभिनंदितः ॥२
मुनींश्च तान्नमस्कृत्य तैः सर्वैरनुमोदितः ।
निश्चयक्रमाश्रमात्तस्मात्तपसे कृतनिश्चयः ॥३
ततो गुरुनियोगेन तदुक्तेनैव वर्त्मना ।
हिमवंतं गिरिवरं ययौ रामो महामनाः ॥४
सोऽतीत्य विविधान्देशान्पर्वतान्सरितस्तथा ।
वनानि मुनिमुख्यानामावासांश्चात्यगाच्छनैः ॥५
तत्र तत्र निवासेषु मुनीनां निवसन्पथि ।
तीर्थेषु क्षेत्रमुख्येषु निवसन्वा ययौ शनैः ॥६
अतीत्य सुबहून्देशान्पश्यन्नपि मनोरमान् ।
आससादाचलश्रेष्ठं हिमवंतमनुत्तमम ॥७

श्री वसिष्ठ जी ने कहा—भृगु मुनि के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर मैं ऐसा ही करूँगा—यह कहकर राम ने उनको प्रणाम किया था और

राम उनके द्वारा आज्ञा प्राप्त करके वहाँ पर गमन करने का मन वाला हो गया था ।१। भृगु के सुयश का गान कर तथा विधि पूर्वक उनकी परिक्रमा करते हुए प्रणाम करके राम ने प्रस्थान करने की तैयारी की थी । उन दोनों ने उसका परिष्वजन किया था और आशीर्वचनों से राम का अभिनन्दन किया था ।२। वहाँ पर जो भी मुनिगण थे उन सबके लिए राम ने प्रणाम किया था तथा वह उन सब के द्वारा वहाँ गमन करने के लिए अनुमोदन प्राप्त करने वाला हुआ था । फिर राम उस आश्रम के स्थल से तपश्चर्या करने के लिए मन में पूर्ण निश्चय वाला होकर निकल दिया था ।३। इसके अनन्तर गुरु देव के नियोग से और उनके द्वारा बताये हुए बताये हुए मार्ग से महान् मन वाले राम ने गिरियों में परम श्रेष्ठ हिमवान् को गमन किया था ।४। मार्ग में उसको अनेक देश—पर्वत–नदियाँ–वन और प्रमुख मुनियों के आवास-स्थल मिले थे । उन सबका उसने धीरे-धीरे अतिक्रमण किया था ।५। मार्ग में वहाँ-वहाँ पर मुनियों के निवास स्थलों में विश्राम करते हुए और जो मुख्य क्षेत्र थे तथा तीर्थ स्थल मिले थे उनमें निवास करते हुए धीरे-धीरे वह वहाँ पर चलते चला गया था ।५। मार्ग में अनेक देशों का अतिक्रमण करके और परम मनोरथ देशों का अवलोकन करते हुए अन्त में परमोत्तम और पर्वतों में श्रेष्ठ हिमवान् पर वह पहुँच गया था ।७।

स गत्वा पर्वतवरं नानाद्रुमलतास्थितम् ।
ददर्श विपुलैः शृंगैरुल्लिखंतमिवांबरम् ॥८
नानाधातुविचित्रैश्च ऽदेशैरुपशोभितम् ।
रत्नौषधीभिरभितः स्फुरद्भिरभिशोभितम् ॥९
मरुत्संघट्टनावष्टनीरसांघ्रिपजन्मना ।
सानिलेनानलेनोच्चैर्दह्यमानं नवं क्वचित् ॥१०
क्वचिद्रविकरामर्शज्वलदर्कोपलाग्निभिः ।
द्रवद्धिमशिलाजातुजलशांतदवानलम् ॥११
स्फटिकांजनदुर्वर्णस्वर्णराशिप्रभाकरैः ।
स्फुरत्परस्परच्छायाशरैर्दीप्तवनं क्वचित् ॥१२
उपत्यकशिलापृष्ठबालातपनिषेविभिः ।
तुषारक्लिन्नसिद्धौघैरुद्भासितवनं क्वचित् ॥१३

क्वचिदर्कांशुसंभिन्नश्चामीकरशिलाश्रितैः ।
यक्षौघैर्भासितोपांतं विशद्भिरिव पावकम् ॥१४

वह उस श्रेष्ठ पर्वत पर पहुँच गया था जहाँ पर अनेक प्रकार के वृक्ष और लताएँ थीं। उसने वहाँ पर देखा था कि बहुत से ऐसे ऊँचे शिखर विद्यमान हैं जो मानों अम्बर का स्पर्श करके उस पर कुछ लिख रहे हों।८। वहाँ पर अनेक ऐसे प्रदेश हैं जिनमें विचित्र प्रकार की बहुत सी धातुएँ विद्यमान हैं और उनसे वह परम शोभा शाली हो रहा है। वहाँ अनेक प्रकार के रत्न तथा दिव्य ओषधियाँ हैं जो निरन्तर स्फुरण किया करते हैं और उनसे उसकी अद्भुत शोभा हो रही है।६। कहीं पर वायु के संघटन से रगड़ खाये हुए शुष्क वृक्षों से समुत्पन्न और वायु के संयोग वाले अग्नि से कहीं पर वह दाह भी करने वाला दिखाई दे रहा था।१०। कहीं पर सूर्य की किरणों के प्रखर स्पर्श से जलती हुई अर्कोपलाग्नि से पिघले हुए हिम की शिलाओं के जल से वह दवानल एकदम शान्त हो गया है।११। कहीं पर स्फटिक अञ्जन से बुरे वर्ण वाले स्वर्ण के समूह की प्रभा की किरणों के द्वारा स्फुरण करते हुए परस्पर में छाया शरों से प्रसिद्ध था।१२। उपत्यकाओं की शिलाओं के पृष्ठ भाग पर बालातप का सेवन करने वाले तुषार से क्लिन्न सिद्धों के समुदाय से वह वह वन कहीं पर उद्भासित हो रहा था। किसी-किसी जगह पर सूर्य की किरणों से संभिन्न सुवर्ण की शिलाओं पर समाश्रय ग्रहण करने वाले यक्षों के समुदायों से पावक में प्रवेश करने वालों की तरह उसका उपान्त भासित हो रहा था।१४।

दरीमुखविनिष्क्रांततरक्षूत्पतनाकुलः ।
मृगयूथार्त्तसन्नादैरापूरितगुहं क्वचित् ॥१५
युद्धद्वराहशार्दूलयूथपैरितरेतरम् ।
प्रसभोन्मृष्टकांतोरुशिलातरुतटं क्वचित् ॥१६
कलभोन्मेषणाकृष्टकारिणीभिरनुव्रतैः ।
गवयैः खुरसंक्षुण्णशिलाप्रस्थतटं क्वचित् ॥१७
वासितार्थेऽभिसंवृद्धमदोन्मत्तमतंगजैः ।
युद्ध्यद्भिश्चूर्णितानेकगंडशैलवनं क्वचित् ॥१८
वृंहितश्रवणामर्षान्मातंगानभिधावताम् ।

सिंहानां चरणक्षुण्णनखभिन्नोपलं क्वचित् ॥१९
सहसा निपतत्सिंहनखनिर्भिन्नमस्तकैः ।
गजैराक्रंदनादेन पूर्यमाणं वनं क्वचित् ॥२०
अष्टपादबलाकृष्टकेसरा दारुणारवैः ।
भेद्यमानाखिलशिलागंभीरकुहरं क्वचित् ॥२१

कहीं पर दरियों के मुख से निकले हुए तरक्षुओं के उत्पतन ऊपर की ओर (उछाल) से समाकुल मृगों के आर्त्त नादों से जिसकी गुहा समापूरित हो रही थी ।१५। किसी स्थल पर एक दूसरे से परस्पर में युद्ध करते हुए वराह और शार्दूलों के यूथपतियों के द्वारा बलात् उन्मृष्ट सुन्दर एवं विशाल शिला एवं तटके तरुवर जिसमें विद्यमान थे ।१६। कहीं पर कलभों के उन्मेषण से आकृष्ट हुई करिणियों के द्वारा भागे हुए गवयों के खुर से वहाँ के तट प्रस्थ संक्षुण्ण थे ।१७। किसी स्थान पर वासित अर्थ में विशेष बढ़े हुए मद से उन्मत्त गजों से जो कि परस्पर में युद्ध कर रहे थे गण्ड स्थलों के द्वारा अनेक शैल के वनों को वहाँ पर चूर्णित कर दिया था ।१८। कहीं पर हाथियों की ध्वनि के श्रवण से जो क्रोध हुआ उसके कारण गजों को खदेड़ते हुए सिंहों के चरणों के क्षुण्ण नखों से पाषाण भिन्न हो गये थे ।१९। कहीं पर वहाँ ऐसा स्थल था कि अचानक आक्रमण करने वाले सिंहों के नाखूनों से युक्त हाथियों के क्रन्दन की ध्वनि से सम्पूर्ण वन पूरित होरहा था ।२०। अष्टपादों के द्वारा बलपूर्वक जिनके केसर खींच लिए गये हैं उनके परम दारुण शब्द से कहीं कहीं पर पर्वत की गम्भीर गुफाएँ भी सब भेद्यमान थी ।२१।

संरब्धानेकशबरप्रसक्तर्क्षयूथपैः ।
इतरेतरसंमर्द विप्रभग्नद्रुपस्क्वचित् ॥२२
गिरिकुंजेषु संक्रीडत्करिणीमद्द्विपं क्वचित् ।
करेणुमाद्रवन्मत्तगजाकलितकाननम् ॥२३
स्वपत्सिंहमुखश्वासमरुत्पूर्णदरीशतम् ।
गहनेषु गुरुत्रासससाशंकविहरन्मृगम् ॥२४
कंटकश्लिष्टलांगूललोमत्रुटनकातरैः ।
क्रीडितं चमरीयूथैर्मंदमंदविचारिभिः ॥२५

गिरिकंदरसंसक्तकिन्नरीसमुदीरितैः ।
सतालनादैरुदितैर्भृताशेषदिशामुखम् ॥२६
अरण्यदेवतानां च चरंतीनामितस्ततः ।
अलक्तकरसक्लिन्नचरणांकितभूतलम् ॥२७
मयूरकेकिनीवृंदैः संगीतमधुरस्वरैः ।
प्रवृत्तनृत्तं परितो विततोदग्रबर्हिभिः ॥२८

किसी स्थल पर संरब्ध बहुत से शबरों के द्वारा प्रसक्त रीछों के यूथ पतियों के आनस में एक दूसरे के साथ संमर्द में शिलाएँ भग्न हो गयीं थीं ।२२। कहीं पर पर्वत की कुञ्जों में करिणियाँ क्रीड़ाएँ कर रही थीं और वहाँ पर कोई करी नहीं था तब करेणु पर मत्तगज दौड़कर चले जा रहे थे इस प्रकार से वहाँ कानन समाकलित था ।२३। कहीं पर वहाँ ऐसा भी बल था जहाँ पर सोते हुए सिंहों के मुखों के श्वासों की वायु से सैंकड़ों गुहाएँ पूरित हो रहीं थीं और वनों में बड़े भारी भय के कारण मृगगण शङ्कित होकर ही विहार कर रहे थे ।२४। किसी जगह पर यह वन चमरी गौओं के द्वारा क्रीड़ा का स्थल बना हुआ था जिनके पूँछों में काँटे लगे हुए थे और उनसे लोम टूट गये थे । जिसके कारण वे भयभीत होकर मन्दगति से विचरण कर रही थीं ।२५। कहीं पर गिरि की कन्दराओं में से सक्त किन्नरियों के समुदाय थे और उनके द्वारा कहे हुए ताल के नादों तथा गीतों से सभी दिशाएँ पूरित थीं ।२६। उस महान् गिरि पर का वन इधर-उधर विचरण करती हुई अरण्य देवताओं के चरणों में लगे हुए महावर के रस से वह भूतल चरणों के चिह्नों से अङ्कित हो रहा था ।२७। सङ्गीत के मधुर स्वरों से समन्वित-मयूर-मयूरियों के झुण्ड अपनी पंखों को फैलाकर कहीं पर आनन्द पूर्वक नृत्य कर रहे थे ।२८।

रामो मतिमतां श्रेष्ठस्तपसे च मनो दधे ।
शाकमूलफलाहारो नियतं नियतेंद्रियः ॥२९
तपश्चचार देवेशं विनिवेश्यात्ममानसे ।
भृगूपदिष्टमार्गेण भक्त्या परमया युतः ॥३०
पूजयामास देवेशमेकाग्रमनसा नृप ।
अनिकेतः स वर्षासु शिशिरे जलसंश्रयः ॥३१

ग्रीष्मे पंचाग्निमध्यस्थः श्चचारैवं तपश्चिरम् ।
रिपून्निर्जित्य कामादीनूर्मिषट्कं विधूय च ॥३२
द्वंद्वैरनुद्वेजितधीस्तापदोषैरनाकुलः ।
यमैः सनियमैश्चैव शुद्धदेहः समाहितः ॥३३
वशीचकार पवनं प्राणायामेन देहगम् ।
जितपद्मासनो मौनी स्थिरचित्तो महामुनिः ॥३४
वशीचकार चाक्षाणि प्रत्याहारपरायणः ।
धारणाभिः स्थिरीचक्रे मनश्चंलमात्मवान् ॥३५

ऐसे अनेक परम मनोरम हृश्यों से परिपूर्ण उस हिमवान् गिरि पर एक आश्रम अपना बनाकर मतिमानों में परमश्रेष्ठ राम ने तपस्या करने का मन में विचार किया था और वह तपश्चर्या करने के लिये शाकों तथा मूलों के आहार करने वाला होकर नियत इन्द्रियों वाला बन गया था।२६। उसने देवेश भगवान् शङ्कर को अपने मन में विनिवेशित करके तपस्या की थी। भृगुमुनि ने जो भो मार्ग बताया था उसी के अनुसार वह परमाधिक भक्ति से युक्त हो गया था।३०। ये नृप ! उसने एक निष्ठ मन से देवेश्वर की पूजा की थी। वर्षा काल में भी वह बिना कहीं पर आश्रय ग्रहण किये हुए खुले में तप करने लगा था और शिशिर ऋतु में भी जल में स्थित रहा करता।३१। ग्रीष्म में पाँच अग्नियों के मध्य में बैठा रहता था। इस रीति से राम के तप किया था और चिरकाल वह तपश्चर्या को थी। जिसमें षट् ऊर्मियों का विधूनन करके काम क्रोध-लोभ-मोह आदि शत्रुओं को भली भाँति जीत लिया था।३२। जितने भी शीत-उष्ण आदि द्वन्द्व हैं इनसे उसकी बुद्धि उद्वेजित नहीं होतो थी और वह ताप के दोषों से कभी व्याकुल भी नहीं होता था। यमों और नियमों के द्वारा उसका देह परम शुद्ध था तथा वह बहुत ही समाहित रहता था।३३। उसके देह में जो वायु था उसको उसने प्राणायामों के द्वारा अपने वश में कर लिया था। वह महान् मुनि मौनधारी-पद्मासन को जीत लेने वाला और परम स्थिर चित्त वाला था।३४। प्रत्याहार में तत्पर रहकर उसने अपनी समस्त इन्द्रियों को अपने वश में कर लिया था। आत्मवान् उस राम ने धारणाओं के द्वारा परम चञ्चल तथा प्रमथन शील बलवान् मन को भी स्थिर कर लिया था जो कभी भी साधारण या काबू में नहीं आया करता है।३५।

ध्यानेन देवदेवेशं ददर्श परमेश्वरम् ।
स्वस्थांत:करणो मैत्र: सर्वबाधाविवर्जित: ।।३६
चिंतयामास देवेशं ध्याने दृष्ट्वा जगद्गुरुम् ।
ध्येयावस्थितचित्तात्मा निश्चलेंद्रियदेहवान् ।।३७
आकालावधि सोऽतिष्ठन्निवातस्थप्रदीपवत् ।
जपंश्च देवदेवेशं ध्यायंश्च स्वमनीषया ।।३८
आराधयदमेयात्मा सर्वभावस्थमीश्वरम् ।
तत: स निष्फल रूपमैश्वरं यन्निरंजनम् ।।३९
परं ज्योतिरचिंत्यं यद्योगिध्येयमनुत्तमम् ।
नित्यं शुद्धं सदा शांतमतींद्रियमनौपमम् ।
आनंदमात्रमचलं व्याप्ताशेषचराचरम् ।।४०
चिंतयामास तद्रूपं देवदेवस्य भार्गव: ।
सुचिरं राजशार्दूल सोऽहंभावसमन्वित: ।।४१

ध्यान के द्वारा राम ने देवों के भी देवेश्वर भगवान् शङ्कर का दर्शन प्राप्त कर लिया था। उसका अन्त:करण परम स्वस्थ था तथा वह सबका मित्र और समस्त बाधाओं से रहित था।३६। इन जगद्गुरु को ध्यान में देखकर उसने देवेश्वर का चिन्तन किया था। वह अपने ध्येय प्रभु में अवस्थित चित्त और आत्मा वाला था। उसकी इन्द्रियाँ और देह निश्चल थे।३७। वह अपने काल की अवधि तक निर्वात स्थान में दीपक के समान वहाँ पर स्थित रहा था। वह अपनी बुद्धि से देवदेव का जप तथा ध्यान करता हुआ वहाँ पर स्थित था।३८। उस अमेय आत्मा वाले ने सब भावों में स्थित ईश्वर की आराधना की थी। इसके अनन्तर उस प्रभु का चिन्तन किया था जो फल रहित रूप है—ईश्वर और जो निरंजन है।३९। जो परम ज्योति स्वरूप अचिन्तनीय-योगियों के द्वारा ध्यान करने के योग्य और सर्वोत्तम है। जो नित्य शुद्ध, सदा शान्त-इन्द्रियों की पहुँच से परे और उपमा से रहित है। जो केवल आनन्द के स्वरूप वाला अचल और समस्त चर और अचर में व्याप्त है।४०। ऐसे देवों के देव के उस रूप का उस भार्गव ने हे राजशार्दूल! बहुत समय ध्यान किया था और वह सोऽहं भाव में समन्वित हो गया था अर्थात् ध्येय और ध्याता की एक रूपता हो गयी थी।४१। ❀

परशुराम परीक्षा

तपस्विनं तदा राममेकाग्रमनसं भवे ।
रसस्यैकांतनिरतं नियतं शंसितव्रतम् ॥१
श्रुत्वा तमृषयः सर्वे तपोनिर्धूतकल्मषाः ।
ज्ञानकर्मवयोवृद्धा महांतः शंसितव्रताः ॥२
दिदृक्षवः समाजग्मुः कुतूहलसमन्विताः ।
ख्यापयंतस्तपः श्रेष्ठं तस्य राजन्महात्मनः ॥३
भृग्वत्रिक्रतुजाबालिवामदेवमृकंडवः ।
संभावयंतस्ते रामं मुनयो वृद्धसंमताः ॥४
आजग्मुराश्रमं तस्य रामस्य तपसस्तपः ।
दूरादेव महांतस्ते पुण्यक्षेत्रनिवासिनः ॥५
गरीयं सर्वलोकेषु तपोऽग्र्यं ज्ञानमेव च ।
प्रशस्यं तस्य ते सर्वे प्रययुः स्वं स्वमाश्रमम् ॥६
एवं प्रवर्त्ततस्तस्य रामस्य भगवाञ्छिवः ।
प्रसन्नचेता नितरां बभूव नृपसत्तम ॥७

श्री वसिष्ठजी ने कहा—उस समय में भगवान् शिव में एकाग्र मन वाले—एकान्त में एक निष्ठ होकर निरत रहने वाले—नियत और शंसित व्रत से युक्त उस तपस्वी राम का श्रवण करके तप से निर्धूत कल्मष वाले ऋषियों ने जो ज्ञान और कर्मों में वृद्ध महान् और शंसित व्रत वाले थे सभी दर्शन की इच्छा वाले हुए थे।१-२। देखने की इच्छा से समन्वित वे सब कुतूहल वाले वहाँ पर आये थे। हे राजन् ! वे सब महान् आत्मा वाले उस राम के परम श्रेष्ठ तप का वर्णन करने वाले थे।३। बड़े-बड़े मुनियों के द्वारा संमत भृगु—अत्रि—क्रतु—जाबालि-वामदेव और मृकण्डु सब उस राम की प्रशंसा करने वाले थे।४। तपस्या का तपन करने वाले उस राम के आश्रय में सब समागत हुए थे। ये सब बहुत महान् और पुण्य क्षेत्र के निवास करने वाले बहुत ही दूर से वहाँ आये थे।५। समस्त लोकों में यह तप बहुत बड़ा उत्तम है और ज्ञान भी है। इस रीति से उन सब ने उसके तप की प्रशंसा की थी और फिर वे सभी अपने-अपने आश्रम को चले गये थे।६। हे नृपों

में श्रेष्ठ ! इस प्रकार से तपश्चर्या में प्रवृत्त होते हुए राम के ऊपर भगवान् शिव बहुत ही प्रसन्न चित्त वाले हो गये थे ।७।

जिज्ञासुस्तस्य भगवान् भक्तिमात्मनि शङ्कर: ।
मृगव्याधवपुर्भूत्वा ययौ राजंस्तदंतिकम् ॥८
भिन्नांजनचयप्रख्यो रक्तांतायतलोचन: ।
शरचापधर: प्रांशुर्वज्रसंहननो युवा ॥९
उत्तुंगहनुबाह्वंस: पिंगलश्मश्रुमूर्द्धज: ।
तांसविस्रवसागंधी सर्वप्राणिविहिंसक: ॥१०
सकंटकुलतास्पर्शक्षतारूषितविग्रह: ।
सासृक्संचर्वमाणश्च मांसखंडमनेकश: ॥११
मांसभारद्वयालंविविधानानतकंधर: ।
आरुजंस्तरसा वृक्षानूरुवेगेन संघश: ॥१२
अभ्यवर्त्तत तं देशं पादचारीव पर्वत: ।
आसाद्य सरसस्तस्य तीरं कुसुमितद्रुमम् ॥१३
न्यदधान्मांसभारं च स मूले कस्यचित्तरो: ।
निषसाद क्षणं तत्र तरुच्छायामुपाश्रित: ॥१४

हे राजन् ! भगवान् शंकर आत्मा में उसकी भक्ति के विषय में जानने की इच्छा वाले होकर पशुओं के व्याध का रूप धारण करके उस राम के समीप में गये थे ।८। तब व्याध के स्वरूप का वर्णन किया जाता है—वह पिसे हुए अञ्जन के ढेर के समान कृष्ण वर्ण वाला था। उसके बड़े औव लाल वर्ण के नेत्र थे—वह शर और चाप धारण किये हुए था—लम्बे कद वाला तथा वज्र के समान सख्त शरीर वाला और युवा था ।९। उस शबर के बाहु-कन्धे और ठोड़ी ऊँचे थे तथा उसके माथे के केश और मूँछें पिङ्गल वर्णके थे । वह मांस, विस्र और वसा (चर्वी) की गन्ध वाला था अर्थात् उसके शरीर से बुरी गन्ध आ रही थी । वह सभी प्राणियों की हिंसा करने वाला था ।१०। काँटों के समुदाय के निरन्तर स्पर्श करते रहने से बहुत से क्षतों के होने कारण उसका शरीर रूषित था । वह रुधिर के सहित अनेक मांस के टुकड़ों को चबा रहा था ।११। मांस के भार से जो कि उसके दोनों ओर लदा हुआ था उसकी गरदन कुछ नीचे की ओर झुकी हुई थी । बहुत

बड़े वेग से युक्त तेजी के साथ चलने से वृक्षों के समूह को वह हिलाता हुआ चल रहा था ।१२। वह पदों से गमन करने वाले पर्वत के समान ही उस स्थल पर उपस्थित हो गया था । वह पुष्पों से समन्वित उस सरोवर के तट पर समागत हुआ था ।१३। उसने किसी वृक्ष की जड़ में उस मांस के भार को उतार कर रख दिया था और कुछ क्षणों के लिए वहां पर उसने वृक्ष की छाया का आश्रय ग्रहण किया था ।१४।

तिष्ठंतं सरसस्तीरे सोऽपश्यद्भृगुनंदनम् ।
ततः स शीघ्रमुत्थाय समीपमुपसृत्य च ।।१५
रामाय सेषुचापाभ्यां कराभ्यां विदधेऽञ्जलिम् ।
सजलांभोदसन्नादगंभीरेण स्वरेण च ।।१६
जगाद भृगुशार्दूलं गुहांतरविसर्पिणा ।
तोषप्रवर्षव्याधोऽयं वसाम्यस्मिन्महावने ।।१७
ईशोऽहमस्य देशस्य सप्राणितरुवीरुधः ।
चरामि समचित्तात्मा नानासत्वामिषाशनः ।।१८
समश्च सर्वभूतेषु न च पित्रादयोऽपि मे ।
अभक्ष्यागम्यपेयादिच्छंदवस्तुषु कुत्रचित् ।।१९
कृत्याकृत्यविधौ चैव न विशेषितधीरहम् ।
प्रपन्नो नाभिगमनं निवासमपि कस्यचित् ।।२०
शक्रस्यापि बलेनाहमनुमन्ये न संशयः ।
जानते तद्यथा सर्वे देशोऽयं मदुपाश्रयः ।।२१

उस महान् भयङ्कर स्वरूपवान शबर ने वहाँ पर सरोवर के तट पर ध्यान में बैठे हुए उस भृगु नन्दन को देखा था । इसके उपरान्त वह बहुत शीघ्र उठकर उस राम के समीप में आ गया था ।१५। उसने राम के लिये बाण और चाप से युक्त करों से अञ्जलि की थी और जल से परिपूर्ण मेघ के समान परम गम्भीर स्वर से उस भृगु शार्दूल से कहा था जो कि स्वर पर्वत की गुहाओं में फैल गया था । मैं तोष-प्रवर्ष व्याध हूँ और इसी महा-वन में निवास किया करता हूँ ।१६-१७। इस स्थल के समस्त प्राणी और वनस्पतियों का मैं स्वामी हूँ । अनेक जीवों के मांस का भोजन करने वाला

मैं समचित और आत्मा वाला हूँ और यहाँ पर सञ्चरण किया करता हूँ ।१८। मैं सब प्राणियों के साथ समान व्यवहार करने वाला हूँ और मेरे कोई भी माता-पिता आदि नहीं हैं। मैं कहीं पर भी अभक्ष्य-अगम्य और अपेय आदि वस्तुओं में स्वतन्त्रता से उनका सेवन करने वाला हूँ ।१९। कृत्य और अकर्त्तव्य कार्यों की विधि में मेरी कुछ भी विशेषता वाली बुद्धि नहीं है। किसी के भी निवास स्थान पर मैं अभिगमन करने वाला नहीं हूँ ।२०। इन्द्र के भी वज्र से मैं नहीं डरता हूँ—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है। सभी लोग इस बात को भली भाँति जानते हैं कि यह स्थल मेरे ही आश्रय वाला है अर्थात् यहाँ पर केवल मैं ही रहा करता हूँ ।२१।

तस्मान्न कश्चिदायाति ममात्रानुमतिं विना ।
इत्येष मम वृत्तान्तः कात्स्न्र्येन कथितस्तव ॥२२
त्वं च मे ब्रूहि तत्त्वेन निजवृत्तमशेषतः ।
कस्त्वं कस्मादिहायातः किमर्थमिहाधिष्ठितः ।
उद्यतोऽन्यत्र वा गंतुं किं वा तव चिकीर्षितम् ॥२३
वसिष्ठ उवाच—इत्येवमुक्तः प्रहसंस्तेन रामो महाद्युतिः ।
तूष्णीं क्षणमिव स्थित्वा दध्यौ किंचिदवाङ्मुखः ॥२४
कोऽयमेव दुराधर्षः सजलांभोदनिस्वनः ।
ब्रवीति च गिरोऽत्यर्थं विस्पष्टार्थपदाक्षराः ॥२५
किं तु मे महतीं शंकां तनुरस्य तनोति वै ।
विजातिसंश्रयत्वेन रमणीया यथा सगः ॥२६
एवं चिंतयतस्तस्य निमित्तानि शुभानि वै ।
बभूवुर्भुवि देहे च स्वाभि ेतार्थदान्यलम् ॥२७
ततो विमृश्य बहुशो मनसा भृगुपुंगवः ।
उवाच शनकैर्व्याधं वचनं सूनृताक्षरम् ॥२८

इस कारण से मेरी अनुमति के बिना यहाँ पर कोई भी नहीं आया करता है। यही मेरा वृत्तान्त है जो पूर्णतया तुम्हारे सामने मैंने कह दिया है ।२२। और अब आप अपना पूरा हाल तात्विक रूप से मुझे बतलाइए। आप कौन हैं—किस कारण से यहाँ पर समागत हुए हैं और किस प्रयोजन

की सिद्धि के लिये यहाँ पर समधिष्ठित हो रहे हैं ? अथवा यहाँ से किसी अन्य स्थान में जाने के समुद्यत हैं अथवा आपकी क्या करने की इच्छा है ।२३। श्री वसिष्ठ जी ने कहा—जब उसके द्वारा इस प्रकार से कहा गया तो महान् द्युति से सम्पन्न राम ने हँसकर एक क्षण के लिए चुप होकर कुछ नीचे की ओर मुख करके चिन्तन किया था ।२४। उसने अपने मन में विचार किया था कि यह दुराधर्ष कौन है जिसकी ध्वनि सजल मेघ के सदृश है और अधिक सुस्पष्ट अर्थ वाले पदों से युक्त वाणी बोलता है ।२५। इसका वपु मेरे हृदय में बहुत अधिक शङ्का समुत्पन्न कर रहा है । यह विजातीय है और नीच जाति का समाश्रय पाकर भी इसका शरीर शर की ही भाँति परम रमणीय है ।२६। इस तरह से चिन्तन करते हुए उसको परम शुभ निमित्त हो रहे थे जो भूमि में—देह में अपने अभीष्ट अर्थ के लिये पूर्ण रूप से प्रदान करने वाले थे ।२७। इसके अनन्तर उस भृगु कुल में श्रेष्ठ ने मन से बहुत बार विचार करके धीरे से उस व्याध से सूनृत अक्षरों वाले वचन कहे थे ।२८।

जामदग्न्योऽस्मि भद्रं ते रामो नाम्ना तु भार्गवः ।
तपश्चतुं मिहायातः सांप्रतं गुरुशासनात् ।।२९
तपसा सर्वलोकेशं भक्त्या च नियमेन च ।
आराधयितुमस्मिस्तु चिरायाहं समुद्यतः ।।३०
तस्मात्सर्वेश्वरं सर्वंशरण्यमभयप्रदम् ।
त्रिनेत्रं पापदमनं शङ्करं भक्तवत्सलम् ।।३१
तपसा तोषयिष्यामि सर्वज्ञं त्रिपुरांतकम् ।
आश्रमेऽस्मिन्सरस्तीरे नियमं समुपाश्रितः ।।३२
भक्तानुकंपी भगवान्यावत्प्रत्यक्षतां हरः ।
उपैति तावदत्रैव स्थास्यामीति मतिर्मम ।।३३
तस्मादितस्त्वयाद्यैव गन्तुमन्यत्र युज्यते ।
न चेद्भवति मे हानिः स्वकृतेर्नियमस्य च ।।३४
माननीयोऽथ वाहं ते भक्त्या देशांतरातिथिः ।
स्वनिवासमुपायातस्तपस्वी च तथा मुनिः ।।३५

आपका कल्याण हो—मैं जमदग्नि का पुत्र नाम से मैं भार्गव राम हूँ। इस समय में मैं अपने गुरुदेव के आदेश से यहाँ पर तपश्चर्या का समाचरण करने के ही लिए आया हूँ।२९। तपस्या-भक्ति और नियम से इस पर्वत पर सर्वलोकेश्वर की आराधना करने को चिरकाल के लिये मैं समुद्यत हुआ हूँ।३०। इस कारण से सर्वेश्वर—सबकी रक्षा करने वाले—अभय के देने वाले—समस्त पापों के दमन करने वाले—अपने भक्तों पर वात्सल्य रखने वाले तीन नेत्रों से समन्वित भगवान् शङ्कर को मैं प्रसन्न करूँगा।३१। मैं अपने तप के द्वारा सर्वज्ञ भगवान् त्रिपुरारि को को सन्तुष्ट करूँगा मैं इस सरोवर के तट पर स्थित आश्रम में नियम से समुपाश्रित हुआ हूँ।३२। अपने भक्तों पर अनुकम्पा करने वाले भगवान् शङ्कर जब तक प्रत्यक्ष मुझे दर्शन नहीं देते हैं तब तक मैं यहीं पर स्थित रहूँगा—यही मेरा विचार है।३३। इस कारण से आप यहाँ से नहीं जाते हैं तो मेरे अपने कृत्य में और नियम में हानि होती है।३४। अथवा यों समझ लीजिए कि मैं अन्य देश से आया हुआ आपका एक अतिथि हूँ अतएव भक्ति से मैं आपका माननीय होता हूँ। मैं आपके ही अपने निवास स्थल में उपगत हो गया हूँ जो कि मैं एक तपस्वी तथा मुनि हूँ।३५।

त्वत्संनिधौ निवासो मे भवेत्पापाय केवलम् ।
तव चाप्यसुखोदर्कं मत्समीपनिषेवणम् ॥३६

स त्वं मदाश्रमोपांते परिचंक्रमणादिकम् ।
परित्यज्य सुखी भूया लोकयोरुभयोरपि ॥३७

वसिष्ठ उवाच—इति तस्य वचः श्रुत्वा स भयो भृगुपुंगवम् ।
उवाच रोषताम्राक्षस्ताम्राक्षमिदमुत्तरम् ॥३८

ब्रह्मन् किमिदमत्यर्थं समीपे वसतिं मम ।
परिगर्हयसे येन कृतघ्नस्येव सांप्रतम् ॥३९

किं मयापकृतं लोके भवतोऽन्यस्य वा क्वचित् ।
अनागस्कारिणं दांतं कोऽवमन्येत नामतः ॥४०

सन्निधिः परिहर्त्तव्यो यदि मे विप्रपुंगव ।
दर्शनं सह संवासः संभाषणमथापि च ॥४१

आयुष्मताऽधुनैवास्मादपसर्त्तव्यमाश्रमात ।
स्वसंश्रयं परित्यज्य क्वाहं यास्ये बुभुक्षित: ॥४२

आपके समीप में मेरा निवास होना केवल पाप के ही लिए होगा और आपका भी मेरे निकट रहना भविष्य में असुख देने वाला ही होगा अर्थात् मेरे समीप में रहने से आपको भी कष्ट ही होगा ।३६। ऐसे आप मेरे आश्रम के समीप में इधर-उधर घूमने-फिरने के चक्र काटने को त्यागकर आप भी दोनों लोकों में सुखी होइये ।३७। वसिष्ठ जी ने कहा—उस राम के इन वचनों का श्रवण करके वह रोष से लाल नेत्रों को करके रक्त नेत्रों वाले भृगु श्रेष्ठ से यह उत्तर देते हुए कहा ।३८। हे ब्रह्मन् ! मेरे समीप में रहने की आप इतनी अधिक अब क्यों बुराई कर रहे हैं जैसे कोई कृतघ्न किया करता है ।३९। मैंने इस लोक में आपका अथवा कहीं पर अन्य किसी का क्या अपकार किया है ? जो पाप या अपराध नहीं करने वाला है उसका नाम से ही कौन अपमान किया करता है अर्थात् ऐसा तो कोई भी करता है ।४०। हे श्रेष्ठ विप्र ! यदि आपको मेरा समीप में रहना हटाना है और मेरा देखना—साथ में वार्त्तालाप और एक जगह पर साथ रहना भी दूर करना है तो आयुष्मान् आपको इसी समय में इस आश्रम से अपसरण कर जाना चाहिए । मैं तो बुभुक्षित हूँ और अपने निवास स्थान का परित्याग करके कहाँ पर जाऊँगा ।४१-४२।

स्वाधिवासं परित्यज्य भवता चोदित: कथम् ।
इतोऽन्यस्मिन् गमिष्यामि दूरे नाहं विशेषत: ॥४३
गम्यतां भवताऽन्यत्र स्थीयतामत्र वेच्छया ।
नाहं चालयितुं शक्य: स्थानादस्मात्कथंचन ॥४४
वसिष्ठ उवाच—तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य किंचित्कोपसमन्वित:
तमुवाच पुनर्वाक्यमिदं राजन्भृगूद्वह: ॥४५
व्याघ्रजातिरियं क्रूरा सर्वसत्त्वभयावहा ।
खलकर्मरता नित्यं धिक्कृता सर्वजंतुभि: ॥४६
तस्यां जातोऽसि पापीयान्सर्वप्राणिविहिंसक: ।
स कथं न परित्याज्य: सुजनै: स्यात्तु दुर्मते ॥४७

शरीरत्राणकारुण्यात्समीपं नोपसर्पसि ।

यया त्वं कंटकादीनामसहिष्णुतया व्यथाम् ॥४९

आपने अपने स्थान को जो कि आवास का स्थल है मुझे कैसे प्रेरित किया है ? मैं तो यहाँ से विशेष दूरी पर नहीं जाऊँगा ।४३। आपको ही अन्य स्थान में चले जाना चाहिए अथवा इच्छा से यहाँ पर स्थित रहिए । मैं तो इस स्थान से किसी भी प्रकार से भेजा नहीं जा सकता हूँ ।४४। वसिष्ठ जी ने कहा—उस शबर वेषधारी के इस वचन का श्रवण करके वह भृगु कुल के उद्वहन करने वाले राम को कुछ क्रोध आ गया था और हे राजन् ! राम ने उससे यह वाक्य फिर कहा था ।४५। यह व्याध की जो जाति है वह बहुत ही क्रूर है और समस्त प्राणियों को भय देने वाली है । यह जाति नित्य ही दुष्ट कर्मों के करने वाली होती है और सभी जन्तुओं द्वारा यह धिक्कृत है ।४६। उसी व्याध जाति में तुमने जन्म ग्रहण किया है अतः आप समस्त प्राणियों की हिंसा करने वाले अधिक पापी हैं । हे दुष्ट बुद्धि वाले ! वह आप सुजनों के द्वारा कैसे नहीं परित्याग करने के योग्य होते हैं ? ।४७। इस कारण से अपने आपको विशेष हीन जाति वाला समझ कर यहाँ से शीघ्र ही अन्य किसी स्थानमें चले जाओ । इस विषय में अधिक सोच विचार करने की आवश्यकता नहीं करनी चाहिए ।४८। अपने शरीर के परित्राण करने की दया से मेरे समीप मैं नहीं आते हो क्योंकि आपको कण्टक आदि की व्यथा है उसको आप सहन नहीं कर रहे हैं । अपने दुःख के ही समान दूसरे प्राण धारियों का दुःख हुआ करता है ।४९।

तथाऽवेहि समस्तानां प्रियाः प्राणाः शरीरिणाम् ।

व्यथा चाभिहतानां तु विद्यते भवतोऽन्यथा ॥५०

अहिंसा सर्वभूतानिमिति धर्मः सनातनः ।

एतद्विरुद्धाचरणान्नित्यं सद्भिर्विगर्हितः ॥५१

आत्मप्राणाभिरक्षार्थं त्वमशेषशरीरिणः ।

हनिष्यसि कथं सत्सु नाप्नोषि वचनीयताम् ॥५२

तस्माच्छीघ्रं तु भो गच्छ त्वमेव पुरुषाधम ।

त्वया मे कृत्यदोषस्य हानिश्च न भविष्यति ॥५३

न चेत्स्वयमितो गच्छेस्ततस्तव बलादपि ।

अपसर्पणताबुद्धिमहमुत्पादये स्फुटम् ॥५४

क्षणार्द्धमपि ते पाप श्रेयसी नेह संस्थितः ।

विरुद्धाचरणो नित्यं धर्मद्विट् को लभेच्च शम् ॥५५

वसिष्ठ उवाच—रामस्य वचनं श्रुत्वा प्रीतोऽपि तमिदं वचः ।

उवाच संक्रुद्ध इव व्याधरूपी पिनाकधृक् ॥५६

उसी भाँति से समस्त प्राणधारियों को अपने प्राण परम प्रिय हुआ करते हैं—ऐसा ही अपने मन में समझ लो । आप जिनका हनन किया करते हैं उनकी भी व्यथा इसी प्रकार से हुआ करती है और अन्य प्रकार की नहीं होती है ।५०। प्राणिमात्र की हिंसा न करना ही सनातन अर्थात् सदा से चले आने वाला धर्म है । इसके विरुद्ध कार्यों का समाचरण करना ही नित्य सत्पुरुषों के द्वारा बुरा माना जाता है ।५१। अपने प्राणों की अभिरक्षा के ही लिए हम सब शरीर धारियों का हनन किया करेंगे । फिर आगे क्यों नहीं सत्पुरुषों में निन्दा को प्राप्त होंगे ।५२। हे अधम पुरुष ! इस कारण से आप बहुत शीघ्र ही यहाँ से चले जाओ । तुम्हारे द्वारा किए कृत्यों के दोष से मेरे कार्य की कोई हानि नहीं होगी ।५३। यदि आप स्वयं ही यहाँ से नहीं गमन करते हैं तो मैं बलपूर्वक भी स्पष्टतया तुम्हारे अपसर्पण की बुद्धि समुत्पन्न कर देता हूँ ।५४। हे पापात्मन् ! यहाँ पर आधे क्षण भी आपकी संस्थिति अच्छी नहीं है । विरुद्ध आचरण वाला धर्म का द्वेषी ऐसा कौन है जो सदा कल्याण को प्राप्त किया करता है अर्थात् ऐसा कोई भी नहीं होता है ।५५। श्री वसिष्ठजी ने कहा—राम के ऐसे वचनों को सुनकर मन में बहुत प्रसन्न होते हुए भी वे स्वरूपधारी भगवान् शंकर क्रुद्ध के ही समान उस राम से यह वचन बोले थे ।५६।

सर्वमेतदहं मन्ये व्यर्थं व्यवसितं तव ।

कुतस्त्वं प्रथमो ज्ञानी कुतः शंभुः कुतस्तपः ॥५७

कुतस्त्वं क्लिश्यसे मूढ तपसा तेन तेऽधुना ।

ध्रुवं मिथ्याप्रवृत्तस्य न हि तुष्यति शङ्करः ॥५८

विरुद्धलोकाचरणः शंभुस्तस्य वितुष्टये ।

प्रतपत्यबुधो मर्त्यस्त्वां विना कः सुदुर्मते ॥५९

अथवा च गतं मेऽद्य युक्तमेतदसंशयम् ।

संपूज्य पूजकविधौ शंभोस्तव च संगमः ॥६०
त्वया पूजयितुं युक्तः स एव भुवने रतः ।
संपूजकोऽपि तस्य त्वं योग्यो नात्र विचारणा ॥६१
पितामहस्य लोकानां ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
शिरश्छित्वा पुनः शम्भुर्ब्रह्महत्यामवाप्तवान् ॥६२
ब्रह्महत्याभिभूतेन प्रायस्त्वं शंभुना द्विज ।
उपदिष्टोऽसि तत्कर्तुं नोचेदेवं कथं कृथाः ॥६३

मैं यह सब कुछ मानता हूँ तथापि आपका ऐसा निश्चय कि भगवान् शङ्कर का वर्णन प्राप्त करूँगा यह सब व्यर्थ है । कहाँ तो प्रथम ज्ञानी हैं—कहाँ भगवान् देवों के देव शम्भु हैं तथा कहाँ उनको प्राप्त करने के लिए यह तुम्हारी तपस्या है ? अर्थात् भगवान् शम्भु के प्रत्यक्ष करने के लिए कहीं अत्यधिक ज्ञान और विशेष तपस्या होनी चाहिए क्योंकि वे साधारण साधन से प्राप्त होने वाले नहीं हैं । आपकी साधना सर्वथा अकिञ्चित्कर है ।५७। हे मूढ़ ! इस समय में इस तप के द्वारा आप क्यों क्लेशित हो रहे हैं ? यह निश्चय है कि इस तरह से मिथ्याप्रवृत्ति वाले आपसे भगवान् शङ्कर कभी भी सन्तुष्ट नहीं होंगे ।५८। हे सुदुर्मते ! शम्भु तो लोक के आचरण के सर्वथा विरुद्ध हैं । उनकी विशेष तुष्टि के लिए तुमको छोड़कर कौन अबुद्ध ऐसी प्रकृष्ट तपस्या किया करता है अर्थात् ऐसा कोई भी नहीं करता है ।५९। और अथवा मैं आज गया और यह बिना ही संशय के युक्त है । पूज्य और पूजन की विधि में भगवान् शम्भु का और आपका सङ्गम है ।६०। आपके द्वारा उनकी पूजा करना युक्त है । वे ही समस्त भुवन में रत हैं । उनकी भली भाँति पूजा करने वाले आप भी योग्य हैं—इसमें कोई संशय नहीं है ।६१। समस्त लोकों के पिता यह परमेष्ठी ब्रह्माजी के शिर का छेदन करके शम्भु ने फिर ब्रह्म हत्या प्राप्त की थी ।६२। हे द्विज ! ब्रह्महत्या से अभिभूत शम्भु ने प्रायः आपको उपदेश दिया है कि ऐसा करें । यदि ऐसा नहीं है तो आप इस रीति से कैसे कर रहे हैं ।६३।

तादात्म्यगुणसंयोगान्मन्ये रुद्रस्य तेऽधुना ।
तप सिद्धिरनुप्राप्ता कालेनाल्पीयसा मुने ॥६४
प्रायोऽद्य मातरं हत्वा सर्वैर्लोकैर्निराकृतः ।

तपोव्याजेन गहने निर्जने संप्रवर्त्तसे ॥६५

गुरुस्त्रीब्रह्महत्योत्थपातकक्षपणाय च ।
तपश्चरसि नानेन तपसा तत्प्रणश्यति ॥६६

पातकानां किलान्येषां प्रायश्चित्तानि सत्यपि ।
मातृद्रुहामवेहि त्वं न क्वचित्किल निष्कृतिः ॥६७

अहिंसालक्षणो धर्मो लोकेषु यदि ते मतः ।
स्वहस्तेन कथं राम मातरं कृत्तवानसि ॥६८

कृत्वा मातृवधं घोरं सर्वलोकविगर्हितम् ।
त्वं पुनर्धार्मिको भूत्वा कामतोऽन्यान्विनिंदसि ॥६९

पश्यता हसतामोघं आत्मदोषजानता ।
अपर्याप्तमहं मन्ये परं दोषविमर्शनाम् ॥७०

मैं ऐसा मानता हूँ कि अब भगवान् रुद्र के तादात्म्य के संयोग से सिद्धि को प्राप्त हो गये हैं। हे मुने ! यह सिद्धि की प्राप्ति बहुत ही थोड़े समय में हो जायगी।६४। बहुधा आप आज अपनी माता का हनन करके सभी लोगों के द्वारा निरादृत हो गये हैं और तपस्या के करने के बहाने से इस निर्जन वन में सबसे निरादर पाकर प्रवृत्त हो गये हैं।६५। गुरु-स्त्री और ब्रह्महत्या से समुत्पन्न पातक के दूर करने के लिए ही आप तपश्चर्या का समाचरण कर रहे हैं सो वह पातक इस तप से कभी भी विनष्ट नहीं होता है।६६। अन्य प्रकार के किये हुए पातकों के निश्चित रूप से प्रायश्चित भी हैं। आप यह समझ लेवें कि जो माता से द्रोह करने वाले हैं कहीं भी उनके पातकों का प्रायश्चित नहीं है।६६। हे राम ! यदि आपको यह सम्मत है कि अहिंसा के लक्षण वाला धर्म है जो कि सभी लोकों में माना गया है तो फिर आपने ही अपने ही हाथ से अपनी माता को कैसे काट दिया था ? ।६८। समस्त लोकों में परमाधिक निन्दित घोर माता का वध करके फिर बड़े धार्मिक बनकर अपनी इच्छा से अन्य लोगों की निशेष निन्दा कर रहे हैं।६९। इस अमोघ अपने दोष को देखते हुए भी उसको नहीं जानते हैं और हँस रहे हैं। मैं तो इस दूसरों के दोषों के विर्शना को पर्याप्त नहीं मानता हूँ।७०।

स्वधर्मं यद्यहं त्यक्त्वा वर्त्तेयमकुतोभयम् ।
तर्हि गर्हय मां कामं निरूप्य मनसा स्वयम् ॥७१
मातापितृसुतादीनां भरणायैव केवलम् ।
क्रियते प्राणिहननं निजधर्मतया मया ॥७२
स्वधर्मादामिषेणाहं सकुटुम्बो दिनेदिने ।
वर्त्तामि साऽपि मे वृत्तिर्विधात्रा विहिता पुरा ॥७३
मांसेन यावता मे स्यान्नित्यं पित्रादि पोषणम् ।
हनिष्ये चेत्तदधिकं तर्हि युज्येयमेनसा ॥७४
यावत्पोषणघातेन न वयं स्याम निंदिताः ।
तदेतत्संप्रधार्य त्वं वा मां प्रशंस वा ॥७५
साधु वाऽधु वा कर्म यस्य यद्विहितं पुरा ।
तदेव तेन कर्त्तव्यमापद्यपि कथंचन ॥७६
निरूपय स्वबुद्धया त्वमात्मनो मम चांतरम् ।
अहं तु सर्वभावेन मित्रादिभरणे रतः ॥७७

यदि मैं अपने धर्म का त्याग कर अकुतोभय अर्थात् निर्भीकता वाला होते हुए बरताव करूँ तो स्वयं मन से निरूपण करके मुझे इच्छा पूर्वक निन्दित कहिए ।७१। मैं तो अपने माता-पिता और पुत्र आदि के भरण-पोषण के ही लिए केवल अपने धर्म के कारण ही प्राणियों का वध किया करता हूँ ।७३। अपने ही धर्म होने से प्रतिदिन अपने कुटुम्ब का भरण मांस से किया करता हूँ और यह भी मेरी वृत्ति पहिले ही विधाता ने बना दी है ।७२। जितने मांस से नित्य ही मेरे माता-पिता और पुत्र आदि का भरण हो जाता है उतने ही प्राणियों का मै हनन किया करता हूँ। इससे भी अधिक मैं हनन करूँ तो मैं पाप से युक्त होऊँगा ।७४। जितने मांस से सबका पोषण होते उतने ही प्राणियों के घात करने से हम लोग कभी भी निन्दित नहीं होते हैं। यह सबका विचार करके ही आप मेरी निन्दा करें या प्रशंसा करें ।७५। अच्छा हो या बुरा ही जिसका जो कर्म पहिले ही विधाता ने बना दिया है वही कर्म किसी भी प्रकार से आपत्काल में भी उसे करना चाहिए ।७६। अब आप स्वयं अपनी ही बुद्धि से मेरे कर्म में जो भी अन्तर हो उसका

निरूपण कर लीजिए। मैं तो सब प्रकार से मित्र आदि के भरण पोषण के ही कार्य में निरत रहा करता हूँ।७७।

सत्यज्य पितरं वृद्धं विनिहत्य च मातरम्।
भूत्वा तु धार्मिकस्त्वं तु तपश्चर्तुमिहागतः ॥७८
ये तु मूलविदस्तेषां विस्पष्टं यत्र दर्शनम्।
यथाजिह्मं भवेन्नात्र वचसापि समीहितुम् ॥७९
अहं तु सम्यग्जानामि तव वृत्तमशेषतः।
तस्मादलं ते तपसा निष्फलेन भृगूद्वह ॥८०
सुखमिच्छसि चेत्त्यक्त्वा कायक्लेशशकरं तपः।
याहि राम त्वमन्यत्र यत्र वा न विदुर्जनाः ॥८१

अब अपने कर्मों की ओर दृष्टिपात करिए। आपने अपने परम वृद्ध पिता का परित्याग कर दिया है और अपनी आपको जन्म देकर अपने स्तनों के दुग्ध से पोषण करने वाली माता का विहनन कर दिया है। यह बुरे से बुरा कर्म करके भी आप परम धार्मिक बनकर तपश्चर्या करने के लिए यहाँ पर समागत हो गये हैं।७८। जो लोग उनके मूल के ज्ञाता हैं उनको विस्पष्ट दर्शन होता है। यह जिह्वा से कहकर वचनों के द्वारा समीहित करने का विषय यहाँ पर नहीं है।७९। मैं तो आपका सम्पूर्ण आचरण भली भाँति जानता हूँ और मुझे पूर्ण उसका ज्ञान है। हे भृगुद्वह! इस कारण से यह आपका तप निष्फल है। इसे व्यर्थ मत करो।८०। भाई अपना सुख चाहते हो तो इस काया को क्लेशित करने वाले तप का त्याग कर दीजिए। हे राम! अब आप किसी भी अन्य स्थान में चले जाइए जहाँ पर कि कोई भी मनुष्य आपको न जान सकें।८१।

—×—

॥ शैवास्त्र की प्राप्ति ॥

वसिष्ठ उवाच—इत्युक्तस्तेन भूपाल रामो मतिमतां वरः।
निरूप्य मनसा भूयस्तमुवाचाभिविस्मितम् ॥१
राम उवाच—कस्त्वं ब्रूहि महाभाग न वै प्राकृतपूरुषः।
इन्द्रस्येवानुभावेन वपुरालक्ष्यते तव ॥२

विचित्रार्थपदौदार्य्यगुणगाम्भीर्यजातिभिः ।
सर्वज्ञस्यैव ते वाणी श्रूयतेऽतिमनोहरा ॥३
इन्द्रो वह्निर्यमो धाता वरुणो वा धनाधिपः ।
ईशानस्तपनो ब्रह्मा वायुः सोमो गुरुर्गुहः ॥४
एषामन्यतमः प्रायो भवान्भवितुमर्हति ।
अनुभावेन जातिस्ते हृदि शंकां तनोति मे ॥५
मायावी भगवान्विष्णुः श्रूयते पुरुषोत्तमः ।
को वा त्वं वपुषानेन ब्रूहि मां समुपागत ॥६
अथ वा जगतां नाथ सर्वज्ञः परमेश्वरः ।
परमात्मात्मसंभूतिरात्मारामः सनातनः ॥७

श्री वसिष्ठ जी ने कहा -हे भूपाल ! मतिमानों में परम श्रेष्ठ राम से जब इस प्रकार से कहा गया था तो फिर उसने मन से निरूपण करके बहुत ही विस्मित होते हुए उनसे कहा था ।१। राम ने कहा—हे महान् भाग वाले ! आप मुझे यह बतलाइए कि आप कौन हैं ? आप कोई प्राकृत पुरुष तो हैं नहीं । आपका शरीर तो अनुभाव से इन्द्र के ही समान लक्षित हो रहा है ।२। विचित्र अर्थ वाले पदों की उदारता-गुणों की गम्भीरता की जातियों से आपकी वाणी सर्वज्ञ की ही अधिक मनोहर सुनाई दे रही है ।३। आप या तो इन्द्र हैं—अग्निदेव हैं—यम–धाता–वरुण अथवा कुबेर हैं । आप या तो ईशान है–तपन-ब्रह्मा–वायु–सोम–गुरु और या गुह हैं ।४। इन ऊपर बताये हुओं में से ही आप कोई से भी एक हो सकते हैं—यही बहुधा प्रतीत होता है । आपके अनुभाव कुछ ऐसे ही हैं कि मेरे हृदय में आपकी जाति बड़ी भारी शंका उत्पन्न कर रही है ।५। भगवान् विष्णु बहुत अधिक मायावी हैं--ऐसा पुरुषोत्तम प्रभु के विषय में श्रवण किया जाता है । आप वास्तव में कौन हैं जो कि इस शरीर को धारण करके यहाँ समागत हुए हैं--यह आप मुझे स्पष्टतया बतलाने की कृपा करें । अथवा समस्त भुवनों के स्वामी–सब कुछ के ज्ञाता साक्षात् परमेश्वर हैं जो परमात्मा से ही आत्मा की उत्पत्ति वाले सनातन आत्मराम हैं ।६-७।

स्वच्छंदचारी भगवाञ्छिवः सर्वजगन्मयः ।
वपुषानेन संयुक्तो भवान्भवितुमर्हति ॥८

नान्यस्येदृग्भवेल्लोके प्रभावानुगतं वपुः ।
जात्यर्थसौष्ठवोपेता वाणी चौदार्यशालिनी ॥९

मन्येऽहं भक्तवात्सल्याद्दानेन वपुषा हरः ।
प्रत्यक्षतामुपगतो संदेह्योऽस्मत्परीक्षया ॥१०

न केवलं भवान् व्याधस्तेषां नेदृग्विधाकृतिः ।
तस्मात्तुभ्यं नमस्तस्मै सुरूपं संप्रदर्शय ॥११

आविष्कुर्वन्प्रसीदात्ममहिमानुगुणं वपुः ।
ममानेकविधा शंका मुच्येत येन मानसी ॥१२

प्रसीद सर्वभावेन बुद्धिमोहो ममाधुनाः ।
प्रणाशय स्वरूपस्य ग्रहणादेव केवलम् ॥१३

प्रार्थये त्वां महाभाग प्रणम्य शिरसासकृत् ।
कस्त्वं मे दर्शयात्मानं बद्धोऽयं ते मयाञ्जलिः ॥१४

परम स्वच्छन्दता के साथ सञ्चरण करने वाले सम्पूर्ण जगत् के स्वरूप वाले आप साक्षात् भगवान् शिव हैं जो इस शबर के शरीर को धारण करके यहाँ पर स्थित हैं। मुझे तो ऐसा ही लगता है कि आप भगवान् शम्भु हो सकते हैं।८। इस लोक में अन्य किसी का भी ऐसा प्रभाव से अनुगत शरीर नहीं होता है। जाति का अर्थ के सौष्ठव से युक्त और उदारता की शोभा वाली आपकी वाणी है।९। मैं तो अब ऐसा ही समझ रहा हूँ कि भगवान् हर ही भक्त के ऊपर वात्सल्य होने के कारण से इस शरीर को धारण कर मेरी परीक्षा करने के लिए प्रत्यक्ष स्वरूप में उपागत हुए हैं—ऐसा ही कुछ सन्देह होता है।१०। आप केवल व्याध तो नहीं हैं—यह निश्चय है क्योंकि इस प्रकार की आकृति कभी होती ही नहीं है। इस कारण से मेरा आपकी सेवा में प्रणाम निवेदित है। अब कृपया अपना वास्तविक स्वरूप प्रदर्शित कीजिए।११। मेरे ऊपर प्रसन्न होइए और अपनी महिमा के अनुरूप वपु को प्रकट कर दीजिए जिससे मेरे मन में जो अनेक तरह की शङ्काएँ उठ रही हैं, उनसे मेरा छुटकारा हो जावे।१२। आप पूर्ण रूप से प्रसन्न होइए और इस समय में जो विचलित बुद्धि हो रही है तथा उसके कारण जो मुझ महान् मोह उत्पन्न हो रहा है उसका विनाश कीजिए। यह केवल आपके सत्य स्वरूप के ग्रहण करने ही से हो जायगा

।१३। हे महाभाग ! मेरी यह विनम्र प्रार्थना है और मैं बारम्बार आपको शिर से प्रणाम करके आपसे विनती करता हूँ कि आप कौन हैं—मुझे अपना सत्य स्वरूप दिखला दीजिए—मैं आपके लिए दोनों हाथ को जोड़कर विनय कर रहा हूँ ।१४।

इत्युक्त्वा तं महाभाग ज्ञातुमिच्छन्भृगूद्वहः ।
उपविश्य ततो भूमौ ध्यानमास्ते समाहितः ॥१५
बद्धपद्मासनो मौनी यतवाक्कायमानसः ।
निरुद्धप्राणसंचारो दध्यौ चिरमुदारधीः ॥१६
सन्नियम्येंद्रियग्रामं मनो हृदि निरुध्य च ।
चिंतयामास देवेशं ध्यानदृष्ट्या जगद्गुरुम् ॥१७
अपश्यच्च जगन्नाथमात्मसंधानचक्षुषा ।
स्वभक्तानुग्रहकरं मृगव्याधस्वरूपिणम् ॥१८
तत उन्मील्य नयने शीघ्रमुत्थाय भार्गवः ।
ददर्श देवं तेनैव वपुषा पुरतः स्थितम् ॥१९
आत्मनोऽनुग्रहार्थाय शरण्यं भक्तवत्सलम् ।
आविर्भूतं महाराज दृष्ट्वा रामः ससंभ्रमम् ॥२०
रोमाञ्चोद्भिन्नसर्वांगो हर्षाश्रुप्लुतलोचनः ।
पपात पादयोर्भूमौ भक्त्या तस्य महामतिः ॥२१

हे महाभाग ! उस शबर के वेषधारी से यह इतना कहकर उस भृगूद्वह ने सत्य स्वरूप के ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा करते हुए भूमि पर बैठकर वह परम समाहित होकर ध्यान में संलग्न हो गया था ।१५। उस उदार बुद्धि वाले ने पद्मासन बाँध लिया था और मौन होकर वाणी-शरीर और मन को संयत कर लिया था । फिर उसने प्राण वायु के सञ्चार का निरोध करके चिरकाल पर्यन्त ध्यान लगा लिया था ।१६। इन्द्रियों के समूह को भली भाँति नियमित करके हृदय में मन को निरुद्ध कर लिया और फिर ध्यान की ही दृष्टि से जगद्गुरु देवेश्वर का चिन्तन किया था ।१७। और फिर आत्म सन्धान की चक्षु से उन जगतों के स्वामी—अपने भक्तों पर परम अनुग्रह करने वाले को मृगों के शिकारी व्याध के स्वरूप को धारण करने

वाले को देखा था ।१८। इसके अनन्तर अपनी आँखें खोलकर भार्गव ने शीघ्र उठकर उसी शरीरसे संयुत और सामने स्थित देव का दर्शन किया था ।४१। हे महाराज ! अपने ऊपर अनुग्रह करने के लिए–भक्तो पर प्रेम करने वाले तथा शरण में समागत के रक्षक देवेश्वर को राम ने बड़े सम्भ्रम के साथ प्रकट हुए देखा था ।२०। उस महामति के अङ्गों में रोमाञ्च उद्भिन्न हो गये थे और परमाधिक हर्ष के उद्रेक से आनन्दाश्रुओं से नेत्र भर गये थे। फिर भक्तिभाव से वह उनके चरणों में भूमि पर उनके सामने गिर गया था अर्थात् उसने उनके चरण कमलों में साष्टाङ्ग प्रणाम किया था ।२१।

स गद्गदमुवाचैनं संभ्रमाकुलया गिरा ।
शरणं भव शर्वेति शंकरेत्यसकृन्नृप ॥२२
ततः स्वरूपधृक् शंभुस्तद्भक्तिपरितोषितः ।
राममुत्थापयामास प्रणामावनतं भुवि ॥२३
उत्थापितो जगद्धात्रा स्वहस्ताभ्यां भृगूद्वहः ।
तुष्टाव देवदेवेशं पुरः स्थित्वा कृतांजलिः ॥२४
राम उवाच–नमस्ते देवदेवाय शंकरायादिमूर्त्तये ।
नमः शर्वाय शांताय शाश्वताय नमोनमः ॥२५
नमस्ते नीलकण्ठाय नीललोहितमूर्त्तये ।
नमस्ते भूतनाथाय भूतवासाय ते नमः ॥२६
व्यक्ताव्यक्तस्वरूपाय महादेवाय मीढुषे ।
शिवाय बहुरूपाय त्रिनेत्राय नमोनमः ॥२७
शरणं भव मे शर्व त्वद्भक्तस्य जगत्पते ।
भूयोऽनन्याश्रयाणां तु त्वमेव हि परायणम् ॥२८

हे नृप ! उस राम ने सम्भ्रम से समाकुलित वाणी से गद्गद कण्ठ होकर इन प्रभु से कहा था और बारम्बार हे सर्व ! आप मेरे रक्षक होइए ऐसी प्रार्थना की थी ।२२। इसके अनन्तर अपने स्वरूप को धारण करने वाले शम्भु ने राम की भक्ति के भाव से परम सन्तुष्ट होते हुए भूमि में प्रणाम करने में पड़े हुए उसको ऊपर अपने कर कमलों से उठा लिया था ।२३। जगत् के धाता के द्वारा अपने ही करों से वह भृगूद्वह ऊपर उठा लिया गया

था। फिर उस राम ने उनके समक्ष में स्थित होकर हाथ जोड़कर उन देव-देवेश्वर का स्तवन किया था।२४। राम ने कहा—देवों के भी देव आदि मूर्त्ति भगवान् शङ्कर के लिये मेरा प्रणाम स्वीकार हो। शर्व—परमशान्त और शाश्वत प्रभु शम्भु के लिए मेरा बारम्बार प्रणाम है।२५। नीलकण्ठ और नील-लोहित मूर्त्ति वाले के लिए मेरा अनेक बार प्रणाम निवेदित है। आप तो भूतों के नाथ हैं ऐसे भूतवास आपके लिए मेरा बारम्बार प्रणाम है।२६। आपका स्वरूप व्यक्त है और अव्यक्त भी है ऐसे महादेव—मीढु—शिव—त्रिनेत्र और अनेक रूप वाले देवेश की सेवा में मेरा बारम्बार प्रणाम स्वीकार हो।२७। हे जगत् के स्वामिन्! हे शर्व! आपके ही चरणों में भक्ति रखने वाले मेरे आप रक्षक हो जाइए। जो किसी अन्य देव का समाश्रय ग्रहण न कर आपके ही चरणों का आश्रय लेते हैं वे अनन्य भक्त होते हैं उनके लिए आप ही परायण हैं।२८।

यन्मयाऽपकृतं देव दुरुक्तं वापि शंकर।
अजानता त्वां भगवन्मम तत्क्षंतुमर्हसि ॥२९
अनन्यवेद्यरूपस्य सद्भावमिह कः पुमान्।
त्वामृते तव सर्वेश सम्यक् शक्नोति वेदितुम् ॥३०
तस्मात्त्वं सर्वभावेन प्रसीद मम शंकर।
नान्यास्ति मे गतिस्तुभ्यं नमो भूयो नमो नमः ॥३१
वसिष्ठ उवाच—इति संस्तूयमानस्तु कृतांजलिपुटं पुरः।
तिष्ठंतमाह भगवान्प्रसन्नात्मा जगन्मयः ॥३२
भगवानुवाच—प्रीतोऽस्मि भवते तात तपसाऽनेन सांप्रतम्।
भवत्या चैवानपायिन्या ह्यपि भार्गवसत्तम ॥३३
दास्ये चाभिमतं सर्वं भवतेऽहं त्वया वृतम्।
भक्तो हि मे त्वमत्यर्थं नात्र कार्या विचारणा ॥३४
मयैवावगतं सर्वं हृदि यत्तेऽद्य वर्त्तते।
तस्माद्ब्रवीमि यत्त्वाहं तत्कुरुष्वाविशंकितम् ॥३५

हे शङ्कर! मैंने जो भी कुछ अपकार किया है अथवा आपके प्रति मैंने जो बुरे शब्दों का प्रयोग किया था वह मेरे अज्ञान के कारण से ऐसा

हुआ था क्योंकि मैं आपको जान नहीं पाया था। उस सबको आप क्षमा करने के योग्य होते हैं।२९। अनन्य वेद्य रूप वाले आपके सद्भाव को कौन-सा पुरुष हे सर्वेश! और आपको भले प्रकार से जान सकता है अर्थात् कोई भी नहीं जानता है।३०। हे शङ्कर! इस कारण से आप सर्वभाव से मेरे ऊपर प्रसन्न हो जाइए। आपके बिना मेरी अन्य कोई भी गति नहीं है अर्थात् मेरा उद्धार केवल आप ही कर सकते हैं अतएव आपके लिए मेरा पुनः बारम्बार नमस्कार है।३१। श्री वसिष्ठजी ने कहा—इस प्रकार से सामने स्थित होकर दोनों करों को जोड़े हुए वह स्तुति कर रहा था। जगन्मय प्रसन्न आत्मा वाले भगवान् ने उससे कहा था।३२। भगवान् ने कहा—हे तात! अब आपकी इस तपश्चर्या से आपके ऊपर मैं बहुत प्रसन्न हूँ। हे भार्गवों में परम श्रेष्ठ! मैं आपकी अनपायिनी भक्ति से अत्यधिक प्रसन्न हूँ।३३। जो भी आपने अपने मन में विचार रक्खा है वह सभी कुछ मैं आपको दे रहा दूँगा। आप मेरे बहुत ही अधिक प्रिय भक्त हैं—इसमें कुछ भी संशय वाली बात नहीं है।३४। इस समय में जो भी कुछ आपके हृदय में है वह मुझे सभी अवगत है अर्थात् उस सबको मैं भली भाँति जानता हूँ। इसी कारण से मैं आपको बतलाता हूँ और आप कोई भी विशेष शङ्का न रखते हुए वही करिए।३५।

नास्त्राणां धारणे वत्स विद्यते शक्तिरद्य ते।
रौद्राणां तेन भूयोऽपि तपो घोरं समाचर ॥३६
परीत्य पृथिवीं सर्वां सर्वतीर्थेषु च क्रमात्।
स्नात्वा पवित्रदेहस्त्वं सर्वाण्यस्त्राण्यवाप्स्यसि ॥३७
इत्युक्त्वान्तर्दधे देवस्तेनैव वपुषा विभुः।
रामस्य पश्यतो राजन्क्षणेन भवभावकृत् ॥३८
अंतर्हिते जगन्नाथे रामो नत्वा तु शंकरम्।
परीत्य वसुधां सर्वां तीर्थस्नानेऽकरोन्मनः ॥३९
ततः स पृथिवीं सर्वां परिक्रम्य यथाक्रमम्।
चकार सर्वतीर्थेषु स्नानं विधिवदात्मवान् ॥४०
तीर्थेषु क्षेत्रमुख्येषु तथा देवालयेषु च।
पितॄन्देवांश्च विधिवत्तर्पयदतंद्रितः ॥४१

उपवासतपोहोमजपस्नानादिसुक्रियाः ।
तीर्थेषु विधिवत्कुर्वन्परिचक्राम मेदिनीम् ॥४२

हे वत्स ! आज आपके अन्दर अस्त्रों के धारण करने की शक्ति नहीं है। ये सब रौद्र अस्त्र हैं। इससे आप फिर भी परम घोर तप का समाचरण कीजिए ।३६। इस सम्पूर्ण भूमण्डल पर भ्रमण करके क्रम से समस्त तीर्थ स्थलों में स्नान कीजिए। फिर जब आप पवित्र शरीर वाले हो जाँयगे तो आप सभी अस्त्रों को प्राप्त करेंगे ।३७। इतना यह कर देवेश्वर विभु उसी शरीर से वहाँ पर अन्तर्हित हो गये थे। हे राजन् ! राम यह देख ही हो गये थे ।३८। जगत् के स्वामी के अन्तर्हित हो जाने पर राम ने भगवान् शङ्कर को प्रणाम किया था और फिर सम्पूर्ण वसुधा पर भ्रमण करके तीर्थों में स्नान करने का मन में निश्चय किया था ।३९। इसके उपरान्त आत्मवान् उसने क्रमानुसार सम्पूर्ण पृथ्वी की परिक्रमा लगाकर समस्त तीर्थों में विधि-विधान के साथ स्नान किया था ।४०। तन्द्रा से रहित होकर उसने मुख्य क्षेत्रों में—तीर्थों में तथा देवालयों में पितृगणों का और देवों का विधि के सहित तर्पण किया था ।४१। उपवास—तप—जप—होम और स्नान आदि की सुन्दर क्रियाएँ तीर्थों में विधिपूर्वक करते हुए उसने पृथ्वी पर परिक्रमण किया था ।३२।

एवं क्रमेण तीर्थेषु स्नात्वा चैव वसुन्धराम् ।
प्रदक्षिणीकृत्य शनैः शुद्धदेहोऽभवन्नृप ॥४३
परीत्यैवं वसुमतीं भार्गवः शंभुशासनात् ।
जगाम भूयस्तं देशं यत्र पूर्वमुवास सः ॥४४
गत्वा राजन्स तत्रैव स्थित्वा देवमुमापतिम् ।
भक्त्या संपूजयामास तपोभिर्न्नियमैरपि ॥४५
एतस्मिन्नेव काले तु देवानामसुरैः सह ।
बभूव सुचिरं राजन्संग्रामो रोमहर्षणः ॥४६
ततो देवान्पराजित्य युद्धेऽतिबलिनोऽसुराः ।
अवापुरमरैश्वर्यमशेषमकुतोभयाः ॥४७
युद्धे पराजिता देवा सकला वासवादयः ।
शंकरं शरणं जग्मुर्ह्रतैश्वर्या ह्यरातिभिः ॥४८

तोषयित्वा जगन्नाथं प्रणामजयसंस्तवैः ।
प्रार्थयामासुरसुरान्हन्तुं देवाः पिनाकिनम् ।।४६

हे नृप ! इस प्रकार से क्रम से तीर्थों में स्नान करके और सम्पूर्ण पृथिवी की प्रदक्षिणा करके धीरे-धीरे वह शुद्ध देह वाला हो गया था ।४३। वह भार्गव राम शम्भु भगवान् के शासन से इस रीति से पृथिवी की परिक्रमा देकर फिर वह उसी भू भाग पर पहुँच गया था जहाँ पर कि वह प्रथम समय में निवास करता था ।४४। हे राजन् ! वह वहाँ पर जाकर स्थित हो गया था और तप तथा नियमों के द्वारा भक्ति-भाव से उमा के पति देवेश्वर का भले प्रकार से पूजन किया था ।४५। उसी समय में हे राजन् ! देवों का असुरोंके साथ बहुत समय तक बड़ा ही भीषण रोमहर्षण युद्ध हुआ था ।४६। इसके पश्चात् महान् बलशाली असुरों ने सब देवों को युद्ध में पराजित करके सम्पूर्ण जो देवों का ऐश्वर्य था उसको ग्रहण कर लिया था और फिर वे निर्भीक होकर रहने लगे थे ।४७। उस युद्ध में सब इन्द्र आदि देवगण पराजित हो गये थे और शत्रुओं के द्वारा अपहृत वैभव वाले सब भगवान् शंकर की शरणागति में प्राप्त हुए थे ।४८। उन देवगणों ने जगत के नाथ भगवान पिनाकी को प्रणाम-जय और संस्तवनों के द्वारा प्रसन्न कर लिया था और फिर उन्होंने भगवान् शङ्कर से असुरों के हनन करने के लिए प्रार्थना की थी ।४६।

ततस्तेषां प्रतिश्रुत्य दानवानां वधं नृप ।
देवानां वरदः शंभुर्महोदरमुवाच ह ।।५०
हिमाद्रेर्दक्षिणे भागे रामो नाम महातपाः ।
मुनिपुत्रोऽतितेजस्वी मामुद्दिश्य तपस्यति ।।५१
तत्र गत्वा त्वमद्यैव विवेद्य मम शासनम् ।
महोदर तपस्यंतं तमिहानय माचिरम् ।।५२
इत्याज्ञप्तस्तथेत्युक्त्वा प्रणम्येशं महोदरः ।
जगाम वायुवेगेन यत्र रामो व्यवस्थितः ।।५३
समासाद्य स तं देशं दृष्ट्वा रामं महामुनिम् ।
तपस्यंतमिदं वाक्यमुवाच विनयान्वितः ।।५४

द्रष्टुमिच्छति शम्भुस्त्वां भृगुवर्यं तदाज्ञया ।
आगतोऽहं तदागच्छ तत्पादांबुजसन्निधिम् ॥५५
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य शीघ्रमुत्थाय भार्गवः ।
तदाज्ञां शिरसानन्द्य तथेति प्रत्यभाषत ॥५६

इसके अनन्तर हे नृप ! उन दानवों के वध के लिए प्रतिज्ञा करके देवों को वरदान प्रदान करने वाले भगवान् शम्भुने महोदर से कहा था ।५०। हिमवान पर्वत के दक्षिण भाग में एक राम नाम वाला महान तपस्वी है। वह मुनि का पुत्र बहुत ही अधिक तेजस्वी है जो कि मेरा ही उद्देश्य लेकर तप करता है ।५१। वहाँ आज ही जाकर तुम मेरे आदेश को उससे कह दो हे महोदर ! उस तपश्चर्या करने वाले को यहाँ पर ले आओ और इस कार्य में विलम्ब मत करो ।५२। इस प्रकार से आज्ञा पाया हुआ वह महोदर—मैं ऐसा ही करूँगा—यह कहकर और ईश को प्रणाम करके वायु के समान अति तीव्र वेग से वहाँ पर चला गया था जहाँ पर राम व्यवस्थित था ।५३। उस देश पर पहुँच कर उसने महामुनि राम का दर्शन किया था। वह तपस्या कर रहा था। उससे परम विनयी होकर उसने यह वाक्य कहा था ।५४। शम्भु प्रभु आप को देखने की इच्छा करते हैं। उनकी आज्ञा से भृगुवर्य आपके समीप में मैं आया हूँ। सो अब आप उनके चरणों की सन्निधि में चलिए ।५५। भार्गव ने उस महोदर के इस वचन का श्रवण करके वह बहुत शीघ्र उठकर खड़ा हो गया था। भगवान् शम्भु की आज्ञा को शिर पर धारण करके उस आदेश का अभिनन्दन करते हुए मैं अभी चलता हूँ—यह उसको राम ने उत्तर दिया था ।५६।

ततो रामं त्वरोपेतः शम्भुपार्श्वं महोदरः ।
प्रापयामास सहसा कैलासे नागसत्तमे ॥५७
सहितं सकलैर्भूतैरिन्द्राद्यैश्च सहामरैः ।
ददर्श भार्गवश्रेष्ठः शंकरं भक्तवत्सलम् ॥५८
संस्तूयमानं मुनिभिर्नारदाद्यैस्तपोधनैः ।
गंधर्वैरुपगायद्भिर्नृत्यद्भिश्चाप्सरोगणैः ॥५९
उपास्यमानं देवेशं गजचर्मधृताम्बरम् ।
भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गं त्रिनेत्रं चन्द्रशेखरम् ॥६०

धृतपिंगजटाभारं नागाभरणभूषितम् ।
प्रलम्बोष्ठभुजं सौम्यं प्रसन्नमुखपङ्कजम् ॥६१
आस्थितं काञ्चने पट्टे गीर्वाणसमितौ नृप ।
उपासर्पत्तु देवेशं भृगुवर्यः कृतांजलिः ॥६२
श्रीकण्ठदर्शनोद्भूतरोमांचांचितविग्रहः ।
बाष्पात्तु सिक्तकायेन स तु गत्वा हरांतिकम् ॥६३

इसके पश्चात् महोदर ने राम को बहुत ही शीघ्रतासे शम्भु के समीप में प्राप्त कर दिया था और सहसा कैलास पर्वत के परम श्रेष्ठ भाग में दिया था ।५७। वहाँ पर भार्गव ने समस्त भूत और इन्द्र आदि देवों के सहित भक्त वत्सल शंकर का दर्शन किया था ।५८। वहाँ पर भार्गव ने देखा था कि बड़े-बड़े तपोधन नारद आदि मुनिगण उनका संस्तवन कर रहे थे—गन्धर्वगण गान अर्थात् भगवान् के गुणों का गायन कर रहे थे तथा अप्सरा-उनके मनोविनोद के लिए समक्ष में नृत्य कर रही थीं ।५९। सभी जन वहाँ पर देवेश्वर की उपासना में संलग्न थे । शम्भु गज के चर्म को धारण किये हुए थे और उनके समस्त अङ्गों में भस्म लगी हुई थी जिससे उनका शरीर धूमिल हो रहा था । तीन नेत्रों के धारण करने वाले शिव के मस्तक में चन्द्रमा विराजमान था ।६०। भगवान् पिङ्गल वर्ण की जटाजूट का भार सिर पर धारण किये हुए थे और नागों के आभरणों से उनके अङ्ग विभूषित थे । उनका वपु परम सौम्य था तथा उनके ओष्ठ और भुजाएँ लम्बी थी और उनका मुख कमल प्रसन्नता से खिला हुआ था ।६१। हे नृप ! उस देवों की परिषद में शम्भु सुवर्ण के पट्ट पर विराजमान थे । हाथ जोड़े हुए राम देवेश्वर के समीप में प्राप्त हुआ था ।६२। भगवान् श्री कण्ठ के दर्शन से आह्लादातिरेक से राम का सम्पूर्ण शरीर रोमाञ्चित हो गया था और आनन्दाश्रुओं से उसका शरीर सिक्त हो गया था । ऐसी दशा में परमानन्दित होते हुए राम भगवान् शम्भु के समीप में उपस्थित हुआ था ।६३।

भक्त्या ससंभ्रमं वाचा हर्षगद्गदयासकृत् ।
नमस्ते देवदेवेति व्यालपन्नाकुलाक्षरम् ॥६४
पपात संस्पृशन्मूर्ध्ना चरणौ पुरविद्विषः ।
पश्यतां देववृन्दानां मध्ये भृगुकुलोद्वहम् ॥६५

तमुत्थाप्य शिवः प्रीतः प्रसन्नमुखपंकजम् ।
रामं मधुरया वाचा प्रहसन्नाह सादरम् ॥६६

इमे दैत्यगणैः क्रांताः स्वाधिष्ठानात्परिच्युताः ।
अशक्नुवंतस्तान्हंतुं गीर्वाणा मामुपागताः ॥६७

तस्मान्ममाज्ञया राम देवानां च प्रियेप्सया ।
जहि दैत्यगणान्सर्वान्समर्थस्त्वं हि मे मतः ॥६८

ततो रामोऽब्रवीच्छर्वं प्रणिपत्य कृतांजलिः ।
शृण्वतां सर्वदेवानां सप्रश्रयमिदं वचः ॥६९
स्वामिन्न विदितं किं ते सर्वज्ञस्याखिलात्मनः ।
तथापि विज्ञापयतो वचनं मेऽवधारय ॥७०

भक्ति भाव से सम्भ्रम के साथ हर्ष से गद्गद वाणी के द्वारा व्याकुल अक्षरों में शम्भु से बोले—हे देवदेव ! आपके लिए मेरा प्रणाम निवेदित है ।६४। भगवान् त्रिपुरारि प्रभु के चरण कमलों को मस्तक से स्पर्श करते हुए उसने भूमि पतित होकर साष्टांग प्रणिपात किया था । समस्त देवों के समुदाय वहाँ पर देख रहे थे । उनके मध्य में उस भृगु कुलोद्वह ने प्रणिपात किया था ।६५। भगवान् शिव ने परम प्रसन्न होकर विकसित मुखकमल वाले उस राम को उठाया था और हँसते हुए परम मधुर वाणी से आदर पूर्वक राम से कहा था ।६६। ये सब देवों के समुदाय दैत्यों के द्वारा समाक्रान्त हो रहे हैं और ये सब अपने निवास स्थान से परिच्युत कर दिये गये हैं । बिचारे ये देवगण उनका हनन करने की सामर्थ्य न रखते हुए ही इस समय मेरे समीप में समागत हुए हैं ।६७। इसलिए हे राम ! मेरी आज्ञा से और सब देवों के प्रिय कार्य करने की इच्छा से समस्त दैत्यगणों का आप हनन कर डालिए । आप इस कार्य के सम्पादन करने के लिए समर्थ हैं ऐसा मेरा मत है ।६८। इसके उपरान्त राम ने भगवान् शम्भु को प्रणाम करके दोनों अपने करों को जोड़कर समस्त देवों के सामने उनके श्रवण करते हुए विनय पूर्वक यह वचन भगवान् शम्भु से कहे थे ।६९। हे स्वामिन् ! आप तो सर्वज्ञ हैं और सबकी आत्मा हैं । क्या आपको यह विदित नहीं है तो भी विज्ञापन करते हुए मेरे यह वचन को अब धारण कीजिए ।७०।

यदि शक्रादिभिर्देवैरखिलैरमरारयः ।
न शक्या हंतुमेकस्य शक्याः स्युस्ते कथं मम ।।७१
अनस्त्रज्ञोऽस्मि देवेश युद्धानामप्यकोविदः ।
कथं हनिष्ये सकलान्सुरशत्रूननायुधः ।।७२
इत्युक्तस्तेन देवेशः सितं कालाग्निसप्रभम् ।
शैवमस्त्रमयं तेजो ददौ तस्मै महात्मने ।।७३
आत्मीयं परशुं दत्त्वा सर्वशस्त्राभिभावकम् ।
राममाह प्रसन्नात्मा गीर्वाणानां तु शृण्वताम् ।।७४
मत्प्रसादेन सकलान्सुरशत्रून्विनिघ्नतः ।
भक्तिर्भवतु ते सौम्य समस्तारिदुरासदा ।।७५
अनेनैवायुधेन त्वं गच्छ युध्यस्व शत्रुभिः ।
स्वयमेव च वेत्सि त्वं यथावद्युद्धकौशलम् ।।७६
वसिष्ठ उवाच—एवमुक्तस्ततो रामः शंभुना तं प्रणम्य च ।
जग्राह परशुं शैवं विबुधारिवधोद्यतः ।।७७

यदि इन्द्र आदि समस्त देवों के द्वारा देवों के शत्रुगण दैत्य लोग मारे नहीं जाते हैं तो मुझ एक के द्वारा वे सब कैसे मारे जा सकते हैं ।७१। हे देवेश ! मैं तो अस्त्रों के विषय में भी अज्ञ हूँ और युद्धों के करने में भी पण्डित नहीं हूँ। बिना ही आयुधों वाला मैं किस तरह से समस्त देवों के शत्रु असुरों का अकेला हनन करूँगा ।७२। उस राम के द्वारा इस रीति से कहे गये देवेश्वर शम्भु ने कालाग्नि के समान प्रभा वाले सित अब अस्त्रों से परिपूर्ण शैव तेज उस महान आत्मा वाले को दे दिया था ।७३। उन्होंने सब शस्त्रों के अभिभावक अपने परशु को प्रदान कर प्रसन्न आत्मा वाले शिव ने समस्त देवगणों के सुनते हुए उस राम से कहा था ।७४। हे सौम्य ! मेरे प्रसाद से समस्त देवों के शत्रुओं का हनन करते हुए तुम्हारे अन्दर ऐसी ही शक्ति हो जायेगी जो सब अरिओं को दुरासद अर्थात् अतीव असह्य होगी ।७५। इसी एक मात्र आयुध को ग्रहण कर तुम चले जाओ और सब शत्रुओं के साथ युद्ध करो। तुम अपने ही आप स्वयं यथा रीति से युद्ध करने के कौशल को जान जाओगे ।७६। श्री वसिष्ठजी ने कहा—इस तरह से जब भगवान्

शिव के द्वारा राम से कहा गया तो उसने शम्भु को प्रणाम किया था और देवों के शत्रुओं के वध करने के लिये उद्यत होते हुए उस परशु का ग्रहण कर लिया था ।७७।

ततः स शुशुभे रामो विष्णुतेजोंऽशसंभवः ।
रुद्रभक्त्या समायुक्तो द्युत्येव सवितुर्महः ।।७८
सोऽनुज्ञातस्त्रिनेत्रेण देवैः सर्वैः समन्वितः ।
जगाम हंतुमसुरान्युद्धाय कृतनिश्चयः ।।७९
ततोऽभवत्पुनर्युद्धं देवानामसुरैः सह ।
त्रैलोक्यविजयोद्युक्तैराजन्नतिभयंकरम् ।।८०
अथ रामो महाबाहुस्तस्मिन्युद्धे सुदारुणे ।
क्रुद्धः परशुना तेन निजघान महासुरान् ।।८१
प्रहारैरणनिप्रख्यैर्निघ्नन्दैत्यान्सहस्रशः ।
चचार समरे राम; क्रुद्धः काल इवापरः ।।८२
हत्वा तु सकलान्दैत्यान्देवान्सर्वानहर्षयत् ।
क्षणेन नाशयामास रामः प्रहरतां वरः ।।८३
रामेण हन्यमानास्तु समस्ता दैत्यदानवाः ।
ददृशुः सर्वतो रामं हतशेषा भयान्विताः ।।८४
हतेष्वसुरसंघेषु विद्रुतेषु च कृत्स्नशः ।
राममामंत्र्य विबुधाः प्रययुस्त्रिदिवं पुनः ।।८५
रामोऽपि हत्वा दितिजानभ्यनुज्ञाप्यचामरान् ।
स्वमाश्रमं समापेदे तपस्यासक्तमानसः ।।८६
मृगव्याधप्रतिकृतिं कृत्वा शम्भोर्महामतिः ।
भक्त्या संपूजयामास स तस्मिन्नाश्रमे वशी ।।८७
गन्धैः पुष्पैस्तथा हृद्यैर्नैवेद्यैरभिवन्दनैः ।
स्तोत्रैश्च विधिवद्भक्त्या परां प्रीतिमुपानयत् ।।८८

इसके अनन्तर भगवान् विष्णु के तेज के अंश से समुत्पन्न वह राम

बहुत ही शोभा युक्त हो गया था जो कि रुद्र की शक्ति से समन्वित था। वह सूर्य की द्युति से दिन के ही समान देदीप्यमान हो गया था।७८। वह राम त्रिनेत्र प्रभु के द्वारा अनुज्ञा प्राप्त कर सब देवों के साथ ही युद्ध करने के लिए निश्चय करते हुए असुरों के हनन को वहाँ से चल दिया था।७९। हे राजन् ! इसके पश्चात् सम्पूर्ण त्रैलोक्य के विजय करने के लिए समुद्यत उन असुरों के साथ देवगणों का महान भयङ्कर युद्ध फिर हुआ था।८०। इसके उपरान्त महान बाहुओं वाले राम ने उस महान दारुण युद्ध में क्रुद्ध होकर उसी परशु से बड़े-बड़े असुरों का हनन किया था।८१। वज्र के सदृश प्रहारों से सहस्रों दैत्यों का संहार करते हुए राम ने परम क्रोधित होकर दूसरे काल के ही समान उस युद्ध क्षेत्र में सञ्चरण किया था।८२। प्रहार करने वालों में परम श्रेष्ठ राम ने समस्त दैत्यों का हनन करके एक ही क्षण में सुर शत्रुओं का नाश कर दिया था और देवों को परम हर्षित कर दिया था।८३। राम के द्वारा मारे जाते हुए सब दैत्यों और दानवों ने जो भी कुछ मरने से बच गये थे बहुत भय से युक्त होकर सभी ओर राम को ही देख रहे थे।८४। समस्त असुरों के समुदायों के निहत हो जाने पर और वहाँ से पूर्णतया सबके भाग जाने पर देवगणों ने राम को आमन्त्रित किया था और वे सब फिर स्वर्गलोक को चले गये थे।८५। राम भी दैत्यों का पूर्णतया निहनन करके सब देवों की अनुज्ञा प्राप्त करके तपश्चर्या में आसक्त मन वाले होते हुए अपने आश्रम में प्राप्त हो गये थे।८६। उस महामति राम ने भगवान् शम्भु की मृगों के हनन करने वाले व्याध की ही प्रतिमूर्ति बनाकर उस वशी ने उसी आश्रम में बहुत ही भक्ति के भाव से उसकी पूजा की थी।८७। पूजन पुष्प-गन्ध-सुन्दर नैवेद्य-अभिनन्दन और स्तोत्रों के द्वारा विधि पूर्वक किया गया था और परमाधिक प्रीति की प्राप्ति की थी।८८।

—×—

॥ परशुराम द्वारा द्विज-सुत रक्षण ॥

वसिष्ठ उवाच ततस्तद्भक्तियोगेन स प्रीतात्मा जगत्पतिः।
प्रत्यक्षमगमत्तस्य सर्वैः सह मरुद्गणैः ॥१
तं दृष्ट्वा देवदेवेशं त्रिनेत्रं चंद्रशेखरम्।
वृषेंवाहनं शम्भुं भूतकोटिसमन्वितम् ॥२
ससंभ्रमं समुत्थाय हर्षेणाकुललोचनः।

प्रणाममकरोद्भक्त्या शर्वाय भुवि भार्गवः ॥३
उत्थायोत्थाय देवेशं प्रणम्य शिरसासकृत् ।
कृतांजलिपुटो रामस्तुष्टाव च जगत्पतिम् ॥४
राम उवाच—नमस्ते देवदेवेश नमस्ते परमेश्वर ।
नमस्ते जगतो नाथ नमस्ते त्रिपुरान्तक ॥५
नमस्ते सकलाध्यक्ष नमस्ते भक्तवत्सल ।
नमस्ते सर्वभूतेश नमस्ते वृषभध्वज ॥६
नमस्ते सकलाधीश नमस्ते करुणाकर ।
नमस्ते सकलावास नमस्ते नीललोहि ॥७

श्री वसिष्ठजी ने कहा—इसके अनन्तर उसकी भक्ति भाव से प्रसन्न आत्मा वाले जगत् के स्वामी समस्त मरुद्गणों के सहित उसके समक्ष में प्रत्यक्ष रूप में हो गये थे ।१। तीन नेत्रों के धारण करने वाले चन्द्रशेखर और वृषभेन्द्र के वाहन वाले और करोड़ों भूतगणों से समन्वित देवों के भी देवेश्वर भगवान् शम्भु का राम ने दर्शन किया था ।२। शम्भु का दर्शन प्राप्त होते ही अत्यन्त हर्ष से समाकुलित लोचनों वाले राम ने सम्भ्रम के साथ उठकर (उस भार्गव ने) भूमि में पड़कर भक्तिभाव से भगवान शर्व के लिए प्रणाम किया था ।३। बारम्बार उठ उठकर शिर के बल से अनेक बार प्रणाम करके उन जगत् के स्वामी देवेश्वर को हाथ जोड़कर उनकी स्तुति की थी ।४। राम ने कहा—हे परमेश्वर ! आप तो देवों के भी देव हैं। आपकी सेवा में मेरा बार-बार प्रणिपात है । आप तो जगत् के नाथ हैं। हे त्रिपुरासुर के हनन करने वाले ! आपके लिए मेरा बारम्बार प्रणाम है ।५। हे भक्तों पर प्यार करने वाले ! आप तो इस सम्पूर्ण विश्व के अध्यक्ष हैं। आपकी सेवा में मेरा अनेक बार प्रणाम स्वीकृत होवे । हे सब भूतों के स्वामिन् ! हे वृषभध्वज ! आपके लिए मेरा प्रणाम है ।६। हे करुणानिधि ! आप तो सबके अधीश हैं। हे नील लोहित ! आप सबमें निवास करने वाले हैं। आपकी चरण-सेवा में मेरा बारम्बार प्रणिपात स्वीकार होवे ।७।

नमः सकलदेवारिगणनाशाय शूलिने ।
कपालिने नमस्तुभ्यं सर्वलोकैकपालिने ॥८

श्मशानवासिने नित्यं नमः कैलासवासिने ।
नमोऽस्तु पाशिने तुभ्यं कालकूटविपाशिने ॥९

विभवेऽमरवंद्याय प्रभवे ते स्वयंभुवे ।
नमोऽखिलजगत्कर्मसाक्षिभूताय शंभवे ॥१०

नमस्त्रिपथगाफेनभासिताद्धेन्दुमौलिने ।
महाभोगींद्रहाराय शिवाय परमात्मने ॥११

भस्मसंच्छन्नदेहाय नमोऽर्काग्नीदुचक्षुषे ।
कपर्दिने नमस्तुभ्यमंधकासुरमर्दिने ॥११

त्रिपुरध्वंसिने दक्षयज्ञविध्वंसिते नमः ।
गिरिजाकुचकाश्मीरविरंजितमहोरसे ॥१३

महादेवाय महते नमस्ते कृत्तिवाससे ।
योगिध्येयस्वरूपाय शिवायाचित्यतेजसे ॥१४

हे शम्भो ! आप समस्त लोकों के एक ही पालन करने वाले हैं। ऐसे कपास के धारण करने वाले और समस्त देवों के शत्रुओं के विनाश के लिए शूल के धारी आपके लिए मेरा प्रणिपात स्वीकृत होवे ।८। श्मशान भूमि में निवास करने वाले तथा कैलास पर रहने वाले आपके लिये नित्य ही मेरा प्रणाम है । पाश के धारी तथा महान् कालकूट विष के अशन करने वाले आपके लिए मेरा प्रणाम है ।९। विभव में देवों के द्वारा वन्दना करने के योग्य और प्रभव में स्वयम्भु तथा सम्पूर्ण जगत् के कर्मों के साक्षी स्वरूप शम्भु के लिए मेरा नमस्कार है ।१०। त्रिपथगा के फेनों के आभास वाले अर्धचन्द्र को मस्तक पर धारण किये हुए तथा महान् सर्पों के हार से भूषित परमात्मा भगवान् शिव के लिए मेरा प्रणाम स्वीकृत होवे ।११। श्मशान की भस्म से संछन्न देह वाले—सूर्य और चन्द्र अग्नि के धारण करने वाले चक्षुओं से समन्वित-कपर्दी और अन्धकासुर के मर्दन करने वाले आपके लिए मेरा बार-बार प्रणाम स्वीकृत होंगे ।१२। त्रिपुरासुर के विध्वंस करने वाले तथा प्रजापति दक्ष के महान् यज्ञ ध्वंस करने वाले और गिरिराज की पुत्री गौरी के स्तनों पर लगी हुई केशर के आश्लेष में विशेष रञ्जित महान् उरःस्थल वाले प्रभु के लिए मेरा नमस्कार है ।१३। गज चर्म के धारी—योगि जनों के द्वारा ध्यान करने के योग्य स्वरूप वाले—न चिन्तन करने के योग्य तेज से समन्वित महान् महादेव के लिए मेरा नमस्कार है ।१४।

स्वभक्तहृदयांभोजकर्णिकामध्यवर्त्तिने ।
सकलागमसिद्धांतसाररूपाय ते नमः ॥१५
नमो निखिलयोगेंद्रबोधनायामृतात्मने ।
शंकरायाखिलव्याप्तमहिम्ने परमात्मने ॥१६
नमः शर्वाय शांताय ब्रह्मणे विश्वरूपिणे ।
आदिमध्यांतहीनाय नित्यायाव्यक्तमूर्त्तये ॥१७
व्यक्ताव्यक्तस्वरूपाय स्थूलसूक्ष्मात्मने नमः ।
नमो वेदांतवेद्याय विश्वविज्ञानरूपिणे ॥१८
नमः सुरासुरश्रेणिमौलिपुष्पार्चितांघ्रये ।
श्रीकंठाय जगद्धात्रे लोककर्त्रे नमोनमः ॥१९
रजोगुणात्मने तुभ्यं विश्वसृष्टिविधायिने ।
हिरण्यगर्भरूपाय हराय जगदादये ॥२०
नमो विश्वात्मने लोकस्थितिव्यापारकारिणे ।
सत्वविज्ञानरूपाय पराय प्रत्यगात्मने ॥२१

अपने भक्तजनों के हृदय कमलों की कर्णिकाओं के मध्य में विराजमान रहने वाले और समस्त आगमों के सिद्धान्त स्वरूप वाले भगवान् शङ्कर के लिए प्रणिपात है ।१५। समस्त योगेन्द्रों को बोध देने वाले—अमृतात्मा-सबसे व्याप्त महिमा वाले परमात्मा भगवान् शङ्कर के लिए नमस्कार है ।१६। परम शान्त स्वरूप-विश्व के रूप वाले ब्रह्म-आदि मध्य और अन्त से रहित-नित्य और अव्यक्त मूर्त्ति से समन्वित भगवान् शिव के लिए मेरा अभिवादन है ।१७। व्यक्त (प्रकट) और अव्यक्त (अप्रकट) स्वरूप वाले तथा स्थूल और परम सूक्ष्म रूप वाले शम्भु के लिये मेरा प्रणाम है । वेदान्त शास्त्र के द्वारा ज्ञान प्राप्त करने के योग्य और विश्व के विज्ञान रूप के धारी शिव के लिए नमस्कार है ।१८। समस्त सुरगण और असुरों के मस्तकों में संलग्न पुष्पों से मस्तकों को चरण कमलों में झुकाने पर समर्चित पदों वाले-जगत् के धाता और सब लोकों को रचना करने वाले भगवान् श्रीकण्ठ के लिए बारम्बार नमस्कार निवेदित है ।१९। इस सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि की रचना करने वाले रजोगुण के स्वरूप से संयुत-इस जगत् के आदि स्वरूप-

हिरण्यगर्भ रूप भगवान् हर के लिये नमस्कार है।२०। सम्पूर्ण लोकों की स्थिति के वास्ते व्यापार करने वाले-सत्व विज्ञान के स्वरूप से समन्वित प्रत्यगात्मा—पर और विश्वात्मा के लिए मेरा प्रणाम निवेदित है।२१।

तमोगुणविकाराय जगत्संहारकारिणे ।
कल्पान्ते रुद्ररूपाय परापरविदे नमः ॥२२
अविकाराय नित्याय नमः सदसदात्मने ।
बुद्धिबुद्धिप्रबोधाय बुद्धींद्रियविकारणे ॥२३
वस्वादित्यमरुद्भिश्च साध्यरुद्राश्विभेदतः ।
यन्मायाभिन्नमतयो देवास्तस्मै नमोनमः ॥२४
अविकारमजं नित्यं सूक्ष्मरूपमनोपमम् ।
तव यत्तन्न जानंति योगिनोऽपि सदाऽमलाः ॥२५
त्वामविज्ञाय दुर्ज्ञेयं सम्यग्ब्रह्मादयोऽपि हि ।
संसरंति भवे नूनं न तत्कर्मात्मकाश्चिरम् ॥२६
यावन्नोपैति चरणौ तवाज्ञानविघातिनः ।
तावद्भ्रमति संसारे पण्डितोऽचेतनोऽपि वा ॥२७
स एव दक्षः स कृती स मुनिः स च पंडितः ।
भवतश्चरणांभोजे येन बुद्धिः स्थिरीकृता ॥२८

तमोगुण के विकार रूप वाले-इस जगत् के संहार कर्त्ता—कल्प के अन्त में रुद्र रूप वाले और पर तथा अपर के ज्ञाता भगवान् शङ्कर के लिए नमस्कार है।२२। विकारों से रहित-नित्य-सत् और असत् रूप वाले बुद्धि की बुद्धि के प्रबोध रूप तथा बुद्धि और इन्द्रियों में विकार करने वाले शम्भु के लिए प्रणाम है।२३। वसु-आदित्य और मरुद्गणों से तथा साध्य रुद्र और अश्विनीकुमार-इनके भेदों से देवगण भी जिस की माया से भिन्न मति वाले होते हैं उन परम देव शिव के लिए नमस्कार है और पुनः नमस्कार है।२४। आपके जिस विकार से रहित-अजन्मा-नित्य और अनुपम सूक्ष्म स्वरूप को सदा अमल योगीजन भी नहीं जानते हैं।२५। ब्रह्मा आदि भी दुःख से जानने के योग्य आपको न जानकर निश्चय ही इस संसार में संसरण किया करते हैं और तत्कर्मक चिरकाल तक नहीं रहते हैं।२६। अज्ञान के विघात

करने वाले आपके जब तक चरण कमलों की प्राप्ति नहीं करता है अर्थात् आपके चरणों का समाश्रय नहीं ग्रहण करता है तब तक चाहे कोई पण्डित हो अथवा अज्ञानी हो इस संसार में भ्रमण किया करता है।२७। इस भूमण्डल में वह ही परम दक्ष है—कृती है—मुनि है और वही महान् पण्डित है जिसने आपके चरण कमलों में अपनी बुद्धि को स्थिर करके लगा दिया है।२८।

सुसूक्ष्मत्वेन गहनः सद्भावस्ते त्रयीमयः ।
विदुषामपि मूढेन स मया ज्ञायते कथम् ॥२९
अशब्दगोचरत्वेन महिम्नस्तव सांप्रतम् ।
स्तोतुमप्यनलं सम्यक्त्वामहं जडधीर्यतः ॥३०
तस्मादज्ञानतो वापि मया भक्त्यैव संस्तुतः ।
प्रीतश्च भव देवेश तनु त्वं भक्तवत्सलः ॥३१
वसिष्ठ उवाच—इति स्तुतस्तदा तेन भक्त्या रामेण शंकरः ।
मेघगंभीरया वाचा तमुवाच हसन्निव ॥३२
भगवानुवाच—रामाहं सुप्रसन्नोऽस्मि शौर्यशालितया तव ।
तपसा मयि भक्त्या च स्तोत्रेण च विशेषतः ॥३३
वरं वरय तस्मात्त्वं यद्यदिच्छसि चेतसा ।
तुभ्यं तत्तदशेषेण दास्याम्यहमशेषतः ॥३४
वसिष्ठ उवाच—इत्युक्तो देवदेवेन तं प्रणम्य भृगूद्वहः ।
कृतांजलिपुटो भूत्वा राजन्निदमुवाच ह ॥३५

आपका त्रयीमय सद्भाव परम सूक्ष्म होने से अत्यन्त गहन है और बड़े-बड़े विद्वानों के लिए भी अतीव गहन होता है वह आपका सद्भाव महामूढ मेरे द्वारा कैसे जाना जाता है।२९। इस समय में आपकी महिमा शब्दों के द्वारा गोचर न होने के कारण जड़ बुद्धि वाला आपकी भली भाँति से स्तुति करने में भी असमर्थ है।३०। इससे अज्ञान से मैंने केवल भक्ति के भाव से ही आपकी संस्तुति की है। हे देवेश्वर ! आप मुझ पर प्रीतिमान् हो जाइए क्योंकि आप तो अपने भक्तों पर प्यार करने वाले हैं।३१। श्री वसिष्ठ जी ने कहा—इस प्रकार से राम के द्वारा भक्ति की भावना से उस

समय में स्तुति की गयी थी । तब भगवान् शङ्कर हंसते हुए मेघ के समान परम गम्भीर वाणी से उससे बोले थे ।३२। भगवान् ने कहा—हे राम ! आपकी शौयशालिता से मैं आप पर बहुत ही प्रसन्न हो गया हूं । आपकी तपश्चर्या से—मेरे अन्दर अनन्य भक्ति के भाव से और विशेष रूप से आपके द्वारा किये गये स्तोत्र से मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ हूं ।३३। इस कारण से आप किसी वरदान का वरण कर लो जो-जो भी आप अपने चित्त से चाहते हो । वही मैं आपको पूर्ण रूप से सभी कुछ दे दूंगा ।३४। वसिष्ठ जी ने कहा—जब देवों के देवेश्वर ने उस राम से इस रीति से कहा था तो उस भृगुकुल के उद्वहन करने वाले ने उनके चरणों में प्रणाम किया था और हे राजन् ! उसने दोनों करों को जोड़कर प्रभु से यह कहा था ।३५।

यदि देव प्रसन्नस्त्वं वरार्होऽस्मि च यद्यहम् ।
भवतस्तदभीप्सामि हेतुमस्त्राण्यशेषतः ।।३६
अस्त्रे शस्त्रे च शास्त्रे च न मत्तोऽभ्यधिको भवेत् ।
लोकेषु मां रणे जेता न भवेत्त्वत्प्रसादतः ।।३७
वसिष्ठ उवाच—तथेत्युक्त्वा ततः शंभुरस्त्रशस्त्राण्यशेषतः ।
ददौ रामाय सुप्रीतः समंत्राणि क्रमान्नृप ।।३८
सप्रयोगं ससंहारमस्त्रग्रामं चतुर्विधम् ।
प्रसादाभिमुखो रामं ग्राहयामास शंकरः ।।३९
असंगवेगं शुभ्राश्वं सुध्वजं च रथोत्तमम् ।
इषुधी चाक्षयशरौ ददौ रामाय शंकरः ।।४०
अभेद्यमजरं दिव्यं दृढज्यं विजयं धनुः ।
सर्वशस्त्रसहं चित्रं कवचं च महाघनम् ।।४१
अजेयत्वं च युद्धेषु शौर्यं चाप्रतिमं भुवि ।
स्वेच्छया धारणे शक्ति प्राणानां च नराधिप ।।४२

हे देवेश्वर ! यदि आप मेरे ऊपर परम प्रसन्न हैं और यदि मैं आपके द्वारा वरदान देने के योग्य हूं तो मैं आपसे उस हेतु को और सम्पूर्ण अस्त्रों को चाहता हूं ।३६। मैं यही चाहता हूं कि अस्त्र विद्या में—शस्त्रों के ज्ञान में और शास्त्रों की जानकारी में कोई भी मुझसे अधिक ज्ञाता न होवे मैं यह भी चाहता हूं कि आपके प्रसाद से लोकों में युद्ध में कोई भी जीतने

वाला न होवे ।३७। वसिष्ठ जी ने कहा—भगवान् शंकर ने कहा था कि जो भी तुमने चाहा है, सभी तुम्हारी इच्छा पूरी हो जायगी। इसके उपरान्त उन्होंने पूर्ण अस्त्र और शस्त्र भी हे नृप ! मन्त्रों के सहित क्रम से परम प्रसन्न होते हुए राम के लिये प्रदान कर दिये थे ।३८। भगवान् शंकर ने प्रयोग करने के और संहार करने के साथ चार प्रकार के अस्त्रों के समुदाय को प्रसाद से परिपूर्ण होकर राम को ग्रहण करा दिया था ।३९। भगवान् शंकर ने असङ्ग वेग से समन्वित—शुभ्र रङ्ग वाले अश्वों से युक्त और सुन्दर ध्वजा वाले उत्तम रथ-धनुष और अक्षर शर राम के लिए दिये थे ।४०। एक ऐसा धनुष भी दिया था जो भेदन करने के अयोग्य—जीर्ण न होने वाला-परम सुहृढ ज्या (प्रत्यञ्चा) वाला और विजय करने वाला था। तथा सभी प्रकार के शस्त्रों के घात को सहन करने वाला-परम अद्भुत महाघन सम्पन्न एक कवच भी प्रदान किया था ।४१। हे नराधिप ! इसके अतिरिक्त भगवान् शंकर ने उस अपने परम भक्त राम के लिए युद्धों में अजेय होना-भूलोक में अनुपम शूर वीरता और अपनी ही इच्छा से प्राणों के धारण करने में शक्ति भी प्रदान की थी ।४२।

ख्याति च बीजमन्त्रेण तन्नाम्नां सर्वलौकिकीम् ।
तपःप्रभावं च महत्प्रददौ भार्गवाय सः ॥४३
भक्ति चात्मनि रामाय दत्वा राजन्यथोचिताम् ।
सहितः सकलैर्भूश्चामरैश्चन्द्रशेखरः ॥४४
तेनैव वपुषा शंभुः क्षिप्रमंतरधाद्धरः ।
कृतकृत्यस्ततो रामो लब्ध्वा सर्वमभीप्सितम् ॥४५
अदृश्यतां गते शर्वे महोदरमुवाच ह ।
महोदर मदर्थे त्वमिदं सर्वमशेषतः ॥४६
रथचापादिकं तावत्परिरक्षितुमर्हसि ।
यदा कृत्यं ममैतेन तदानीं त्वं मया स्मृतः ।
रथचापादिकं सर्वं प्रहिणु त्वं मदंतिकम् ॥४७
वसिष्ठ उवाच—तथेत्युक्त्वा गते तस्मिन्भृगुवर्यो महोदरे ।
कृतकृत्यो गुरुजनं द्रष्टुं गंतुमियेष सः ॥४८

गच्छन्नथ तदासौ तु हिमाद्रिवनगह्वरे ।
विवेश कंदरं रामो भाविकर्मप्रचोदितः ॥४९

उन प्रभु शिव ने भार्गव के लिए उसके नाम बीजमन्त्र के द्वारा सम्पूर्ण लोक में होने वाली ख्याति और महान् तप का प्रभाव दिया था ।४३। समस्त भूतगण और देवगण के सहित भगवान् चन्द्रशेखर ने हे राजन् ! अपने में यथोचित होने वाली भक्ति भी राम को प्रदान की थी ।४४। फिर उसी शरीर के द्वारा ही भगवान् शिव शीघ्र ही अन्तर्हित हो गये थे । फिर वह राम भी अपना सम्पूर्ण अभीप्सित प्राप्त करके कृतकृत्य हो गया था ।४५। भगवान् शंकर के अदृश्य हो जाने पर राम ने महोदर से कहा था । हे महोदर ! इन वस्तुओं को पूर्ण रूप से आप मेरे लिये अपने अधिकार में रखिए ।४६। आप ही इन रथ और चाप आदि की परीक्षा करने के लिए परम योग्य होते हैं । जिस समय में इन समस्त सामग्रियों से मुझे कार्य होगा उसी समय में मेरे द्वारा आप का स्मरण किया जायगा । तब रथ और चाप आदि सब सामान आप मेरे समीप में भेज दीजिएगा ।४७। वसिष्ठ जी ने कहा—महोदर ने कहा था कि मैं इसी प्रकार से सब कार्य करूँगा—यह कहकर उस महोदर के वहाँ से चले जाने पर भृगुवर राम कृत कृत्य हो गया था और फिर उसने अपने गुरुजन के दर्शन प्राप्त करने की इच्छा की थी। ।४८। उस समय में गमन करते हुए आगे आने वाले कर्मों के करने के लिए प्रेरित होकर परम गहन हिमवान् के वन में एक कन्दरा थी उस में राम ने प्रवेश किया था ।४९।

स तत्र ददृशे बालं धृतप्राणमनुद्रुतम् ।
व्याघ्रेण विप्रतनयं रुदंतं भीतभीतवत् ॥५०
दृष्ट्वानुकंपहृदयस्तत्परित्राणकातरः ।
तिष्ठतिष्ठेति तं व्याघ्रं वदन्नुच्चैरथान्वयात् ॥५१
तमनुद्रुत्य वेगेन चिरादिव भृगूद्वहः ।
आससाद वने घोरं शार्दूलमतिभीषणम् ॥५२
व्याघ्रेणानुद्रुतः सोऽपि पलायन्वनगह्वरे ।
निपपात द्विजसुतस्त्रस्तः प्राणभयातुरः ॥५३
रामोऽपि क्रोधरक्ताक्षो विप्रपुत्रपरीप्सया ।

तृणमलं समादाय कुशास्त्रेणाभ्यमंत्रयत् ॥५४
तावत्तरक्षुर्बलवानाद्रवत्पतितं द्विजम् ।
दृष्ट्वा ननाद रुभृशं रोदसी कम्पयन्निव ॥५५
दग्ध्वा त्वस्त्राग्निना व्याघ्रं प्रहरन्तं नखांकुरैः ।
अकृतव्रणमेवाशु मोक्षयामास तं द्विजम् ॥५६

वहाँ पर उस राम ने एक ब्राह्मण के पुत्र को देखा था जो बालक अवस्था का था और एक व्याघ्र उसके पीछे आते हुए खदेड़ रहा था जिसके कारण वह प्राण तो धारण किये हुए था किन्तु अत्यन्त डरे हुए की भाँति रुदन कर रहा था ।५०। अपने हृदय में दया का भाव रखने वाला राम उसके परित्राण करने के लिए बहुत ही कातर हो गया था । उसने उस बालक के पीछे दौड़कर आते हुए व्याघ्र से बहुत ऊँची आवाज में 'ठहर जा-ठहर जा'—यह कहते हुए वह उस व्याघ्र के पीछे चल दिया था ।५१। बड़े ही वेग से उसके पीछे प्रधावित होकर उस भृगुकुल के उद्वहन करने वाले राम ने जैसे कुछ विलम्ब हो गया हो उस बन में अत्यन्त भयानक और घोर उस शार्दूल के पास अपनी पहुँच कर ली थी ।५२। उस परम गहन-गम्भीर वन में जिसके पीछे व्याघ्र दौड़ा चला आ रहा था वह ब्राह्मण का पुत्र अपने प्राणों की हानि के भय से बहुत ही आतुर होता हुआ अत्यधिक डरा हुआ था और दौड़ते हुए वह वहाँ पर भूमि में गिर गया था ।५३। राम भी ब्राह्मण के पुत्र की रक्षा की इच्छा से क्रोध से लाल नेत्रों वाला हो गया था और फिर उसने तृण मूल को ग्रहण कर कुशास्त्र से अभिमन्त्रित किया था ।५४। उसी समय के बीच में उस बलवान् व्याघ्र ने उस गिरे हुए द्विज पुत्र पर आक्रमण कर दिया था । उस दृश्य को देखकर राम ने अत्यन्त अधिक ध्वनि भूमि और आकाश को कँपाते हुए की थी अर्थात् घोरगर्जना की थी जिससे मानो भूमि और अन्तरिक्ष भी कम्पित हो गये थे ।५५। अपने नखों के अंकुरों द्वारा प्रहार करते हुए व्याघ्र को अस्त्राग्नि से भस्मीभूत करके उस विप्र सुत को छुड़ा दिया था जिसके शरीर में शीघ्रता से कोई नाथ के नखों से व्रण नहीं हो पाये थे ।५६।

सोऽपि ब्रह्माग्निनिर्दग्धदेहः पाप्मा नभस्तले ।
गान्धर्वं वपुरास्थाय राममाहेति सादरम् ॥५७
विप्रशापेन भो पूर्वमहं प्राप्तस्तरक्षुताम् ।

गच्छामि मोचितः शापात्त्वयाऽहमधुना दिवम् ॥५८
इत्युक्त्वा तु गते तस्मिन्रामो वेगेन विस्मितः ।
पतितं द्विजपुत्रं तं कृपया व्यवपद्यत ॥५९
माभैरेवं वदन्वाणीमारादेव द्विजात्मजम् ।
परामृशत्तदंगानि शनैरुज्जीवयन्नृप ॥६०
रामेणोत्थापितश्चैवं स तदोन्मील्य लोचने ।
विलोकयन्ददर्शाग्रे भृगुश्रेष्ठमवस्थितम् ॥६१
भस्मीकृतं च शार्दूलं दृष्ट्वा विस्मयमागतः ।
गतभीराह कस्त्वं भोः कथं वेह समागतः ॥६२
केन चायं निहंतुं मामुद्यतो भस्मसात्कृतः ।
तरक्षुर्भीषणाकारः साक्षान्मृत्युरिवापरः ॥६३

वह व्याघ्र भी महा पापी ब्रह्माग्नि से दग्ध शरीर वाला आकाश में एक गन्धर्व का शरीर धारण करके बड़े ही आदर के साथ राम से बोला था ।५७। हे राम ! एक विप्र के शाप से पूर्व में इस तरक्षु के स्वरूप को प्राप्त करने वाला हुआ था । इस समय में आपके द्वारा उस शाप से छुड़ाया गया मैं अब स्वर्गलोक में गमन कर रहा हूँ ।५८। इतना ही कहकर बड़े वेग से उसके चले जाने पर राम को बड़ा विस्मय हुआ था और फिर दया के वशीभूत होकर वह उस भूमि पर पड़े हुए द्विज पुत्र के पास पहुँचा था ।५९। हे नृप ! समीप में ही उस द्विज के पुत्र से 'डरो मत'—यह वाणी बोलते हुए धीरे-धीरे उसको उज्जीवित करते हुए उस बालक के अङ्गों को सहलाया ।६०। इस प्रकार से राम के द्वारा उठाये हुए उसने उस समय में अपने नेत्रों को खोला था । इधर-उधर अवलोकन करते हुए उसने अपने सामने अवस्थित भृगुकुल में परम श्रेष्ठ राम को देखा था ।६१। और अपने समीप में ही भस्मीभूत शार्दूल को देखकर उस बालक को बड़ा भारी विस्मय हुआ था । जब उसका भय बिल्कुल समाप्त हो गया था तो उसने राम से कहा था—आप कौन हैं अथवा यहाँ पर आप कैसे समागत हुए हैं ? ।६२। और मुझको मारने के लिए उद्यत यह शार्दूल किसके द्वारा निर्दग्ध करके भस्मीभूत कर दिया गया है ? यह तरक्षु तो महा भीषण आकार वाला साक्षात् दूसरे काल के ही सदृश था ।६३।

भयसंमूढमनसो ममाद्यापि महामते ।
हतेऽपि तस्मिन्नखिला भान्ति वै तन्मया दिशः ॥६४
त्वामेव मन्ये सकलं पिता माता सुहृद्गुरु ।
परमापदमापन्नं त्वं मां समुपजीवयन् ॥६५
आसीन्मुनिवरः कश्चिच्छांतो नाम महातपाः ।
पुत्रस्तस्यास्मितीर्थार्थी शालग्राममयासिषम् ॥६६
तस्मात्संप्रस्थितश्शैलं दिदृक्षुर्गंधमादनम् ।
नानामुनिगणैर्जुष्टं पुण्यं बदरिकाश्रमम् ॥६७
गंतुकामोऽपहायाहं पंथानं तु हिमाचले ।
प्रविशन्गहनं रम्यं प्रदेशालोककाकुलम् ॥६८
दिशं प्राचीं समुद्दिश्य क्रोशमात्रमयासिषम् ।
ततो दिष्टवशेनाहं प्राद्रवं भयपीडितः ॥६९
पतितश्च त्वया भूयो भूमेरुत्थापितोऽधुना ।
पित्रेव नितरां पुत्रः प्रेम्णात्यर्थं दयालुना ।
इत्येष मम वृत्तांतः साकल्येनोदितस्तव ॥७०

हे महती मति वाले ! अधिक भय के कारण संमूढ मन वाले मुझे अभी भी उसके मृत हो जाने पर भी समस्त दिशाएँ उसी से परिपूर्ण प्रतीत हो रही हैं अर्थात् सभी ओर मुझे वह ही दिखलाई दे रहा है ।६४। मुझे तो इस समय में ऐसा भान हो रहा है और मैं आपको ही अपना माता-पिता-सुहृद् और गुरु सब कुछ मानता हूँ क्योंकि मैं तो परमाधिक आपदा में फँस चुका था और आपने ही मुझको भली-भाँति जीवन दान दिया है ।६५। कोई एक महान तपस्वी शान्त नामधारी श्रेष्ठ मुनि थे । मैं उनका ही पुत्र हूँ । मैं तीर्थाटन के प्रयोजन वाला शालग्राम के लिए गया था ।६६। वहाँ से मैंने फिर प्रस्थान किया था और मैं गन्धमादन पर्वत के देखने की इच्छा वाला हो गया था । अनेक महामुनियों के समुदायों के द्वारा सेवित परम पुनीत बदरिकाश्रम को गमन करने की कामना वाला मैं हो गया था । फिर हिमवान् जैसे महा विशाल पर्वत में समुचित मार्ग को छोड़कर परम रम्य और प्रदेश के आलोकन में आकुल गहन वन में प्रवेश कर रहा था ।६७-६८। पूर्व

दिशा कर उद्देश्य करके एक कोश भर हो गया था। वहाँ पर भाग्य के वशीभूत होकर मैं भय से उत्पीड़ित होकर भाग दिया था।६९। मैं फिर भूमि पर गिर गया था। आपने कृपा करके इस समय मैं फिर मुझे भूमि से उठाया था। दयालु आपने पिता की ही भाँति मेरे पर कृपा की थी जैसे पिता अपने पुत्र पर अत्यधिक प्रेम किया करता है। मेरा यही इतना वृत्तान्त है जो कि मेरे द्वारा पूर्ण रूप से आपके समक्ष में कह दिया गया है।७०।

वसिष्ठ उवाच—इति पृष्टस्तदा तेन स्ववृत्तांतमशेषतः।
कथयामास राजेंद्र रामस्तस्मै यथाक्रमम् ॥७१
ततस्तौ प्रीतिसंयुक्तौ कथयंतौ परस्परम्।
स्थित्वा नाति चिरं कालमथ गंतुमियेष सः ॥७२
अन्वीयमानस्तेनाथ रामस्तस्माद्गुहामुखात्।
निष्क्रम्यावसथं पित्रोः स प्रतस्थे मुदान्वितः ॥७३
अकृतव्रण एवासौ व्याघ्रेण भुवि पातितः।
रामेण रक्षितश्चाभूद्यस्माद्व्याघ्रं विनिघ्नता ॥७४
तस्मात्तदेव नामास्य बभूव प्रथितं भुवि।
विप्रपुत्रस्य राजेंद्र तदेतस्सोऽकृतव्रणः ॥७५
तदा प्रभृति रामस्य च्छायेवातपगा भुवि।
बभूव मित्रमत्यर्थं सर्वावस्थासु पार्थिव ॥७६
स तेनानुगतो राजन्भृगोरासाद्य सन्निधिम्।
दृष्ट्वा ख्याति च सोऽभ्येत्य विनयेनाभ्यवादयत् ॥७७

श्री वसिष्ठजी ने कहा—हे राजेन्द्र ! उस समय में इस प्रकार से उस विप्रसुत के द्वारा पूछे गये रामने कहकर सुना दिया था।७१। इसके अनन्तर वे दोनों परस्पर में प्रीति से समन्वित होकर वार्त्तालाप करते रहे थे। अत्यधिक कालतक नहीं न ठहरकर उसने गमन करने की इच्छा की थी।७२। राम भी उसके पश्चात् उसी के पीछे गमन करने वाला हो गया था और उस गुफा के मुख से निकलकर बड़े आनन्द के साथ अपने माता-पिता के निवास स्थान की ओर उसने भी प्रस्थान कर दिया था।७३। व्याघ्र के द्वारा भूमि में गिरा भी दिया गया था तो भी उसके देह में कोई भी कहीं

पर व्रण नहीं हुआ था। उस विनिहनन करने वाले व्याघ्र से वह राम के द्वारा सुरक्षित हुआ था ।७४। हे राजेन्द्र ! इसी कारण से इसका नाम भूमण्डल में प्रथित हो गया था फिर उस विप्र के पुत्र का अकृत व्रण ही नाम पड़ गया था ।७५। हे पार्थिव ! तभी से लेकर आतप के पीछे गमन करने वाली छाया के ही समान वह भूमि में सभी प्रकार की अवस्थाओं में उसका अत्यधिक प्रिय मित्र हो गया था ।७६। हे राजन् भृगु की सन्निधि को प्राप्त करके वह उसी के साथ अनुगत हो गया था और ख्याति को देखकर वह सामने उपस्थित हुआ था तथा विनय के साथ उसने अभिवादन किया था ।७७।

स ताभ्यां प्रियमाणाभ्यामाशीर्भिरभिनंदितः ।
दिनानि कतिचित्तत्र न्यवसत्तत्प्रियेप्सया ॥७८
ततस्तयोरनुमते च्यवनस्य महामुनेः ।
आश्रमं प्रतिचक्राम शिष्यसंघैः समावृतम् ॥७९
नियंत्रितांतः करणं तं च संशांतमानसम् ।
सुकन्या चापि तद्भार्यामवंदत महामनाः ॥८०
ताभ्यां च प्रीतियुक्ताभ्यां रामः समभिनंदितः ।
और्वाश्रमं समापेदे द्रष्टुकामस्तपोनिधिम् ॥८१
तं चाभिवाद्य मेधावी तेन च प्रतिनंदितः ।
उवास तत्र तत्प्रीत्या दिनानि कतिचिन्नृप ॥८२
विसृष्टस्तेन शनकैर्ऋचीकभवनं मुदा ।
प्रतस्थे भार्गवः श्रीमानकृतव्रणसंयुतः ॥८३
अवंदत पितुः पित्रोर्नत्वा पादौ पृथक् पृथक् ।
तौ च तं नृपसंहृष्टाश्चाशिषा प्रत्यनन्दताम् ॥८४

परमप्रीति से समन्वित उन दोनों के द्वारा वह आशीर्वचनों से अभिनन्दित किया गया था। उसके प्रिय करने की अभिलाषा से उसने वहाँ पर कुछ दिन तक निवास किया था ।७८। इसके उपरान्त उन दोनों की अनुमति से शिष्यों के समुदायों से समावृत महामुनि च्यवन के आश्रम की ओर वह चला गया था ।७९। उस महान मन वाले ने अपने अन्तः-करण को नियन्त्रण में रहने वाले और परम शान्त मन वाले उस महा मुनि की तथा सुकन्या

नाम धारिणी जो उनकी भार्या थी उसकी वन्दना की थी ।८०। परम प्रीति से सुसम्पन्न उन दोनों के द्वारा राम का भली-भाँति अभिनन्दन किया गया था। तप की निधि का दर्शन करने की कामना वाले उसने और्व के आश्रम को प्राप्त किया था ।८१। हे नृप ! मेधावी राम ने उनका अभिवादन किया था और और्व महामुनि के द्वारा राम का अभिनन्दम किया गया था। वहाँ पर उनकी प्रीति होने से वह कतिपय दिनों तक रहा था ।८२। फिर धीरे से आनन्द के साथ उस मुनि के द्वारा राम की विदाई की गयी थी और अकृत व्रण के ही सहित श्रीमान् भार्गव ने वहाँ से प्रस्थान किया था ।८३। पिता के पिता-माता के चरणों में पृथक्-पृथक् बन्दना की थी। हे नृप ! उन दोनों ने उसका बड़े ही हर्ष से अभिनन्दन किया था ।८४।

पृष्टश्च ताभ्यामखिलं निजवृत्तमुदारधीः ।
कथयामास राजेंद्र यथावृत्तमनुक्रमात् ।।८५
स्थित्वा दिनानि कतिचित्तत्रापि तदनुज्ञया ।
जगामावसथं पित्रोर्मुदा परमया युतः ।।८६
अभ्येत्य पितरौ राजन्नासीनावाश्रमोत्तमे ।
अवंदत तयोः पादौ यथावद्भृगुनन्दनः ।।८७
पादप्रणामावनतं समुत्थाप्य च सादरम् ।
आश्लिष्य नेत्रसलिलैर्नंदंतौ पर्यषिचताम् ।।८८
आशीर्भिरभिनन्द्यांके समारोप्य मुहुर्मुखम् ।
वीक्षंतौ तस्य चांगानि परिस्पृश्यापतुर्मुदम् ।।८९
अपृच्छतां च तौ रामं कालेनैतावता त्वया ।
किं कृतं पुत्र को वायं कुत्र वा त्वमुपस्थितः ।।९०
कथं सह सकाशे त्वमास्थितो वात्र वागतः ।
त्वयैतदखिलं वत्स कथ्यतां तथ्यमावयोः ।।९१

फिर उन दोनों के द्वारा उदार बुद्धि वाले उससे अपना वृत्तान्त पूर्ण रूप से पूछा गया था। हे राजेन्द्र ! जो कुछ भी जिस तरह से हुआ था वह अनुक्रम के साथ राम ने कहा था ।८५। वहाँ पर भी कुछ दिन तक स्थित रहकर फिर उनकी अनुज्ञा से परम आनन्द से संयुत होकर माता-पिता के

निवास स्थान को वह चला गया था ।८६। हे राजन् ! उस परमोत्तम आश्रम में माता-पिता विराजमान थे । उनके सामने उपस्थित होकर भृगुनन्दन ने उन दोनों के चरणों में यथोचित रीति से वन्दना की थी ।८७। उन्होंने अपने चरणों में मस्तक झुकाने वाले राम को आदर के साथ उठाकर आश्लेषण किया था और परमानन्दित होते हुए अपने वात्सल्य के कारण आये हुए प्रेमाश्रुओं से उसका परिषिञ्चन किया था ।८८। आशीर्वादों के द्वारा अभिनन्दन करके उन्होंने अपनी गोद में बिठा लिया था और बारम्बार उस अपने पुत्र के मुख का अवलोकन करते हुए उसके अङ्गों का परिस्पर्श करके परमाधिक आनन्द को प्राप्त हुए थे ।८९। उन दोनों ने राम से पूछा था हे पुत्र ! इतने लम्बे समय तक आपने क्या किया था और यह दूसरा कौन तुम्हारे साथ में है तथा तुम कहाँ इतने समय पर्यन्त रहे थे ? ।९०। किस प्रकार से तुम सकाश में साथ समास्थित हुए थे अथवा यहाँ पर कहाँ से इस समय में समागत हुए थे ? हे वत्स ! आपको हम दोनों के सामने जो भी सत्य-सत्य हो वह सब बतला देना चाहिए ।९१।

—×—

कार्तवीर्य का जमदग्नि आश्रम में आगमन

वशिष्ठ उवाच—इति पृष्टस्तदा ताभ्यां रामो राजन्कृतांजलिः।
तयोरकथयत्सर्वमात्मना यदनुष्ठितम् ॥१
निदेशाद्वै कुलगुरोस्तपश्चरणमात्मनः ।
शंभोर्निदेशात्तीर्थानामटनं च यथाक्रमम् ॥२
तदाज्ञयैव दैत्यानां वधं चामरकारणात् ।
हरप्रसादादस्त्रापि ह्यकृतव्रणदर्शनम् ॥३
एतत्सर्वमशेषेण यदन्यच्चात्मना कृतम् ।
कथयामास तद्रामः पित्रोः संप्रीयमाणयोः ॥४
तौ च तेनोदितं सर्वं श्रुत्वा तत्कर्मविस्तरम् ।
हृष्टौ हर्षांतरं भूयो राजन्नाप्नुवतावुभौ ॥५
एवं पित्रोर्महाराज शुश्रूषां भृगुपुंगवः ।
प्रकुर्वंस्तद्धियात्मा भ्रातॄणां चाविशेषतः ॥६

एतस्मिन्नेव काले तु कदाचिद्धैहयेश्वरः ।
इयेष मृगयां गंतुं चतुरंगबलान्वितः ॥७

श्री वसिष्ठ जी ने कहा—हे राजन् ! जब उस समय में इस प्रकार से राम से पूछा गया था तो उसने अपने दोनों करों को जोड़कर उन दोनों के समक्ष में वह सम्पूर्ण अपना घटित घटनाओं का इतिवृत्त कह दिया था जो भी कुछ अपने द्वारा अब तक किया था ।१। अपने कुलदेव की आज्ञा से अपनी तपश्चर्या का समाचरण तथा भगवान शम्भु के निर्देश से यथाक्रम तीर्थों का पर्यटन जो किया था—वह सभी कुछ निवेदित कर दिया था ।२। फिर शंकर की ही आज्ञा से देवों की सुरक्षा करने के कारण से जो दैत्यों का वध किया था वह भी सुना दिया था। यहाँ पर भी भगवान हर के प्रसाद से ही अकृत व्रण का दर्शन हुआ था ।३। यह सम्पूर्ण पूर्णतया जो हुआ था वह और जो अपने द्वारा कुछ भी किया गया था वह सब परम प्रसन्न माता-पिता के सामने राम ने कहकर सुना दिया था ।४। उन दोनों ने राम के द्वारा कहा हुआ सब उसके कर्मों का विस्तार श्रवण किया था और परम प्रसन्न हुए थे। हे राजन् ! फिर वे दोनों एक दूसरे हर्ष को भी प्राप्त हुए थे ।५। हे महाराज ! इस रीति से उस भृगुकुल में परम श्रेष्ठ राम ने अपने माता-पिता की शुश्रूषा करते हुए पूर्णतया उनके प्रति अपने कर्त्तव्य का सविनय पालन किया था और अपने भाइयों की भी सेवा उसी भाव से उसने की थी ।६। इसी समय में किसी वक्त हैहयेश्वर चतुरङ्गिणी सेना के सहित मृगया करने को गमन करने वाला हुआ था ।७।

संरज्यमाने गगने बंधूककुसुमारुणैः ।
ताराजालद्युतिहरैः समंतादरुणांशुभिः ॥८
मंदं वीजति प्रोद्धूतकेतकीवनराजिभिः ।
प्राभातिके गंधवहे कुमुदाकरसंस्पृशि ॥९
वयांसि नर्मदातीरतरुनीडाश्रयेषु च ।
व्याहरन्स्वाकुला वाचो मनः श्रोत्रसुखावहाः ॥१०
नर्मदातीरतीर्थं तदवतीर्याघहारिणि ।
तत्तोये मुनिवृंदेषु गृणत्सु ब्रह्म शाश्वतम् ॥११

विधिवत्कृतमंत्रेषु सन्निवृत्य सरित्तटात् ।
आश्रमं प्रति गच्छत्सु मुनिमुख्येषु कर्मिषु ॥१२
प्रत्येकं वीरपत्नीषु व्यग्रासु गृहकर्मसु ।
होमार्थं मुनिकल्पाभिर्दुंह्यमानासु धेनुषु ॥१३
स्थाने मुनिकुमारेषु तं दोहं हि नयत्सु च ।
अग्निहोत्राकुले जाते सर्वभूतसुखावहे ॥१४

अब उस वेला की अद्भुत छटा का वर्णन किया जाता है—उस समय में चारों ओर अरुण अंशुओं वाली और तारागण की द्युति का हरण करने वाली बन्धूक पुष्पों की अरुणता से आकाश मण्डल संरज्यमान हो रहा था ।८। विकसित केतकी के वनों की पंक्तियों के द्वारा मद को समुद्भूत करते हुए तथा कुमुदों से युक्त सरोवरों का स्पर्श करने वाला प्रातः काल का सुन्दर एवं सुख स्पर्श वायु बहन कर रहा था ।९। पक्षीगण उस समय में नर्मदा के तट पर उगे हुए तरुवरों के नीड़ों के आश्रमों में अपनी समाकुल और मन तथा कानों को परम सुख प्रदान करने वाली वाणियाँ बोल रहे थे ।१०। नर्मदा का तट तीर्थ है उस तीर्थ में उतर कर पापों के हरण करने वाले उस जल में मुनिवृन्द निरन्तर ब्रह्म अर्थात् वेद वचनों का गान कर रहे थे ।११। विधि-विधान के साथ नित्यानुष्ठान करके नर्मदा नदी के तीर से वापिस लौट कर कर्मों के करने वाले प्रमुख मुनिगण अपने-अपने आश्रमों की ओर गमन कर रहे थे ।१२। प्रत्येक वीरों की पत्नियाँ अपने-अपने गृहों के आवश्यक कर्मों में उस समय में संलग्न हो रही थीं । सर्वथा मुनियों के ही सदृश बहुत सी मुनि पत्नियाँ होम कर्म के सम्पादन करने के लिए धेनुओं का दोहन कर रही थीं ।१३। मुनियों के कुमार दोहन किये हुए दुग्ध को समुचित स्थानों पर पहुँचा रहे थे तथा समस्त प्राणियों को सुख का आवाहन करने वाले होम के होने पर अग्निहोत्र में सभी समाकुल हो रहे थे ।१४।

विकसत्सु सरोजेषु गायत्सु भ्रमरेषु च ।
वाशत्सु नीडान्निष्पत्य पतत्रिषु समंततः ॥१५
अनतिक्रमत्तेभतुरंगरथगामिनाम् ।
गात्राह्लादविवर्द्धिन्यां वेलायां मंदवायुना ॥१६
इच्छत्सु चाश्रमोपांतं प्रसूनजलहारिषु ।

स्वाध्यायदक्षैर्बहुभिरजिनांबरधारिभिः ॥१७
सम्यक् प्रयोज्यमानेषु मंत्रेषूच्चावचेषु च ।
प्रैषेषूच्चार्यमाणेषु हूयमानेषु वह्निषु ॥१८
यथावन्मंत्रतंत्रोक्तक्रियासु विततासु च ।
ज्वलदग्निशिखाकारे तमस्तपनतेजसि ॥१९
प्रतिहत्य दिशः सर्वा विवृण्वाने च मेदिनीम् ।
सवितर्युदयं याति नेशे तमसि नश्यति ॥२०
तारकासु बिलीनासु काष्ठासु विमलासु च ।
कृतमंत्रादिको राजा मृगयां हैहयेश्वरः ॥२१

उस प्रातःकालीन वला में सभी ओर कमल खिले उठे थे और विकसित पंकजों के ऊपर भ्रमरों के वृन्द गुञ्जार रहे थे । सभी ओर से अपने-अपने घोंसलों से पक्षीगण नीचे उतर कर अपना अशन कर रहे थे ।१५। उस समय में मन्द वायु बहन कर रही थी और सुमधुर बेला में जो भी विशेष व्यग्र नहीं थे ऐसे मदोन्मत्त हाथी-अश्व और रथों द्वारा गमन करने वालों के शरीर को आह्लाद का विवर्द्धन हो रहा था ।१६। बहुत से कर्मनिष्ठ जन पुष्प और तीर्थजल का आहरण करके अपने-अपने आश्रमों की ओर गमन कर रहे थे । वेदों के स्वाध्याय करने में परम दक्ष बहुत से मृगचर्मों के धारण करने वालों के द्वारा भली-भाँति उच्चावच मन्त्रों के प्रयोग किये जा रहे थे तथा प्रैषों का उच्चारण किया जा रहा था । अग्नि में आहुतियाँ दी जा रही थीं ।१७-१८। रीति के अनुसार मन्त्र शास्त्र और तन्त्रशास्त्र में वर्णित क्रियाओं का विस्तार हो रहा था । जलती हुई अग्नि की शिखा के आकार वाले तपन के तेज में समस्त दिशाओं में तप को प्रतिहत करके वसुन्धरा पर वह फैला हुआ था । सूर्यदेव के उदित हो जाने पर उस समय में रात्रि के समय का अन्धकार विनष्ट हो रहा था ।१९-२०। जिस समय में समस्त तारागण विलीन हो गये थे और सभी दिशाएँ एकदम स्वच्छ दिखलाई दे रही थीं । उस समय में हैहयेश्वर राजा प्रातःकालीन सब कृत्य पूर्ण करके शिकार करने के लिए चल दिया था ।२१।

निर्ययौ नगरात्तस्मात्पुरोहितसमन्वितः ।
बलैः सर्वैः समुदितैः सवाजिरथकुंजरैः ॥२२

साचिवैः सहितः श्रीमान् सवयोभिश्च राजभिः ।
महता बलभारेण नमयन्वसुधातलम् ॥२३
नादयन्रथघोषेण ककुभः सर्वतो नृपः ।
स्वबलौघपदक्षेपप्रक्षुण्णावनिरेणुभिः ॥२४
ययौ संच्छादयन्व्योम विमानशतसंकुलम् ।
संप्रविश्य वनं घोरं विन्ध्याद्रेर्बलसंचयैः ॥२५
भृशं विलोलयामास समंताद्राजसत्तमः ।
परिवार्य वनं तत्तु स राजा निजसैनिकैः ॥२६
मृगान्नानाविधान्हिस्रान्निजघान शितैः शरैः ।
आकर्णकृष्टकोदंडयोधमुक्तैः शितेषुभिः ॥२७
निकृत्तमात्राः शार्दूला न्यपतन्भुवि केचन ।
उदग्रवेगपादातखड्गखंडितविग्रहाः ॥२८

रथ-हाथी और अश्वों से समन्वित समस्त सैनिकों से युक्त होकर अपने पुरोहित के साथ वह राजा हैहयेश्वर अपने नगर से शिकार करने के लिए निकल दिया था ।२२। अपने सभी सचिवों के साथ और वयोवृद्ध अन्य कितने ही राजाओं को साथ में लेकर श्रीमान् वह बड़ी भारी सेना के वीरों के भार से समस्त वसुधा को नीचे की ओर झुकाते हुए वह चल रहा था ।२३। वह राजा अपनी सेना के रथों के चलने की ध्वनि से सभी दिशाओं को गुञ्जित कर रहा था और अपनी सेना के समुदायों के सहित प्रवेश करके सैकड़ों विमानों (वायुमानों) से आकाश को संछादित करता हुआ वह राजा था । उस राजेश्वर ने अपने सैनिकों के द्वारा उस सम्पूर्ण वन घेरकर परमश्रेष्ठ नृप वे उस स्थल को अत्यन्त विलोलित कर दिया था ।२५-२६। उस नृप ने अपने कानों तक समाकृष्ट धनुषों की प्रत्यञ्चा वाले योधाओं के द्वारा छोड़े हुए तीक्ष्ण बाणों से वहाँ पर अनेक प्रकार के हिंसक पशुओं का हनन किया था ।२७। अतीव उदग्र वेग से युक्त पदातियों के खड्गों से खण्डित शरीर वाले जिनके शरीर के भाग कट गये हैं ऐसे कुछ शार्दूल वहाँ पर भूमि में गिर गये थे ।२८।

वराहयूथपाः केचिद्रुधिरार्द्रा धरामगुः ।
प्रचंडशाक्तिकोन्मुक्तशक्तिनिभिन्नमस्तकाः ॥२९

मृगौधाः प्रत्यपद्यंत पर्वता इव मेदिनीम् ।
नाराचा विद्धसर्वांगाः सिंहर्क्षशरभादयः ॥३०
वसुधामन्वकीर्यंत शोणितार्द्राः समंततः ।
एवं सवागुरैः कैश्चित्पतद्भिः पतितैरपि ॥३१
श्वभिश्चानुद्रुतैः कैश्चिद्धावमानैस्तथा मृगैः ।
आर्त्तैर्विक्रोशमानैश्च भीतैः प्राणभयातुरैः ॥३२
युगापाये यथात्यर्थं वनमाकुलमावभौ ।
वराहसिंहशार्दूलश्वाविच्छशकुलानि च ॥३३
चमरीरुरुगोमायुगवयर्क्षवृकान्बहून् ।
कृष्णसारान्द्वीपिमृगान्रक्तखड्गमृगानपि ॥३४
विचित्रांगान्मृगानन्यान्न्यंकूनपि च सर्वशः ।
बालान्स्तनंधयान्न्यूनः स्थविरान्मिथुनान्गणान् ॥३५

बहुत ही प्रचण्ड शक्तिशाली वीरों के द्वारा छोड़ी हुई शक्तियों से कटे हुए मस्तक वाले कुछ वराहों के यूथ रुधिर से लथपथ होकर पृथ्वी पर गिर गये थे ।२६। मृगों के समुदाय पर्वतों के ही समान भूमि पर पड़े हुए थे और सिंह-रीछ और शरभ आदिक धनुषों के तीरों से विद्ध समस्त अङ्गों वाले हो गये थे ।३०। इस प्रकार से कुछ सवागुर गिरते हुए और गिरे हुओं के द्वारा सभी ओर सम्पूर्ण पृथ्वी तल को रक्त से भीगी हुई करके अनुकीर्ण कर दिया था । कुछ मृग कुत्तों के द्वारा खदेड़े हुए होकर भाग रहे थे और और आर्त्त होकर चीखें मारते हुए प्राणों के भय से अति आतुर और भय-भीत हो रहे थे ।३१-३२। जिस तरह से युग के अन्त समय में सर्वत्र विभीषिका से पूर्ण स्थिति हुआ करती है ठीक उस समय से अत्यन्त आतुर हो रहे थे जिसके कारण वह सम्पूर्ण वन समाकुल होकर शोभित हो रहा था ।३३। वहाँ पर चमरी-रुरु-गोमायु-गवय-रीछ और बहुत से वृक-कृष्णसार-द्वीपी-मृग रक्त खड्ग मृग-विचित्र अङ्गों वाले मृग और न्यंकु आदि सभी ओर मारे जा रहे थे जिनमें दूध पीने वाले बहुत से बहुत छोटे पशु थे और बालक वृद्ध तथा जवान पशुओं के जोड़े भी थे । वहाँ पर सभी का निहनन किया जा रहा था ।३४-३५।

निजघ्नुर्भितैः शस्त्रैः शस्त्रवध्यान्हि सैनिकाः ।
एवं हत्वा मृगान् घोरान्हिस्रप्रायानशेषतः ॥३६
श्रमेण महता युक्ता बभूवुर्नृपसैनिकाः ।
मध्ये दिनकरे प्राप्ते ससैन्यः स तदा नृपः ॥३७
नर्मदां धर्मसंतप्तः पितासुरगमच्छनैः ।
अवतीर्य ततस्तस्यास्तोये सबलवाहनः ॥३८
विजगाह शुभे राजा क्षुत्तृष्णापरिपीडितः ।
स्नात्वा पीत्वा च सलिलं स तस्याः सुखशीतलम् ॥३९
बिसांकुराणि शुभ्राणि स्वादूनि प्रजघास च ।
विक्रीडय तोये सुचिरमुत्तीर्य सबलो नृपः ॥४०
विशश्राम च तत्तीरे तरुखंडोपमंडिते ।
आलंबमाने तिग्मांशौ ससैन्यः सानुगो नृपः ॥४१
निश्चक्राम पुरं गंतुं विंध्याद्रिवनगह्वरात् ।
स गच्छन्नेव ददृशे नर्मदा तीरमाश्रितम् ॥४२

राजा के सैनिकों ने शस्त्रों के द्वारा वध करने के जो भी पशु योग्य थे उन सबका पैने शस्त्रों से हनन कर दिया था । इस प्रकार से प्रायः हिंसा करने वाले महान घोर पशुओं का वहाँ पर पूर्ण रूप से हनन किया था ।३६। इस तरह से शिकार करने से शिकार करने से नृप के सैनिक बड़े भारी श्रम से थक गये थे । भुवन भास्कर सूर्यदेव मध्य में प्राप्त हो गये थे । उस समय दोपहरी के वक्त में राजा अपनी सेना के सहित सूर्यातप से बेचैन हो गया था ।३७। घाम से संतप्त होकर प्यासा राजा धीरे से नर्मदा के तट पर चला गया था और फिर वह उस नर्मदा के जल में सब वाहनों और सैनिकों के सहित उतर गया था ।३८। भूख और प्यास से उत्पीड़ित राजा ने उस शुभ जल में अवगाहन किया था और उस नदी के परम शीतल जल में स्नान किया था और उसका पान भी किया था ।३९। अपनी समस्त सेना के सहित राजा ने उसके जल के भीतर उतर कर बहुत काल पर्यन्त विशेष रूप से जल-क्रीड़ा की थी तथा परम स्वादिष्ट शुभ्र बिस के तन्तुओं का अशन भी किया था ।४०। जब सूर्यदेव आलम्बमान हो गये थे तो सब अनुचरों और

सैनिकों सहित राजा ने तरुवरों के समूह से मण्डित उस सरिता के तट पर विश्राम किया था। फिर उन विन्ध्याचल के गहन वन से अपने नगर में जाने के लिये राजा निकल दिया था। वहाँ से गमन करते हुए ही उसने नर्मदा के तट पर समाश्रित एक आश्रम का दर्शन दिया था।४१-४२।

आश्रमं पुण्यशीलस्य जमदग्नेर्महात्मनः।
ततो निवृत्य सैन्यानि दूरेऽवस्थाप्य पार्थिवः ॥४३
परिचारैः कतिपयैः सहितोऽयात्तदाश्रमम्।
गत्वा तदाश्रमं रम्यं पुरोहितसमन्वितः ॥४४
उपेत्य मुनिशार्दूलं ननाम शिरसा नृपः।
अभिनंद्याशिषा तं वै जमग्निर्नृपोत्तमम् ॥४५
पूजयामास विधिवदर्घपाद्यासनादिभिः।
संभावयित्वा तां पूजां विहितां मुनिना तदा ॥४६
निषसादासने शुभ्रे पुरस्तस्य महामुनेः।
तमासीनं नृपवरं कुशासनगतो मुनिः ॥४७
पप्रच्छ कुशलप्रश्नं पुत्रमित्रादिबंधुषु।
सह संकथयंस्तेन राजा मुनिवरोत्तमः ॥४८
स्थित्वा नातिचिरं कालमामिध्यार्थं न्यमंत्रयत्।
ततः स राजा सुप्रीतो जमदग्निमभाषत ॥४९

वह एक महान् आत्मा वाले और पुण्यशील जमदग्नि मुनि का आश्रम था। राजा ने वहाँ से लौटकर कुछ दूरी पर अपनी सेनाओं को अब स्थापित कर दिया था।४३। अपने साथ में कतिपय परिचारकों को लेकर ही वह उस आश्रम में गया। पुरोहित के सहित ही राजा ने उस परम रम्य आश्रम में गमन किया था।४४। राजा ने वहाँ पर पहुँच कर उस मुनिशार्दूल के चरणों में शिर झुकाकर प्रणाम किया था। जमदग्नि ने उस श्रेष्ठ राजा का आशीर्वचनों के द्वारा अभिनन्दन किया था।४५। मुनि ने अर्घ्य-पाद्य और आसन आदि के द्वारा उस राजा का अर्चन किया था। उस समय में मुनि के द्वारा की हुई पूजा को स्वीकार किया था।४६। फिर राजा उन महामुनि के सामने परम शुभ्र आसन पर विराजमान हो गया था। जब राजा अपने

आसन पर उपविष्ट हो गये तो वे मुनिवर जमदग्नि एक कुशा के आसन पर संस्थित हो गये थे ।४७। महामुनि ने उस राजा के साथ संलाप करते हुए पुत्र-मित्र और बन्धु आदि के विषय में राजा से क्षेम-कुशल पूछा था ।४८। थोड़े ही समय तक स्थित होकर महामुनि ने अपना अतिथि-सत्कार करने के लिए राजा को निमन्त्रित किया था । इसके अनन्तर राजा परम प्रीतिमान् होकर जमदग्नि मुनि से बोला था ।४९।

महर्षे देहि मेऽनुज्ञां गमिष्यामि स्वकं पुरम् ।
समग्रवाहनबलो ह्यहं तस्मान्महामुने ॥५०
कर्तुं न शक्यमातिथ्यं त्वया वन्याशिना वने ।
अथवा त्वं तपः शक्त्या कर्तुमातिथ्यमद्य मे ॥५१
शक्नोष्यपि पुरीं गंतुं मामनुज्ञातुमर्हसि ।
अन्यथा चेत्खलैः सैन्यैरत्यर्थं मुनिसत्तम ॥५२
तपस्विनां भवेत्पीडा नियमक्षयकारिका ।
वसिष्ठ उवाच–
इत्येवमुक्तः स मुनिस्तं प्राह स्थीयतां क्षणम् ॥५३
सर्वं संपादयिष्येऽहमातिथ्यं सानुगस्य ते ।
इत्युक्त्वाहूय तां दोग्ध्रीमुवाचायं ममातिथिः ॥५४
उपागतस्त्वया तस्मात्क्रियतामद्य सत्कृतिः ।
इत्युक्ता मुनिना दोग्ध्री सातिथेयमशेषतः ।
दुदोह नृपतेराशु यथायोग्यं मुनिगौरवात् ॥५५
अथाश्रमं तत्सुरराजसद्मनिकाशमासीद्भृगुपुंगवस्य ।
विभूतिभेदैरविचिन्त्यरूपमनन्यसाध्यं सुरभिप्रभावात् ॥५६

हैहयेश्वर राजा ने महामुनि से प्रार्थना की थी कि हे महर्षे ! आप मुझे अपनी आज्ञा दीजिए । मैं अब अपने पुर को गमन करूँगा । हे महामुने ! कारण यह है कि मेरे साथ समस्त सेनाएं वाहन भी हैं ।५०। इस वन में वन्य फल मूलों का अशन करने वाले आपके द्वारा आतिथ्य नहीं किया जा सकता है । अथवा यह भी हो सकता है कि आप अपनी तपश्चर्या की

शक्ति से मेरा आतिथ्य करने की सामर्थ्य रखते हैं तो भी यह उचित नहीं है और आप मुझे मेरी नगरी की ओर गमन करने की आज्ञा देने के योग्य हैं। अन्य प्रकार से अर्थात् यदि मैं ठहर भी जाऊँ तो हे मुनि श्रेष्ठ ! ये सैनिक बड़े ही दुष्ट स्वभाव वाले हैं। इनके द्वारा तपस्वियों के नियमों क्षय करने वाली बहुत ही अधिक आप लोगों को पीड़ा हो जायगी ।५१। वसिष्ठ जी ने कहा—इस तरह से जब राजा के द्वारा मुनिवर से कहा गया था तो उन महामुनि ने राजा से कहा था कि आप कुछ क्षण के लिए यहाँ पर विराजमान तो रहिए ।५२-५३। मैं आपका समस्त अनुगामियों के ही सहित पूरा आतिथ्य सत्कार सम्पन्न कर दूँगा। इतना राजा से कहकर उस महामुनि ने दोग्ध्री धेनु को बुलाकर उससे कहा था कि यह राजा आज मेरे अतिथि के स्वरूप में समागत हो गये हैं ।५४। जब यह यहाँ पर समागत हो गये हैं तो इसी कारण से आप इनका आज पूर्णतया सत्कार करिए। इस रीति से मुनि के द्वारा कही हुई उस दोग्ध्री ने महामुनि के गौरव के कारण पूर्णरूप से राजा का आतिथ्य किया था और जो-जो भी राजा के आतिथ्य के योग्य पदार्थ थे वे सभी बहुत शीघ्र दोहन करके उपस्थित कर दिये थे ।५५। इसके अनन्तर उस सुरभि के प्रभाव से उस श्रेष्ठ मुनि का आश्रम सुरराज के सद्म के समान वैभवों के अनेक भेदों के द्वारा ऐसा न सोचने के योग्य स्वरूप वाला हो गया था कि जो अन्य किसी के भी द्वारा साध्य नहीं हो सकता है ।५६।

अनेकरत्नोज्ज्वलचित्रहेमप्रकाशमालापरिवीतमुच्चैः ।
पूर्णेन्दुशुभ्राभ्रविषक्तशृंगैः प्रासादसंघैः परिवीतमंतः ।।५७
कांस्यारकूटारसताम्रहेमदुर्वर्णसौधोपलदारुमृद्भिः ।
पृथग्विमिश्रैर्भवनैरनेकैः सद्भासितं नेत्रमनोभिरामैः ।।५८
महार्हरत्नोज्ज्वलहेमवेदिकानिष्कूटसोपानकुटीविटंकैः ।
तुलाकपाटार्गलकुड्यदेहलीनिशांतशाला-
जिरशोभितैर्भृशम् ।।५९
वलभ्यलिंदांगणचारुतोरणैरदभ्रपर्यंतचतुष्किकादिभिः ।
कुड्येषु संशोभित दिव्यरत्नैर्विचित्रचित्रैः परिशोभमानैः ।।६०
उच्चावचैं रत्नवरैर्विचित्रसुवर्णसिंहासनपीठिकाद्यैः ।

स भक्ष्यभोज्यादिभिरन्नपानैरुपेतभांडोपगतैकदेशः ।।६१
गृहैरमर्त्योचिपसर्वसंपत्समन्वितैर्नेत्रमनोऽभिरामैः ।
तस्याश्रमं सन्नगरोपमानं बभौ वधूभिश्च मनोहराभिः ।।६२

अब सुरभि की महिमा के आश्रम की जैसी परम विशाल शोभा हुई थी उसकी छटा का वर्णन किया जाता है--उस आश्रम के अन्दर का भाग नाना भाँति के रत्नों की देदीप्यमान द्युति से विचित्र हो गया था और सुवर्ण के चाकचिक्य से संयुत प्रकाश माला से घिरा हुआ था तथा पूर्ण चन्द्र के समान परम शुभ्र और अत्युच्च अन्तरिक्ष को छूने वाली शिखरों से समन्वित प्रासादों से चारों ओर परिपूर्ण वह आश्रम हो गया था ।५७। कांस्य-आरकूर-ताम्र-हेम-सुवर्ण सौधोपल-दारु और मृत्तिका के पृथक्-पृथक् और मिश्रित नेत्रों तथा मन को परम अभिराम प्रतीत होने वाले अनेक भवनों से वह आश्रम समुद्भासित हो गया था ।५८। उस महामुनि का वह आश्रम उस समय में महा मूल्यवान रत्नों से समुज्ज्वल था और हेम की वेदिका–निष्कुट–सोपान–कुटी और विटंककों से समन्वित था। तुला–कपाट–अर्गला–कुड्य (भीत)–देहली–निशान्तशाला–अजिर (आँगन) की शोभा से बहुत ही वह आश्रम संयुत था ।५९। वलभी-अलिन्द-अङ्गण और परम रम्य तोरणों से युक्त था तथा अदभ्र चतुष्किका आदि से विशोभित था। उस आश्रम में जो स्तम्भ बने हुए थे उनमें और जो दीवालें थीं उनमें परिशोभमान दिव्य रत्नों के विचित्र चित्र विद्यमान थे। इनसे उस आश्रम की अद्भुत शोभा हो रही थी ।६०। वह महामुनि का आश्रम छोटे व कीमती श्रेष्ठ रत्नों से युक्त था और उसमें अत्यद्भुत सुवर्ण के अनेक सिंहासन और पीठिका आदि निर्मित थे। उस आश्रम के एक देश में भक्ष्य और भोज्य-लेह्य-चोष्य आदि अशनोपयोगी पदार्थ वर्त्तमान थे तथा अन्न-पानों से समुपेत भाण्ड भी वहाँ पर विद्यमान थे ।६१। उसमें ऐसे अनेक गृह बने हुए थे जो देवों के लायक सब प्रकार की नयनों और मन के परम रमणीक लगने वाली सम्पदा से समन्वित थे। वह मुनि का आश्रम सुरभि की महिमा से मनोहर वन्धुओं से सुन्दर नगर के समान परमशोभित हो रहा था ।६२।

—x—

।। जमदग्नि द्वारा अतिथि सत्कार ।।

वसिष्ठ उवाच–

तस्मिन्पुरे सन्तुलितामरेंद्रपुरीप्रभावे मुनिवर्यधेनुः ।
विनिर्ममे तेषु गृहेषु पश्चात्तद्योग्यनारीनरवृंदजातम् ।।१
विचित्रवेषाभरणप्रसूनगन्धांशुकालंकृतविग्रहाभिः ।
सहावभावाभिरुदारचेष्टाश्रीकांतिसौन्दर्यगुणान्विताभिः ।।२
मंदस्फुरद्दन्तमरीचिजालविद्योतिताननसरोजजितेंदुभाभिः ।
प्रत्यग्रयौवनभरासववल्गुगीर्भिः स मर्मंथरकटाक्ष
निरीक्षणाभिः ।।३
प्रीतिप्रसन्नहृदयाभिरतिप्रभाभिः शृङ्गारकल्पतरुपुष्पविभू-
षिताभिः ।
देवांगनातुलितसौभगसौकुमार्यरूपाभिलाषमधुराकृति-
रंजिताभिः ।।४
उत्तप्तहेमकलशोपमचारुपीनवक्षोरुहद्वयभरानतमध्यमाभिः ।
श्रोणीभराक्रमणखेदपरिश्रितासृगारक्तपावकरसारुणिता-
ङ्घ्रिभूभिः ।।५
केयूरहारमणिकंकणहेमकंठसूत्रामलश्रवणमण्डलमंडिताभिः ।
स्रग्दामचुम्बितसकुन्तकेशपाशकांचीकलापपरिशिंजित-
नूपुराभिः ।।६
आमृष्टरोषपरिसांत्वननर्महासकेलीप्रियालपनभर्त्संनरोषणेषु ।
भावेषु पार्थिवनिजप्रियधैर्यबन्धसर्वापहारचतुरेषु
कृतांतराभिः ।।७

श्री वसिष्ठजी ने कहा—सन्तुलित महेन्द्र की नगरी के प्रभाव वाले उस पुर में मुनिवर की धेनु ने उन गृहों में इसके पश्चात् उनके ही योग्य नर-नारियों के समुदायों की रचना भी कर दी थी ।१। अब जो नारीगणों का निर्माण उस पुर में किया था उनकी वेष-भूषा—रूप माधुर्य—सौन्दर्य

छटा और कार्य कुशलता आदि का वर्णन किया जाता है—उन नारियों के विचित्र वेष थे और अद्भुत आभरण–प्रसून–गन्धादि से समलंकृत शरीर थे। तथा वे अपने हावभावों से समन्वित थीं और उदार चेष्टाएँ—श्री—कान्ति और सौन्दर्य आदि गुणगुण से युक्त थीं।२। मन्द स्फुरण करने वाली दन्त पंक्ति की मरीचियों के जाल से विशेष रूप से द्योतित उनका मुख कमल तथा जिससे उन्होंने चन्द्र की आभा को भी पराजित कर दिया था। उनकी वाणी नूतन यौवन के भार से वल्गुता से संयुत थी तथा प्रेम पूर्वक धीमे कटाक्षों से संयुक्त उनका निरीक्षण था।३। उनके वदन की प्रजा अत्यधिक थी और प्रीति की भाव-भङ्गी से वे परम प्रसन्न हृदयों वाली थीं तथा अपने शृङ्गार में कल्पतरु के परम सुन्दर सुमनों से विभूषित थीं। उनका परम सुरम्य सौभाग्य–सुकुमारता–रूप लावण्य–अभिलाषा और मधुर आकृति देवाङ्गना के समान ही थी जिनके कारण वे नारियाँ अतीव रञ्जित थीं।४। तपे हुए सुवर्ण के कलशों के ही सदृश अत्यधिक सुन्दर—परिपुष्ट उनके दोनों उरोज थे जिनके वहन करने के भार सो उन नारियों का मध्य भाग कुछ नीचे की ओर झुका हुआ था। उन नारियों के श्रोणियों का भार ऐसा था कि उसके वहन करने में उनको कुछ खेद होता था और खिन्नता के कारण से परिश्रित रुधिर से तथा लगे हुए पावक रस से उनके चरणों का भाग अरुणिमा से संयुत था।५। केयूर-हार-मणियों के द्वारा विनिर्मित कंकण-सुवर्ण का कण्ठ सूत्र और विमल श्रवणों के भूषणों से वे नारियाँ विभूषित थीं। उनके कुन्तल केशपाशों में परम सुन्दर सुमनों की मालाएँ गुथी हुई थीं और करधनी में लगे हुए घूँघरों की तथा नूपुरों की ध्वनि से वे समायुक्त थीं।६। आकृष्ट रोष की परिसान्त्वना में नर्म (प्रणयालाप)–हास–केली–और प्रिय आलाप करने में— भाषण और रोष तथा भर्त्सना में दक्ष एवं पार्थिव निजप्रिय धैर्यबन्ध सबके अपहार में कुशल भावों से वे नारियाँ अपने मन को लगाने वाली थीं।७।

तन्त्रीस्वनोपमितमंजुलसौम्यगेयगंधर्वतारम्-
धुरारवभाषिणीभिः ।
वीणाप्रवीणतरपाणितलांगुलीभिर्गंभीर-
चक्रचटुवादरतोत्सुकाभिः ॥८

स्त्रीभिर्मंदालसतराभिरतिप्रगल्भभावाभिराकुलिकामुक
मानसाभिः ।

कामप्रयोगनिपुणाभिरहीनसंपदौदार्यरूपगुणशील-
समन्विताभिः ॥६
संख्यातिगाभिरनिशं गृहकृत्यकर्मव्यग्रात्मकाभिरपि
तत्परिचारिकाभिः ।
पुंभिश्च तद्गुणगणोचितरूपशोभैरुद्भासितैर्गृहचरैः
परितः परीतम् ॥१०
सराजमार्गापणसौधसद्मसोपानदेवालयचत्वरेषु ।
पौरैरशेषार्थगुणैः समंतादध्यास्यमानं परिपूर्णकामैः ॥११
अनेकरत्नोज्ज्वलितैर्विचित्रैः प्रासादसंघैरतुलैरसंख्यैः ।
रथाश्वमातंगखरोष्ट्रगोजायोष्यैरनेकैरपि मंदिरैश्च ॥१२
नरेंद्रसामंतनिषादिसादिपदातिसेनापतिनायकानाम् ।
विप्रादिकानां रथिसारथीनां गृहैस्तथा मागधवंदिनां च ॥१३
विविक्तरथ्यापणचित्रचत्वरैरनेकवस्तुक्रयविक्रयैश्च ।
महाधनोपस्करसाधुनिर्मितैर्गृहैश्च शुभ्रैर्गणिकाजनानाम् ॥१४

वीणा के तारों से निकले हुए स्वर के समान परम मञ्जुल और सौम्य गाने के योग्य गन्धर्वों के समुच्च एवं मधुर निनाद से भाषण करने वाली वे सब नारियाँ थीं। वीणा के वादन में परम प्रवीण पाणि की अँगुलियों के द्वारा गम्भीर चक्र के चटु वाद में निरत एवं वे समस्त नारियाँ समुत्सुक थीं।८। वे समस्त नारियाँ यौवन के मद से अधिक अलस और अत्यधिक प्रगल्भ भावों वाली थीं। तथा वे सब आकुलित एवं कामुक अर्थात् कामकेली की वासना से संयुत मनों वाली थीं। कामवासना से रचनात्मक प्रयोग करने में वे नारी बहुत ही निपुण थीं। तथा परिपूर्ण सम्पदा-उदारता-रूप-गुण और शील स्वभाव से समन्वित थीं।६। संख्या को भी अतिक्रमण करने वाले अर्थात् बहुत ही अधिक घर के कर्मों में बहुत संलग्न रहने पर भी अपने प्राणी पतियों की परिचर्या करने वाली थीं। वह पुर उन नारियों के गुणगणों के लायक ही रूप और शोभा वाले—उद्भासित और सभी ओर से ग्रहों में सञ्चरण करने वाले पुरुषों से घिरा हुआ था।१०। वह नगर राजमार्ग, आपण सौध-सोपान-देवालयों के आँगनों

में समस्त अर्थ ग्रहों वाले तथा परिपूर्ण कामनाओं से संयुत नागरिकों से चारों ओर अध्यास्यमान था अर्थात् परिगुणशाली पुरवासी सभी ओर निवास कर रहे थे ।११। उस नगर में असंख्य-अनुपम और नाना भाँति के रत्नों से समुज्ज्वलित एवं विचित्र प्रासादों के समुदायों की अवस्थिति थी और वहाँ पर अनेक ऐसे मन्दिर थे जहाँ पर अनेक रथ-अश्व-हाथी खर-उष्ट्र और गौएँ विद्यमान थे ।१२। उस नगर में चारों ओर नरेन्द्र सामन्त-निषाद सादी-पदाति-सेनापति और नायकों के तथा रथी-सारथी-मागध-बन्दीगण और विप्र प्रभृतियों के गृह बने हुए थे ।१३। उस अनुपम नगर में विविक्त अर्थात् खुली हुई रथ्याएँ थीं—सभी आपण थे जिनके चत्वर बहुत ही विचित्र थे। वहाँ पर अनेक प्रकार की वस्तुओं का क्रय और विक्रय हो रहा था। उस नगर में वारांगनाओं के परम शुभ्र गृहों के समूह विनिर्मित थे जिनके निर्माण करने में बहुत अधिक धन के व्यय से सब सामान भली-भाँति लगाये गये थे ।१४।

महार्हरत्नोज्ज्वलतुंगगोपुरैः सह श्वगृध्रव्रजनर्तनालयैः ।
चित्रैर्ध्वजैश्चापि पताकिकाभिः शुभ्रैः ।
पटैर्मण्डपिकाभिरुन्नतैः ॥१५
कल्हारकंजकुमुदोत्पलरेणुवासितैश्चक्राह्वहंसकुररीबक-
सारसानाम् ।
नानारवाढ्यरमणीयतटाकवापीसरोवरैश्चापि जलोप-
पन्नैः ॥१६
चूतप्रियालपनसाम्रमधूकजंबूप्लक्षैर्नवैश्च तरुभिश्च
कृतालवालैः ।
पर्यंतरोपितमनोरमनागकेतकीपुन्नागचंपकवनैश्च
पतत्रिजुष्टैः ॥१७
मंदारकुंदकरवीरमनोज्ञयूथिकाजात्यादिकैर्विविधपुष्प
फलैश्च वृक्षैः ।
संलक्ष्यमाणपरितोपवनालिभिश्च संशोभितं जगति
विस्मयनीयरूपैः ॥१८

सर्वर्त्तुकप्रवरसौरभवायुमंदमंदप्रचारिगतिभर्त्सितघर्मकालम् ।
इत्थं सुरासुरमनोरमभोगसंपद्विस्पर्द्धमानविभवं नगरं
नरेंद्र ॥१९
सौभाग्यभोगममितं मुनिहोमधेनुः सद्यो विधाय
विनिवेदयदाशु तस्मै ।
ज्ञात्वा ततो मुनिवरो द्विजहोमधेन्वा संपादितं नरपते
रुचिरातिथेयम् ॥२०
आहूय कंचन तदंतिकमात्मशिष्यं प्रास्थापयत्सगुण-
शालिनमाशु राजन् ।
गत्वा विशामधिपतेस्तरसा समीपं सप्रश्रयं मुनिसुतस्तमिदं
बभाषे ॥२१

उस सुरम्य नगर में बहुत ही मूल्यवान् रत्नों से उज्ज्वल एवं समुन्नत गोपुर बने हुए थे तथा स्वा-गृद्धों के समुदायों के बर्त्तन के आलय बने हुए थे। उसमें विचित्र ध्वजाएँ-पताकाएँ और शुभ्र पटों से संयुत उन्नत मण्डपिकाएँ निर्निमित्त थी।१५। उस नगर में जल में भरे हुए अनेक तालाब-बावड़ी और सरोवर थे जिनमें अनेक प्रकार की रमणीक ध्वनि हो रही थी तथा वहाँ पर उनका जल कह्लार-कमल-कुमुद और उत्पलों की रेणु से सुवासित था और चक्रवाक-हंस-कुररी-बगुला तथा सारसों की ध्वनियाँ सुनाई दे रही थीं।१६। उस नगर में अनेक प्रकार के वृक्ष लगे हुए थे जिनके आलवाल भी बने हुए थे। उन तरुवरों में आम्र-प्रियालपन-मधूक जम्बू और प्लक्ष के वृक्ष थे। वहाँ पर पर्वतों में परम सुन्दर नाग केतुकी पुन्नाग और चम्पक के वन थे जो पक्षियों के द्वारा सेवित थे अर्थात् जिन पर अनेक पक्षी निवास कर रहे थे।१७। वह नगर अनेक तरह के वृक्षों से शोभित था जिनका स्वरूप जगत् परमाश्चर्य जनक था। वहाँ पर सुसंरक्षित चारों ओर उपवनों की पंक्तियाँ थीं एवं वहाँ अनेक मन्दार-कुन्द-करवीर-सुन्दर यूथिका और जाती आदि के पुष्पों तथा फलों वाले वृक्ष लगे हुए थे।१८। हे नरेन्द्र ! उस नगर में समस्त ऋतुओं में श्रेष्ठ वसन्त में सुरभित वायु के मन्द-मन्द प्रचलन से घर्म के काल को भर्त्सित कर दिया गया था। इस प्रकार से वह नगर सुरासुरों की परम मनोरम भोगों की सम्पदा के

विस्पष्टमान वैभव वाला था ।१९। उस मुनि की होम धेनु ने तुरन्त ही अमित सौभाग्य के भोग को करके शीघ्र ही उस महामुनीन्द्र की सेवा में कर दिया था। इसके अनन्तर उन मुनिश्रेष्ठ ने द्विज होम धेनु के द्वारा राजा का परम रुचिर आतिथेय-सम्पादित किया हुआ जान लिया था ।२०। फिर उस मुनींद्र ने अपने किसी गुणशाली शिष्य को बुलाकर हे राजन् ! शीघ्र ही हैययेश्वर के समीप में भेज दिया था। उस मुनि सुत ने शीघ्र वेग से विशों के अधिपति के समीप में गमन करके बहुत ही नम्रता से यह उससे यह कहा था ।२१।

आतिथ्यमस्मदुपपादितमाशु राज्ञासंभावनीयमिति नः
कुलेदेशिकाशा ।
राजा ततो मुनिवरेण कृताभ्यनुज्ञः संप्राविशत्पुरवरं
स्वकृते कृतं तत् ॥२२
सर्वोपभोग्यनिलयं मुनिहोमधेनुसामर्थ्यसूचकमशेषबलैः
समेतः ।
अन्तः प्रविश्य नगरर्द्धिमशेषलोकसंमोहिनीमभिसमीक्ष्य
स राजवर्यः ॥२३
प्रीतिप्रसन्नवदनः सबलस्तु दानी धीरोऽपि विस्मयवाप
भृशं तदानीम् ।
गच्छन्सुरस्त्रीनयनालियूथपानैकपात्रोचितचारुमूर्त्तिः ॥२४
रेमे स हैहयपतिः पुरराजमार्गे शक्रः कुबेरवसताविव
सामरोघः ।
तं प्रस्थितं राजपथात्समंतात्पौरांगनाश्चन्दनवारिसिक्तैः ॥२५
प्रसूनलाजाप्रकरैरजस्रमवीवृषन्सौधगताः सुहृद्यैः ।
अभ्यागतार्हणसमुत्सुकपौरकांता हस्तारविंदगलितामल-
लाजवर्षैः ॥२६
कालेयपंकसुरभीकृतनन्दनोत्थशुभ्रप्रसूननिकरै-
रलिवृन्दगीतैः ।

तत्रत्यपौरवनितांजनरत्नसारमुक्ताभिरप्यनुपदं
प्रविकीर्यमाणः ।।२७
व्यभ्राजतावनिपतिर्विशदैः समंताच्छीतांशुरश्मि-
निकरैरिव मंदराद्रिः ।
ब्राह्मीं तपः श्रियमुदारगणामचिंत्यां लोकेषु दुर्लभतरां
स्पृहणीयशोभाम् ।।२८

हमारे कुल गुरुदेव की यह आज्ञा हुई है कि हमारे द्वारा समुपादित आतिथ्य को राजा के द्वारा शीघ्र ही ग्रहण करना चाहिए। इसके पश्चात् राजा ने मुनिवर के द्वारा अनुज्ञा प्राप्त करके उस परम श्रेष्ठ नगर में प्रवेश किया था जोकि अपने ही लिए निर्मित किया गया था।२२। वह राजा अपनी सेना के समस्त सैनिकों के सहित उस नगर में प्रविष्ट हुआ था जो कि मुनि की होमधेनु की अत्यद्भुत शक्ति-सामर्थ्य का सूचक था और जो सभी प्रकार के उपभोगों का एक महान विशाल आगार था। अन्दर उस राजा ने भली-भाँति प्रवेश करके सभी लोकों का समोहन करने वाली उस नगर की समृद्धि का अभिसमीक्षण करके अत्यधिक प्रसन्नता प्राप्त की थी।२३। उस समय अपनी सेना के सहित परम दानी और महान् धीर उस राजा ने प्रीति से प्रसन्न वदन वाला होकर अत्यधिक विस्मय को प्राप्त किया था। देवों की स्त्रियों के नेत्ररूपी भ्रमरों के यूथों के द्वारा पाप करने का एक मात्र पात्र समुचित एवं सुन्दर मूर्ति वाला जिस समय वहाँ गमन कर रहा था। अर्थात् गमन करते हुए देवाङ्गनाएँ अपने नयनों से उसकी सुन्दर मूर्त्ति का अवलोकन कर रही थी।२४। देवगणों के समुदाय के साथ उस राजा हैहयपति ने कुबेर की वसति में महेन्द्र के ही समान पुर के राज मार्ग में परम रमण किया था। राजमार्ग के द्वारा जब प्रस्थान कर रहा था उस समय में सौधों (विशाल महलों) पर स्थित होती हुई पौराङ्गनाओं ने चारों ओर से चन्दन के जल से सिक्त परम सुन्दर प्रसूनों और लाजाओं (खीलों) के प्रकरों से निरन्तर उस राजा के ऊपर वर्षा की थी। समागत अतिथि के अर्चन करने में परमाधिक समुत्सुक उस नगर वासियों की अङ्गनाओं के करकमलों से गिरी हुई खीलों की वर्षा हो रही थी। उस समय में होने वाले पङ्क (कीच) से सुगन्धित नन्दन वन में समुत्पन्न पुष्पों की राशियाँ बरसायीं जा रही थीं जिन पर सौरभ से संमोहित भ्रमर-गुञ्जार कर रहे

थे। वहाँ पर वह राजा वहाँ की वनिताओं के द्वारा अञ्जन रत्न सार मुक्ताओं से अनुपद प्रकीर्यमाण हो रहा था।२५-२६-२७। वह अवनिपति इस प्रकार की विशद वृष्टियों से चारों ओर विशेष रूप से भ्राजित हुआ था जैसे मन्दराचल चन्द्रमा की किरणों के समुदाय से शोभाशाली हुआ करता है। उस समय अत्यन्त उदार और लोकों में चिन्तन न करने के योग्य ब्राह्मणों की तपश्चर्या का भी अवलोकन राजा ने किया था जो कि अन्य लोकों में महादुर्लभ और स्पृहणीय शोभा से समन्वित थी।२८।

पश्यन्विशामविपनिः पुरसंपदं तामुच्चैः शशंस मनसा
वचसेव राजन् ।
मेने च हैहयपतिर्भुवि दुर्लभेयं श्रामो मनोहरतरा सहिता
हि संपत् ॥२९
अस्याः शतांशतुलनामपि नोपगन्तुं विप्रश्रिय प्रभवतीति
सुरार्चितायाः ।
मध्येपुरं पुरजनोपचितां विभूतिमालोकयन्सह
पुरोहितमंत्रिसार्थैः ॥३०
गच्छन्स्वपार्श्वचरदर्शितवर्णशोभो लेभे मुदं पुरजनैः
परिपूज्यमानः ।
राजा ततो मुनिवरोपचितां सपर्यामात्मानुरूपमिह
सानुचरो लभस्व ॥३१
इत्यश्रमेण नृपतिर्विनिवर्त्तयित्वा स्वार्थं प्रकल्पितगृहा-
भिमुखो जगाम ।
पौरैः समेत्य विविधार्हणपाणिभिश्च मार्गे मुदा निरचितः
अग्निभिः समंतात् ॥३२
संभावितोभ्यनुपदं जयशब्दघोषैस्तूर्यरवैश्च
बधिरीकृतदिग्विभागैः ।
कक्षान्तराणि नृपतिः अनकैरतीत्य श्रीणि क्रमेण च
ससंभ्रमकंचुकीनि ॥३३

दूरप्रसारितपृथग्जनसंकुलानि सद्माविवेश
संचिवादरदत्तहस्तः ।
तत्र प्रदीपदधिदर्पणगन्धपुष्पदूर्वाक्षतादिभिरलं
पुरकामिनीभिः ।।३४
निर्याय राजभवनातरतः सलीलमानन्दितो नरपति-
र्बहुमान पूर्वम् ।
ताभिः समाभिविनिवेशितमांशु नानारत्न-
प्रवेकरुचिजालविराजमानम् ।।३५

क्षत्रियों के अधिपति ने उस नगर की सम्पदा को देखकर हे राजन् ! वचनों की भाँति मन में बहुत ही अधिक प्रशंसा की थी । और हैहयपति ने यह मान लिया था कि भूमण्डल में अधिक मनोहर हित के सहित क्षत्रियों की सम्पदा ऐसी परम दुर्लभ है । अर्थात् क्षत्रियों को सम्पदा ऐसी कभी भी नहीं हो सकती है ।२६। सुरों के द्वारा समर्पित इस विप्रों की श्री के समक्ष में क्षत्रियों की श्री शतांश की भी तुलना प्राप्त करने में समर्थ नहीं होती है । पुर के मध्य में अपने पुरोहित और मन्त्रियों के साथ में जब उस पुर के निवासियों के द्वारा उपचित विभूतिका आलोकन किया था तब राजा के मन में विप्रश्री की महत्ता का ज्ञान हुआ था ।३०। जिस समय में राजा नगर में भीतर गमन कर रहा था उस समय में अपने पार्श्व में चरण करने वालों के द्वारा सौधों का वर्ग उसे दिखाया गया था तथा वहाँ के गुरुजनों के द्वारा सभी ओर से वह पूज्यमान हो रहा था और उसको विशेष आनन्द प्राप्त हुआ था । उस समय में राजा से निवेदन किया गया था कि आप अपने सभी अनुचरों के सहित अपने स्वरूप के अनुरूप मुनिवर के द्वारा इस सपर्या का लाभ प्राप्त कीजिए ।३१। फिर राजा अपने स्वार्थ्य को निवर्त्तित करके प्रकल्पित गृह की ओर अभिमुख होकर वहाँ से चला था । मार्ग में सभी ओर से अनेक प्रकार की पूजा को सामग्री हाथों में ग्रहण किये हुए पुरवासियों ने एकत्रित होकर अपने करों को जोड़कर उसका परमाधिक आतिथ्य सत्कार किया था और पद-पद पर जयकार के शब्दों के घोष से तथा सूर्य की ध्वनि से सभी दिशाओं को बधिर करते हुए उस राजा का नगर निवासियों ने विशेष सम्मान किया था । फिर राजा ने क्रम से तीन अन्य कक्षों का अतिक्रमण किया था जिनमें बड़े ही संभ्रम वाले कञ्चुकी वर्तमान थे ।

।३२-३३। उन कञ्चुकियों के द्वारा दर्शक जनों के समूहों को अलग दूर में हटा दिया गया था जिस समय में राजा ने अन्दर प्रवेश किया था। सचिवगण बड़े ही आदर से राजा के पदार्पण करने के लिये हाथों से सङ्केत कर रहे थे। भीतर नगर की कामिनियाँ विद्यमान थी जो राजा का अर्चन प्रदीपदधि-दर्पण-गन्ध-पुष्प-दूर्वा और अक्षत आदि से विशेष रूप से कर रही थीं।३४। फिर राजा उस राजभवन के अन्दर से लीला के सहित बहुमान पूर्वक आनन्दित होता हुआ निकला था। वहाँ पर सम वयस्क उन पुर की युवतियों के द्वारा अनेक प्रकार के रत्नों के प्रवेक रुचि के जाल से विराजमान बहुत ही शीघ्र एक उपवेशन करने के लिए आसन निवेशित किया गया था।३५।

सूक्ष्मोत्तरच्छदमुदारयशा मनोज्ञमभ्यारुरोह कनकोत्तर-
विष्टरं तम्।
तस्मिन्गृहे नृप तदीयपुरंध्रिवर्गः स्वासीनमाशु नृपति
र्विविधार्हणाभिः ॥३६
वाद्यादिभिस्तदनु भूषणगंधपुष्पवस्त्राद्यलंकृतिभिरग्र्य-
मुदं ततान।
तस्मिन्नशेषदिवसोचितकर्म सर्वं निर्वर्त्य हैहयपतिः
स्वमतानुसारम् ॥३७
नाना विधालयनमैर्विचित्रकेलीसंक्षितैर्दिनमशेषमलं
तिनाय।
कृत्वा दिनांतसमयोचितकर्म चैव राजा स्वमंत्रि-
सचिवानुगतः समंतात् ॥३८
आसन्नभृत्यकरसंस्थितदीपकौघसंशांतसंतमसमाशु सदः
प्रपेदे।
तत्रासने समुपविश्य पुरोधमंत्रिसामंतनायकशतैः
समुपास्यमानः ॥३९
अन्वास्त राजसमितौ विविधैर्विनोदैर्हृष्टः सुरेंद्र इव
देवगणैरुपेतः।

यातश्चिरं विविधवाद्यविनोदनृत्तैःआप्रवृत्तहसनादिः
कथाप्रसंगः ॥४०
आसांचकार गणिकाजननर्महासक्रीडाविलास-
परितोषितचित्तवृत्तिः ।
इत्थं विगामधिपतिर्भृशमानिशार्द्धं नानाविहार-
विभवानुभवैरनेकैः ॥४१
स्थित्वानुगान्यरपतीनपि तन्निवासं प्रस्थाप्य वासभवनं
स्वयमप्ययासीत् ।
तद्राजसैन्यमखिलं निजवीर्यशौर्यसंपत्प्रभावमहिमानुगुणं
गृहेषु ॥४२

वह उदार यश वाला राजा बहुत ही बारीक वस्त्र का छादन जिस पर हो रहा था और नीचे सुवर्ण का विष्टर जिसमें था ऐसे उस परम-मनोहर आसन पर अध्यासित हो गये थे। हे नृप ! उस गृह में उसकी पुरन्ध्रियों के समुदाय ने अपने आसन पर शीघ्र ही समासीन राजा का अनेक पूजन के उपचारों से अर्चन किया था।३६। इसके उपरान्त वाद्यों के वादन आदि के द्वारा और भूषण—गन्ध—पुष्प—वस्त्र आदि अलङ्कृतियों से राजा का विशेष आनन्द बढ़ा दिया था। वहाँ पर सम्पूर्ण दिन में होने वाले समुचित कर्म से निवृत्त होकर उस हैहयपति ने अपने मत के अनुसार पूरे दिवस को व्यतीत किया था।३७। वहाँ पर उस राजा का पूरा दिन अनेक तरह के आलयन–नर्मवचन–विचित्र आनन्द केलियों और भली भाँति प्रेक्षण आदि के समाचरण से व्यतीत हुआ था। फिर जब संध्या का समय हो गया तो उसने दिनान्त में होने वाले उचित कर्मों से निवृत्ति प्राप्त की थी और फिर वह राजा सभी ओर से अपने मन्त्रीगण और सचिवों से अनुगत हो गया था।३८। समीप में वर्त्तमान भृत्यों के करों में अनेक प्रदीप संस्थित थे जिनसे रात्रिका परम गहन अन्धकार शान्त हो गया था। उस समय में राजा अपनी सभा में प्राप्त हो गया था। वहाँ पर वह अपने आसन पर विराजमान हो गया था और सैकड़ों पुरोहित—मन्त्री—सामन्त और नायकों के द्वारा समुपासित हो रहा था।३९। उस राज सभा में नानाभाँति के विनोदों से वह परम हर्षित होकर बैठा हुआ था जिस तरह देवगणों से

समन्वित सुरेन्द्र होवे । इसके अनन्तर बहुत समय तक अनेक वाद्यों का वादन, आमोद-प्रमोद-नृत्य, और प्रेक्षण में प्रवृत्त हास्यविलास तथा कथाओं के प्रसङ्गों में वह प्रसक्त हो गया था ।४०। वहाँ पर गणिकाजनों के साथ प्रणय प्रवर्धक नर्म वचन-हास-क्रीड़ा और विलास से उसने अपने चित्त की वृत्ति को परितोषित किया था । इस रीति से क्षत्रियों के स्वामी उस राजा ने भिक्षा के अर्धभाग को अत्यधिक रूप से अनेक प्रकार के विहार के वैभव के अनुभवों से व्यतीत किया था ।४१। फिर उस राजा ने अपने अनुगामी नरपतियों को रवाना कर स्वयं भी वह अपने भवन में चला गया था । उससे राजा की सेना के जो सैनिक थे वे सभी उन गृहों में अपने शौर्यवीर्य-सम्पत्-प्रभाव और महिमा के ही अनुकूल प्राप्त करने वाले थे ।४२।

आत्मानुरूपविभवेषु महार्हवस्त्रस्रग्भूषणादिभिरलं
मुदितं बभूव ।
सैन्यानि तानि नृपतेर्विविधान्नपानसद्भक्ष्यभोज्य-
मधुमांसपयोघृताद्यैः ॥४३
तृप्तान्यथासुरखिलानि सुखोपभोगैस्तस्यां नरेंद्रपुरि
देवगणा दिवीव ।
एवं तदा नरपतेरनुयायिनस्ते नानाविधोचितसुखानु-
भवप्रतीताः ॥४४
अन्योन्यमूचुरिति गेहवनादिभिर्वा किं साध्यते वयमिहैव
वसाम सर्वे ।
राजापि शार्वरविधानमथो विधाय निर्वर्त्य वासभवने
शयनीयमग्र्यम् ।
अध्यास्य रत्ननिकरैररति शोभि भद्रं निद्रामसेवत नरेंद्र
चिरं प्रतीतः ॥४५

वे सब सैनिक गण अपने स्वरूप के अनुरूप वैभवों में वेश कीमती वस्त्र-स्रक् और भूषण आदि के द्वारा अत्यधिक मुदित हुए थे । उस राजा के सैनिक विविध प्रकार के अन्न-पान-अच्छे भोक्ष्य-भोज्य-मधु-मांस-पय और घृत आदि से परम तृप्त हो गये थे । उस नरेन्द्र की पुरी में जैसे देवगण

स्वर्ण में सब कुछ प्राप्त किया करते हैं उसी भाँति उन्होंने सैनिकों ने भी सुखों के उपभोगों के द्वारा सम्पूर्ण आनन्दप्रद पदार्थों की प्राप्ति की थीं। इस रीति से वे जो उस नृपति के अनुगामी थे वे सब अनेक प्रकार के समुचित सुखों के अनुभव से समाश्वस्त हो गये थे।४४। वे सब परस्पर में एक दूसरे से कह रहे थे कि अपने घर और धन आदि के द्वारा क्या साधन किया जाता है अर्थात् अपने घरों में यहाँ से अधिक क्या यहां के समान भी कोई साधन प्राप्त नहीं होते हैं। हम सब तो अब यहां पर निवास करना चाहते हैं। फिर उस राजा ने भी शर्वरी का जो भी कुछ विधान था उसे पूर्ण करके वह भी अपने निवास के भवन में दिव्य शय्या पर पहुँच गये थे। जो शय्या रत्नों के समुदाय के प्रकाश से अतीव शोभित थी और परमोत्तम थी हे नरेन्द्र! निश्चिन्त होकर चिरकाल पर्यन्त निद्रा के सुख का सेवन किया था।४५।

कात्तिकेय द्वारा कामधेनु की मांग

वसिष्ठ उवाच—

स्वपंतमेत्य राजानं सूतमागधवंदिनः।
प्रबोधयितुमव्यग्रा जगुरुच्चैर्निशात्यये ॥१
वीणावेणुरवोन्मिश्रकलतालततानुगम्।
समस्तश्रुतिसुश्राव्यप्रशस्तमधुरस्वरम् ॥२
स्निग्धकंठाः सुविस्पष्टमूर्च्छनाग्रामसूचितम्।
जगुर्गेयं मनोहारि तारमंद्रलयान्वितम् ॥३
ऊचुश्च तं महात्मानं राजानं सूतमागधाः।
स्वपंतं विविधा वाचो बुबोधयिषवः शनैः ॥४
पश्यायमस्तमभ्येति राजेंद्रेन्दुः पराजितः।
विवर्द्धमानया नूनं तव वक्त्रांबुजश्रिया ॥५
द्रष्टुं त्वदाननांभोजं समुत्सुक इवाधुना।
तमांसि भिंदन्नादित्यः संप्राप्तो ह्युदयं विभो ॥६
राजन्नखिलशीतांशुवंशमौलिशिखामणे।
निद्रपालं महाबुद्धे प्रतिबुध्यस्व सांप्रतम् ॥७

वसिष्ठ जी ने कहा—जिस समय में राजा शयन कर रहे थे और प्रातः कालीन गाने का समय हो गया था। तो सूत—मागध और वन्दीगण वहाँ पर आकर उपस्थित हो गये थे। निशा के अवमान में उन्होंने अव्यग्र होते हुए राजा को प्रबोध कराने के लिये समुच्च स्वर से गायन किया था।१। वह उनका गान वीणा-वेणु की ध्वनि से मिला हुआ मधुर और ताल के विस्तार के अनुरूप था तथा समस्तों के श्रवण करने में सुश्राव्य था और परम प्रशस्त एवं मधुर स्वर वाला था।२। उनका कण्ठ बहुत ही स्निग्ध था। ऐसे उन्होंने विशेष रूप से सुस्पष्ट मूर्च्छना और ग्राम से संयुत था। तार (अत्युच्च) और मन्द्र लय से समन्वित बहुत ही मन को हरण करने वाला गान उन्होंने गाया था।३। राजा को जगाने की इच्छा रखने वाले उन सूतों और मागधों ने सोते हुए उस महान् आत्मा वाले राजा से धीरे-धीरे कहा था।४। हे राजेन्द्र ! इस समय में यह चन्द्र पराजित होकर अस्त को प्राप्त हो रहा है क्योंकि आपकी बढ़ी हुई मुख कमल की शोभा से इसका पराजय हो गया है। अब आप प्रबुद्ध होकर इसका अवलोकन कीजिए।५। हे विभो ! इस समय में आपके मुख कमल को देखने के लिये बहुत ही उत्सुक की भाँति अन्धकारों का भेदन करता हुआ सूर्य देव उदय को प्राप्त हो गये हैं।६। हे राजन् ! आप तो समस्त चन्द्र वंश के प्रमुखों में भी सर्व शिरोमणि हैं। अब आप अपनी निद्रा का त्याग कर जाग्रत हो जाइये।

इति तेषां वचः श्रृण्वन्नबुध्यत महीपतिः ।
क्षीराब्धौ शेषशयनाद्यथापंकजलोचनः ॥८
विनिद्राक्षः समुत्थाय कर्म नैत्यकमादरात् ।
चकारावहितः सम्यग्जयादिकमशेषतः ॥९
देवतामभिवंद्येष्टां या दिव्यस्रग्गंधभूषणः।
कृत्वा दूर्वांजनादर्शमंगल्यालम्बनानि च ॥१०
दत्त्वा दानानि चार्थिभ्यो नत्वा गोब्राह्मणानपि ।
निष्क्रम्य च पुरात्तस्मादुपतस्थे च भास्करम् ॥११
तावदभ्याययुः सर्वे मंत्रिसामंतनायकाः ।
रचितांजलयो राजन्नेमुश्च नृपसत्तमम् ॥१२
ततः स तैः परिवृतः समुपेत्य तपोनिधिम् ।

ननाम पादयोस्तस्य किरीटेनार्कवर्चसा ॥१३

आशीर्भिरभिनंद्याथ राजानं मुनिपुंगवः ।

प्रश्रयावनतं साम्ना समुवाचास्यतामिति ॥१४

इस प्रकार के उन मागध बन्दियों के वचनों का श्रवण करके वह महीपति क्षीर सागर में शेषभाग की शय्या के पंकज लोचन भगवान् नारायण के समान ही प्रति बुद्ध हो गये थे ।८। निद्रा से रहित नेत्रों वाला होकर फिर उस नृपति ने परम सावधान होते हुए जय आदिक जो सम्पूर्ण दैनिक कर्म थे उनको किया था और बहुत ही समादर पूर्वक सम्पन्न किये थे ।९। फिर उस राजा ने अपने अभीष्ट गौ देवता की अभिवन्दना करके वह स्वयं दिव्य गन्ध-माला और भूषणों से समन्वित हुआ था और समस्त माङ्गल्य दूर्वा-अञ्जन और आदर्श आदि अवलम्बनों को ग्रहण किया था ।१०। उसने लोभी याचकगण वहाँ पर समुपस्थित हुए थे उनको दान दिया था—गौ और ब्राह्मणों को प्रणाम किया था तथा उस पुर से बाहिर निकल कर भगवान् भुवन भास्कर का उपस्थान किया था ।११। उसी समय में तब तक सभी मन्त्री, समस्त और नायक वहाँ पर आ गये थे । उन्होंने अपनी करों की अञ्जलियों को जोड़कर हे राजन् ! उस नृपों में श्रेष्ठ के लिए अभिवादन किया था ।१२। इसके उपरान्त उन सबके साथ सबसे संयुत वह राजा तप के निधि मुनिवर के समीप में उपस्थित हुआ था और अपने मस्तक को झुकाकर निज शिर पर सूर्य के वर्चस वाला किरीट पहिने हुए था महामुनि के चरणों में प्रणिपात किया था ।१३। मुनियों में परम श्रेष्ठ उस मुनीन्द्र ने इसके अनन्तर आशीर्वादों के द्वारा राजा का अभिनन्दन किया था और जो विनम्रता से नीचे की ओर अवनत हो रहा था उस राजा से परम शान्ति पूर्ण वचन से कहा था आप यहाँ पर बैठ जाइये ।१४।

तमासीनं नरपति महर्षिः प्रीतमानसः ।

उवाच रजनी व्युष्टा सुखेन तव किं नृप ॥१५

अस्माकमेव राजेन्द्रवने वन्येन जीवताम् ।

शक्यं मृगसधर्माणां येम केनापि वर्त्तितुम् ॥१६

अरण्ये नागराणां तु स्थितिरत्यंतदुःसहा ।

अनभ्यस्तं हि राजेन्द्र ननु सर्वं हि दुष्करम् ॥१७

वनवासपरिक्लेशं भावान्यत्सानुगोऽसकृत् ।
आप्तस्तु भवतो नूनं सा गौरवसमुन्नतिः ।।१८
इत्युक्तस्तेन मुनिना स राजा प्रीतिपूर्वकम् ।
प्रहसन्निव तं भूयो वचनं प्रत्यभाषत ।।१९
ब्रह्मन्किमनया ह्युक्त्या दृष्टस्ते यादृशो महान् ।
अस्माभिर्महिमा येन विस्मितं सकलं जगत् ।।२०
भवत्प्रभावसंजातविभवाहृतचेतसः ।
इतो न गंतुमिच्छंति सैनिका मे महामुनि ।।२१

जब राजा वहाँ पर आसीन हो गये थे तब बड़े ही प्रीतियुक्त मन वाले महर्षि ने उस नरपति से कहा था—हे नृप ! कहिए क्या आपकी रात्रि तो सुख पूर्वक व्यतीत हुई है ? ।१५। हे राजेन्द्र ! इस वन में पशु के ही समान धर्म वाले हमारा तो वन में समुत्पन्न वस्तुओं से ही जीवन यापन होता है और जिस-किसी भी प्रकार से वृत्ति की जा सकती है ।१६। ऐसे महारण्य में जो नगरों में निवास करने वाले हैं उनकी स्थिति तो बहुत ही दुःसह हुआ करती है । हे राजन् ! कारण यही है कि नागरिक पुरुषों का ऐसे अरण्य-जीवन का सभी कभी अभ्यास नहीं होता है और यह सब महान कठिन ही होता है ।१७। आपने इस वनवास के परिक्लेश को अपने समस्त अनुगामियों के साथ में अनेक बार प्राप्त किया है । निश्चय ही आपके लिए यह गौरव ही समुन्नति है ।१८। इस रीति से जब यह उस राजा से मुनिवर ने कहा था तो उस राजा ने प्रीति के साथ कुछ मुस्कराते हुए पुनः उस मुनिवर को इसका उत्तर दिया था ।१९। राजा ने मुनिवर से कहा था—हे ब्रह्मन् ! आपको इस उक्ति से क्या है अर्थात् आपने जो यह कथन किया है उसका क्या अभिप्राय है समझ में नहीं आता है । हम लोगों ने तो आपकी जो महान् महिमा स्वयं अपने नेत्रों से देखी है वह तो परम अद्भुत है और उससे तो सम्पूर्ण जगत को ही बड़ा विस्मय होता है ।२०। हे महामुने ! आपके तप के प्रभाव से जो यहाँ पर महान वैभव समुत्पन्न हुआ है उससे प्रभावित चित्त वाले ये मेरे सभी सैनिक तो यहाँ से अन्यत्र गमन करने की इच्छा नहीं करते हैं ।२१।

त्वादृशानां जगंतीह प्रभावैस्तपसां विभो ।
ध्रियंते सर्वदा नूनमचित्यं ब्रह्मवर्चसम् ।।२२

नैव चित्रं तव विभो शक्नोति तपसा भवान् ।
ध्रुवं कर्त्तुं हि लोकानामवस्थात्रितयं क्रमात् ॥२३
सुदृष्टा ते तपः सिद्धिर्महती लोकपूजिता ।
गमिष्यामि पुरीं ब्रह्मन्ननुजानातु मां भवान् ॥२४
वसिष्ठ उवाच—

इत्युक्तस्तेन स मुनिः कार्त्तवीर्येण सादरम् ।
संभावयित्वा नितरां तथेति प्रत्यभाषत ॥२५
मुनिना समनुज्ञातो विनिष्क्रम्य तदाश्रमात् ।
सैन्यैः परिवृतः सर्वैः संप्रतस्थे पुरीं प्रति ॥२६
स गच्छंश्चिंतयामास मनसा पथि पार्थिवः ।
अहोऽस्य तपसः सिद्धिर्लोकविस्मयदायिनी ॥२७
यया लब्धेदृशी धेनुः सर्वकामदुहां वरा ।
किं मे सकलराज्येन योगर्द्ध्या वाप्यनल्पया ॥२८

हे विभो ! इस जगती तल में आप जैसे महा पुरुषों के तपों के प्रभावों से ही निश्चित रूप से सर्वदा ब्राह्मणों के वर्चस् को नित्य ही धारण किया करते हैं ।२२। हे विभो ! इसमें कुछ भी विचित्रता नहीं है । आप अपने तप के द्वारा लोकों की क्रम से तीनों अवस्थाओं को ध्रु वकर सकते हैं ।२३। हमने आपको लोकों में पूजित महान् तप की सिद्धि भली भांति देखली हैं । हे ब्रह्मन् ! मैं अब अपनी नगरी में जाऊँगा अतः आप मुझे गमन करने के लिए अपना आदेश प्रदान कीजिए ।२४। वसिष्ठ जी ने कहा—जब कार्त्त-वीर्य राजा के द्वारा जब इस प्रकार से उन महामुनि से सादर प्रार्थना की गयी थी तो मुनि ने बहुत कुछ सत्कार करके यही उत्तर दिया था कि यदि आप जाना ही चाहते हैं तो स्वेच्छया गमन कीजिए ।२५। उस महामुनि से अनुज्ञा प्राप्त करने वाले राजा ने उनके आश्रम से बाहिर निकल कर समस्त सेनाओं से परिवृत होते हुए अपनी पुरी की ओर प्रस्थान कर दिया था ।२६। मार्ग में गमन करने के समय में उस राजा ने अपने मन में विचार किया था कि ओहो ! इस मुनि की तपश्चर्या को कैसी अद्भुत शक्ति है जो सभी लोकों को बिस्मय देने वाली है ।२७। जिस तपश्चर्या की सिद्धि से ऐसी

समस्त इच्छाओं की पूर्ति करने वाली धेनुओं से भी परमश्रेष्ठ धेनु प्राप्त की है। इस मेरे सम्पूर्ण राज्य के महान् वैभव से भी क्या हो सकता है और अनल्प योग की ऋद्धि से भी कुछ नहीं हो सकता है। अर्थात् इस मेरे महान् विशाल राज्य का वैभव तथा योग द्वारा ऋद्धि का वैभव भी इसके सामने तुच्छ है।२८।

गोरत्नभूता यदियं धेनुर्मुनिवरे स्थिता ।
अनयोत्पादिता नूनं संपत्स्वर्गसदामपि ॥२९
ऋद्धमैंद्रमपि व्यक्तं पदं त्रैलोक्यपूजितम् ।
अस्या धेनोरहं मन्ये कलां नार्हति षोडशीम् ॥३०
इत्येवं चिंतयानं तं पश्चादभ्येत्य पार्थिवम् ।
चन्द्रगुप्तोऽब्रवीन्मंत्री कृतांजलिपुटस्तदा ॥३१
किमर्थं राजशार्दूल पुरीं निगमिष्यसि ।
रक्षितेन च राज्येन पुर्या वा किं फलं तव ॥३२
गोरत्नभूता नृपतेर्याबद्धेनुर्न चालये ।
वर्त्तते नार्द्धमपि ते राज्यं शून्य तव प्रभो ॥३३
अन्यच्च दृष्टमाश्चर्यं मया राजञ्छृणुष्व तत् ।
भवनानि मनोज्ञानि मनोज्ञाश्च तथा स्त्रियः ॥३४
प्रसादा विविधाकारा धनं चाहष्टसंक्षयम् ।
धेनौ तस्यां क्षणेनैव विलीनं पश्यतो मम ॥३५

कारण यही है कि समस्त धेनुओं में रत्न के सदृश यह धेनु इस मुनिवर के समीप में संस्थित है। इसके ही द्वारा स्वर्ग में निवास करने वालों की भी सम्पदा उत्पादित की गयी है यह निश्चित है।२९। यह माना जाता है कि महेन्द्र का पद अर्थात् स्थान परम ऋद्धियों से परिपूर्ण है तथा यह तीनों लोकों में पूजित होता है क्योंकि सर्वतोभाव से यह परम समृद्ध होता है किन्तु मैं तो ऐसा मानता हूँ कि वह इन्द्र का वैभव भी इस धेनु को शक्ति से समुत्पादित वैभव के सामने सोलहवाँ भाग भी नहीं है।३०। राजा इसी प्रकार से अपने मन में चिन्तन कर रहा था उस राजा के पीछे से आकर मन्त्री चन्द्रगुप्त ने उस समय में हाथ जोड़कर उस राजा से कहा था।३१। हे राज शार्दूल ! आप किस लिए अपनी पुरी की ओर गमन कर रहे हैं ?

आपका राज्य और पुरी तो परम सुरक्षित है अतः वहां पर पुरी में गमन करने से क्या फल होगा ? अर्थात् इसी समय वहां गमन व्यर्थ ही है ।३२। हे प्रभो ! यह रत्नभूता गौ जब तक आप सरीसे राजा के घर में न होवे तब तक आपका सम्पूर्ण राज्य इसके वैभव के सामने आधा भी नहीं है और यों ही कहना उचित है कि आपका पूरा राज्य एक प्रकार से शून्य ही है ।३३। हे राजन् ! मैंने एक और भी महान् आश्चर्य देखा था, उसका भी आप श्रवण कीजिए । उस धेनु ने अपनी अद्भुत शक्ति से बड़े-बड़े मनोज्ञ भवन समुत्पादित किये थे वे सब और परम सुन्दरी स्त्रियां जो थीं तथा अनेक भाँति के आकार-प्रकार वाले जो महल अर्थात् विशाल भवन थे एवं जो कभी भी क्षीण होने वाला नहीं देखा गया था वह धन सभी कुछ एक ही क्षण में उसी धेनु में मेरे देखते-देखते विलीन हो गये थे ।३४-३५।

तत्तपोवनमेवासीदिदानीं राजसत्तम ।
एवंप्रभावा सा यस्य तस्य किं दुर्लभं भवेत् ।।३६
तस्माद्रत्नार्हसत्त्वेन स्वीकर्त्तव्या हि गौस्त्वया ।
यदि तेऽनुमतं कृत्यमाख्येयमनुजीविभिः ।।३७
राजोवाच—एवमेवाहमप्येनां न जानामीत्यसांप्रतम् ।
ब्रह्मस्वं नापहर्त्तव्यमिति मे शङ्कते मनः ।।३८
एवं ब्रुवंतं राजानमिदमाह पुरोहितः ।
गर्गो मतिमतां श्रेष्ठो गर्हयन्निव भूपते ।।३९
ब्रह्मस्वं नापहर्त्तव्यमापद्यपि कथंचन ।
ब्रह्मस्वसदृशं लोके दुर्जरं नेह विद्यते ।।४०
विषं हंत्युपयोक्तारं लक्ष्यभूतं तु हैहय ।
कुलं समूलं दहति ब्रह्मस्वारणिपावकः ।।४१
अनिवार्यमिदं लोके ब्रह्मस्वं दुर्जरं विषम् ।
पुत्रपौत्रान्तफलदं विपाककटु पार्थिव ।।४२

हे श्रेष्ठ राजन् ! इस समय में वही तपोवन था जिसमें इस रीति के प्रभाव वाली वह धेनु विद्यमान है । उस व्यक्ति को इस जगत् में क्या पदार्थ दुर्लभ है अर्थात् उस को कुछ भी दुर्लभ नहीं होता है ।३६। इस कारण से आप तो सभी रत्नों के रखने के योग्य बल-विक्रम वाले हैं । आपको यह गौ

स्वीकार करना चाहिए अर्थात् उस धेनु को आप ग्रहण कर लीजिए। यदि यह कार्य आपको पसन्द हो तो इसको अपने अनुजीवियों के द्वारा कहला देना चाहिए।३७। इस प्रकार से मैं भी इसको नहीं जानता हूँ। किन्तु यह सब आपका कथन अयुक्त है। चाहे कितनी ही आपत्ति क्यों न उपस्थित हो जावे, ऐसे आपत्काल में भी ब्राह्मणों के धन का कभी भी आहरण नहीं करना चाहिए। मेरा मन परम शङ्कित रहा करता है।३८। इस रीति से जिस समय में राजा कह रहा था उस समय में राजा के पुरोहित ने राजा से यह कहा था—हे भूपते ! मतिमानों में परम श्रेष्ठ गर्ग मुनि ने ऐसे कर्म की निन्दा करते हुए यही कहा था।३९। आपत्ति काल में भी कभी ब्राह्मणों के धन का किसी भी तरह से अपहरण नहीं करना चाहिए। इस लोक में ब्रह्मस्व के समान अन्य कुछ भी दुजर अर्थात् बुरा कर्म नहीं होता है।४०। हे हैहय ! विष भी मारक होता है किन्तु वह अपने उपभोक्ता को ही जो कि उसका लक्ष्य भूत है मारता है किन्तु ब्राह्मणों का धन रूपी पावक मूल के सहित सम्पूर्ण कुल को भस्मीभूत कर दिया करता है।४१। हे पार्थिव ! लोक में यह बड़ा भारी आश्चर्य से संयुत है कि ब्रह्मस्व अनिवार्य रूप से महान् दुर्जर विष है। यह तो केवल ग्रहण करने वाले को ही नहीं प्रत्युत उसके सभी पुत्र-पौत्र आदि का विनाश कर देने वाला है और विपाक में महान कटु होता है।४२।

ऐश्वर्यमूढं हि मनः प्रभूणामसदात्मनाम् ।
किन्नामासन्न कुरुते नेत्रासन्निप्रलोभितम् ॥४३
वेदान्यस्त्वामृते कोऽन्यो विना दानान्नृपोत्तम ।
आदानं चिंतयानो हि ब्राह्मणेष्वभिवाञ्छति ॥४४
ईदृशंत्वं महाबाहो कर्म सज्जननिंदितम् ।
मा कुथास्तद्धि लोकेषु यशोहानिकरं तव ॥४५
वंशे महति जातस्त्वं वदान्यानां महीभुजाम् ।
यशांसि कर्मणानेन सांप्रतं मा व्यनीनशः ॥४६
अहोऽनुजीविनः किंचिद्भर्तारं व्यसनार्णवे ।
तत्प्रसादसमुन्नद्धा मज्जयंत्यनयोन्मुखाः ॥४७
श्रिया विकुर्वन्पुरुषकृत्यचिंतये विचेतनः ।

तन्मतानुप्रवृत्तिश्च राजा सद्यो विषीदति ।।४८

अज्ञातसुनयो मंत्री राजानमनयांबुधौ ।

आत्मना सह दुर्बुद्धिर्लोहनौरिव मज्जयेत् ।।४९

असत् आत्माओं वाले प्रभुओं का मन ऐश्वर्य की वृद्धि करने में महान् मूढ़ हुआ करता है। वे बहुधा नेत्रों से बुरे कर्मों को देखते हुए भी विशेष रूप से प्रलोभित उनका मन क्या-क्या असत् कर्म नहीं किया करता है अर्थात् ऐसे बहुत से बुरे कर्म हैं जिनको उनका मन करने में थोड़ा भी शङ्कित नहीं होकर किया करता है।४३। हे उत्तम नृप! आपको छोड़कर अन्य ऐसा कौन है जो यह नहीं जानता है कि ब्राह्मणों को तो अपनी ओर से दान ही दिया जाता है। दान के देने के अतिरिक्त उनसे कुछ ग्रहण करना ब्राह्मणों के विषय में चाहता हो। तात्पर्य यही है कि आप ब्राह्मणों को दान देने के महत्व को भली भाँति जानते हैं और उनसे किसी वस्तु का ग्रहण नहीं किया जाता है यह भी अच्छी तरह से समझते हैं—इस विषय में आपके समान अन्य कोई भी ज्ञाता नहीं है।४४। हे महान् बाहुओं वाले! आप तो इस तरह के पूर्ण ज्ञाता महा पुरुष हैं। फिर ऐसे सज्जनों के द्वारा विशेष निन्दित ऐसे कर्म को कभी मत करिए क्योंकि ऐसा बुरा कर्म लोक में आपके सुयश की हानि के ही करने वाला होगा।४५। हे राजन्! आप महान् दानी राजाओं के वंश में समुत्पन्न हुए हैं। अतएव आपका विशाल यश है। अब इस असत् कर्म के द्वारा अपने यश का विनाश मत करिये।४६। अहो! अर्थात् बड़े ही आश्चर्य की बात तो यह है कि ये अनुजीवी लोग जोकि अपने ही स्वामी के परम प्रसाद से समुच्च हो गये हैं वे ऐसी अनीति की ओर उन्मुख हो रहे हैं कि वे उसी अपने स्वामी व्यसनों के सागर में डुबा रहे हैं।४७। श्री सम्पन्नता होने के कारण से ऐसा मनुष्य ज्ञान शून्य हो गया है कि अचिन्तनीय पुरुष के कृत्य को भी करने के लिये उतारू हो जाता है। ऐसे मनुष्यों के मत के अनुसार प्रवृति रखने वाला राजा तुरन्त ही दुःखों को भोगा करता है।४८। जो मन्त्री सुन्दर नीति को नहीं जानता है वह दुष्ट बुद्धि वाला मन्त्री लोहे की नौका की ही भाँति अपने राजा को भी अनीति को सागर में निमग्न करा दिया करता है।४९।

तस्मात्त्वं राजशार्दूल मूढस्य नयवर्त्मनि ।

मतमस्य सुदुर्बुद्धेर्नानुवर्त्तितुमर्हसि ।।५०

एवं हि वदतस्तस्य स्वामिश्रेयस्करं वच: ।
आक्षिप्य मन्त्री राजानमिदं भूयो ह्यभाषत ।।५१
ब्राह्मणोऽयं स्वजातीयहितमेव समीक्षते ।
महांति राजकार्याणि द्विजैस्तु न शक्यते ।।५२
राज्ञैव राजकार्याणि वेद्यानि स्वमनीषया ।
विना वै भोजनादाने कार्यं विप्रो न विदति ।।५३
ब्राह्मणो नावमंतव्यो वंदनीयश्च नित्यश: ।
प्रतिसंग्रहणीयश्च नाधिकं साधितं क्वचित् ।।५४
तस्मात्स्वीकृत्य तां धेनुं प्रयाहि स्वपुरं नृप ।
नोचेद्राज्यं परित्यज्य गच्छत्व तपसे वनम् ।।५५
क्षमावत्त्वं ब्राह्मणानां दण्ड: क्षत्रस्य पार्थिव ।
प्रसह्य हरणे वापि नाधर्मस्ते भविष्यति ।।५६

इस कारण से हे राजशार्दूल ! आप इस मूढ के न्याय मार्ग में मत चलिए और इस दुष्ट बुद्धि वाले मन्त्री के मत के अनुसार असत् करने के लिये आप कभी भी योग्य नहीं होते हैं ।५०। इस रीति से अपने स्वामी के कल्याण करने वचनों को जब वह पुरोहित कह रहा था तो उसकी बात को काट कर वह मन्त्री फिर राजा से यह बोला था ।५१। हे राजन् ! यह पुरोहित तो जाति का ब्राह्मण है और यह सर्वदा अपनी ही जाति का हित चाहा करता है। राजा के कार्य तो बहुत महान् हुआ करते हैं जो कि विप्रों के द्वारा कभी भी जाने नहीं जा सकते हैं ।५२। राजाओं के कार्य तो राजा के ही द्वारा जानने के योग्य हुआ करते हैं। विप्र केवल भोजन और दान ग्रहण के अतिरिक्त अपनी बुद्धि से अन्य नृपोचित कार्य को नहीं जानता है ।५३। मैं ब्राह्मणों की किसी भी रीति से निन्दा नहीं करता हूँ प्रत्युत मेरा यही मत है कि कभी भी ब्राह्मण का अपमान नहीं करना चाहिए और ब्राह्मण की नित्य ही वन्दना करनी चाहिए। इसका प्रति संग्राहण भी करना उचित है किन्तु इसके द्वारा कहीं पर भी किसी कार्य को साधित नहीं करे ।५४। हे नृप ! इस कारण से आप उस मुनि की होमधेनु को स्वीकार करके अर्थात् अपने अधिकार में लेकर ही फिर अपने नगर में गमन करिए। यदि यह कार्य नहीं करना चाहते हैं और ऐसे अद्भुत पदार्थ का भी त्याग कर

रहे हैं तो फिर सभी राज पाट को त्याग कर तप करने को वन में ही चले जाइए और पूर्ण त्यागी बन जाइए ।५५। इस प्रकार से क्षमावान् होना तो ब्राह्मणों का ही धर्म होता है। हे राजन् ! क्षत्रिय का धर्म तो दण्ड देना है। यदि बल पूर्वक भी उस धेनुरत्न का अपहरण करते हैं तो इसके करने में भी आपका कोई अधर्म नहीं होगा ।५६।

प्रसह्य हरणे दोषं यदि संपश्यसे नृप ।
दत्त्वा मूल्यं गवाश्वाद्यमृषेर्धेनुः प्रगृह्यताम् ।।५७
स्वीकर्तव्या हि सा धेनुस्त्वया त्वं रत्नभाग्यतः ।
तपोधनानां हि कुतो रत्नसंग्रहणादरः ।।५८
तपोधनबलः शांतः प्रीतिमान्स नृप त्वयि ।
तस्मात्ते सर्वथा धेनुं याचितः संप्रदास्यति ।।५९
अथ वा गोहिरण्याद्यं यदन्यदभिवाञ्छितम् ।
संगृह्य वित्तं विपुलं धेनुं तां प्रतिदास्यति ।।६०
अनुपेक्ष्यं महद्रत्नं राज्ञा वै भूतिमिच्छता ।
इति मे वर्त्तते बुद्धिः कथं वा मन्यते भवान् ।।६१
राजोवाच—गत्वा त्वमेव तं विप्रं प्रसाद्य च विशेषतः ।
दत्त्वा चाभीप्सितं तस्मै तां गामानय मंत्रिक ।।६२
वसिष्ठ उवाच—
एवमुक्तस्ततो राज्ञा स मंत्री विधिचोदितः ।
निवृत्य प्रययौ शीघ्रं जमदग्नेरथाश्रमम् ।।६३

हे नृप ! आप यदि बलात् उस धेनुरत्न के अपहरण करने में कोई दोष और अधर्म ही देखते हैं तो आप इसके बदले में अन्य गौ तथा अश्व आदि मूल्य के रूप में मुनि को देकर ऋषि की उस धेनु का ग्रहण कर लीजिए ।५७। मेरे इस सम्पूर्ण निवेदन करने का निष्कर्ष यही है कि आपके द्वारा उस धेनु को स्वीकार कर ही लेना चाहिए अर्थात् किसी भी रीति से उसको अपने अधिकार में ले ही लेना उचित है। इसका कारण यही है कि आप तो ऐसे रत्नों का सेवन करने वाले हैं। जो तप को ही अपना धन माना करते हैं ऐसे तपस्वियों को ऐसे रत्नों के संग्रहण करने का समादर

कहीं भी नहीं होता है।५८। वह तपोधन बल वाला ऋषि तो परम शान्त स्वभाव वाला है और हे नृप ! वह आप में प्रीति रखने वाला भी है। इस कारण से जब भी आपके द्वारा याचना उससे की जायगी तो वह सब प्रकार से उस धेनु को दे देगा।५९। अथवा यह भी होसकता है कि वह कुछ अधिक इच्छा रखता होवे तो अन्य गौ और सुवर्ण आदि जो-जो भी उसका अभीप्सित हो वह बहुत-सा धन एकत्रित करके उसको दे दिया जावे तो वह इस सबके बदले में उस धेनु का प्रतिदान अवश्य ही कर देगा।६०। मेरी बुद्धि तो यही है कि भूति की अभिलाषा रखने वाले राजा के द्वारा ऐसे महान् रत्न की कभी भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। आप इस विचारणीय विषय में कैसा अपना मत रखते हैं ?।६१। राजा ने मन्त्री के मत का श्रवण करके कहा था—हे मन्त्रिन् ! आप ही वहाँ गमन कीजिए और विशेष रूप से उस विप्र को प्रसन्न कीजिए तथा जो भी कुछ उसका अभिवाञ्छित हो उस सबको उसे प्रदान करके उस धेनु को यहाँ पर ले आइए।६२। वसिष्ठजी ने कहा—इस रीति से जब राजा के द्वारा कहा गया था तो वह मन्त्री भाग्य के विधान से प्रेरित होकर शीघ्र ही वापिस होकर जमदग्नि मुनि के आश्रम में चला गया था।६३।

गते तु नृपतौ तस्मिन्नक्षतव्रणसंयुत ।
समिदानयनार्थाय रामोऽपि प्रययौ वनम् ।।६४
ततः स मंत्री सबलः समासाद्य तदाश्रमम् ।
प्रणम्य मुनिशार्दूलमिदं वचनमब्रवीत् ।।६५

चन्द्रगुप्त उवाच—
ब्रह्मन्नृपतिनाऽज्ञप्तं राजा तु भुवि रत्नभाक् ।
रत्नभूता च धेनुः सा भुवि दोग्ध्रीष्वनुत्तमा ।।६६
तस्माद्रत्नं सुवर्णं वा मूल्यमुक्त्वा यथोचितम् ।
आदाय गोरत्नभूतां धेनुं मे दातुमर्हसि ।।६७

जमदग्निउवाच—
होमधेनुरियं मह्यं न दातव्या हि कस्यचित् ।
राजा वदान्यः स कथं ब्रह्मस्वमभिवाञ्छति ।।६८

मंत्र्युवाच-

रत्नभाक्त्वेन नृपतिर्द्धेनुं ते प्रतिकांक्षति ।

गवायुतेन तस्मात्त्वं तस्मै तां दातुमर्हसि ॥६९

उस राजा के आश्रम से अपने पुर को ओर चले जाने पर राम भी आकृत व्रण के ही साथ में समिधाओं के लाने के लिए वन में चला गया था ।६४। इसके अनन्तर वह चन्द्रगुप्त नामधारी मन्त्री अपनी सेना के सहित जमदग्नि मुनि के आश्रम में पहुँच कर उसने मुनियों में शार्दूल के समान जमदग्नि के चरणों में प्रणाम करके वह वचन कहे थे ।६५। चन्द्रगुप्त ने कहा—हे ब्रह्मन् ! नृपति ने यह आज्ञा प्रदान की है कि इस भूमण्डल में राजा ही रत्नों का सेवन करने वाला होता है । इस भूमि में समस्त दोहन शील धेनुओं में अतीव उत्तम वह धेनु रत्नभूता है जो कि इस समय में आप के पास है ।६६। इस कारण से आप रत्न अथवा सुवर्ण जो भी समुचित हो उस धेनु का मूल्य बताकर ग्रहण कीजिए और गौओं में जो रत्नभूता धेनु है उसको आप मुझको प्रदान करने के योग्य होते हैं ।६७। जमदग्नि मुनि ने कहा—यह तो मेरी होम धेनु है अर्थात् समस्त होम की सामग्री देने वाली है अतएव मेरे द्वारा यह किसी के लिये भी देने के योग्य नहीं है । यह आपका स्वामी राजा तो बहुत ही बड़ा दानशील है फिर वह किस प्रकार से इस ब्रह्मस्व अर्थात् ब्राह्मण के धन को लेने की इच्छा कर रहा है ? ।६८। मन्त्री ने कहा—क्योंकि नृपति रत्नों का सेवन करने वाला होता है इसी भावना के कारण से वह आपकी रत्नभूता धेनु की आकांक्षा करता है । यों ही बिना किसी मूल्य के नहीं लेना चाहता है । आप दश सहस्र गौओं को ग्रहण करके इस कारण से उस धेनु को उस राजा के लिए देने के योग्य हैं ।६९।

जमदग्निरुवाच-

क्रयविक्रययोर्नाहं कर्त्ता जातु कथंचन ।

हविर्धानीं च वै तस्मान्नोत्सहे दातुमंजसा ॥७०

मंत्र्युवाच-राज्यार्धेनाथ वा ब्रह्मन्सकलेनापि भूभृतः ।

देहि धेनुमिमामेकां तत्ते श्रेयो भविष्यति ॥७१

जमदग्निरुवाच-

जीवन्नाहं तु दास्यामि वासवस्यापि दुर्मते ।
गुरुणा याचितं किं ते वचसा नृपते पुनः ॥७२

मंत्र्युवाच–
त्वमेव स्वेच्छया राजे देहि धेनुं सुहृत्तया ।
यथा बलेन नीतायां तस्यां त्वं किं करिष्यसि ॥७३

जमदग्निरुवाच–
दाता द्विजानां नृपतिः स यद्यप्याहरिष्यति ।
विप्रोऽहं किं करिष्यामि स्वेच्छावितरणं विना ॥७४

वसिष्ठ उवाच–
इत्येवमुक्तः संक्रुद्धः सः मंत्री पापचेतनः ।
प्रसह्य नेतुमारेभे मुनेस्तस्य पयस्विनीम् ॥७५

जमदग्नि मुनि ने कहा—भाई, मैं कभी भी किसी भी प्रकार से क्रय और विक्रय के करने वाला नहीं हूँ। वह धेनु तो मेरी हविर्धानी अर्थात् होम के लिये हवि के प्रदान करने वाली है! इसलिए तुरन्त ही मैं उसको देने का उत्साह नहीं करता हूँ।७०। मन्त्री ने फिर कहा—हे ब्रह्मन्! आप उस राजा के आधे राज्य को ग्रहण करके अथवा सम्पूर्ण राज्य को लेकर भी इस एक धेनु को दे दीजिए। इससे आपका बहुत बड़ा कल्याण होगा।७१। जमदग्नि ने कहा—हे दुष्ट मति वाले! मैं जीवित रहते हुए इस राजा की तो बात ही क्या है देवेन्द्र को भी यह धेनु नहीं दूँगा। फिर आपके राजा के बड़े वचन से याचना करना तो सर्वथा व्यर्थ ही है। अर्थात् इससे कुछ भी लाभ नहीं है।७२। मन्त्री ने कहा—आप ही सौहार्द्र की भावना से राजा के लिए उस धेनु को दे दीजिए—यही अच्छा है। और ऐसा आप नहीं करते हैं तो उसको बलपूर्वक ले लेने पर आप क्या करेंगे?।७३। जमदग्नि मुनि ने कहा—राजा तो ब्राह्मणों के लिए दान प्रदान करने वाला हुआ करता है। वही यदि ब्रह्मस्व का आहरण करता है तो मैं तो विप्र हूँ मैं स्वेच्छा से वितरण करने के बिना उसका क्या करूँगा।७४। वसिष्ठ जी ने कहा—जब इस रीति से उस चन्द्रगुप्त मन्त्री से ऋषि के द्वारा कहा गया तो वह पाप पूर्ण ज्ञान वाला मन्त्री बहुत क्रोधित हो गया था। फिर उसने मुनि की उस पयस्विनी धेनु का बलपूर्वक अपहरण करना आरम्भ कर दिया था।७५।

॥ जमदग्नि-बध ॥

वसिष्ठ उवाच–

जमदग्निस्ततो भूयस्तमुवाच रुषान्वितः ।
ब्रह्मस्वं नापहर्त्तव्यं पुरुषेण विजानता ॥१
प्रसह्य गां मे हरतो पापमाप्स्यसि दुर्मति ।
आयुर्जाने परिक्षीणं न चेदेतत्करिष्यति ॥२
बलादिच्छसि यन्नेतुं तन्न शक्यं कथंचन ।
स्वयं वा यदि सायुज्येद्विनशिष्यति पार्थिवः ॥३
दानं विनापहरणं ब्राह्मणानां तपस्विनाम् ।
शतायुषोऽर्जुनादन्यः कोऽन्विच्छति जिजीविषुः ॥४
इत्युक्तस्तेन संक्रुद्धः स मंत्री कालचोदितः ।
बद्ध्वा तां गां दृढैः पाशैर्विचकर्ष बलान्वितः ॥५
जमदग्निरथ क्रोधाद्भाविकर्मप्रचोदितः ।
रुरोध तं यथाशक्ति विकर्षतं पयस्विनीम् ॥६
जीवन्न प्रतिमोक्ष्यामि गामेनामित्यमर्षितः ।
जग्राह सुदृढं कंठे बाहुभ्यां तां महामुनिः ॥७

श्री वसिष्ठजी ने कहा—पुनः जमदग्नि मुनि ने क्रोध से समन्वित होते हुए उससे कहा था—एक ज्ञानी पुरुष के द्वारा ब्रह्मस्व का कभी भी अपहरण नहीं करना चाहिए।१। हे दुष्टमति वाले ! बलात् मुझ से मेरी गौ का हरण करके तू महान् पाप को प्राप्त हो जायगा। यदि तू ऐसा ही करेगा तो मैं जानता हूँ कि आयु को परिक्षीण कर रहा है।२। बल पूर्वक जो इसको लेने की इच्छा कर रहा है वह किसी भी रीति से नहीं किया जा सकेगा। यदि यही करेगा तो तू स्वयं ही आयुज्य को प्राप्त हो जायगा अथवा तेरा राजा विनष्ट हो जायगा।३। बिना दान के तपस्वी ब्राह्मणों की वस्तु का बल से छीन लेना शतायु कार्त्तवीर्यार्जुन के सिवाय अन्य कौन जीवित रहने की इच्छा वाला चाहता है अर्थात् ऐसा कोई भी नहीं चाहा करता है। वह तेरा राजा ही है जो ऐसा करना चाहता है।४। इस तरह से जब

मुनि के द्वारा उस मन्त्री से कहा गया था तो वह मन्त्री काल से प्रेरित होकर उस दुष्कर्म में प्रवृत्त हो गया था और बल (सेना) से समन्वित उस मन्त्री ने परम सुदृढ़ पाशों से उस होम धेनु को बाँध करके अपने साथ ले जाने के लिये खींचा था।५। इसके अनन्तर क्रोध से भविष्य में होने वाले कर्म से प्रेरित होते हुए जमदग्नि ने गौ के खींचते हुए उस मन्त्री को अपनी शक्ति को भरपूर लगाकर जैसी शक्ति उनमें थी उसी के अनुसार रोका था।६। उन्होने कहा था कि मैं अपने जीते जी इस धेनु को नहीं छोड़ूगा। यह कहते हुए उनको बड़ा क्रोध उत्पन्न हो गया और उस महामुनि ने बड़ी दृढ़ता के साथ अपनी दोनों बाहुओं को उस धेनु क कण्ठ में डालकर उसको बलपूर्वक पकड़ लिया था।७।

ततः क्रोधपरीतात्मा चन्द्रगुप्तोऽतिनिर्घृणः।
उत्सारयध्वमित्येनमादिदेश स्वसैनिकान् ॥८
अप्रधृष्यतमं लोके तमृषिं राजकिंकराः।
भर्त्राज्ञया प्रहृत्यैनं परिवव्रुः समंततः ॥६
दंडैः कशाभिर्लगुडैर्विनिघ्नंतश्च मुष्टिभिः।
ते समुत्सारयन् धेनोः सुदूरतरमंतिकात् ॥१०
स तथा हन्यमानोऽपि व्यथितः श्रमयान्वितः।
न चुक्रोधाक्रोधनत्वं सतो हि परमं धनम् ॥११
स च शक्तः स्वतपसा संहर्त्तुमपि रक्षितुम्।
जगत्सर्वं क्षयं तस्य चिन्तयन्न प्रचुक्रुधे ॥१२
स पूर्वं क्रोधनोऽत्यर्थं मातुरर्थे प्रसादितः।
रामेणाभूत्ततो नित्यं शांत एव महातपाः ॥१३
स हन्यमानः सुभृशं चूर्णितांगास्थिबंधनः।
निपपात महातेजा धरण्यां गतचेतनः ॥१४

इसके अनन्तर क्रोध से परीत आमा वाले उस अत्यन्त नीच चन्द्रगुप्त ने अपने सैनिकों को आज्ञा दे दी थी कि इस मुनि को बल पूर्वक हटा दो।८। वह मुनि इस लोक में ऐसे थे कि कोई भी उनको प्रधर्षित नहीं कर सकता था तथापि राजा के किंकरों ने उस ऋषि को अपने स्वामी की आज्ञा

से बलपूर्वक चारों ओर से उसको घेर लिया था। सैनिकों ने सेतु के समीप से बहुत दूर तक उस ऋषि को हटाते हुए उस पर दण्डों से—कशाओं से—लाठियों से—और घूंसों से पीट रहे थे ।९-१०। वह ऋषि इस तरह से पीटे और मारे जाने पर भी बहुत व्यथित होकर क्रोध से संयुत तो हो गया भी उसने विशेष क्रोध का भाव प्रकट नहीं किया था क्योंकि वे यह भी जानते थे कि क्रोध का न करना सत्पुरुष का परम धन होता है ।११। वह मुनिवर अपने तप के प्रभाव से शत्रु का संहार करने के लिए और अपनी रक्षा करने में भी परम समर्थ थे किन्तु यह सम्पूर्ण जगत् का क्षय है यही विचारते हुए उन्होंने विशेष क्रोध नहीं किया था ।१२। वह पूर्वकाल में अत्यधिक क्रोध करने वाले थे किन्तु राम ने अपनी माता के लिए उनको प्रसादित किया था। तभी से फिर वे महान तपस्वी नित्य राम शान्त हो गये थे ।१३। वे मुनि बहुत ही अधिक मारे पीटे गये थे उस मार के प्रहारों से उनकी मज्जा की अस्थियों के बन्धन सब चूर्णित हो गये थे। और फिर वह महान् तेज वाले मुनि चेतना शून्य होकर भूमि में गिर गये थे ।१४।

तस्मिन्मुनौ निपतिते स दुरात्मा विशंकिनः।
किंकरानादिशच्छीघ्रं धेनोरानयने बलात् ॥१५
ततः सवत्सां तां धेनुं बद्ध्वा पशैर्दृढैर्नृपाः।
कशाभिरभिहन्यंत चकृषुश्च निनीषया ॥१६
आकृष्यमाणा बहुभिः कशाभिर्लगुडैरपि।
हन्यमाना भृशं तैश्च चुक्रुधे च पयस्विनी ॥१७
व्यथितातिकशापातैः क्रोधेन महतान्विता।
आकृष्य पाशान् सुदृढान् कृत्वाऽस्मानममोचयत् ॥१८
विमुक्तपाशबंधा सा सर्वतोऽभिवृता बलैः।
हुंहारवं प्रकुर्वाणा सर्वतोऽभ्यपतद्रुषा ॥१९
विषाणखुरपुच्छाग्रैरभिहत्य समंततः।
राजमंत्रिबलं सर्वं व्यद्रावयदमर्षिता ॥२०
विद्राव्य किंकरान्सर्वांस्तरसैव पयस्विनी।
पश्यतां सर्वभूतानां गगनं प्रत्यपद्यत ॥२१

विशेष शंका से युक्त उस दुष्ट आत्मा वाले ने उस महामुनि के धरणी पर गिर जाने पर अपने किंकरों को आदेश दिया था कि बल पूर्वक बहुत ही शीघ्र उस धेनु का आनयन करें अर्थात् उसको ले जावें ।१५। इसके पश्चात् हे नृप ! वत्स के सहित उस धेनु को परम सुदृढ़ पाशों से बाँधकर चाबुकों के प्रहारों से उसको पीटते हुए ले जाने की इच्छा से वे किंकर उसे खींच रहे थे ।१६। जब बहुत से किंकरगणों के द्वारा वह खींची जा रही थी तथा चाबुकों से और लाठियों से मारी-पीटी जा रही थी तो वह तपस्विनी उनसे बहुत ही क्रोध में भर गयी थी ।१७। अत्यधिक चाबुकों के प्रहार उस पर हुए थे तो वह धेनु बहुत व्यथित हो गयी थी और महान क्रोध से भी समन्वित हो गयी थी फिर उस धेनु ने उस सुदृढ़ पाशों को खींचकर अपने आपको उन से छुड़वा लिया था ।१८। जब पाशों के बन्धन से वह विमुक्त हो गयी थी तो सैनिकों ने सब ओर से घेर लिया था। उस समय में क्रोध से दुंहा की ध्वनि करते हुई वह सभी ओर आक्रमण करने वाली हो गयी थी ।१९। फिर अत्यन्त अमर्षित होकर उसने अपने सभी ओर में विषाण-खुर और पूँछ के अग्रभाग से सम्पूर्ण राजा के मन्त्री की सेना को वहाँ से दूर खदेड़ दिया था ।२०। वह पयस्विनी समस्त किंकरों को वहाँ से दूर भगा कर सबके देखते हुए बड़े ही वेग से अन्तरिक्ष में चली गयी थी ।२१।

ततस्ते भग्नसंकल्पाः संभग्नक्षतविग्रहाः ।
प्रसह्य बद्ध्वा तद्वत्सं जग्मुरेवातिनिर्घृणाः ।।२२

पयस्विनीं विना वत्सं गृहीत्वा किंकरैः सह ।
स पापस्तरसा राज्ञः सन्निधिं समुपागपत् ।।२३

गत्वा समीपं नृपतेः प्रणम्यास्मै प्रशंसकृत् ।
तद्वृत्तांतमशेषेण व्याचचक्षे ससाध्वसः ।।२४

इसके अनन्तर वे सब अपने संकल्पों के भग्न हो जाने वाले हो गये थे और उनके सबके शरीर क्षतों से प्रभग्न हो गये थे। वे अत्यन्त जघन्य बलपूर्वक उस धेनु के वत्स को ही बाँधकर वहाँ से चले गये थे ।२२। फिर वह पापात्मा बना पयस्विनी के उसके वत्स का ग्रहण करके अपने सेवकों के साथ राजा के समीप में समागत हो गया था ।२३। राजा के समीप में गमन करके प्रशंसा करने वाले उसने राजा को प्रणाम किया था और भय से भीत उसने वहाँ का सम्पूर्ण वृत्तान्त राजा के समक्ष मे वर्णित किया था ।२४।

—x—

॥ परशुराम की प्रतिज्ञा ॥

वसिष्ठ उवाच–

श्रुत्वैतत्सकलं राजा जमदग्निवधादिकम् ।
उद्विग्नचेताः सुभृशं चिन्तयामास नैकधा ॥१
अहो मे सुनृशंसस्य लोकयोरुभयोरपि ।
ब्रह्मस्वहरणे वाञ्छा तद्धत्या चातिगर्हिता ॥२
अहो नाश्रौषमस्याहं ब्राह्मणस्य विजानतः ।
वचनं तर्हि तां जह्यां विमूढात्मा गतत्रपः ॥३
इति संचिंतयन्नेव हृदयेन विदूयता ।
स्वपुरं प्रतिचक्राम सबलः साधुगस्ततः ॥४
पुरीं प्रतिगते राज्ञि तस्मिन्सपरिवारके ।
आश्रमात्सहसा राजन्विनिश्चक्राम रेणुका ॥५
अथ सक्षतसर्वाङ्गं रुधिरेण परिप्लुतम् ।
निश्चेष्टं पतितं भूमौ ददर्श पतिमात्मनः ॥६
ततः सा विहतं मत्वा भर्त्तारं गतचेतनम् ।
अन्वाहतेवाशनिना मूर्छिता न्यपतद्भुवि ॥७

श्री वसिष्ठजी ने कहा—राजा कीर्त्तवीर्य यह सम्पूर्ण जमदग्नि मुनि के वध आदि का वृत्तान्त श्रवण करके बहुत ही अधिक उद्विग्न चित्त वाला हो गया था और वह अनेक प्रकार की बातों के विषय में चिन्तन करने लग गया था ।१। अहो ! मैं दोनों ही लोकों में बहुत अधिक क्रूर हो गया हूँ क्योंकि मैंने ब्रह्मस्व के अपहरण करने में अपनी इच्छा की थी और अतीव गर्हित उस मुनि की हत्या का पाप भी मुझे लग गया है ।२। अहो ! मैंने उस ज्ञाता पुरोहित विप्र की बात को नहीं सुना था अर्थात् उसके कथन का पालन नहीं किया था । विमूढ़ आत्मा वाले निर्लज्ज मैंने उसकी वाणी का त्याग कर दिया था ।३। यही सोचते हुए बहुत ही दुःखित हृदय से वह अपनी सेना और अनुगामियों के ही सहित अपने पुर की ओर चल दिया था ।४। उस राजा के पुरी की ओर चले जाने पर जो कि अपने समस्त परिकर के

साथ था, हे राजन् ! रेणुका सहसा अपने आश्रम से निकली थी ।५। इसके पश्चात उस रेणुका ऋषि पत्नी ने सम्पूर्ण अंगों में क्षतों वाले-रुधिर से लथ-पथ-चेष्टा से रहित अर्थात् बेहोश और भूमि पर पड़े हुए अपने पति को देखा था ।६। इसके अनन्तर उस रेणुका अपने भर्त्ता को चेतना से शून्य निहत (मृत) मानकर वज्राघात से चोट खाई हुई के समान मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर गयी ।७।

चिरादिव पुनर्भूमेरुत्थायातीव दुःखिता ।
पतित्वोत्थाय सा भूयः सुस्वरं प्ररुरोद ह ॥८
विललाप च सात्यर्थं धरणीधूलिधूसरा ।
अश्रुपूर्णमुखी दीना पतिता शोकसागरे ॥६
हा नाथ प्रिय धर्मज्ञ दाक्षिण्यामृतसागर ।
हा धिगत्यंतशांत त्वं नैव कांक्षेत चेदृशम् ॥१०
आश्रमादभिनिष्क्रांतः सहसा व्यसनार्णवे ।
क्षिप्त्वानाथामगाधे मां क्व च यातोऽसि मानद ॥११
सतां साप्तपदे मैत्रे मुषिताऽहं त्वया सह ।
यासि यत्र त्वमेकाकी तत्र मां नेतुमर्हसि ॥१२
दृष्ट्वा त्वामीदृशावस्थमचिराद् दयं मम ।
न दीर्यते महाभाग कठिनाः खलु योषितः ॥१३
इत्येवं विलपंती सा रुदती च मुहुर्मुहुः ।
चुक्रोश रामरामेति भृशं दुःखपरिप्लुता ॥१४

बहुत देर में फिर भूमि से उठकर वह अत्यन्त दुःखित हुई थी और बारम्बार भूमि में उठकर और फिर पछाड़ खाकर गिरती हुई ऊँचे स्वर से उसने रुदन किया था ।८। धरणी की धूल से धूसर होती हुई उसने बहुत ही अधिक विलाप किया था । उसका मुख झर-झर गिरते हुए आँसुओं से संयुत और परम दीन होकर शोक के महान् सागर में निमग्न हो गयी थी ।६। उसने अपने करुण क्रन्दन में कहा था हा नाथ ! आप तो मेरे परमप्रिय थे और आप धर्म के पूर्ण ज्ञाता थे । हे स्वामिन् ! आप दाक्षिण्य रूपी अमृत के महान् सागर थे । हा ! मुझे धिक्कार है आप तो अत्यन्त शान्त स्वरूप

वाले थे किन्तु इस प्रकार से आपने कभी भी काङ्क्षा नहीं की थी।१०। हे मान प्रदान करने वाले! अभी-अभी तो आप अपने आश्रम से निकले थे। तुरन्त ही अनाथ मुझको दुःखों के महान् घोर सागर में पटककर आप कहाँ पर चले गये हैं।११। सत्पुरुषों की सप्तपदी की मित्रता में मुझे अपने ग्रहण किया था अब मैं आपसे उस सप्तपदी के विपरीत मुषित हो रही हूँ कि आपका सहवास मेरा छूट रहा है। जहाँ पर भी आप अकेले जा रहे हैं वहीं पर मुझको भी अपने ही साथ में ले जाने के योग्य आप हैं।१२। आपको ऐसी मूर्च्छित एवं मृत दशा में पतित हुओं को देखकर भी तुरन्त ही मेरा हृदय विदीर्ण नहीं हो रहा है—यह क्या बात है। निश्चय ही स्त्रियों का हृदय बहुत ही निष्ठुर होता है।१३। इस प्रकार से महान् घोर विलाप करती हुई और बार-बार क्रन्दन करती हुई हे राम! हे राम! यह कहकर अत्यन्त दुःख में परिप्लुत होकर रुदन कर रही थी।१४।

तावद्रामोऽपि स वनात्समिद्भारसमन्वितः ।
अकृतव्रणसंयुक्तः स्वाश्रमाय न्यवर्त्तत ।।१५
अपश्यद्भयशंसीनि निमित्तानि बहूनि सः ।
पश्यन्नुद्विग्नहृदयस्तूर्णं प्रापाश्रमं विभुः ।।१६
तमायांतमभिप्रेक्ष्य रुदती सा भृशातुरा ।
नवीभूतेव शोकेन प्रारुदद्रेणुका पुनः ।।१७
रामस्य पुरतो राजन्भर्तृव्यसनपीडिता ।
उभाभ्यामपि हस्ताभ्यामुदरं समताडयत् ।।१८
मार्गे विदितवृत्तांतः सम्यग्रामोऽपि मातरम् ।
कुररीमिव शोकार्त्तां दृष्ट्वा दुःखमुपेयिवान् ।।१९
धैर्यमारोप्य मेधावी दुःखशोकपरिप्लुतः ।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां तस्थौ भूमावधोमुखः ।।२०
तं तथागतमालोक्य रामं प्राहाकृतव्रणः ।
किमिदं भृगुशार्दूल नैतत्त्वय्युपपद्यते ।।२१

तब तक वह राम समिधाओं के भार का वहन करते हुए अकृत व्रण के सहित वन से अपने आश्रम के लिए वापिस आया था।१५। मार्ग में उस

राम ने किसी आने वाले भय की सूचना देने वाले बहुत से अशकुनों को देखा था और उनको देखते हुए उसका हृदय अधिक उद्विग्न हो रहा था। फिर वह अपने आश्रम में पहुँचा था।१६। उस अपने पुत्र राम को आते हुए देखकर वह रेणुका अत्यन्त आतुर होकर रुदन करने लगी तथा उसका वह शोक नया सा हो गया था और फिर वह दाढ़ मारकर रुदन कर रही थी।१७। हे राजन् ! अपने पुत्र राम के सामने अपने भर्त्ता के वियोग जन्म दुःख से बहुत ही उत्पीड़ित होकर उसने दोनों करों से अपने वक्ष-स्थल को भली भाँति ताड़ित किया था।१८। राम ने भी आते हुए मार्ग में ही यह सब वृत्तान्त जान लिया था और जब उसने अपनी जननी को शोक से अधिक आर्त्त होकर कुररी के समान विलाप-कलाप करती हुई देखा था तो उसको बड़ा ही दुःख प्राप्त हुआ था।१९। राम बहुत ही मेधा सम्पन्न थे उन्होंने धैर्य का सहारा लिया था जो कि उस समय में दुःख और शोक में निमग्न था। उसके दोनों नेत्रों में आँसू भरे हुए थे। वह भूमि पर ही नीचे की ओर मुख करके स्थित हो गया था।२०। उस समय में अकृत व्रण ने राम को उस प्रकार की अवस्था में अवस्थित देखकर राम से कहा था—हे भृगुकुल में शार्दूल के सदृश पुरुष ! यह क्या हो रहा है ? ऐसा शोक मग्न हो जाना आपके लिए उचित प्रतीत नहीं हो रहा है।२१।

न त्वादृशा महाभाग भृशं शोचंति कुत्रचित् ।
धृतिमंतो महांतस्तु दुःखं कुर्वंति न व्यये ॥२२

शोकः सर्वेन्द्रियाणां हि परिशोषप्रदायकः ।
त्यज शोकं महाबाहो न तत्पात्रं भवादृशाः ॥२३

ऐहिकामुष्मिकार्थानां नूनमेकांतरोधकः ।
शोकस्तस्यावकाशं त्वं कथं हृदि नियच्छसि ॥२४

तत्त्वं धैर्यधनो भूत्वा परिसांत्वय मातरम् ।
रुदतीं बत वैधव्यशंकापहतचेतनाम् ॥२५

नैवागमनमस्तीह व्यतिक्रांतस्य वस्तुनः ।
तस्मादतीतमखिलं त्यक्त्वा कृत्यं विचिंतय ॥२६

इत्येवं सांत्वमानश्च तेन दुःखसमन्वितः ।
रामः संस्तंभयामास शनैरात्मानमात्मना ॥२७

दुःखशोकपरीता हि रेणुका त्वरुदन्मुहुः ।
त्रिःसप्तकृत्वो हस्ताभ्यामुदरं समताडयत् ॥२८

हे महाभाग ! आपके समान परम धीर और ज्ञान सम्पन्न पुरुष किसी भी दशा में अत्यधिक शोक नहीं किया करते हैं । जो धैर्यशाली महान् पुरुष हुआ करते हैं वे हानि होने पर बहुत दुःख नहीं किया करते हैं ।२२। यह शोक बहुत ही बुरा होता है जो कि समस्त इन्द्रियों का परिपोषण करने वाला है । हे महाबाहो ! अब आप इस शोक का परित्याग कर दीजिए । आपके समान पुरुष शोक करने के पात्र नहीं हुआ करते हैं ।२३। शोक तो निश्चय ही लौकिक और परमार्थिक प्रयोजनों का एकान्त अवरोधक होता है फिर आप अपने हृदय में ऐसे दुःखद शोक को अवकाश क्यों दे रहे हैं ? ।२४। इस कारण से अब आप धैर्य के धन वाले होकर अर्थात् धीरज धारण करके रुदन करती हुई और विधवा होने की विभीषिका से बुद्धि हीन होकर पड़ी हुई अपनी माता को परि सान्त्वना दीजिए ।२५। इस संसार में जो भी वस्तु अतिक्रान्त हो गई है अर्थात् जो प्राणी देह का त्याग कर चल बसा है उसका फिर यहाँ उसी रूप में आगमन कभी भी नहीं होता है । इस कारण से जो कुछ भी व्यतीत हो गया है उस सबका त्याग करके आगे जो भी करने योग्य कृत्य हैं उनका ही परिचिन्तन आप करिए ।२६। इस रीति से उसके द्वारा सान्त्वना दिये हुए राम ने परम दुःख से समन्वित होते हुए भी धीरे-धीरे अपनी ही आत्मा से अर्थात् अपने ही आत्म ज्ञान से अपने आपको संस्तम्भित किया था ।२७। रेणुका तो महान् और परम घोर शोक से घिरी हुई होकर बारम्बार रुदन कर रही थी और उसने अपने दोनों करों से इक्कीस बार अपने वक्षःस्थल को प्रताड़ित किया था ।२८।

तावत्तदंतिकं रामः समभ्येत्याश्रुलोचनः ।
रुदतीमलमंबेति सांत्वयामास मातरम् ॥२९

उवाचापनयन्दुःखाद्भर्तृं शोकपरायणाम् ।
त्रिःसप्तकृत्वो यदिदं त्वया वक्षः समाहतम् ॥३०
तावत्संख्यमहं तस्मात्क्षत्रजातमशेषतः ।
हनिष्ये भुवि सर्वत्र सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥३१
तस्मात्त्वं शोकमुत्सृज्य धैर्यमातिष्ठ सांप्रतम् ।
नास्त्येव नूनमायातमतिक्रांतस्य वस्तुनः ॥३२

इत्युक्ता रेणुका तेन भृशं दुःखान्विताऽपि सा ।
कृच्छ्राद्धैर्यं समालंव्य तथेति प्रत्यभाषत ॥३३
ततो रामो महाबाहुः पितुः सह सहोदरैः ।
अग्नौ सत्कर्त्तुमारेभे देहं राजन्यथाविधि ॥३४
भर्तृशोकपरीतांगी रेणुकापि दृढव्रता ।
पुत्रान्सर्वान्समाहूय त्विदं वचनमब्रवीत् ॥३५

इसी बीच में राम ने अपनी जननी के समीप में समुपस्थित होकर अपनी आँखों में भरे हुए अश्रुओं से समन्वित होते हुए रुदन करने वाली रेणुका से कहा था कि धीरज धारण करो—इस तरह से अपनी माता को सान्त्वना दी थी ।२९। अपने स्वामी के वियोग जन्य शोक में डूबी हुई उस माता रेणुका के दुःख को दूर करते हुए उस राम ने कहा था कि आपने जो यह इस समय में इक्कीस बार अपने वक्षःस्थल को प्रताड़ित किया है ।३०। उतनी ही बार संख्या में मैं इस कारण से इस भूमण्डल में सर्वत्र क्षत्रिय जाति का पूर्णरूप से हनन करूँगा—यह मैं आपके समक्ष में पूर्णतया सत्य बोल रहा हूँ अर्थात् इस कार्य में लेशमात्र भी त्रुटि नहीं होगी ।३१। इसलिए अब आप इस शोक का परित्याग करके अपने हृदय में धैर्य धारण कीजिए । यह तो निश्चित बात है कि जो वस्तु यहाँ से चली गयी है उसका पुनः यहाँ पर आगमन नहीं होता है अर्थात् मृत प्राणी फिर कितना ही चाहे शोक-दुःख किया जावे वापिस नहीं आया करता है । अतः फिर इतना अधिक शोक करना व्यर्थ ही है ।३२। उस राम के द्वारा इस प्रकार से समझाई हुई रेणुका असह्य दुःख के भार से समन्वित थी तथापि बड़ी कठिनाई से धैर्य धारण किया था और अब विशेष शोक मैं नहीं करूँगी—अपने पुत्र राम को उत्तर दिया था ।३३। हे राजन् ! इसके उपरान्त राम ने अपने सहोदर भाइयों के साथ विधि पूर्वक अपने पिता के देह को अग्नि में दाह करने के कार्य का आरम्भ किया था ।३४। अपने भर्त्ता के वियोग से समुत्पन्न शोक से परीत अङ्गों वाली तथा परम सुदृढ़ पतिव्रत धर्म से युक्त रेणुका ने भी अपने समस्त पुत्रों को बुलाकर उनसे यह वचन कहा था ।३५।

रेणुकोवाच—अहं वः पितरं पुत्राः स्वर्गतं पुण्यशीलिनम् ।
अनुगंतुमिहेच्छामि तन्मेऽनुज्ञातुमर्हथ ॥३६

असह्यदु:खं वैधव्यं सहमाना कथं पुन:
भर्त्रा विरहिता तेन प्रवर्त्तिष्ये विनिंदिता ॥३७
तस्मादनुगमिष्यामि भर्त्तारं दयितुं मम।
यथा तेन प्रवर्त्तिष्ये परत्रापि सहानिशम् ॥३८
ज्वलंतमिममेवाग्निं संप्रविश्य चिरादिव।
भर्तुर्मम भविष्यामि पितृलोकप्रियातिथि: ॥३९
अनुवादमृते पुत्रा भवद्भिस्तत्र कर्मणि।
प्रतिभूय न वक्तव्यं यदि मत्प्रियमिच्छथ ॥४०
इत्येवमुक्त्वा वचनं रेणुका दृढनिश्चया।
अग्निं प्रविश्य भर्त्तारमनुगंतुं मनो दधे ॥४१
एतस्मिन्नेव काले तु रेणुकां तनयै: सह।
समाभाष्याऽतिगंभीरा वागुवाचाशरीरिणी ॥४२

रेणुका ने कहा—हे पुत्रो! मैं अब आप लोगों के परमाधिक पुण्य शील स्वर्ण में गये हुए पिता का ही मैं अनुगमन यहाँ करना चाहती हूँ सो आप लोग सब मुझे ऐसा करने की आज्ञा देने के लिए योग्य होते ही।३६। विधवा हो जाने का दुख बहुत ही असह्य होता है उसे सहन करती हुई मैं कैसे-कैसे रहूँगी और अपने स्वामी के विरह वाली विशेष रूप से निन्दित होकर इस संसार में अपना जीवन प्रवृत्त करूँगी।३७। इस कारण से मैं अपने परम प्रिय स्वामी का अनुगमन करूँगी अर्थात् उनके ही देह के साथ सती हो जाऊँगी जिससे परलोक में भी निरन्तर उनके ही साथ रह सकूँगी।३८। जलती हुई इसी अग्नि में प्रवेश करके कुछ ही समय में मैं अपने स्वामी की पितृलोक में प्रिय अतिथि बन जाऊँगी।३९। हे पुत्रो! यदि आप लोग मेरे अभीप्सित चाहते हैं अर्थात् मेरे प्यारे बनना चाहते हैं तो अनुवाद के विना उस कर्म में आप लोगों को प्रतिकूल होकर कुछ भी नहीं बोलना चाहिए।४०। इस रीति से इन वचनों को ही कहकर रेणुका सुदृढ़ निश्चय वाली हो गयी थी तथा अग्नि में प्रवेश करके अपने स्वामी का अनुगमन करने के लिये उसने मन में ठान ली थी।४१। इसी काल में पुत्रों के सहित रेणुका को सम्बोधित करके अत्यन्त गम्भीर बिना शरीर वाणी अर्थात् अन्तरिक्ष में कही हुई वाणी ने कहा था।४२।

हे रेणुके स्वतनयैर्गिरं मेऽवहिता शृणु ।
मा कार्षीः साहसं भद्रे प्रवक्ष्यामि प्रियं तव ॥४३
साहसो नैव कर्त्तव्यः केनाप्यात्महितैषिणा ।
न मर्त्तव्यं त्वया सर्वो जीवन्भद्राणि पश्यति ॥४४
तस्माद्धैर्यधना भूत्वा भव त्वं कालकांक्षिणी ।
निमित्तमंतरीकृत्य किंचिदेव शुचिस्मिते ॥४५
अचिरणैव भर्त्ता ते भविष्यति सचेतनः ।
उत्पन्नजीवितेन त्वं कामं प्राप्स्यसि शोभने ।
भवित्री चिररात्राय बहुकल्याणभाजनम् ॥४६
वसिष्ठ उवाच–
इति तद्वचनं श्रुत्वा धृतिमालंब्य रेणुका ।
तद्वाक्यगौरवाद्धर्षमवापुस्तनयाश्च ते ॥४७
ततो नीत्वा पितुर्देहमाश्रमाभ्यंतरं मुनेः ।
शाययित्वा निवाते तु परितः समुपाविशन् ॥४८
तेषां तत्रोपविष्टानामप्रहृष्टात्मचेतसाम् ।
निमत्तानि शुभान्यासन्ननेकानि महांति च ॥४९

हे रेणुके ! परम सावधान होकर अपने पुत्रों के सहित मेरी वाणी का श्रवण करो। हे भद्रे ! तुम साहस मत करो। मैं आपका प्रिय वचन कहूँगा ।४३। अपनी आत्मा के हित की अभिलाषा रखने वाले किसी को भी साहस कभी नहीं करना चाहिए। आपको नहीं मरना चाहिए क्योंकि जो प्राणी जीवित रहता है वह शुभ कर्मों को देखा करता है ।४४। इसलिए आप धैर्य के धन वाली होकर काल की प्रतीक्षा की आकाङ्क्षा वाली होओ। हे शुचि स्मित वाली ! भले ही कुछ ही निमित्त को अन्तरित बनाकर ऐसा करो ।४५। बहुत ही स्वल्प समय में आपके भर्त्ता सचेतन हो जायेंगे अर्थात् जीवित हो जायेंगे। हे शोभने ! जब उनमें जीवन समुत्पन्न हो जायगा तो आपकी कामना पूर्णतया प्राप्त हो जायगी और फिर विशेष अधिक काल पर्यन्त अनेक कल्याणों की भाजन होने वाली होंगी ।४६। वसिष्ठ जी ने कहा– इस प्रकार के उस अन्तरिक्ष वाणी के वचन का श्रवण करके रेणुका ने धैर्य

का आलम्बन ग्रहण किया था। और उसके जो पुत्र थे उन्होंने भी उसके वचनों के गौरव से परम प्रसन्नता प्राप्त की थी।४७। इसके पश्चात् उन्होंने उस मुनि अपने पिता के मृत शरीर को आश्रम को भीतर ले जाकर रख दिया था और उसको वहाँ लिटाकर निवात में वे उसके चारों ओर बैठ गये थे।४८। जिस समय में वे वहाँ पर बहुत ही खिन्न आत्मा और मनों वाले बैठे हुए थे तो उस बेला में उनको बहुत से परम शुभ एवं महान् निमित्त हुए थे। अच्छे शकुन दिखाई दिये थे।४९।

तेन ते किंचिदाश्वस्तचेतसो मुनिपुंगवाः।
निषेदुः सहिता मात्रा कांक्षंतो जीवितं पितुः ॥५०
एतस्मिन्नंतरे राजन्भृगुवंशधरो मुनिः।
विधेर्बलेन मतिमांस्तत्रागच्छदृच्छया ॥५१
अथर्वणो विधिः साक्षाद्वेदवेदांगपारगः।
सर्वशास्त्रार्थवित्प्राज्ञः सकलासुरवंदितः ॥५२
मृतसंजीविनीं विद्यां यो वेद मुनिदुर्लभाम्।
यथाहृतान्मृतान्देवैरुत्थापयति दानवान् ॥५३
शास्त्रमौशनसं येन राज्ञां राज्यफलप्रदम्।
प्रणीतमनुजीवंति सर्वेऽद्यापीह पार्थिवाः ॥५४
स तदाश्रममासाद्य प्रविष्टोऽत्रमहामुनिः।
ददर्श तदवस्थांस्तान्सर्वान्दुःखपरिप्लुतान् ॥५५
अथ ते तु भृगुं दृष्ट्वा वंशस्य पितरं मुदा।
उत्थायास्मै ददुश्चापि सत्कृत्य परमासनम् ॥५६

इस रीति से जब शुभ शकुन दिखाई दिये तो उनके देखने से वे श्रेष्ठ मुनिगण परम आश्वस्त मन वाले हो गये थे अर्थात् उनको कुछ शुभाशा हुई थी। वे सभी अपने पिता के जीवित की आकाङ्क्षा करते हुए माता के साथ वहाँ पर बैठ गये थे।५०। हे राजन्! इसी बीच में भृगु के वंश को धारण करने वाले मतिमान् मुनि विधि के बल से यदृच्छा से ही वहाँ पर समागत हो गये थे।५१। वे मुनि अथर्व वेद की साक्षात् विधि के स्वरूप वाले थे और अन्य सभी वेदों तथा वेदोंके अङ्ग शास्त्रों के पारगामी मनीषी

थे। वे समस्त शास्त्रों के पारगामी मनीषी थे। वे समस्त शास्त्रों के तात्त्विक अर्थों के ज्ञाता विद्वान् थे और समस्त असुरों के द्वारा वन्दित थे ।५२। जो मुनियों के लिये भी अत्यन्त दुर्लभ होती है ऐसी मृत प्राणियों को भी जीवित कर देने वाली विद्या को जानते थे। जब भी देवों के द्वारा रण में दानव निकृत हो जाया करते हैं तो इसी मृत संजीवनी विद्या से उनको उठा दिया करते हैं अर्थात् जीवित बना देते हैं ।५३। जिस महामुनि ने औशनस शास्त्र को प्रणीत किया था जो राजाओं को राज्य के फल का प्रदान करने वाला है और आज भी यहाँ पर नृपगण अनुजीवित रहते हैं ।५४। वह महामुनि उस आश्रम में पहुँच कर अन्दर प्रविष्ट हुए थे और उन्होंने उस अवस्था में अवस्थित सबको दुःख से परिप्लुत हुए देखा था ।५५। इसके अनन्तर उन सबने वंश के पिता भृगु मुनि का दर्शन प्राप्त करके बड़े ही आनन्द के साथ वे सब खड़े हो गये थे और गोत्रोत्थान देकर सबने उनका बड़ा सत्कार किया था तथा प्रणाम करके भृगु मुनि को आसन समर्पित किया था ।५६।

स चाशीभिस्तु तान्सर्वानभिनंद्य महामुनिः ।
पप्रच्छ किमिदं वृत्तं तत्सर्वं ते न्यवेदयन् ॥५७
तच्छ्रुत्वा स भृगुः शीघ्रं जलमादाय मंत्रवित् ।
संजीविन्या विद्यया तं सिषेच प्रोच्चरन्निदम् ॥५८
यज्ञस्य तपसो वीर्यं ममापि शुभमस्ति चेत् ।
तेनासौ जीवताच्छीघ्रं प्रसुप्त इव चोत्थितः ॥५९
एवमुक्ते शुभे वाक्ये भृगुणा साधुकारिणा ।
समुत्तस्थावथार्चीकः साक्षाद्गुरुरिवापरः ॥६०
दृष्ट्वा तत्र स्थितं वंद्यं भृगुं स्वस्य पितामहम् ।
ननाम भक्त्या नृपते कृतांजलिरुवाच ह ॥६१
जमदग्निरुवाच–
धन्योऽयं कृतकृत्योऽहं सफलं जीवितं च मे ॥६२
यत्पश्ये चरणौ तेऽद्य सुरसुरनमस्कृतौ ।
भगवन्किं करोम्यद्य शुश्रूषां तव मानद ॥६३

उन महामुनि ने आशीर्वादों के द्वारा सबका अभिनन्दन करके उनसे उन्होंने पूछा था कि यह क्या हुआ है ! इस पर उन्होंने पूरा वृत्तान्त जो भी यहाँ पर घटनाएँ घटित हुई थीं भृगुमुनि की सेवा में निवेदित कर दी थीं ।५७। यह सारा वृत्तान्त सुनकर मन्त्र शास्त्र के महामनीषी भृगु मुनि ने बहुत ही शीघ्र जल लेकर यह उच्चारण करते हुए संजीवनी विद्या से उस जमदग्नि के देह को अभिषिक्त किया था । यदि मेरे तप का और यज्ञ का वीर्य शुभ है तो उसके प्रभाव से यह जमदग्नि सोकर उठे हुए के ही समान शीघ्र ही जीवित हो जावें ।५८-५९। इस प्रकार से इस परम शुभ वाक्य को साधुकारी भृगु मुनि के द्वारा उच्चारित होने पर शीघ्र ही जमदग्नि साक्षात् दूसरे देवगुरु के हो सहसा समुत्थित हो गया था ।६०। जब उठा तो उसने वहाँ पर संस्थित-वन्दना करने के योग्य अपने पितामह भृगु मुनि का दर्शन किया था । हे नृपते ! उस जमदग्नि ने भक्ति की भावना से प्रणाम करके दोनों हाथों को जोड़कर उनसे कहा था ।६१। जमदग्नि ने कहा—मैं परम धन्य तथा कृतकृत्य हो गया हूँ और मेरा जीवन आज सफल हो गया है ।६२। जो सुरगण और असुरों के द्वारा वन्दित आपके चरण कमल हैं उनका आज मैं अपने नेत्रों से अवलोकन कर रहा हूँ । हे मान के प्रदान करने वाले भगवन् ! मैं आपकी इस समय में क्या शुश्रूषा करूँ ? मुझे आप आज्ञा कीजिए ।६३।

पुनीह्यास्मकुलं स्वस्य चरणाम्बुकणैर्विभो ।
इत्युक्त्वा सहसाऽऽनीतं रामेणार्घ्यं मुदान्वितः ।।६४
प्रददौ पादयोस्तस्य भक्त्यानमितकंधरः ।
तज्जलं शिरसाऽधत्त सुकुटुम्बो महामनाः ।।६५
अथ सत्कृत्य स भृगुं प्रपच्छ विनयान्वितः ।
भगवन् किं कृतं तेन राज्ञा दुष्टेन पातकम् ।।६६
यस्यातिथ्यं हि कृतवानहं सम्यग्विधानतः ।
साधुबुद्ध्या स दुष्टात्मा किं चकार महामते ।।६७
वसिष्ठ उवाच—
एवं स पृष्टो मतिमान्भृगुः सर्वविदीश्वरः ।
चिरं ध्यात्वा समालोच्य कारणं प्राह भूपते ।।६८

भृगुरुवाच—शृणु तात महाभाग बीजमस्य हि कर्मणः ।
यश्च वै कृतवान्पापं सर्वज्ञस्य तवानघ ॥६९
शप्तः पुरा वसिष्ठेन नाशार्थं स महीपतिः ।
द्विजापराधतो मूढ वीर्यं ते विनशिष्यते ॥७०

हे विभो ! आप अपने चरणों के जल कणों के द्वारा अपने ही इस कुल को पुनीत बनाइए । इतना कहकर आनन्द से समन्वित होते हुए सहसा राम के द्वारा अर्घ्य लाया था ।६४। भक्तिभाव से अपनी गर्दन झुकाने वाले उस जमदग्नि ने उन भृगु मुनि के चरणों के प्रक्षालनार्थ जल समर्पित किया था। महान् यश वाले उसे जमदग्नि ने अपने समस्त कुटुम्ब के सहित उस चरणों के तीर्थ जल को अपने शिर पर धारण किया था ।६५। इसके उपरान्त उनका पूर्ण सत्कार करके परम विनय से समन्वित होते हुए भृगु से पूछा था । हे भगवन् ! आप कृपया बतलाइए कि उस महान् दुष्ट राजा ने यह क्या पातक किया था ? ।६६। जिसका आतिथ्य-सत्कार मैंने बड़े ही विधि-विधान से किया था । हे महामते ! मैंने यह सब बहुत ही अच्छी बुद्धि से किया था और मेरे हृदय में कुछ भी कपट का भाव नहीं था । फिर भी उस आत्मा वाले ने मेरे साथ यह ऐसा क्यों दुर्व्यवहार किया था ।६७। वसिष्ठ जी ने कहा—इस प्रकार से जब जमदग्नि के द्वारा सब कुछ के ज्ञाता ईश्वर और महामतिमान् भृगु से पूछा गया तब हे भूपते ! भृगु मुनि ने बहुत काल पर्यन्त ध्यान करके भली भाँति अवलोकन किया था और फिर इस सब घटना के घटित होने का जो भी कुछ कारण था वह कहा था ।६८। भृगुमुनि ने कहा—हे महान् भाग वाले तात ! इस कुत्सित कर्म का जो भी बीज है उसी को आप सुन लीजिए । हे अनघ ! जिसने हैहय राजा ने सर्वज्ञ आपका निश्चित रूप से पाप किया था ।६९। बहुत प्राचीन समय में वसिष्ठ मुनि ने विनाश होने के लिये उस राजा को शाप दे दिया था। वह शाप यही था कि हे मूढ़ ! द्विज के अपराध करने से तेरा सब वीर्य विक्रम विनाश को प्राप्त हो जायगा ।७०।

तत्कथं वचनं तस्य भविष्यत्यन्यथा मुनेः ।
अयं रामो महावीर्यं प्रसह्य नृपपुंगवम् ॥७१
हनिष्यति महाबाहो प्रतिज्ञां कृतवान्पुरा ।
यस्मादुरः प्रतिहतं त्वया मातर्ममाग्रतः ॥७२

एकविंशतिवारं हि भृशं दुःखपरीतया ।
त्रिःसप्तकृत्वो निःक्षत्रां करिष्ये पृथिवीमिमाम् ।।७३
अतोऽयं वार्यमाणोऽपि त्वया पित्रा निरंतरम् ।
भाविनोऽर्थस्य च बलात्करिष्यत्येव मानद ।।७४
स तु राजा महाभागो वृद्धानां पर्युपासिता ।
दत्तात्रेयाद्धरेरंशाल्लब्धबोधो महामतिः ।।७५
साक्षाद्भक्तो महात्मा च तद्वधे पातकं भवेत् ।
एवमुक्त्वा महाराज स भृगुर्ब्रह्मणः सुतः ।
यथागतं ययौ विद्वान्भविष्यत्कालपर्ययात् ।।७६

मुनि तो सर्वदा सत्यवक्ता होते हैं अतः उस महामुनि का वचन किस प्रकार से अन्यथा होगा । यह आपका पुत्र राम महान वीर्य वाले उस श्रेष्ठ नृप को बल पूर्वक मार देगा । हे महाबाहो ! यह पहिले ही ऐसी प्रतिज्ञा कर चुका है । कारण यह है कि वियोग के शोक से संतप्त होकर मेरे ही समक्ष से अपने वक्षःस्थल को प्रताड़ित किया है ।७१-७२। आपने अपने उरःस्थल को बहुत ही दुःख से परीत होकर इक्कीस बार प्रताड़ित किया है सो मैं भी इक्कीस बार ही इस सम्पूर्ण भूमण्डल को क्षत्रियों से रहित करूँगा ।७३। हे मानद ! इसीलिए पिता आपके द्वारा यह निरन्तर रोके जाने पर भी भविष्य में होने वाले अर्थ के बल से ऐसा अवश्य ही करेगा क्योंकि ऐसा ही होनहार है ।७४। यह साक्षात् भक्त और महात्मा है । उसके वध करने में पातक भी होगा । इस रीति से कहकर हे महाराज ! उन ब्रह्माजी के पुत्र भृगुमुनि ने फिर यह भी कहा था कि वह राजा महान भाग वाला है और वृद्धों की उपासना करने वाला है । साक्षात् भगवान् हरि के अंश दत्तात्रेय मुनि से उसने ज्ञान प्राप्त किया है और महती मति से सुसम्पन्न है । ऐसे का वध करना भी महान् पातक है । इतना ही कहकर भविष्य में आने वाले काल के पर्यंत से वे विद्वान् भृगु जैसे ही आये थे वैसे ही वहाँ से चले गये थे ।७५-७६।

—×—

।। परशुराम का शिवलोक गमन ।।

सगर उवाच—

ब्रह्मपुत्र महाभाग वद भार्गवचेष्टितम् ।
यच्चकार महावीर्य्यो राज्ञः क्रुद्धो हि कर्मणा ।।१

वसिष्ठ उवाच—

गते तस्मिन्महाभागे भृगौ पितृपरायणः ।
रामः प्रोवाच संक्रुद्धो मुंचन्श्वासान्मुहुर्मुहुः ।।२

परशुराम उवाच—

अहो पश्यत मूढत्वं राज्ञो ह्युत्पथगामिनः ।
कार्त्तवीर्यस्य यो विद्वांश्चक्रे ब्रह्मवधोद्यमम् ।।३
दैवं हि बलवन्मन्ये यत्प्रभावाच्छरीरिणः ।
शुभं वाप्यशुभं सर्वे प्रकुर्वंति विमोहिताः ।।४
शृण्वंतु ऋषयः सर्वे प्रतिज्ञा क्रियते मया ।
कार्त्तवीर्यं निहत्याजौ पितुर्वैरं प्रसाधये ।।५
यदि राजा सुरैः सर्वैरिंद्राद्यैर्दानवैस्तथा ।
रक्षिष्यते तथाप्येनं संहरिष्यामि नान्यथा ।।६
एवमुक्तं समाकर्ण्य रामेण सुमहात्मना ।
जमदग्निरुवाचेदं पुत्रं साहसभाषिणम् ।।७

राजा सगर ने कहा—हे महाभाग ! हे ब्रह्मपुत्र ! अब आप कृपा करके भार्गव के चेष्टित का वर्णन कीजिए । महान् वीर्य वाले राम ने राजा के इस कुत्सित कर्म से क्रुद्ध होकर जो भी कुछ किया था ।१। वसिष्ठ जी ने कहा—जब महाभाग भृगुमुनि वहाँ से चले गये थे तो उस समय में पिता के चरणों की सेवा में तत्पर रहने वाले राम ने बारम्बार अत्युष्ण श्वासों का मोचन करते हुए बहुत ही क्रुद्ध होकर कहा था ।२। परशुराम ने कहा—अहो ! उत्पथ के गमन करने वाले राजा की मूढ़ता को देखिए जिस कार्त्त-वीर्य ने परम विद्वान् होते हुए भी एक तपस्वी ब्राह्मण के वध करने का उद्यम किया था ।३। मैं यह बात मानता हूँ कि दैव बड़ा बलवान् होता है

ललिता परमेश्वरी सेना जययात्रा

अथ राजनायिका श्रिता ज्वलितांकुशा फणिसमानपाशभृत् ।
कलनिक्वणद्वलयमैक्षवं धनुर्दधती प्रदीप्तकुसुमेषुपंचका ॥१
उदयत्सहस्रमहसा सहस्रतोऽप्यतिपाटलां निजवपुः प्रभाक्षरम्
किरती दिशासु वदनस्य कांतिभिः सृजतीव
चन्द्रमयमभ्रमंडलम् ॥२
दशयोजनायतिमता जगत्त्रयीमभिवृण्वता
त्रिशदमौक्तिकात्मना ।
धवलातपत्रवलयेन भासुरा शशिमंडलस्य सखितामुपेयुषा ॥३
अभिवीजिता च मणिकांतशोभिना
विजयादिमुख्यपरिचारिकागणैः ।
नवचन्द्रिकालहरिकांतिकंदलीचतुरेण चामरचतुष्टयेन च ॥४
शक्तर्घकराज्यपदवीमभिसूचयंती साम्राज्य-
चिह्नशतमंडितसैन्यदेशा ।
संगीतवाद्यरचनाभिरथामरीणां संस्तूयमानविभवा
विशदप्रकाशा ॥५
वाचामगोचरमगोचरमेव बुद्धेरीदृक्तया न
कलनीयमनन्यतुल्यम् ॥६
त्रैलोक्यगर्भपरिपूरितशक्तिचक्रसाम्राज्यसं-
पदभिमानमभिस्पृशंती ।
आबद्धभक्तिविपुलांजलिशेखराणामारादहंप्रथमिका
कृतसेवनानाम् ॥७

इसके अनन्तर वह राज नायिका वहाँ पर विराजमान थी जिसका अंकुश ज्वलित था और जो सर्प के ही तुल्य पाश को धारण करने वाली थी। मधुर क्वणन करने वाला वलय और इक्षु का धनुष धारण किये हुए थी। उसके बाण पाँच कुसुमों के थे ।१। उदित सूर्य के तेज से भी अत्यधिक

जमदग्नि ने कहा—हे राम ! अब आप मेरी बात सुनिए । मैं सत्पुरुषों के सनातन (सर्वदा से चले आने वाले) धर्म को बतलाऊँगा । जिसको सुनकर सभी मानव धर्म के करने वाले हो जाया करते हैं ।८। महान भाग्य वाले साधुजन होते हैं और जो इस संसार से निरन्तर जन्म-मरण के महान कष्ट से छुटकारा पाने की आकांक्षा रखने वाले हैं वे कभी भी किसी पर प्रकोप नहीं किया करते हैं चाहे कोई उनको प्रताड़ित अथवा निहत भी क्यों न करे तो भी वे कुपित नहीं हुआ करते हैं ।९। जो महाभाग क्षमा ही को धन मानने वाले हैं तथा परम दमनशील और तपस्वी होते हैं उन साधु कर्म करने वालों के लिए निरन्तर लोक अक्षय होते हैं ।१०। जो महापुरुष हैं वे दुष्टों के द्वारा दण्ड आदि से ताड़ित होते हुए और बुरे वचनों द्वारा निर्भर्त्सित होते हुए भी कभी मन में क्षोभ नहीं किया करते हैं वे ही पुरुष साधु कहे जाया करते हैं ।११। ताड़न करने वाले को जो ताड़ित किया करता है वह कभी भी साधु नहीं हो सकता है प्रत्युत पाप का भागी ही होता है । हम लोग तो ब्राह्मण और साधु हैं क्षमा रखने के ही द्वारा परम पूज्य पद को प्राप्त हुए हैं ।१२। सामान्यजन के वध से भी अधिक एक राजा के वध करने में महान् पातक होता है क्योंकि राजा में भगवान् का अंश होता है । इसी कारण से मैं अब आपको निवारित करता हूँ और यह उपदेश देता हूँ कि क्षमा को धारण करो तथा तपश्चर्या करो ।१३। वसिष्ठजी ने कहा—नृपनन्दन ! इस रीति से भली भाँति दिये हुए आदेश को समझ कर राम ने परमाधिक क्षमा के स्वभाव वाले और अरियों के दमन करने वाले अपने पिताजी से कहा ।१४।

परशुराम उवाच—

शृणु तात महाप्राज्ञ विज्ञप्तिं मम सांप्रतम् ।
भवता शम उद्दिष्टः साधूनां सुमहात्मनाम् ॥१५
स शमः साधुदीनेषु गुरुष्वीश्वरभावनैः ।
कर्त्तव्यो दुष्टचेष्टेषु न शमः सुखदो भवेत् ॥१६
तस्मादस्य वधः कार्यः कार्त्तवीर्यस्य वै मया ।
देह्याज्ञां माननीयाद्य साधये वैरमात्मनः ॥१७

जमदग्निरुवाच—

शृणु राम महाभाग वचो मम समाहितः ।

करिष्यसि यथा भावि नैवान्यथा भवेत् ॥१८
इतो व्रज त्वं ब्रह्माणं पृच्छ तात हिताहितम् ।
स यद्वदिष्यति विभुस्तत्कर्त्ता नात्र संशयः ॥१९
वसिष्ठ उवाच–
एवमुक्तः स पितरं नमस्कृत्य महामतिः ।
जगाम ब्रह्मणो लोकमगम्यं प्राकृतैर्जनैः ॥२०
ददर्श ब्रह्मणो लोकं शातकौंभविनिर्मितम् ।
स्वर्णप्राकारसंयुक्तं मणिस्तंभैर्विभूषितम् ॥२१

परशुराम ने कहा—हे महाप्राज्ञ तात ! अब आप मेरी विज्ञप्ति का श्रवण कीजिए। आपने जो शाम बतलाया है वह महान आत्मा वाले साधु पुरुषों का है। वह शाम साधु पुरुषों के प्रति-दीनजनों पर और ईश्वर की भावना से संयुत गुरुजनों में ही करना चाहिए। जो दुष्टजन हैं उनमें किया हुआ शाम कभी भी सुख देने वाला नहीं हुआ करता है।१५-१६। इसी कारण से इस दुष्ट कार्त्तवीर्य का वध तो मेरे द्वारा करने के ही योग्य है। हे सम्मान करने के योग्य ! आज तो आप मुझे अपनी आज्ञा प्रदान कर दीजिए कि मैं अपने वैर का बदला ले लूँ।१७। जमदग्नि मुनि ने कहा—हे महाभाग राम ! अब आप बहुत सावधान होकर मेरे वचन का श्रवण करो। यह मैं जानता हूँ कि जो कुछ होने वाला है उसे ही तुम अवश्य करोगे। इसमें कुछ भी अन्यथा नहीं होगा।१८। अब आप यहाँ से ब्रह्माजी के समीप में चले जाओ और उनसे हे तात ! अपना हित और अहित पूछिए। वे विभु जो भी कहेंगे उसी को आप करना—फिर इसमें कुछ भी संशय नहीं होगा।१९। वसिष्ठ जी ने कहा—जब राम के पिता के द्वारा इस प्रकार से राम से कहा गया था तो उस महामति ने अपने पिता के चरणों में प्रणाम किया था और फिर वह ब्रह्माजी के लोक को चला गया था जो लोक सामान्य प्राकृतजनों के द्वारा गमन करने के योग्य नहीं था।२०। उस परशुराम ने ब्रह्माजी के उस लोक को देखा था जो लोक सुवर्ण के ही द्वारा बना हुआ था। उस लोक का प्राकार (चहार दीवारी) भी सुवर्ण से संयुत था और वह लोक मणियों के अनेक स्तम्भों से विभूषित हो रहा था।२१।

तत्रापश्यत्समासीनं ब्रह्माणममितौजसम् ।
रत्नसिंहासने रम्ये रत्नभूषणभूषितम् ॥२२

सिद्धेंद्रैश्च मुनींद्रैश्च वेष्टितं ध्यानतत्परैः ।
विद्याधरीणां नृत्यं च पश्यंतं सस्मितं मुदा ॥२३
तपसां फलदातारं कर्त्तारं जगतां विभुम् ।
परिपूर्णतमं ब्रह्म ध्यायंत यतमानसम् ॥२४
गुह्ययोगं प्रवोचंतं भक्तवृंदेषु संततम् ।
दृष्ट्वा तमव्ययं भक्त्या प्रणनाम भृगूद्वहः ॥२५
स दृष्ट्वा विनतं राममाशीर्भिरभिनंद्य च ।
पप्रच्छ कुशलं वत्स कथमागमनं कृथाः ॥२६
संपृष्टो विधिना रामः प्रोवाचाखिलमादितः ।
वृत्तांत कार्त्तवीर्यस्य पितुः स्वस्य महात्मनः ॥२७
तच्छ्रुत्वा सकलं ब्रह्मा विज्ञातार्थोऽपि मानद ।
उवाच रामं धर्मिष्ठ परिणामसुखावहम् ॥२८

वहाँ पर उस लोक में अपरिमित ओज से समन्वित विराजमान ब्रह्माजी का उस राम ने दर्शन किया था । जो परम रम्य रत्नों के सिंहासन पर समासीन थे और रत्नों के ही भूषणों के समलंकृत थे ।२२। उन ब्रह्माजी को चारों ओर से बड़े-बड़े सिद्धों और मुनीन्द्रों के ध्यान में समासक्त होकर घेर रखा था तथा था वहाँ पर उनके सामने विद्याधरियों का नृत्य हो रहा था जिस नृत्यको बड़े ही आनन्द के साथ मुस्कराते हुए ब्रह्माजी देख रहे थे ब्रह्माजी उस समय में तपों के फल को प्रदान करने वाले—जगतों की रचना करने वाले—व्यापक और परिपूर्ण तप ब्रह्म का ध्यान कर रहे थे तथा उनने अपने मन को नियमन्त्रित कर रक्खा था ।२४। जो वहाँ पर भक्तों के समुदाय विद्यमान थे उनको निरन्तर परम गोपनीय योग को वे बतला रहे थे । इस रीति से विराजमान अव्यय उन ब्रह्माजी का भक्तिभाव से दर्शन प्राप्त करके उस भृगुकुल में समुत्पन्न राम ने उनके चरणों में प्रणि-पात किया था ।२५। उन ब्रह्माजी ने विशेष रूप से नत उस राम को देखकर आशीर्वचनों के द्वारा उसका अभिनन्दन किया था । फिर उस राम से ब्रह्माजी ने उसका कुशल पूछा था इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने राम से कहा था—हे वत्स ! तुमने किस प्रयोजन से यहाँ पर मेरे समीप में आगमन किया है ।२६। जब ब्रह्माजी ने इस रीति से राम से पूछा था तो उसने

आरम्भ से सम्पूर्ण वृत्तान्त कहकर उनको सुना दिया था जिसमें कार्त्तवीर्य राजा के द्वारा जो कुछ किया गया था और महात्मा अपने पिता जमदग्नि पर जो कुछ दुःख पड़ा था वह सभी हाल था ।२७। इस सम्पूर्ण वृत्तान्त का श्रवण करके हे मानद ! यद्यपि ब्रह्माजी को यह सभी बातें पहिले ही विज्ञात थीं तथापि उन्होंने पूछकर सब कुछ सुना था और परिणाम में सुख आवहन करने वाले धर्मिष्ठ राम से कहा था ।२८।

प्रतिज्ञा दुर्लभा वत्स यां भवान्कृतवान् ुधा ।
सृष्टि रेषा भगवतः संभवेत्कृपया बटो ॥२९
जगत्सृष्टं मया तात संक्लेशेन तवाज्ञया ।
तन्नाशकारिणी चैव प्रतिज्ञा भवता कृता ॥३०
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां कर्तुमिच्छसि मेदिनीम् ।
एकस्य राज्ञो दोषेण पितुः परिभवेन च ॥३१
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रैः सृष्टिरेषा सनातनी ।
आविर्भूता तिरोभूता हरेरेव पुनः पुनः ॥३२
अव्यर्था त्वत्प्रतिज्ञा तु भवित्री प्राक्तनेन च ।
यद्वायासेन ते कार्यसिद्धिर्भवितुमर्हति ॥३३
शिवलोकं प्रयाहि त्वं शिवस्याज्ञामवाप्नुहि ।
पृथिव्यां बहवो भूपाः संति शंकरकिंकराः ॥३४
विनेवाज्ञां महेशस्य को वा तान्हंतुमीश्वरः ।
बिभ्रतः कवचान्यंगे शक्तींश्चापि दुरासदाः ॥३५

हे वत्स ! आपकी यह प्रतिज्ञा बड़ी ही दुर्लभ है जिसको क्रोध के वशीभूत होकर आपने किया है । हे बटो ! यह सृष्टि तो भगवान् की कृपा से ही होती है ।२९। हे तात ! यह आपको ज्ञात ही है कि उन्हीं परम प्रभु की आज्ञा से बड़े ही क्लेश के द्वारा इस समस्त जगत् का सृजन किया है और आपने इसी सृष्टि के नाश करने वाली प्रतिज्ञा कर डाली हैं ।३०। आप तो केवल एक ही राजा के दोष से तथा अपने पिता के तिरस्कार के होने से इस भूमि को इक्कीस बार भूपों से रहित करना चाहते हैं ।३१। यह सृष्टि तो ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य और शूद्र-इन चारों वर्णों से समन्वित सर्वदा से ही

चली आने वाली है। इसका आविर्भाव और तिरोभाव तो बार-बार भगवान् हरि से ही हुवा करता है।३२। आपकी जो प्रतिज्ञा है वह भी अव्यर्थ होने वाली ही है और प्राक्तन अथवा आयास से आपके कार्य की सिद्धि होने के योग्य होती है।३३। अब मेरा मत यही है कि शिवलोक में गमन कीजिए और अपनी की हुई प्रतिज्ञा के विषय में भगवान् शिव की आज्ञा को प्राप्त कीजिए। कारण यह है कि इस भूमण्डल में बहुत से भूप भगवान् शिव के सेवक हैं।३४। बिना महेश्वर की आज्ञा प्राप्त किये हुए किसकी सामर्थ्य है कि उन सब भूपों का हनन कर सके। ये सब शिव के भक्त राजा लोग अपने अङ्गों में कवच धारण करने वाले हैं तथा दुरासदद को भी ये सब धारण किया करते हैं।३५।

उपायं कुरु यत्नेन जयबीजं शुभावहम्।
उपाये तु समारब्धे सर्वे सिध्यंत्युपक्रमाः ॥३६
श्रीकृष्णमंत्रं कवचं गृह्य वत्स गुरोर्हरात्।
दुर्ल्लंघ्यं वैष्णवं तेजः शिवशक्तिर्विजेष्यति ॥३७
त्रैलोक्यविजयं नाव कवचं परमाद्भुतम्।
यथाकथं च विज्ञाप्य शंकरं लभ दुर्लभम् ॥३८
प्रसन्नः स गुणैस्तुभ्यं कृपालुर्दीनवत्सलः।
दिव्यपाशुपतं चापि दास्यत्येव न संशयः ॥३९

यत्न के साथ उपाय करिए। जप का बीज शुभ का आवाहन करने वाला है। जब उपाय का आरम्भ कर दिया जाता है तो उसके कर देने पर सभी उपक्रम सिद्ध हो जाया करते हैं।३६। अपने गुरुदेव हर से हे वत्स! श्रीकृष्ण का मन्त्र और वच्च का ग्रहण करो। उससे दुर्लङ्घ्य वैष्णव तेज और शिव की शक्ति हो जायगी। जोकि विजय करेगी।३७। भगवान् शिव के पास एक त्रैलोक्य के विजय करने वाला इसी नाम का परम दुर्लभ कवच विद्यमान है। यह कवच अतीव अद्भुत है। जिस किसी भी प्रकार से भगवान् शङ्कर को प्रसन्न करके उनसे इसके प्राप्त करने की प्रार्थना करो और इस दुर्लभ वस्तु की प्राप्ति उनसे करो।३८। आपके गुण गणों से वे भगवान् शिव प्रसन्न हैं और वे बहुत ही दयालु तथा दीनों पर प्यार करने वाले हैं। वे तुमको अपना दिव्य पाशुपत अस्त्र भी अवश्य ही प्रदान कर ही देंगे—इसमें कुछ भी संशय नहीं है।३९।

परशुराम का शिवाराधन

वसिष्ठ उवाच–

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा स प्रणम्य जगद्गुरुम् ।
प्रसन्नचेताः सुभृशं शिवलोकं जगाम ह ॥१
लक्षयोजनमूर्द्ध्वं च ब्रह्मलोकाद्विलक्षणम् ।
अथानिर्वचनीयं च योगिगम्यं परात्परम् ॥२
वैकुंठो दक्षिणे यस्माद्गौरीवश्च वामतः ।
यदधो ध्रुवलोकश्च सर्वलोकपरस्तु सः ॥३
तपोवीर्यगती रामः शिवलोकं ददर्श च ।
उपमानेन रहितं नानाकौतुकसंयुतम् ॥४
वसंति यत्र योगींद्राः सिद्धाः पाशुपताः शुभाः ।
कोटिकल्पतपः पुण्याः शांता निर्मत्सरा जनाः ॥५
पारिजाततरुवृंदैः शोभितं कामधेनुभिः ।
योगेन योगिना सृष्टं स्वेच्छया शंकरेण हि ॥६
शिल्पिनां गुरुणा स्वप्ने न दृष्टं विश्वकर्मणा ।
सरोवरशतैर्दिव्यैः पद्मरागविराजितैः ॥७

श्री वसिष्ठ जी ने कहा—वह राम ब्रह्माजी के इस वचन को सुनकर फिर ब्रह्माजी के चरणों में प्रणाम करके अत्यन्त ही प्रसन्न चित्त वाला होता हुआ वहाँ से शिव के लोक को चला ।१। वह शिवका लोक वहाँ से एक लाख योजन ऊपर की ओर था और वह इस ब्रह्माजी के लोक से भी अधिक विलक्षण था । उसका वर्णन वचनों के द्वारा तो हो ही नहीं सकता है । ऐसा ही वह अनिर्वचनीय था और पर से भी पर था तथा योगी जनों के ही द्वारा गमन करने के योग्य था ।२। जिस शिवलोक से वैकुण्ठ तो दक्षिण दिशा में है और गौरी लोक बाँई ओर है तथा जिनके नीचे की ओर ध्रुव लोक है और वह शिवलोक सभी लोकों से पर है ।३। तपश्चर्या और बल-विक्रम के वीर्य की गति वाले उस राम ने उस शिवलोक का दर्शन कर लिया था । वह अनेक प्रकार के कौतुकों से युक्त था तथा उसकी समानता रखने वाला अन्य कोई भी उपमान ही नहीं था ।४। वह ऐसा लोक था जहाँ

पर केवल महान् योगीन्द्र-सिद्ध और परम शुभ पाशुपत ही निवास किया करते हैं। जो करोड़ों कल्पों तक तपस्या करने के महान् पुनीत पुण्य वाले—परम शान्त शील-स्वभाव वाले और मत्सरता से रहित जन थे वे ही उस लोक के निवास करने वाले थे।५। वह लोक पारिजात मुख्य वाले वृक्षों से तथा कामधेनुओं से परम सुशोभित था जिन सबका योगिराजाधिराज भगवान् शङ्कर ने अपने ही योगबल से स्वेच्छा पूर्वक सृजन किया था। समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली धेनु कामधेनु कही जाती है तथा मनकी इच्छाओं को पूरा करने वाला वृक्ष कल्पवृक्ष होता है उन्हीं का एक भेद परिजात देव वृक्ष है।६। इस लोक की रचना ऐसी ही परम अद्भुत थी कि विश्व के शिल्पियों के परम गुरु विश्वकर्मा ने कभी स्वप्न में भी नहीं देखी थी फिर उसके भी द्वारा स्वयं ऐसी रचना का करना तो बहुत ही दूर की बात है। उस लोक में परम दिव्य सैकड़ों ही सरोवर थे जिनके घाट और सीढ़ियाँ तथा सम्पूर्ण प्राकार मण्डल पद्मराग नाम वाली मणियों के द्वारा विनिर्मित था। इन सब सरोवरों से वह लोक परमाधिक शोभा से समन्वित था।७।

शोभितं चातिरम्यं च संयुक्तं मणिवेदिभिः।
सुवर्णरत्नरचितप्राकारेण समावृतम् ॥८

आमूर्द्धमंबरस्पर्शि स्वच्छं क्षीरनिभं परम्।
चतुर्द्वारसमायुक्तं शोभितं मणिवेदिभिः ॥९

रत्नसोपानयुक्तैश्च रत्नस्तम्भकपाटकैः।
नानाचित्रविचित्रैश्च शोभितैः सुमनोहरैः ॥१०

तन्मध्ये भवनं रम्यं सिंहद्वारोपशोभितम्।
ददर्श रामो धर्मात्मा विचित्रमिव संगतः ॥११

तत्र स्थितौ द्वारपालौ ददर्शातिभयंकरौ।
महाकरालदंतास्यौ विकृतारक्तलोचनौ ॥१२

दग्धशैलप्रतीकाशौ महाबलपराक्रमौ।
विभूतिभूषितांगौ च व्याघ्रचर्माम्बरौ च तौ ॥१३

त्रिशूलपट्टिशधरौ ज्वलंतौ ब्रह्मतेजसा।
तौ दृष्ट्वा मनसा भीतः किंचिदाह विनीतवत् ॥१४

वह लोक मणियों के द्वारा निर्मित अनेक वेदियों से बहुत ही अधिक सुरम्य एवं शोभित था । इसके चारों ओर सुवर्ण का प्राकार (परकोटा) बना हुआ था ।८। यह लोक बहुत ही ऊँचा था जो कि अन्तरिक्ष का स्पर्श कर रहा था तथा वह इतना अधिक स्वच्छ एवं शुभ्र था कि क्षीर के ही समान दिखाई दे रहा था । इस लोक में चार परम विशाल द्वार बने हुए थे जिनका निर्माण मणियों की वेदियों से किया गया था ।९। इसमें ऊपर चढ़ने के लिए रत्नों के द्वारा विनिर्मित सोपानों की श्रेणियाँ थीं और इसमें जो स्तम्भ तथा कपाट बने हुए थे वे भी सब रत्नों के थे । इस लोक में जो भी रचना थी वह अनेक प्रकार की चित्रविचित्र थी तथा परम मनोहर थी जिससे यह लोक परम शोभित हो रहा था ।१०। उस लोक के मध्य में सिद्धों के द्वारा उपशोभित एक सुरम्य भवन बना हुआ था । उस धर्मात्मा राम ने वहाँ पर पहुँचकर उसको एक विचित्र स्थल के ही समान देखा था ।११। वहाँ पर उस रामने देखा था कि अतीव भयङ्कर दो द्वारपाल स्थित थे । जिनके महान् कराल मुख और दाँत थे तथा बहुत ही विकृत लाल नेत्र थे ।१२। वे द्वारपाल ऐसे ही प्रतीत हो रहे थे मानों वे दग्ध पर्वत होवें । वे महान् बल और विक्रम से समन्वित थे । उनके शरीरों में विभूति लगी हुई थी जिससे उनका अङ्ग विभूषित था और वे व्याघ्र के चर्मों के वस्त्र धारण किये हुए थे ।१३। वे दोनों द्वारपाल त्रिशूल और पट्टिश धारण करने वाले थे तथा ब्रह्मतेज से जाज्वल्यमान हो रहे थे । उन को देखकर राम अपने मन में भय से भीत हो गया था बहुत ही विनीत होकर उन से कुछ बोला था ।१४।

नमस्करोमि वामीशौ शंकरं दृष्टुमागतः ।
ईश्वराज्ञां समादाय मामथाज्ञप्तुमर्हथ ॥१५
तौ तु तद्वचनं श्रुत्वा गृहीत्वाऽऽज्ञां शिवस्य च ।
प्रवेष्टुमाज्ञां ददतुरीश्वरानुचरौ च तौ ॥१६
स तदाज्ञामनुप्राप्य विवेशांतः पुरं मुदा ।
तत्रातिरम्यां सिद्धौघैः समाकीर्णां सभां द्विजः ॥१७
दृष्ट्वा विस्मयमापेदे सुगंधबहुलां विभोः ।
तत्रापश्यच्छिवं शांतं त्रिनेत्रं चन्द्रशेखरम् ॥१८
त्रिशूलशोभितकरं व्याघ्रचर्मवरांबरम् ।

विभूतिभूषितांगे च नागयज्ञोपवीतिनम् ॥१६
आत्मारामं पूर्णकामं कोटिसूर्यसमप्रभम् ।
पंचाननं दशभुजं भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥२०
योगज्ञाने प्रब्रुवंतं सिद्धेभ्यस्तर्कमुद्रया ।
स्तूयमानं च योगींद्रैः प्रथमप्रकरैर्मुदा ॥२१

राम ने कहा—ईश आप दोनों की सेवा में मेरा प्रणाम स्वीकृत होवे। मैं इस समय में भगवान् शङ्कर के दर्शन प्राप्त करने के लिए ही यहाँ पर समागत हुआ हूँ। अब भगवान् ईश्वर की आज्ञा प्राप्त करके मुझे दर्शन करने के लिए आदेश प्रदान करने को आप योग्य होते हैं।१५। उन ईश्वर के दोनों अनुचरों ने राम के वचनों का श्रवण करके और फिर शिव की आज्ञा को प्राप्त करके राम को अन्दर प्रवेश करने के लिये उन्होंने आज्ञा देदी थी।१६। उस राम ने भी उनकी आज्ञा प्राप्त करके बड़े ही हर्ष के साथ उस अन्तःपुर में प्रवेश किया था। वहाँ पर उसने एक सभा का स्थल देखा था जो इस द्विज ने सिद्धों के समुदायों से समाकीर्ण देखा था और जिसमें अनेक प्रकार की बड़ी ही सुन्दर सुगन्ध भरी हुई थी तथा वह बहुत ही सुरम्य था। इस सभा-स्थल का अवलोकन करके बड़ा ही विस्मय हो गया था। वहाँ पर फिर उस रामने परम शान्त-तीन नेत्र के धारण करने और मस्तक में चन्द्र को धारण किये हुए भगवान् शिव का दर्शन किया था।१७-१८। भगवान् शंकर के कर में त्रिशूल शोभित हो रहा था और वे व्याघ्र के चर्म को वस्त्र के स्थान में पहिने हुए थे। उनके सम्पूर्ण अङ्गों में श्मशान की भस्म लगी हुई थी और उनका शरीर नागों के यज्ञोपवीत से शोभित था।१६। प्रभु शंकर अपनी ही आत्मा में रमण करने वाले थे—पूर्ण काम थे और उनकी सभी कामनाएँ परिपूर्ण थीं और करोड़ों सूर्यों के समान परमोज्ज्वल प्रभा थी। वे पाँच मुखों वाले—दश भुजाओं से शोभित और अपने भक्तों पर परमाधिक अनुग्रह करने वाले थे।२०। उस समय में शिव सिद्धों के लिए तर्क की मुद्रा के द्वारा योग और ज्ञान का विषय बतला रहे थे। बड़े-बड़े योगीन्द्र और प्रथमगण बड़े ही आनन्द के साथ उनका स्तवन कर रहे थे।२१।

भैरवैर्योगिनीभिश्च वृतं रुद्रगणैस्तथा ।
मूर्ध्ना ननाम तं दृष्ट्वा रामः परया मुदा ॥२२

वामभागे कार्त्तिकेयं दक्षिणे च गणेश्वरम् ।
नंदीश्वरं महाकालं वीरभद्रं च तत्पुरः ॥२३
क्रोडे दुर्गां शतभुजां दृष्ट्वा नत्वाथ तामसि ।
स्तोतुं प्रचक्रमे विद्वान्गिरा गद्गदया विभुम् ॥२४
नमस्ते शिवमीशानं विभुं व्यापकमव्ययम् ।
भुजंगभूषणं चोग्रं नृकपालस्रगुज्ज्वलम् ॥२५
यो विभुः सर्वलोकानां सृष्टिस्थितिविनाशकृत् ।
ब्रह्मादिरूपधृग्ज्येष्ठस्तं त्वां वेद कृपार्णवम् ॥२६
वेदा न शक्ता यं स्तोतुमवाङ्मनसगोचरम् ।
ज्ञानबुद्धयोरसाध्यं च निराकारं नमाम्यहम् ॥२७
शक्रादयः सुरगणा ऋषयो मनवोऽसुराः ।
न यं विदुर्यथातत्त्वं तं नमामि परात्परम् ॥२८

भगवान् शिव को भैरव—योगिनियाँ और रुद्र के गणों ने चारों ओर से घेर रक्खा था। ऐसी दशा में विराजमान हुए भगवान शिव का दर्शन करके राम ने बड़े ही हर्ष से अपने शिर को उनके चरणों में झुका कर प्रणाम किया था।२२। उनके वाम भाग में स्वामी कार्त्तिकेय थे और दाहिनी ओर गणनायक गणेश विराजमान थे तथा उनके सामने नन्दीश्वर-महाकाल और वीरभद्र स्थित हो रहे थे।२३। शिव की गोद में सौ भुजाओं वाली जगज्जननी दुर्गा विद्यमान थीं। इनका दर्शन करके राम ने उनको भी प्रणाम किया था। इसके अनन्तर विद्वान् राम ने अपनी गद्गद वाणी से उन विभु की स्तुति करने का उपक्रम किया था।२४। राम ने कहा था—मैं ईशान–विभु–व्यापक–अव्यय–भुजङ्गों के भूषणों वाले—उग्र और नरों के कपालों की माला के धारण करने से परमोज्ज्वल शिव की सेवा में प्रणाम करता हूँ।२४-२५। जो विभु समस्त लोकों को सृष्टि स्थिति और विनाश के करने वाले हैं ऐसे ब्रह्मा आदि के स्वरूप को धारण करने वाले—सबसे बड़े उन आप कृपा के सागर को मैं जानता हूँ।२६। जिन मन और वाणी के आगोचर प्रभु की स्तुति करने में वेद भी समर्थ नहीं हैं उन ज्ञान और बुद्धि के द्वारा साधन के अयोग्य तथा बिना आकार वाले प्रभु शिव के चरणों में मैं नमस्कार करता हूँ।२७। महेन्द्र आदि देवगण–ऋषिगण–मनु और असुर

ये सब जिनके स्वरूप का यथार्थ रूप से नहीं जाना करते हैं उन पर से भी पर प्रभु शिव के लिए मैं प्रणिपात करता हूँ ।२८।

यस्यांशांशेन सृज्यंते लोका: सर्वे चराचरा: ।
लीयंते च पुनर्यस्मिस्तं नमामि जगन्मयम् ॥२९
यस्येषत्कोपसंभूतो हुताशो दहतेऽखिलम् ।
सोर्द्ध्वलोकं सपातालं तं नमामि हरं परम् ॥३०
पृथ्वीपवन वह्न्यम्भोनभोयज्वेंदुभास्करा: ।
मूर्त्तयोऽष्टौ जगत्पूज्यास्तं यजं प्रणमाम्यहम् ॥३१
य: कालरूपो जगदादिदर्त्ता पाता पृथग्रूपधरो
जगन्मय: ।
हर्त्ता पुना रुद्रवपुस्तथांते तं कालरूपं शरणं प्रपद्ये ॥३२
इत्येवमुक्त्वा स तु भार्गवो मुदा पपात
तस्यांघ्रिसमीप आतुर: ।
उत्थाप्य तं वामकरेण लीलया दध्रे तदा मूर्ध्नि
करं कृपार्णव: ॥३३
आशीभिरेनं ह्यभिनंद्य सादरं निवेशयामास गणेशपूर्वत: ।
उवाच वामामभिवीक्ष्य चाप्युमां
कृपार्द्रदृष्ट्याऽखिलकामपूरक: ॥३४
शिव उवाच—
कस्त्वं वटो कस्य कुले प्रसूत: किं कार्यमुद्दिश्य
भवानिहागत: ।
विनिर्दिशाहं तव भक्तिभावत: प्रीत: प्रदद्यां भवतो
मनोगतम् ॥३५

जिन पूज्य देव के अंशों के भी अंशों के द्वारा चर और अचर समस्त लोक सृजित हुआ करते हैं और फिर जिसमें ही ये सब लीन हो जाया करते हैं उन जगन्मय प्रभु को मैं नमस्कार करता हूँ ।२९। जिन प्रभु के बहुत ही अल्प कोप से समुत्पन्न हुआ अग्नि ऊर्ध्वलोक और पाताल के सहित सम्पूर्ण

इस विश्व को दग्ध कर देता है उन हर की सेवा में जो पर हैं मैं प्रणाम हूँ।३०। जिसकी पृथ्वी-पवन-अग्नि-जल-नभ-यज्वा-चन्द्र और भास्कर में आठ मूर्त्तियाँ जगत् की पूज्य है उन यज्ञ स्वरूप देव को मैं नमस्कार करता हूँ।३१। जो काल के स्वरूप वाले इस सम्पूर्ण जगत् के आदि करने वाले अर्थात् स्रष्टा हैं इसका पालन करने वाले हैं और अपना यह जगन्मय रूप धारण किया करते हैं। फिर रुद्र का स्वरूप धारण करके अन्त में इस सबका संहार करने वाले हैं उन काल के रूप वाले भगवान् शंकर की मैं शरणागति में प्राप्त होता हूँ।३२। वह भार्गव राम इस रीति से इतना ही स्तवन करके बड़े ही आनन्द से उन शिव के चरणों के समीप परमाधिक आतुर होकर गिर पड़ा था। तब कृपा के सागर भगवान् शंकर ने अपने बाँये करकमल से लीला से ही उसको उठाकर उसके मस्तक पर अपनाकर रख दिया था।३३। अनेक आशीर्वचनों के द्वारा उसका अभिनन्दन करके बड़े ही आदर के साथ अपने प्रिय आत्मज गणेश के आगे उसको बिठा दिया था। फिर अपनी वामा उमा का अभिवीक्षण करके समस्त कामनाओं के पूर्ण करने वाले शिव ने कृपार्द्र दृष्टि से उससे कहा था।३४। शिव ने कहा—हे वटो! आप यह बताइए कि आप कौन हैं और किसके वंश में आपने जन्म ग्रहण किया है और आप किस कार्य के कराने का उद्देश्य लेकर यहाँ पर समागत हुए हैं—यह सभी कुछ सूचित कीजिए। मैं आपकी इस प्रकार की भक्ति की भावना से आपके ऊपर परम प्रसन्न हो गया हूँ तथा जो भी कुछ आपके मन का अभीप्सित है उस सबको मैं आपके लिए दे दूँगा।३५।

इत्येवमुक्तः स भृगुर्महात्मना हरेण विश्वार्त्तिहरेण सादरम्।
पुनश्च नत्वा विबुधां पतिं गुरुं कृपासमुद्रं समुवाच
सस्वरम्॥३६

परशुराम उवाच।
भृगोश्चाहं कुले जातो जमदग्निसुतो विभो।
रामो नाम जगद्वंद्यं त्वामहं शरणं गतः॥३७

यत्कार्यार्थमहं नाथ तव सांनिध्यमागतः।
तं प्रसाधय विश्वेश वांछितं काममेव मे॥३८

मृगयामागतस्यापि कार्त्तवीर्यस्य भूपते ।
आतिथ्यं कृतवान् देव जमदग्निः पिता मम ॥३९
राजा तं स बलाल्लोभात्पातयामास मन्दधीः ।
सा धेनुस्तं मृतं दृष्ट्वा गवां लोकं जगाम ह ॥४०
राजा न शोचन्मरणं पितुर्मम निरागसः ।
जगाम स्वपुरं पश्चान्माता मे प्रारुदद्भृशम् ॥४१
तज्ज्ञात्वा लोकवृत्तज्ञो भृगुर्नः प्रपितामहः ।
आजगाम महादेव ह्यहप्यागतो वनात् ॥४२

अब इस रीति से वह भृगु कुलोद्भूत राम सम्पूर्ण विश्व की आर्त्ति के हरण करने वाले महात्मा शम्भु के द्वारा बड़े ही आदर के साथ कहा गया था तब तो उन देवों के स्वामी और कृपा के सागर गुरु की सेवा में उस राम ने फिर एक बार प्रणाम करके बहुत ही शीघ्र निवेदन किया था ।३६। परशुराम ने कहा—हे भगवन् ! मैं भृगु मुनि के कुल में समुत्पन्न हुआ हूँ और हे विभो ! जमदग्नि ऋषि का पुत्र हूँ । मेरा नाम छोटा सा राम—यह है । आप तो समस्त जगत् की वन्दना करने के योग्य हैं । मैं ऐसे समय में आपकी शरणागति में प्रपन्न हुआ हूँ ।३७। हे नाथ ! जिस कार्य के लिए मैं आपकी सन्निधि में समागत हुआ हूँ । हे विश्वेश्वर ! उसको आप कृपा कर प्रसाधित कीजिए और मेरी कामना है कि अब आप मेरा वांछित जो भी है उसे मुझे प्रदान कीजिए ।३८। मेरे पिता जमदग्नि ने हे देव ! मृगया के लिए वन में आये हुए राजा कार्त्तवीर्य का बहुत अच्छी तरह से आतिथ्य-सत्कार किया था ।३९। उस महान्मन्द मति वाले राजा ने लोभ के वशीभूत होकर बलपूर्वक मेरे पिता को मार डाला था । जो एक धेनु थी जिसके ग्रहण करने का लालच राजा के मन में हो गया था वह होमधेनु भी मेरे पिता को मरा हुआ देखकर गो-लोक में चली गयी थी ।४०। राजा ने निरपराध मेरे पिता की मृत्यु के विषय में कुछ भी चिन्ता नहीं की थी और फिर वह अपने नगर में चला गया था । इसके पीछे मेरी माता रेणुका अत्यन्त रुदन कर रही थी ।४१। इस घटना का ज्ञान प्राप्त करके लोक के वृत्त के ज्ञाता हमारे पितामह भृगुमुनि हे महादेव ! वहाँ पर आ गये थे । मैं समिधा लेने के लिए उस समय में वन में गया हुआ था सो मैं भी इसी बीच में वहाँ पर समागत हो गया था ।४२।

मया सह सुदुःखार्त्तान्भ्रातॄन्मात्रा सहैव मे ।
सांत्वयित्वा स मंत्रज्ञोऽजीवयत्पितरं मम ॥४३
अनागते भृगौ मातुर्दुःखेनाहं प्रकोपितः ।
प्रतिज्ञां कृतवान्देव सांत्वयन्मातरं स्वकाम् ॥४४
त्रिःसप्तकृत्वो यदुरस्ताडितं मातुरात्मनः ।
तावत्संख्यमहं पृथ्वीं करिष्ये क्षत्रवर्जिताम् ॥४५
इत्येवं परिपूर्णा मे कर्त्ता देवो जगत्पतिः ।
महादेवो भवतो नाथ त्वत्सकाशमिहागतः ॥४६
वसिष्ठ उवाच—
इत्येवं तद्वचः श्रुत्वा दृष्ट्वा दुर्गामुखं हरः ।
बभूवानम्रवदनश्चितयानः क्षणं तदा ॥४७
एतस्मिन्नंतरे दुर्गा विस्मिता प्राहसद्भृगम् ।
उवाच च महाराज भार्गवं वैरसाधकम् ॥४८
तपस्विन्द्विजपुत्र क्ष्मां निर्भूपां कर्तुमिच्छसि ।
त्रिः सप्तकृत्वः कोपेन साहसस्ते महान्वटो ॥४९

उस समय में मैं रुदन कर रहा था और अपनी माता के साथ मेरे सब भाई भी क्रन्दन कर रहे थे। उस मन्त्र शास्त्र के ज्ञाता मुनि ने सबको सान्त्वना देकर मेरे मृत पिता जमदग्नि को संजीवनी विद्या से जीवित कर दिया था।४३। जब तक भृगु मुनि वहाँ पर नहीं आये थे उस बीच में मैं माता के वैधव्य के दुःख से बहुत ही कुपित हो गया था। हे देव! मैंने अपनी माता को सान्त्वना देते हुए एक प्रतिज्ञा कर डाली थी।४४। मेरी माता ने करुण क्रन्दन करते हुई ने जो इक्कीस बार अपना उरःस्थल ताड़ित किया था उसी गणना को लेकर ही मैंने यह प्रतिज्ञा की थी कि इक्कीस बार ही मैं इस पृथ्वी को क्षत्रियों से रहित कर दूँगा।४५। यह इस रीति से की हुई मेरी प्रतिज्ञा परिपूर्ण हो जावे—इसके पूर्ण करने वाले जगत् के पति देवेश्वर आप ही हैं। आप तो सब से बड़े देव हैं। हे नाथ! इसीलिए मैं अब आपके चरणों की सन्निधि में यहाँ पर आया हूँ।४६। वसिष्ठजी ने कहा—भगवान् शंकर ने इस प्रकार से उस राम के वचनों का श्रवण करके जगज्जननी दुर्गा के मुख को ओर देखा था और उस समय में एक क्षण के लिए

नीचे की ओर अपना मुख करके चिन्तन करने वाले प्रभु शंकर हो गये थे ।४७। इसी अन्तर में जगदम्बा देवी दुर्गा विस्मित होती हुई अत्यधिक हँस गयी थीं । और हे महाराज ! वैर के साधक उस भार्गव राम से बोली ।४८। जगदम्बा ने कहा था कि हे तपस्विन् ! द्विज के पुत्र ! क्या तुम इस भूमण्डल को भूपों से विहीन करने की इच्छा कर रहे हो ? और वह भी एक-दो वार नहीं प्रत्युत कोप से इक्कीस वार ऐसा करना चाहते हो । हे वटो ! यह तो आपका एक बहुत ही महान साहस है ।४९।

हंतुमिच्छसि निःशस्त्रः सहस्राजुंनमीश्वरम् ।
भ्रूभंगलीलया येन रावणोऽपि निराकृतः ।।५०
तस्मै प्रदत्तं दत्तेन श्रीहरेः कवचं पुरा ।
शक्तिरत्यर्थवीर्या च तं कथं हंतुमिच्छसि ।।५१
शंकरः करुणासिद्धः कर्त्तुं चाप्यन्यथा विभुः ।
न चान्यः शंकरात्पुत्र सत्कार्यं कर्त्तुमीश्वरः ।।५२
अथ देव्या अनुमतिं प्राप्य शंभुर्दयार्णवः ।
अभ्यधाद्भद्रया वाचा जमदग्निसुतं विभु ।।५३
शिव उवाच–
अद्यप्रभृति विप्र त्वं मम स्कन्दसमो भव ।
दास्यामि मंत्रं दिव्यं ते कवचं च महामते ।।५४
लीलया यत्प्रसादेन कार्त्तवीर्यं हनिष्यसि ।
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां महीं चापि करिष्यसि ।।५५
इत्युक्त्वा शंकरस्तस्मै ददौ मंत्रं सुदुर्लभम् ।
त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं परमाद्भुतम् ।।५६

उस राजा सहस्राजुंन का बिना ही शस्त्रों वाले होते हुए तुम हनन करने की इच्छा कर रहे हो जिसने अपनी भ्रूभङ्ग की लीला से अर्थात् जरा सी भृकुटी तिरछी करके रावण जैसे महापराक्रमी को भी निराहत कर दिया था अर्थात् अपने सामने निराहत करके भगा दिया था ।५०। उस राजा को तो पहिले दत्तात्रेय मुनि ने श्री हरि का कवच प्रदान किया था और अत्यन्त वीर्य से समन्वित एक शक्ति भी उसके लिए दी थी । उसको

तुम किस प्रकार से मार देना चाहते हो ? ।५१। भगवान् शंकर तो करुणा के अथाह सागर हैं और करुणा से ही सिद्ध हो जाते हैं। यह विभु तो परम समर्थ हैं सभी कुछ अन्यथा भी कर सकते हैं। हे पुत्र ! भगवान् शंकर के के अतिरिक्त अन्य कोई भी इस कार्य के करने में समर्थ नहीं है ।५२। इसके अनन्तर देवी के इन वचनों से दया के सागर भगवान् शम्भु ने दुर्गा देवी की भी अनुमति प्राप्त कर ली थी और फिर विभु शम्भु ने जमदग्नि के पुत्र से परम भद्र वाणी के द्वारा कहा था ।५३। भगवान शिव ने कहा—हे विप्र ! आज से लेकर तुम मेरे पुत्र कार्तिकेय के समान हो जाओगे। हे महान् मति वाले ! मैं आपको परम दिव्य मन्त्र और कवच दे दूँगा ।५४। योंही विनाही किसी आयास के लीला ही से जिनके प्रसाद के प्रभाव से आप कार्त्तवीर्य का हनन कर दोगे और जैसी तुम्हारी प्रतिज्ञा है वह भी पूर्ण होगी और इक्कीस बार इस पृथ्वी को भी भूपों से रहित तुम कर दोगे ।५५। इतना यह इस रीति से कहकर भगवान् शम्भु ने उस परशुराम के लिए सुदुर्लभ मन्त्र प्रदान कर दिया था और तीनों लोकों का विजय करने वाला परम अद्भुत कवच भी उसे दे दिया था ।५६।

नागपाशं पाशुपतं ब्रह्मास्त्रं च सुदुर्ल्लभम् ।
नारायणास्त्रमाग्नेयं वायव्यं वारुणं तथा ।।५७
गांधर्वं गारुडं चैव जृंभणास्त्रं महाद्भुतम् ।
गदां शक्तिं च परशुं शूलं दण्डमनुत्तमम् ।।५८
शस्त्रास्त्रग्राममखिलं प्रहृष्टः संबभूव ह ।
नमस्कृत्य शिवं शांतं दुर्गां स्कन्दं गणेश्वरम् ।।५९
परिक्रम्य ययौ रामः पुष्करं तीर्थमुत्तमम् ।
सिद्धं कृत्वा शिवोक्तं तु मन्त्रं कवचमुत्तमम् ।।६०
साधयामास निखिलं स्वकार्यं भृगुनन्दनः ।
निहत्य कार्त्तवीर्यं तं ससैन्यं सकुलं मुदा ।
विनिवृत्तो गृहं प्रागात्पितुः स्वस्य भृगूद्वहः ।।६१

नागपाश—पाशुपत और सुदुर्लभ ब्रह्मास्त्र—नारायणास्त्र—आग्नेय—वायव्य—वारुण अस्त्र भी दिये थे ।५७। गान्धर्व-गारुड़ और परम अद्भुत जृम्भणा भी प्रदत्त कर दिया था। तथा गदा-शक्ति-शूल-उत्तम दण्ड उसको

दे दिया था ।५८। इस तरह सम्पूर्ण शस्त्रों और अस्त्रों के समूह को पाकर राम बहुत ही प्रसन्न हुआ था । फिर उस परशुराम ने परम शान्त शिव को—दुर्गा देवी को—स्वामी कार्त्तिकेय को और गणेश्वर की सेवा में प्रणिपात करके तथा इन सबकी परिक्रमा करके फिर वह राम परमोत्तम तीर्थ पुष्कर को वहाँ से चला गया था और वहाँ पर संस्थिति करते हुए भगवान् शिव के द्वारा बताये हुए उत्तम मन्त्र को और कवच को सिद्ध किया था ।५९-६०। फिर भृगु नन्दन ने बड़े ही आनन्द से सम्पूर्ण कुल और सेना के सहित राजा कार्त्तवीर्य का निहनन करके अपना पूर्ण कार्य साधित किया था। फिर वह राम अपने पिता के घर को विनिवृत्त होकर चला गया था ।६१।

—×—

।। मृगमृगी कथा ।।

सगर उवाच-

ब्रह्मपुत्र महाभाग महान्मेऽनुग्रहः कृतः ।
यदिदं कवचं मह्यं प्रकाशितमनामयम् ।।१
और्वेणानुगृहीतोऽहं कृतास्त्रो यदनुग्रहात् ।
भवतस्तु कृपापात्रं जातोऽहमधुना विभो ।।२
रामेण भार्गवेंद्रेण कार्त्तवीर्यो नृपो गुरो ।
यथा समापितो वीरस्तन्मे विस्तरतो वद ।।३
कृपापात्रं स दत्तस्य राजा रामः शिवस्य च ।
उभौ तौ समरे वीरौ जघटाते कथं गुरो ।।४

वसिष्ठ उवाच–

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि चरितं पापनाशनम् ।
कार्त्तवीर्यस्य भूपस्य रामस्य च महात्मनः ।।५
स रामः कवचं लब्ध्वा मंत्रं चैव गुरोर्मुखात् ।
चकार साधनं तस्य भक्त्या परमया युतः ।।६
भूमिशायी त्रिषवणं स्नानसंध्यापरायणः ।
उवास पुष्करे राम शतवर्षमतंद्रितः ।।७

राजा सगर ने कहा—हे ब्रह्माजी के पुत्र ! आप तो महान् भाग वाले हैं। मेरे ऊपर आपने बड़ा भारी अनुग्रह किया है कि यह कवच जो कि अनामय है, मेरे सामने आपने प्रकाशित कर दिया है।१। कृतास्त्र मैं और्व के द्वारा अनुग्रहीत हुआ हूँ। हे विभो ! इस समय में तो मैं आपकी कृपा का पात्र बन गया हूँ।२। हे गुरुदेव ! भार्गवेन्द्र परशुराम ने राजा कार्त्तवीर्य को जो बड़ा ही वीर था जिस प्रकार से समाप्त किया था वह सब विस्तार के साथ मेरे सामने वर्णन करके सुनाइए।३। वह राजा तो दत्तात्रेय मुनि की कृपा का पात्र था और राम भगवान शिव की अनुकम्पा का भाजन था। हे गुरुवर ! ये दोनों ही महान् वीर थे। समर क्षेत्र में किस प्रकार से इन्होंने युद्ध किया था।४। वसिष्ठ जी ने कहा—हे राजन् ! अब आप श्रवण कीजिए मैं इस चरित को बतलाऊँगा क्योंकि यह चरित तो पापों का विनाश कर देने वाला है। यह चरित महान् बलशाली राजा कार्त्तवीर्य का तथा महान् आत्मा वाले परशुराम के महायुद्ध का है।५। उन परशुराम ने गुरुदेव के मुख से इस कवच और मन्त्र की दीक्षा ग्रहण की थी फिर उन परशुराम ने बड़ी भारी भक्ति से युक्त होकर इनको सिद्ध किया था।६। भूमि पर इन्होंने शयन किया था—तीनों कालों में सन्ध्योपासना की थी और यह स्नान तथा सन्ध्या में परायण हो गये थे। इस प्रकार में यह सब साधना करते हुए राम बहुत ही समाहित होकर एक सौ वर्ष तक पुष्कर में रहे थे अर्थात् पुष्कर क्षेत्र में ही निवास किया था।७।

समित्पुष्पकुशादीनि द्रव्याण्यहरहर्भृगोः।
आनीय काननाद्भूप प्रायच्छदकृतव्रणः ॥८
सततं ध्यानसंयुक्तो रामो मतिमतां वरः।
आराधयामास विभुं कृष्णं कल्मषनाशनम् ॥९
तस्यैवं यजमानस्य रामस्य जगतीपते।
गतं वर्षशतं तत्र ध्यानयुक्तस्य नित्यदा ॥१०
एकदा तु महाराज रामः स्नातुं गतो महान्।
मध्यमं पुष्करं तत्र ददर्शाश्चर्यमुत्तमम् ॥११
मृग एकः समायातो भृष्या युक्तः पलायितः।
व्याधस्य मृगयां प्राप्तो घर्मतप्तोऽतिपीडितः ॥१२

पिपासितो महाभाग जलपानसमुत्सुकः ।
रामस्य पश्यतस्तत्र सरसस्तटमागतः ॥१३

पश्चान्मृगी समायाता भीता सा चकितेक्षणा ।
उभौ तौ पिबतस्तत्र जलं शंकितमानसौ ॥१४

हे भूप ! अकृतव्रण प्रतिदिन उस भृगुवंशज परशुराम के लिए वन से समिधा पुष्प और कुशा आदि द्रव्यों को लाकर दिया करता था ।८। मतिमानों में परम श्रेष्ठ परशुराम निरन्तर ध्यान में संलग्न होकर समस्त कल्मषों के विनाश करने वाले विभु श्रीकृष्ण की आराधना किया करता था ।९। हे जगतीपते ! इस रीति से यजन करते हुए और वहाँ पर नित्य ही ध्यान में से सक्त रहने वाले परशुराम को एक सौ वर्ष व्यतीत हो गये थे ।१०। हे महाराज ! एक बार वह महान राम स्नान करने के लिए मध्यम पुष्कर में गया था और वहाँ पर उसने उत्तम आश्चर्य का अवलोकन किया था ।११। एक मृग मृगी के साथ दौड़ा हुआ वहाँ पर आया था जो एक व्याध की मृगया को प्राप्त हो रहा था तथा श्राम से सन्तप्त होकर अत्यन्त पीड़ित था ।१२। हे महाभाग ! बहुत ही प्यासा था और जलपान करने के लिए बड़ा ही उत्सुक हो रहा था परशुराम उसको देख रहे थे कि वहाँ पर उस सरोवर के तट पर समागत हो गया था ।१३। इसके पीछे-पीछे मृगी भी वहाँ पर आ गयी थी जो बहुत ही डरी हुई थी और उसके नेत्र चकित हो रहे थे । वे दोनों ही बहुत शङ्कित मन वाले होते हुए वहाँ पर जलपान कर रहे हैं ।१४।

तावत्समागतो व्याधो बाणपाणिर्धनुर्द्धरः ।
स दृष्ट्वा तत्र संविष्टं रामं भार्गवनन्दनम् ॥१५

अकृतव्रणसंयुक्तं तस्थौ दूरकृतेक्षणः ।
स चिन्तयामास तदा शंकितो भृगुनन्दनात् ॥१६

अयं रामो महावीरो दुष्टानामंतकारकः ।
कथमेतस्य हन्येतौ पश्यतो मृगयामृगौ ॥१७

इति चिन्तासमाविष्टो व्याधो राजन्यसत्तम ।
तस्थौ तत्रैव रामस्य भयात्संत्रस्तमानसः ॥१८

रामस्तु तौ मृगौ दृष्ट्वा पिबंतौ सभयं जलम् ।
तर्कयामास मेधावी किमत्र भयकारणम् ॥१९
नैवात्र व्याघ्रसंनादो न च व्याधो हि दृश्यते ।
केनैतौ कारणेनाहो शंकितौ चकितेक्षणौ ॥२०
अथ वा मृगजातिर्हि निसर्गाच्चकितेक्षणा ।
येनैतौ जलपानेऽपि पश्यतश्चकितेक्षणौ ॥२१

उसी समय में धनुष धारण किये हुए हाथ में बाण ग्रहण कर वहाँ पर व्याध भी आ गया था । उस व्याध ने वहाँ पर विराजमान परशुराम को देखा था ।१५। उस राम ही समीप में अकृत व्रण भी बैठा हुआ था । वह व्याध दूर तक अपनी दृष्टि डाले हुए वहीं पर ठहर गया था और उस व्याध का मन भृगुनन्दन राम से उस समय में शंकित हो गया था और विचार किया था ।१६। यह परशुराम तो महान वीर हैं और दुष्टों का विनाश कर देने वाला है । अब मैं इसके देखते हुए इन दोनों शिकार वाले मृगी और मृग का हनन करूं ।१७। हे राजन्यों में परम श्रेष्ठ ! वह व्याध इस प्रकार से चिन्ता में डूबा हुआ परशुराम के भय से संत्रस्त मन वाला होकर वहीं पर स्थित हो गया था ।१८। परशुराम ने उन दोनों मृगों को देखा था कि बड़े ही भय के साथ वहाँ पर जल पी रहे थे । उस मेधावी राम ने मन में विचार किया था कि यहाँ पर इनके लिए भय होने का क्या कारण है ।१९। यहाँ पर किसी व्याघ्र की गर्जना की ध्वनि भी नहीं है और न यहाँ पर कोई व्याध ही दिखाई दे रहा है फिर किस कारण से ये दोनों मृग शंकित नेत्रों वाले तथा चकित दृष्टि से युक्त हो रहे हैं—यह बड़े आश्चर्य की बात है ।२०। अथवा यही कारण हो सकता है कि इन मृगों की जाति ही स्वाभाविक रूप से चकित नेत्रों वाली हुआ करती है । इस कारण से ही ये दोनों जलपान करने में भी चकित नेत्रों वाले होते हुए देख रहे हैं ।२१।

नैतावत्कारणं चात्र किं तु खेदभयातुरौ ।
लक्ष्येते खिन्नसर्वांगौ कम्पयुक्तौ यतस्त्विमौ ॥२२
एवं संचिंत्य मतिमान्स तस्थौ मध्यपुष्करे ।
शिष्येण संयुतो रामो यावत्तौ चापि संस्थितौ ॥२३

पीत्वा जलं ततस्तौ तु वृक्षच्छायासमाश्रितौ ।
रामं दृष्ट्वा महात्मानं कथां तौ चक्रतुर्मुदा ॥२४
मृग्युवाच—कांत चात्रैव तिष्ठावो यावद्रामोऽत्र संस्थितः ।
अस्य वीरस्य सान्निध्ये भयं नैवावयोर्भवेत् ॥२५
अत्राप्यागत्य चेद्व्याधो ह्यावयोः प्रहरिष्यति ।
दृष्टमात्रो हि मुनिना भस्मीभूतो भविष्यति ॥२६
इत्युक्तं वचने मृग्या रामदर्शनतुष्टया ।
मृगश्चोवाच हर्षेण समाविष्टः प्रियां स्वकाम् ॥२७
एवमेव महाभागे यदिदं वदसि भामिनि ।
जानेऽहमपि रामस्य प्रभावं सुमहात्मनः ॥२८

यहाँ पर इतना ही कारण नहीं है किन्तु ये दोनों तो बड़े खेद और भय से आतुर हो रहे हैं—ऐसे ही दिखलाई दे रहे हैं। क्योंकि इनके सभी अङ्ग खिन्नता से संकुल हैं और ये दोनों ही कम्प से प्रकम्पित हो रहे हैं।२२। इस तरह से चिन्तन करके मतिमान् वह परशुराम मध्य पुष्कर में संस्थित हो गया था और उसके साथ में शिष्य भी था। वह राम जब तक वहाँ खड़ा रहा था तब तक वे दोनों मृग भी वहाँ पर संस्थित रहे थे।२३। जल-पान करके वे दोनों मृग एक वृक्ष की छाया का आश्रय ग्रहण करके बैठ गये थे। उस महान् आत्मा वाले परशुराम का दर्शन करके उन दोनों ने बड़े ही आनन्द के साथ आपस में बातचीत की थी।२४। मृगी ने मृग से कहा—हे कान्त ! हम दोनों यहाँ पर स्थित रहेंगे जब तक यह परशुराम यहाँ पर संस्थित रहते हैं। इस वीर के समीप में हम दोनों को कोई भय नहीं होगा।२५। यदि यहाँ पर भी व्याध आकर हम दोनों पर प्रहार करेगा तो वह मुनि के द्वारा केवल देखने ही से वह भस्मीभूत हो जायगा।२६। परशुराम के दर्शन करने से परम सन्तुष्ट मृगी के द्वारा इस प्रकार से यह वचन कहने पर वह मृग भी बड़े ही हर्ष से समाविष्ट होकर अपनी प्रिया से बोला था।२७। हे महाभागे ! यह बात तो इसी प्रकार की है। हे भामिनि ! आप यह बात निश्चित ही कह रही है। मैं भी परम महान् आत्मा वाले राम के प्रभाव को अच्छी तरह से जानता हूँ।२८।

योऽयं संदृश्यते चास्य पार्श्वे शिष्योऽकृतव्रणः ।
स चानेन मताभागस्त्रातो व्याघ्रभयातुरः ॥२९
अयं रामो महाभागे जमदग्निसुतोऽनुजः ।
पितरं कार्त्तवीर्येण दृष्ट्वा चैव तिरस्कृतम् ॥३०
चकारातितरां क्रुद्धः प्रतिज्ञां नृपघातिनीम् ।
तत्पूर्तिकामो ह्यगद्ब्रह्मलोकं पुरा ह्ययम् ॥३१
स ब्रह्मा दिष्टवांश्चैनं शिवलोकं व्रजेति ह ।
तस्य त्वाज्ञां समादाय गतोऽसौ शिवसन्निधिम् ॥३२
प्रोवाचखिलवृत्तांतं राजश्चाप्यात्मनः पितुः ।
स कृपालुर्महादेवः सभाज्य भृगुनन्दनम् ॥३३
ददौ कृष्णस्य सन्मंत्रमभेद्यं कवचं तथा ।
स्वीयं पाशुपतं चास्त्रमन्यास्त्रग्राममेव च ॥३३
विसर्जयामास मुदा दत्त्वा शस्त्राणि चादरात् ।
सोऽयमत्रागतो भद्रे मंत्रसाधनतत्परः ॥३५

जो इस महापुरुष के समीप में अकृतव्रण नाम वाला एक शिष्य दिखाई दे रहा है उसको इसी महापुरुष ने ही व्याघ्र के भय से जब यह आतुर हो गया तो इसकी व्याघ्र से सुरक्षा की थी ।२६। हे महाभागे ! यह राम है जो जमदग्नि मुनि का पुत्र है । इसने ही अपने पिता को राजा कार्तवीर्य के द्वारा निराकृत किया हुआ देखा था और उस समय में इसने अत्यन्त क्रुद्ध होकर नृपों के विघात करने की प्रतिज्ञा की थी और उस प्रतिज्ञा की पूर्त्ति की कामना वाला यह पहिले ब्रह्म लोक में गया था ।३०-३१। वहाँ पर इसको यह निर्देश किया था कि यह शिवलोक में चला जावे । उन ब्रह्माजी की आज्ञा को प्राप्त करके फिर यह राम भगवान् शिव की सन्निधि में प्राप्त करके फिर यह राम भगवान् शिव की सन्निधि में प्राप्त हुआ ।३२। और वहाँ पर इसने भगवान् शम्भु के समक्ष राजा का, पिता का और अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त निवेदित किया था । वे महादेव बहुत ही कृपालु थे उन्होंने इस भृगुनन्दन का स्वागत किया था ।३३। फिर उन शङ्कर प्रभु ने श्रीकृष्ण का एक उत्तम मन्त्र और न भेदन करने के योग्य एक कवच इसको

प्रदान कर दिया था तथा अपना पाशुपत अस्त्र और अन्यान्य बहुत से अस्त्रों का समुदाय इसको प्रदान किये थे।३४। बड़े आदर के साथ प्रीति से इन सब शस्त्रास्त्रों को प्रदान करके भगवान् शिव ने वहाँ से विदा किया था। हे भद्रे ! वही राम इस समय में मन्त्रों की साधना में तत्पर होता हुआ यहाँ पर समागत हुआ है।३५।

नित्यं जपति धर्मात्मा कृष्णस्य कवचं सुधीः।
शतवर्षाणि चाप्यस्य गतानि सुमहात्मनः ॥३६
मंत्रं साधयतो भद्रे न च तत्सिद्धिरेति हि।
अत्रास्ति कारणं भक्तिः सा च वै त्रिविधा मता ॥३७
उत्तमा मध्यमा चैव कनिष्ठा तरलेक्षणे।
शिवस्य नारदस्यापि शुकस्य च महात्मनः ॥३८
अम्बरीषस्य राजर्षे रंतिदेवस्य मारुतेः।
बलेर्विभीषणास्यापि प्रह्लादस्य महात्मनः ॥३९
उत्तमा भक्तिरेवास्ति गोपीनामुद्धवस्य च।
वसिष्ठादिमुनीशानां मन्वादीनां शुभेक्षणे ॥४०
मध्या च भक्तिरेवास्ति प्राकृतान्यजनेषु सा।
मध्यभक्तिरयं रामो नित्यं यमपरायणः ॥४१
सेवते गोपिकाधीशं तेन सिद्धिं न चागतः।

वसिष्ठ उवाच–

इत्युक्ता त्वरितं कांतं सा मृगी हृष्टमानसा ॥४२
पुनः पप्रच्छ भक्तेस्तु लक्षणं प्रेमदायकम्।

मृग्युवाच–

साधु कांत महाभाग वचस्तेऽलौकिकं प्रिय।
ईदृग् ज्ञानं तव कथं संजातं तद्वदाधुना ॥४३

सुधी यह धर्मात्मा परशुराम नित्य ही भगवान् श्रीकृष्ण के कवच का यहाँ पर जप कर रहा है। इस महात्मा को जाप करते हुए एक सौ वर्ष तो व्यतीत हो गये हैं।३६। हे भद्रे ! यह मन्त्र की साधना तो कर रहा है किन्तु

इसको उसकी सिद्धि नहीं हो रही है। इस साधना में मुख्य कारण भक्ति ही होता है। वह भक्ति तीन प्रकार की होती है, ऐसा माना गया है ।३७। हे चञ्चल नेत्रों वाली प्रिये ! उस भक्ति के उत्तम-मध्यम और कनिष्ठ—ये तीन भेद हुआ करते हैं। अब यह बतलाता हूँ कि उत्तमा भक्ति किन-किन महापुरुषों में विद्यमान है—भगवान् शिव-देवर्षि नारद–महात्मा शुकदेव–राजर्षि अम्बरीष–राजा रन्तिदेव–पवनसुत हनुमान्-राजा बलि-दानव विभीषण और महात्मा प्रह्लाद-इन में परमोत्तमा भक्ति होती है ।३८-३९। व्रज की गोपियों में और उद्धव में भी उत्तम प्रकार की ही भक्ति विद्यमान है। हे शुभेक्षणे ! जो वसिष्ठ मुनिश हैं तथा मनु आदि हैं उनमें भी मध्यम श्रेणी की ही भक्ति होती है। इसके अतिरिक्त अन्य सभी जनों में कनिष्ठ श्रेणी की प्राकृत भक्ति हुआ करती है। यह जो परशुराम है इसमें मध्य श्रेणी वाली ही भक्ति है जो कि नित्य ही यम-नियमों में परायण हो रहा है ।४०-४१। यह राम गोपिकाओं के अधीश्वर भगवान् का सेवन तो कर रहा है किन्तु यह सिद्धि को अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। महामुनीन्द्र वसिष्ठ जी ने कहा—जब उस मृग के द्वारा अपनी प्रिया मृगी से कहा गया था तो उस मृगी ने परम प्रसन्न मन वाली होकर शीघ्र ही अपने स्वामी से प्रश्न किया था ।४२। उस मृगी ने फिर उस भक्ति का प्रेम प्रदान करने वाला लक्षण अपने स्वामी से पूछा था। मृगी ने कहा—हे कान्त ! आप तो महान् भाग वाले हैं। हे प्रिय ! आपके ये वचन तो बहुत ही अच्छे और अलौकिक हैं। अब आप कृपा करके मुझे यह बतलाइए कि इस प्रकार का विशद ज्ञान आपके हृदय में कैसे समुद्भूत हो गया है ।४३।

मृग उवाच—

श्रृणु प्रिये महाभागे ज्ञानं पुण्येन जायते ।।४४
तत्पुण्यमद्य संजातं भार्गवस्यास्य दर्शनात् ।
पुण्यात्मा भार्गवश्चायं कृष्णभक्तो जितेंद्रियः ।।४५
गुरुशुश्रूषको नित्यं नित्यनैमित्तिकादरः ।
अतोऽस्य दर्शनाज्जातं ज्ञानं मेऽद्यैव भामिनि ।।४६
त्रैलोक्यस्थितसत्त्वानां शुभाशुभनिदर्शकम् ।
अद्यैव विदितं मेऽभूद्रामस्यास्य महात्मनः ।।४७

चरितं पुण्यदं चैव पापघ्नं श्रृण्वतामिदम् ।
यद्यत्करिष्यते चैव तदपि ज्ञानगोचरम् ॥४८
योत्तमा भक्तिराख्याता तां विना नैव सिद्धयति ।
कवचं मंत्रसहितं ह्यपि वर्षायुतायुतैः ॥४९

अपनी परम प्रिया के द्वारा इस रीति से पूछे जाने पर उस मृग ने कहा था—हे महान् भाग वाली प्रिये ! अब आप श्रवण कीजिए कि यह ज्ञान जो होता है वह परम उत्कृष्ट पुण्य से ही हुआ करता है ।४४। वह उस प्रकार का पुण्य आज इन्हीं महापुरुष भार्गव परशुराम के दर्शन प्राप्त करने ही से समुत्पन्न हो गया है । यह भार्गव महान् पुण्यात्मा हैं और यह भगवान् श्रीकृष्ण के परम भक्त तथा अपनी इन्द्रियों को जीत लेने वाले हैं ।४५। हे भामिनि ! यह राम अपने गुरु की शुश्रूषा करने वाले हैं और प्रतिदिन नित्य कर्मों तथा नैमित्तिक कर्मों में बड़ा आदर करने वाले हैं। इसलिए आज ही इस महापुरुष के दर्शन से मेरे हृदय में यह अद्भुत ज्ञान समुत्पन्न हो गया है ।४६। यह मेरा ज्ञान ऐसा है जो इस त्रिभुवन में संस्थित जीव हैं उन सबके शुभ और अशुभ कर्मों को बता देने वाला है और आज ही मुझे महात्मा इस परशुराम का भी पूर्ण चरित विदित हो गया है ।४७। इसका चरित बहुत ही पुण्य का देने वाला है और समस्त पापों का विनाशक है । अब तुम इसका श्रवण करो । यह राम भविष्य में जो-जो भी कर्म करेंगे वह भी सब मेरे ज्ञान का गोचर हो रहा है अर्थात् मुझे सब ज्ञात हो गया है ।४८। मैंने जो आपके सामने उत्तम प्रकार की भक्ति का वर्णन किया था उस तरह भी भक्ति के बिना इस परशुराम को यह मन्त्र और कवच दश सहस्र वर्षों में भी कभी सिद्ध नहीं होगा ।४९।

यद्ययं भार्गवो भद्रे ह्यगस्त्यानुग्रहं लभेत् ।
कृष्णप्रेमामृतं नाम स्तोत्रमुत्तमभक्तिदम् ॥५०
ज्ञात्वा च लप्स्यते सिद्धिं मंत्रस्य कवचस्य च ।
स मुनिर्ज्ञाततत्त्वार्थः सानुकंपोऽभयप्रदः ॥५१
उपदेक्ष्यति चैवैनं तत्त्वज्ञानं मुदावहम् ।
श्रीकृष्णचरितं सर्वं नामभिर्ग्रंथितं यतः ॥५२
कृष्णप्रेमामृतस्तोत्राज्ज्ञास्यतेऽस्य महामतिः ।

ततः संसिद्धकवचो राजानं हैहयाधिपम् ॥५३

हत्वा सपुत्रामात्यं च ससुहृद्बलवाहनम् ।

त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यत्यवनीं प्रिये ॥५४

वसिष्ठ उवाच–

एवमुक्त्वा मृगो राजन्विरराम मृगीं ततः ।

आत्मनो मृगभावस्य कारणं ज्ञातवांश्च ह ॥५५

यदि यह भार्गव परशुराम हे भद्रे ! अगस्त्य मुनि की कृपा को प्राप्त कर लेवे तो इसको सिद्धि हो सकती है । अगस्त्य मुनि उत्तम भक्ति के देने वाले कृष्ण प्रेमामृत नाम का स्तोत्र जानते हैं ।५०। उन महामुनि की कृपा से यदि उस स्तोत्र का ज्ञान प्राप्त कर लेवे तो उसको जानकर यह मन्त्र की और कवच की सिद्धि को प्राप्त कर लेगा । वह अगस्त्य मुनि तो तत्त्वों के अर्थ को जाने हुए हैं और वे बहुत ही दयालु तथा अभय के प्रदान करने वाले हैं ।५१। वे मुनि उस आनन्द-प्रद तत्त्व ज्ञान का इस राम के लिये उपदेश कर देंगे क्योंकि भगवान् श्रीकृष्ण का सम्पूर्ण चरित उनके सुनामों से ही ग्रथित है ।५२। श्रीकृष्ण मृत स्तोत्र से इस राम की महामति ज्ञान प्राप्त कर लेगी । फिर इसको इस कवच की संसिद्धि हो जायगी और कवच की सिद्धि वाला यह राम हैहयों के अधिप राजा का हनन पुत्र-पौत्र, मन्त्रीगण, मित्र-वर्ग-सेना और समस्त वाहनों के सहित करके हे प्रिये ! फिर वह परशुराम इस मेदिनी को निश्चित रूप से इक्कीस बार क्षत्रिय राजाओं से रहित कर देगा—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । श्री वसिष्ठजी ने कहा—इतना यह सब अपनी प्रिया मृगी से कहकर हे राजन् ! फिर वह मृग शान्त हो गया था और उसने मृग होने के भाग के कारण को भी उस समय में जान लिया था ।५३-५४-५५।

—×—

॥ परशुराम का अगस्त्याश्रम में आगमन ॥

सगर उवाच–

मुने परमतत्त्वज्ञ ध्यानज्ञानार्थकोविद ।

भगवद्भक्तिसंलीनमानसानुग्रहः कृतः ॥१

त्वयापि हि महाभाग यतः शंससि सत्कथाः ।

श्रुत्वा मृगमुखात्सर्वं भार्गवस्य विचेष्टितम् ॥२
भूत भवद्भविष्यं च नारायणकथान्वितम् ।
पुनः प्रपच्छ किं नाथ तन्मे वद सविस्तरम् ॥३
वसिष्ठ उवाच–
श्रृणु राजन्प्रवक्ष्यामि मृगस्य चरितं महत् ।
यथा पृष्टं तया सोऽस्यै वर्णयामास तत्त्ववित् ॥४
श्रुत्वा तु चरितं तस्य भार्गवस्य महात्मनः ।
भूयः पप्रच्छ तं कांतं ज्ञानतत्त्वार्थमादरात् ॥५
मृग्युवाच–
साधु साधु महाभाग कृतार्थस्त्वं न संशयः ।
यदस्य दर्शनात्तेऽद्य जातं ज्ञानमतींद्रियम् ॥६
अथातश्चात्मनः सर्वं ममापि वद कारणम् ।
कर्मणा येन संप्राप्तावावां तिर्यग्जनि प्रभो ॥७

राजा नगर ने कहा—हे मुनिवर ! आप तो परम तत्त्वों के ज्ञाता हैं और आप तत्त्वों के ध्यान तथा ज्ञान के अर्थों के महान् मनीषी हैं। आप तो भगवान् की भक्ति से संलीन मन वाले हैं और उसी मन से आपने अनुग्रह किया है। हे महाभाग ! आप तो बहुत ही अच्छी कथाओं का कथन कर रहे हैं। उस मृगी ने अपने स्वामी मृग के मुख से भार्गव परशुराम का सम्पूर्ण विचेष्टित श्रवण करके तथा भूत-वर्त्तमान और भविष्य में होने वाले रामायण की कथा से समन्वित वृत का श्रवण करके हे नाथ ! उसने पुनः क्या पूछा था—यह पूर्ण विस्तार के सहित हमारे सामने वर्णन करने की कृपा कीजिए ।१-३। वसिष्ठजी ने कहा—हे राजन् ! मैं आपके आगे उस मृग का जो महान चरित है उसे भली भाँति बतलाऊँगा। आप उसका श्रवण कीजिए। जिस प्रकार से जो भी उस मृगी ने उस मृग से पूछा था उस सबको तत्त्वों के ज्ञाता उसने उस मृगी के समक्ष में वर्णन कर दिया था ।४। उस महान आत्मा वाले भार्गव का चरित्र श्रवण करके उस मृगी ने फिर बड़े ही आदर से अपने स्वामी से ज्ञान के तत्त्व का अर्थ पूछा था ।५। मृगी ने कहा—हे महाभाग ! बहुत ही अच्छा और परम सुन्दर है। आप तो

कृतार्थ हैं--इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है कि आज इन परशुराम के दर्शन करने से आपको ऐसा ज्ञान उत्पन्न हो गया है जो इन्द्रियों की पहुँच से भी दूर है।६। इसीलिए इसके पश्चात् अपनी आत्मा का सम्पूर्ण कारण मुझे भी कृपा करके बतलाइए। हे प्रभो! ऐसा वह क्या कर्म हमने किया था जिसके कारण से हम दोनों ने यह पशु की तिर्यग् योनि प्राप्त की है।७।

इति वाक्यं समाकार्ण्य प्रियायाः स मृगः स्वयम्।
वर्णयामास चरितं मृग्याश्चैवात्मनस्तदा ॥८
मृग उवाच–
शृणु प्रिये महाभागे यथाऽऽवां मृगतां गतौ।
संसारेऽस्मिन्महाभागे भावोऽस्य भवकारणम् ॥९
जीवस्य सदसद्भ्यां हि कर्मभ्यामागतः स्मृतिम्।
पुरा द्रविडदेशे तु नानाऋद्धिसमाकुले ॥१०
ब्राह्मणानां कुले चाऽहं जातः कौशिकगोत्रिणाम्।
पिता मे शिवदत्तोऽभून्नाम्ना शास्त्रविशारदः ॥११
तस्य पुत्रा वयं जाताश्चत्वारो द्विजसत्तमाः।
ज्येष्ठो रामोऽनुजस्तस्य धर्मस्तस्यानुजः पृथुः ॥१२
चतुर्थोऽहं प्रिये जातो सूरिरित्यभिविश्रुतः।
उपनीय क्रमात्सर्वांश्शिवदत्तो महायशाः ॥१३
वेदान ध्यापयामास सांगांश्च सरहस्यकान्।
चत्वारोऽपि वयं तत्र वेदाध्ययनतत्पराः ॥१४

उस मृग ने इस अपनी प्रिया के वाक्य का श्रवण करके स्वयं ही उस समय में अपना और अपनी प्रिया मृगी का चरित वर्णन किया था।८। मृग ने कहा—हे महाभाग वाली प्रिये! अब आप सुनिए कि जिस प्रकार से हम तुम दोनों उस मृग की जाति में देह धारण करने वाले हुए हैं। हे महाभागे! इस संसार में इस भव अर्थात् जन्म के ग्रहण करने का कारण एक मात्र भाव ही हुआ करता है। तात्पर्य यह है कि जैसी भावना जिसकी होगी वह वैसा ही उसके अनुरूप जन्म धारण किया करता है।९। जो भी जीव के सद् और असद् कर्म होते हैं उनसे ही यह स्मृति को प्राप्त होता है।

बहुत पहिले अनेक प्रकार की ऋद्धियों से पूर्ण द्रविड़ देश में कौशिक गोत्र वाले ब्राह्मणों के कुल में मैंने जन्म ग्रहण किया था। मेरे पिता नाम से शिवदत्त हुए थे जो कि शास्त्रों के अच्छे विद्वान् थे।१०-११। उन शिवदत्त नाम-धारी विप्र के परम श्रेष्ठ द्विज हम चार पुत्र समुत्पन्न हुए थे। सबमें बड़ा राम था, उससे छोटा भाई धर्म था और उससे भी छोटा भाई पृथु नाम वाला हुआ था।१२। हे प्रिये ! चौथा भाई मैं उत्पन्न हुआ था जो सुरि—इस नाम से प्रसिद्ध था। महा यशस्वी उस शिवदत्त ने क्रम से सबका उपनयन संस्कार करा दिया था।१३। और फिर उसने हम सबको रहस्य के सहित तथा समस्त वेद के अङ्ग शास्त्रों के साथ वेदों का अध्यापन किया था अर्थात् साङ्ग सम्पूर्ण वेदों को पढ़ाया था।१४।

गुरुशुश्रूषणे युक्ता जाता ज्ञानपरायणाः ।
गत्वाऽरण्यं फलान्यंबुसमित्कुशमृदोऽन्वहम् ॥१५
आनीय पित्रे दत्त्वाथ कुर्मोऽध्ययनमेव हि ।
एकदा तु वयं सर्वे संप्राप्ता पर्वते वने ॥१६
औद्भिदं नाम लोलाक्षि कृतमालातटे स्थितम् ।
सर्वे स्नात्वा महानद्यामुषसि प्रीतमानसाः ॥१७
दत्तार्घाः कृतजप्याश्च समारूढा नगोत्तमम् ।
शालैस्तमालैः प्रियकैः पनसैः कोविदारकैः ॥१८
सरलार्जुनपूगैश्च खर्जूरैर्नारिकेलकैः ।
जंबूभिः सहकारैश्च कटुफलैर्बृहतीद्रुमैः ॥१९
अन्यैर्नानाविधैर्वृक्षैः परार्थप्रतिपादकैः ।
स्निग्धच्छायैः समाहृष्टनानापक्षिनिनादितैः ॥२०
शार्दूलहरिभिर्भल्लैर्गण्डकैर्मृगनाभिभिः ।
गजेंद्रैः शरभाद्यैश्च सेवितं कन्दरागतैः ॥२१

हम सभी भाई गुरु की शुश्रूषा में निरत रहा करते थे और बहुत ही ज्ञान में परायण हो गये थे। प्रतिदिन वन में जाकर फल—जल—समिधा—कुशा और मृतिका लाया करते थे।१५। ये सब वस्तुएं वन से लाकर अपने पिता को दिया करते थे और फिर इसके अनन्तर अपना अध्ययन ही किया

करते थे। एक बार ऐसा हुआ था कि हम सब वन में पर्वत पर पहुँच गये ।१६। हे चञ्चल नेत्रों वाली ! कृतमाला नदी के तट पर औदुभि नाम वाला वहाँ स्थित था। हम सबने प्रातःकाल की बेला में उसी नदी में स्नान किया था और बहुत ही प्रसन्न मन वाले हो गये थे ।१७। हम सबने सूर्य देव को अर्घ्य दिया था और जाप करके हम सब उस उत्तम पर्वत पर सकारूढ़ हो गये थे। अब वहाँ की वृणावली की प्राकृतिक छटा का वर्णन किया जाता है—वह स्थल ऐसा अत्यधिक रमणीय था कि वहाँ पर शाल-तमाल-प्रियक-पनस-कोविदार–सरल-अर्जुन-पूग-खजूर–नारिकेल-जम्बू-सहकार-कटु फल और बृहती के वृक्ष लगे थे ।१८-१९। इनके अतिरिक्त अन्य भी वहाँ पर अनेक प्रकार के तरुवर थे जो दूसरों के अर्थ का प्रतिपादन करने वाले थे। अर्थात् पुष्प-फलादि से द्वारा दूसरे जीवों का उपकार करने वाले थे। उन वृक्षों की छाया बहुत ही घनी थी और उन पर दूर-दूर से पक्षी गण उन पर समावृष्ट होकर अपना कलख कर रहे थे ।२०। उस पर्वतीय महारण्य में विविध प्रकार के वन्य हिंस्र जीव भी भ्रमण कर रहे थे। शार्दूल-भल्ल-हरि-गण्डक-मृगनाभि-गजेन्द्र और शरभ आदि बहुत हिंसक अपनी-अपनी कन्दरा में निवास करते हुए उसका सेवन कर रहे थे ।२१।

मल्लिकापाटलाकुन्दकर्णिकारकदंबकैः ।
सुगंधिभिर्वृतं चान्यैर्वातोद्धूतपरागिभिः ॥२२

नानाणिगणाकीर्णैर्नीलपीतसितारुणैः ।
शृंगैः समुल्लिखंतं च व्योम कौतुकसंयुतम् ॥२३

अत्युच्चपातध्वनिभिर्निर्झरैः कंदरोद्गतैः ।
गर्जंतमिव संसक्तं व्यालाद्यैर्मृगपक्षिभिः ॥२४

तत्रातिकौतुकाद्दृष्टस्थयो भ्रातरो वयम् ।
नास्माध्र्म चात्मनाऽस्मानं वियुक्ताश्च परस्परम् ॥२५

एतस्मिन्नंतरे चैका मृगी ह्यागात्पिपासिता ।
निर्झरापात शिरसि पातुकामा जलं प्रिये ॥२६

तस्याः पिबंत्यास्तु जलं शार्दूलोऽतिभयंकरः ।
तत्र प्राप्तो यदृच्छातो जगृहे तां भयार्दिताम् ॥२७

अहं तद्ग्रहणं पश्यन्भयेन प्रपलायितः ।
अत्युच्चवस्त्वात्पतितो मृतश्चैणीमनुस्मरन् ॥२८

वहाँ वन में अनेक सुन्दर एवं सुरभित सुमनों वाले द्रुम और लताएँ भी समुत्पन्न हुए थे जिनमें कदम्ब-मल्लिका-पाटल-कुन्द-कर्णिकार आदि थे। इनके अतिरिक्त अन्य भी ऐसे वृक्ष थे जिनके पराग वायु से उड़ रहा था और वह वन सुगन्धित उन गुल्मलता और द्रुमों से समाकीर्ण था ।२२। उस पर्वत में अनेक नील-सित-पीत अरुण वर्ण वाली मणियाँ थीं। उसकी शिखरें इतनी अधिक उच्च थीं कि वे मानों व्योम में पहुँच कुछ उल्लेख कर रही हों। इस तरह से वह पर्वत बहुत से कौतुकों से समन्वित था ।२३। वहाँ बहुत ही ऊँचाई से गिरने के कारण घोर गम्भीर ध्वनि वाले अनेक झरने थे। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो कन्दराओं में स्थित व्यालादि मृगों और पक्षियों की गर्जना से वह संसक्त है ।२४। वहाँ पर अत्यधिक कौतुकों से युक्त वह स्थल था। मैंने अपनी आत्मा से अपने आपको स्मरण नहीं किया था अर्थात् मैं अपने आपको भूल गया था तथा हम सब परस्पर में एक दूसरे से विमुक्त हो गये थे क्योंकि हम सब भाई वहाँ अत्यधिक कौतुकों से हृष्ट दृष्टि वाले हो गये थे ।२५। इसी बीच में वहाँ पर एक मृगी बहुत ही प्यासी आ गयी थी। हे प्रिये ! वह मृगी जहाँ पर एक झरना गिर रहा था उसके ही शिर में वह जलपान करने की इच्छा वाली थी ।२६। वह बिचारी जब जल पी रही थी तो वहाँ पर एक महान भयङ्कर शार्दूल आ पहुँचा था जो अपनी ही इच्छा से घूमता हुआ आ निकला था और उसने भय से पीड़ित उस हिरनी को पकड़ लिया था ।२७। मैंने जब यह देखा कि शार्दूल ने उसका ग्रहण कर लिया है तो मुझे भी बड़ा भय उत्पन्न हो गया था और मैं वहाँ से भाग दिया था। उस तरह से भयभीत होकर जब मैं बेतहाशा भागा था तो एक बहुत ही उच्च स्थल से नीचे गिर गया था और उस शार्दूल के द्वारा पकड़ी हुई हिरणी का अनुस्मरण करते हुए गिरते-गिरते मृत हो गया था ।२८।

सा मृता त्वं मृगी जाता मृगस्त्वाहमनुस्मरन् ।
जातो भद्रे न जाने वै क्व गता भ्रातरोऽग्रजाः ॥२९
एतन्मे स्मृतिमापन्नं चरितं तव चात्मनः ।
भूतं भविष्यं च तथा शृणु भद्रे वदाम्यहम् ॥३०

योऽयं वा पृष्ठसंलग्नो व्याधो दूरस्थितोऽभवत् ।
रामस्यास्य भयात्सोऽपि भक्षितो हरिणाधुना ॥३१
प्राणांस्त्यक्त्वा विधानेन स्वर्गलोकं गमिष्यति ।
आवाभ्यां तु जलं पीतं मध्यमे पुष्करे त्विह ॥३२
संदृष्टो भार्गवश्चायं साक्षाद्विष्णुस्वरूपधृक् ।
तेनानेकभवोत्पन्नं पातकं नाशमागतम् ॥३३
अगस्त्यदर्शनं लब्ध्वा श्रुत्वा स्तोत्रं गतिप्रदम् ।
गमिष्याव: शुभांल्लोकान्येषु गत्वा न शोचति ॥३४
इत्येवमुक्त्वा स मृग: प्रियायै प्रियदर्शन: ।
विरराम प्रसन्नात्मा पश्यन्नाममनातुर: ॥३५

वह जो हिरणी शार्दूल के द्वारा पकड़ी जाने पर मर गयी थी वही तू अब पुन: इस जन्म में मृगी हुई है । और मैं द्विज मुत जो मरती हुई तेरा अनुस्मरण करते प्राणों का गिरकर परित्याग करने वाला था वही अब मृग होकर जन्म लेने वाला हूँ । यह मृत्यु के समय में भावना का ही कारण है कि हम तुम दोनों इस तिर्यग् योनि से समुत्पन्न हुए हैं । मैं यह नहीं जानता हूँ कि मेरे अन्य तीन भाई जो मुझसे बड़े थे कहाँ पर गये हैं ।२९। यह मेरा अपना और तुम्हारा चरित मेरी स्मृति में विद्यमान है । हे भद्रे ! जो व्यतीत हो गया है और जो आगे होने वाला है उसको मैं बतलाता हूँ । तुम उसका श्रवण करो ।३०। जो यह व्याध पीछे की ओर लगा हुआ दूर में खड़ा था और यम का उसको भय हो रहा था । उसका भी इस समय में एक सिंह ने भक्षण कर लिया है ।३१। उसका ऐसा ही विधान है उससे वह अपने प्राणों का त्याग करके स्वर्गलोक में चला जायगा और यहाँ पर मध्यम पुष्कर में हम तुम दोनों ने जल पिया है ।३२। यहाँ पर इन भार्गव परशुराम का भली भाँति दर्शन किया गया है । इससे अनेक जन्मों में किये हुए भी पातक नाश को प्राप्त हो गये हैं क्योंकि वह भार्गव साक्षात् भगवान् विष्णु के ही स्वरूप को धारण करने वाले हैं ।३३। अब महामुनीन्द्र अगस्त्य के दर्शन प्राप्त करके तथा सद्गति प्रदायक स्तोत्र का श्रवण करके हम तुम दोनों ही परम शुभ लोकों में गमन करेंगे जिनमें गमन करके प्राणी को किसी भी प्रकार की चिन्ता नहीं रहा करती है अर्थात् कोई पीड़ा होती ही नहीं है

।३४। इस तरह से यह इतना अपनी प्रिया से कहकर वह प्रिय दर्शन मृग चुप हो गया था और अनातुर होकर राम का दर्शन करते हुए वह बहुत ही प्रसन्न आत्मा वाला हो गया था ।३५।

भार्गवः श्रुतवांश्चैव मृगोक्तं शिष्यसंयुतः ।
विस्मितोऽभूच्च राजेन्द्र गन्तुं कृतमतिस्तथा ॥३६
अकृतव्रणसंयुक्तो ह्यगस्त्यस्याश्रमं प्रति ।
स्नात्वा नित्यक्रियां कृत्वा प्रतस्थे हर्षितो भृशम् ॥३७
रामेण गच्छता मार्गे दृष्टो व्याघ्रो मृतस्तथा ।
सिंहस्य संप्रहारेण विस्मितेन महात्मना ॥३८
अध्यर्द्धं योजनं गत्वा कनिष्ठं पुष्करं प्रति ।
स्नात्वा माध्याह्निकीं सन्ध्यां चकारातिमुदान्वितः ॥३९
हितं तदात्मनः प्रोक्तं मृगेण स विचारयन् ।
तावत्तत्पृष्ठसंलग्नं मृगयुग्ममुपागतम् ॥४०
पुष्करे तु जलं पीत्वाभिषिच्यात्मतनुं जलैः ।
पश्यतो भार्गवस्यागादगस्त्याश्रमसंमुखम् ॥४१
रामोऽपि सन्ध्यां निर्वर्त्य कुम्भजस्याश्रमं ययौ ।
विपद्गतं पुष्करं तु पश्यमानो महामनाः ॥४२

भार्गव परशुराम ने अपने शिष्य के सहित इस तरह से उस मृग के द्वारा कही हुई बातों को सुना था और इसको सुनकर उसको बड़ा भारी विस्मय हो गया था । हे राजेन्द्र ! फिर उस परशुराम ने उसी भाँति से गमन करने के लिये अपनी बुद्धि बना ली थी ।३६। उस भार्गव ने सर्वप्रथम स्नान किया था और फिर अपनी जो नित्य क्रिया थी उसको समाप्त किया था । इसके पश्चात् मन में अत्यधिक हर्षित होकर अकृत व्रण नामधारी के साथ संयुत होकर अगस्त्य मुनि के आश्रम की ओर उसने प्रस्थान कर दिया था ।३७। जिस समय में राम गमन कर रहे थे तब मार्ग में मरे हुए व्याघ्र को देखा था जो कि सिंह के द्वारा किये हुए सम्प्रहार से ही मर गया था । उसको देखकर उस महान् आत्मा वाले को बड़ा विस्मय हो गया था ।३८। फिर आगे आधे योजन तक चलकर कनिष्ठ पुष्कर था । वहाँ पहुँचकर राम

ने स्नान किया था और परम हर्ष से संयुत होकर वहाँ पर मध्याह्न काल में होने वाली सन्ध्या की उपासना की थी ।३९। उस समय में वह यही विचार कर रहा था उस मृग ने मेरा अपना हित कहा था। तब तक वह यह देखता है कि पीछे लगा उस मृग और मृगी का जोड़ा वहाँ पर उपागत हो गया था ।४०। उस मृग और मृगी के जोड़े ने पुष्कर में जल का पान किया था और उसके जल मे अपने शरीरों का अभिषिञ्चन किया था। भार्गव परशुराम यह देख ही रहे थे कि उनके देखते-देखते वह मृग-मृगी का जोड़ा अगस्त्य मुनि आश्रम के सम्मुख चला गया था ।४१। राम ने भी अपनी सन्ध्योपासना को पूर्ण करके नैत्यिक कर्म से निवृत्ति की थी और वह भी अगस्त्य मुनि के आश्रम को चला गया था। यह परमोदार मन वाला विपद्गत पुष्कर का दर्शन करते ही चला जा रहा था ।४२।

विष्णोः पदानि नागानां कुण्डं सप्तर्षिसंस्थितम् ।
गत्वोपस्पृश्य शुच्यंभो जगामागस्त्यसंश्रयम् ।।४३
यच्च ब्रह्मसुता राजन्सममाता सरस्वती ।
श्रीन्संपूरयितुं कुण्डानाग्निहोत्रस्य वै विधेः ।।४४
तत्र तीरे शुभं पुण्यं नानामुनिनिषेवितम् ।
ददर्श महदाश्चर्यं भार्गवः कुम्भजाश्रमम् ।।४५
मृगैः सिंहैः सहगतैः सेवितं शांतमानसैः ।
कुटरैरर्जुनैः पारिभद्रश्चवेगुदैः ।।४६
खदिरासनखर्जूरैः संकुलं बदरीद्रुमैः ।
तत्र प्रविश्य वै रामो ह्यकृतव्रणसंयुतः ।।४७
ददर्श मुनिमासीनं कुम्भजं शांतमानसम् ।
स्तिमितोदसरः प्रख्यं ध्यायन्तं ब्रह्म शाश्वतम् ।।४८
कौश्यां वृष्यां मार्गकृतिं वसानं पल्लवोटजे ।
ननाम च महाराज स्वाभिधानं समुच्चरन् ।।४९

भगवान् विष्णु के पदों को-नागों के कुण्ड को जहाँ पर सप्तर्षिगण संस्थित थे जाकर, उस परम शुचि जल का उपस्पर्शन करके फिर वह अगस्त्य मुनि के संश्रय स्थल को चला गया था ।४३। हे राजन् ! वहाँ पर

ब्रह्माजी की पुत्री सरस्वती विधि के अग्निहोत्र के तीनों कुण्डों को पूरित करने के लिए समायात हुई थी ।४४। वहाँ पर उसी सरस्वती के तटपर परम पुनीत और शुभ तथा महाश्चर्य से युक्त कुम्भज ऋषि के आश्रम को भार्गव ने देखा था जो अनेक मुनिगणों के द्वारा निषेवित था ।४५। वह आश्रम परम शान्त था और उसमें मृग और सिंह अपना स्वाभाविक वैर त्याग कर परम शान्त मन वाले एक ही साथ रहा करते थे। ऐसे सभी पशुओं का वहाँ पर निवास था। उस आश्रम में अनेक प्रकार के परम सुन्दर तरुवर लगे हुए थे जिनमें कुटर-अर्जुन-बिम्ब-पारिभद्र-धव-इङ्गुद-खदिरासन-खर्जूर और बदरी आदि के अकृत व्रण से संयुत होकर प्रवेश किया था ।४५-४६-४७। प्रवेश करके राम ने विराजमान और परमशान्त मन वाले मुनिवर अगस्त्यजी का दर्शन प्राप्त किया था जो सर्वथा एकदम रुके हुए शान्त जल से भरे हुए सरोवर के ही समान थे तथा शाश्वत ब्रह्म का ध्यान कर रहे थे ।४८। वहाँ पर लताओं और द्रुमों के पत्तों से एक उटज (झोंपड़ी) बनी हुई थी उस उटज में अगस्त्य मुनि कौश्य—वृष्य तथा मृग चर्म को परिधान किये हुए विराजमान थे। हे महाराज ! वहाँ पर भार्गव राम ने अपने नाम का उच्चारण करते हुए अगस्त्य मुनि के चरणों में प्रणिपात किया था ।४९।

रामोऽस्मि जामदग्न्योऽहं भवतं द्रष्टुमागतः ।
तद्विद्धि प्रणिपातेन नमस्ते लोकभावन ॥५०
इत्युक्तवन्तं रामं तु उन्मील्य नयने शनैः ।
दृष्ट्वा स्वागतमुच्चार्य तस्मायासनमादिशत् ॥५१
मधुपर्कं समानीय शिष्येण मुनिपुंगवः ।
ददौ पप्रच्छ कुशलं तपसश्च कुलस्य च ॥५२
स पृष्टस्तेन वै रामो घटोद्भवमुवाच ह ।
भवत्संदर्शनादीश कुशलं मम सर्वतः ॥५३
किं त्वेकं संशयं जातं छिंधि स्ववचनामृतैः ।
मृगश्चैको मया दृष्टो मध्यमे पुष्करे विभो ॥५४
तेनोक्तखिलं वृत्तं मम भूतमनागतम् ।
तच्छ्रुत्वा विस्मयाविष्टो भवच्छरणमागतः ॥५५

पाहि मां कृपया नाथ साधयंतं महामनुम् ।
शिवेन दत्तं कवचं मम साधयतो गुरो ॥५६

राम ने अगस्त्य मुनि के चरणों की सन्निधि में समुपस्थित होकर उनसे निवेदन किया था कि मैं जमदग्नि का आत्मज राम हूँ और यहाँ पर आपके दर्शन करने के लिए समागत हुआ हूँ। हे लोकों पर कृपा करने वाले मुनिवर ! मैं आपकी सेवा में प्रणिपात कर रहा हूँ उसे आप स्वीकार कीजिए ।५०। जब राम ने इस रीति से प्रार्थना की थी तो ऐसे कहने वाले राम को उन्होंने धीरे से ध्यानावस्था में मुँदे हुए नेत्रों को खोलकर देखा था और फिर आपका स्वागत है-- ऐसा उच्चारण करके उनको आसन पर उपविष्ट हो जाने की आज्ञा प्रदान की थी ।५१। उन मुनियों में परम श्रेष्ठ अगस्त्य जी ने शिष्य के द्वारा मधुपर्क मँगाकर राम को प्रदान किया था। फिर तपश्चर्या और कुल की क्षेम-कुशल उससे पूछी थी ।५२। उन मुनिवर के द्वारा जब राम से इस रीति से पूछा गया था तो उस समय में राम ने अगस्त्य मुनि से कहा था। हे ईश ! अब आपके चरणों के दर्शन से मेरा सभी प्रकार का क्षेम-कुशल है ।५३। हे विभो ! मुझे एक संशय हो गया है। उसका छेदन आप कृपा कर अपने अमृत रूपी वचनों के द्वारा कर दीजिए। मैंने एक मृग को मध्यम पुष्कर में देखा था ।५३। उस मृग ने मेरा अतीत और अनागत सम्पूर्ण वृत्त बतला दिया था। इसका श्रवण करके मैं अधिक विस्मय से आविष्ट हो गया हूँ और अब आपके चरण कमलों की शरण में समागत हुआ हूँ ।५५। अपनी स्वाभाविक अनुकम्पा से मेरा परित्राण कीजिए। और हे नाथ ! महामन्त्र की सिद्धि कराइये। हे गुरो ! भगवान् शिव ने जो कवच मुझे प्रदान किया है उसको सिद्ध कराइये। इसमें आपकी परमानुकम्पा मेरे दास के ऊपर होगी ।५६।

कृष्णस्य समतीतं तु साधिकं हि शरच्छतम् ।
न च सिद्धिमवाप्तोऽहं तन्मे त्वं कृपया वद ॥५७

वसिष्ठ उवाच—

एवं प्रश्नं समाकर्ण्य रामस्य सुमहात्मनः ।
क्षणं ध्यात्वा महाराज मृगोक्तं ज्ञातवान् हृदा ॥५८
मृगं चापि समायात मृग्या सह निजाश्रमे ।

श्रोतुं कृष्णामृतं स्तोत्रं सर्वं तत्कारणं मुनिः ।
विचार्याश्वासयामास भार्गवः स्ववचोमृतैः ।।५९

इस श्रीकृष्ण के मन्त्र की साधना करते हुए मुझे एक सौ वर्ष से भी अधिक काल व्यतीत हो गया है तो भी मुझे इसकी सिद्धि प्राप्त नहीं हुई है। इसका क्या कारण है। यह आप मुझे अपनी परमाधिक कृपा करके बतलाइए ।५७। श्री वसिष्ठ मुनि ने कहा—इस प्रकार का जो प्रश्न महात्मा राम ने किया था उसका श्रवण करके हे महाराज ! उस महामुनि ने एक क्षण भर कुछ ध्यान किया था और फिर जो कुछ भी उस नृप ने कहा था उसको उस समय में उन्होंने अपने ध्यान से जान लिया था ।५८। अपनी मृगी के साथ अपने आश्रम में आये हुए उस मृग को भी उन्होंने जान लिया था जो कि श्रीकृष्णामृत स्तोत्र का श्रवण करने के लिए ही वहाँ पर समागत हुआ था। मुनि ने उस सबका कारण भी समझ लिया था। इस सबका विचार करके उन महामुनि अगस्त्य जी ने उस भार्गव राम को अपने अमृत रूपी वचनों के द्वारा आश्वासन दिया था ।५९।

अगस्त्य द्वारा श्रीकृष्ण प्रेमामृत स्तोत्र का कथन

वसिष्ठ उवाच—

अवगत्य स वै सर्वं कारणं प्रीतमानसः ।
उवाच भार्गवं राममगस्त्यः कुम्भसंभवः ।।१

अगस्त्य उवाच—

शृणु राम महाभाग कथयामि हितं तव ।
मन्त्रस्य सिद्धिं येन त्वं शीघ्रमेव समाप्नुयाः ।।२
भक्तेस्तु लक्षणं ज्ञात्वा त्रिविधाया महामते ।
यो यतेत नरस्तस्य सिद्धिर्भवति सत्वरम् ।।३
एकदाऽहमनुप्राप्तोऽनन्तदर्शनकांक्षया ।
पातालं नागराजेंद्रैः शोभितं परया मुदा ।।४
तत्र दृष्टा महाभाग मया सिद्धाः समततः ।
सनकाद्या नारदश्च गौतमो जाजलिः क्रतुः ।।५

ऋभुर्हंसोऽरुणिश्चैव वाल्मीकिः शक्तिरासुरिः ।
एतेऽन्ये च महासिद्धा वात्स्यायनमुखा द्विज ॥६
उपासत ह्युपासीना ज्ञानार्थं फणिनायकम् ।
तं नमस्कृत्य नागेंद्रैः सह सिद्धैर्महात्मभिः ॥७

महामुनि वसिष्ठ जी ने कहा—उस सम्पूर्ण कारण को भली भाँति समझ कर कुम्भ से समुत्पन्न अगस्त्य मुनि ने अपने मन परम प्रीति करके भार्गव राम से कहा था ।१। अगस्त्य मुनि ने कहा—हे परशुराम ! आप तो महान् भाग वाले हैं । मैं अब आपके हित की बात कहता हूँ उसका आप श्रवण कीजिए । जिनके द्वारा आप बहुत ही शीघ्र इस महामन्त्र की सिद्धि की प्राप्ति कर लेंगे ।२। हे महती मति वाले ! यह भक्ति तीन प्रकार की होती है । उस भक्ति के तीनों प्रकारों के लक्षणों का ज्ञान प्राप्त करके जो मनुष्य फिर यत्न किया करता है वह बहुत ही शीघ्र पूर्ण सिद्धि प्राप्त कर लिया करता है ।३। एक बार मैं स्वयं भगवान् अनन्त देव के दर्शन प्राप्त करने की आकांक्षा से पाताल लोक में गया था जो कि परमानन्द के साथ बड़े-बड़े नाग राजों से सुशोभित था ।४। हे महाभाग ! वहाँ पर मैंने देखा था कि चारों ओर बड़े-बड़े सिद्ध महापुरुष विराजमान थे । वहाँ सनकादिक चारों महासिद्ध-देवर्षि नारद-गौतम-जाजलि-क्रतु-ऋभु-हंस-अरुणि-वाल्मीकि-शक्ति-आसुरि प्रभृति सभी मुनीन्द्रगण और ऋषियों के समुदाय विद्यमान थे । हे द्विज ! ये सब और अन्य भी वात्स्यायन जिनमें प्रमुख थे महान् सिद्धगण वहाँ पर बैठे हुए थे ।५-६। ये सभी वहाँ पर बैठे हुए ज्ञान की पूर्ण प्राप्ति के लिये फणि नायक शेषराज की उपासना कर रहे थे । वहाँ पर बड़े-बड़े नागेन्द्र और महान् आत्मा वाले सिद्ध सभी विराजमान थे उन सबके साथ फणीन्द्र नायक शेष महाराज की सेवा में मैंने बड़े आदर के साथ प्रणिपात किया था ।७।

उपविष्टः कथास्तत्र शृण्वानो वैष्णवीर्मुदा ।
येयं भूमिर्महाभाग भूतधात्रीस्वरूपिणी ॥८
निविष्टा पुरतस्तस्य शृण्वंती ताः कथाः सदा ।
यद्यत्पृच्छति सा भूमिः शेषं साक्षान्महीधरम् ॥९
शृण्वंति ऋषयः सर्वे तत्रस्थाः तदनुग्रहात् ।
मया तत्र श्रुतं वत्स कृष्णप्रेमामृतं शुभम् ॥१०

स्तोत्रं तत्ते प्रवक्ष्यामि यस्यार्थं त्वमिहागतः ।
वाराहाद्यवताराणां चरितं पापनाशनम् ॥११
सुखदं मोक्षदं चैव ज्ञानविज्ञानकारणम् ।
श्रुत्वा सर्वं धरा वत्स प्रहृष्टा तं धराधरम् ॥१२
उवाच प्रणता भूयो ज्ञातुं कृष्णविचेष्टितम् ।
धरण्युवाच–
अलंकृतं जन्म पुंसामपि नंदव्रजौकसाम् ॥१३
तस्य देवस्य कृष्णस्य लीलाविग्रहधारिणः ।
जयोपाधिनियुक्तानि संति नामान्यनेकशः ॥१४

मैं वहाँ पर बड़े ही आनन्द से भगवान् विष्णु देव की कथाओं का श्रवण करता हुआ बैठ गया था। हे महाभाग ! यह भूमि भी जो समस्त भूतों की धात्री स्वरूप वाली है वहीं पर उन शेष भगवान् के आगे बैठी हुई थी और बहुत ही प्रीति के साथ सदा कथाओं का श्रवण किया करती थी। वह भूमि साक्षात् इस मही के धारण करने वाले शेष भगवान् से जो-जो भी पूछा करती है उसको समस्त ऋषिगण वहीं पर संस्थित होकर उनके ही अनुग्रह के होने से श्रवण किया करते हैं। हे वत्स ! मैंने भी वहां परम शुभ कृष्ण प्रेमामृत का श्रवण किया था।८-१०। उस स्तोत्र को मैं अब आपको बतलाऊँगा जिसको प्राप्त करने के लिये तुम यहाँ पर आये हो। इस स्तोत्र में वाराह आदि भगवान् के अवतारों का चरित है जो समस्त प्रकार के पापों का विनाश कर देने वाला होता है।११। यह चरित परमाधिक सुख-सौभाग्य के प्रदान करने वाला है—परलोक में जाकर इस भौतिक शरीर के त्याग करने के पश्चात् मोक्ष का भी देने वाला है जिससे इस संसार में बारम्बार जन्म-मरण के महान् कष्टों से छुटकारा मिल जाया करता है। और यह चरित ऐसा अद्भुत है कि जो पूर्ण ज्ञान और विशेष ज्ञान का भी कारण होता है। इस वसुन्धरा देवी ने इन सब का श्रवण किया था और यह बहुत ही अधिक प्रसन्न हुई थी, हे वत्स ! फिर धराके धारण करने वाले अनन्त भगवान् से बोली थी।१२। परम प्रणत होकर इस भूमि ने फिर भगवान् कृष्ण की लीला को जानने के लिए प्रार्थना की थी। धरणी ने कहा—भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र जी ने नन्द गोपराज के व्रज में निवास करने वाले व्रजवासी मनुष्यों का भी जन्म अपना अवतार धारण कर अनेक अद्भुत लीला-

विहारों से अलंकृत कर दिया था ।१३। अपनी लीला से ही विग्रह (मानवीय शरीर) धारण करने वाले उन श्री कृष्ण देव के जय की अनेक उपाधियों से नियुक्त अनेक शुभ नाम है ।१४।

तेषु नामानि मुख्यानि श्रोतुकामा चिरादहम् ।
तत्तानि ब्रूहि नामानि वासुदेवस्य वासुके ॥१५
नातः परतरं पुण्यं त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
शेष उवाच–
वसुंधरे वरारोहे जनानामस्ति मुक्तिदम् ॥१६
सर्वमंगलमूर्द्धन्यमणिमाद्यष्टसिद्धिदम् ।
महापातककोटिघ्नं सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥१७
समस्तजपयज्ञानां फलदं पापनाशनम् ।
शृणु देवि प्रवक्ष्यामि नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ॥१८
सहस्रनाम्नां पुण्यानां त्रिरावृत्या तु यत्फलम् ।
एकावृत्या तु कृष्णस्य नामैकं तत्प्रयच्छति ॥१९
तस्मात्पुण्यतरं चैतत्स्तोत्रं पातकनाशनम् ।
नाम्नामष्टोत्तरशतस्याहमेव ऋषिः प्रिये ॥२०
छन्दोऽनुष्टुब्देवता तु योगः कृष्णप्रियावहः ।
श्रीकृष्णः कमलानाथो वासुदेवः सनातनः ॥२१

उन श्रीकृष्ण के नामों में जो बहुत ही प्रमुख उनके नाम हैं उनके श्रवण करने की कामना वाली मैं बहुत अधिक समय से हो रही हूँ । हे भगवन्वासुके ! भगवान् वासुदेव के उन परम शुभ नामों को अब कृपा करके मेरे आगे बतलाइए ।१५। क्योंकि इस संसार में इससे परतर अर्थात् बड़ा अन्य कोई भी पुण्य नहीं है । तात्पर्य तह है कि भगवान् श्रीकृष्ण के परम शुभ नामों का स्मरण और श्रवण लोक में सबसे अधिक पुण्य कार्य है । भगवान् शेष ने कहा—हे परम श्रेष्ठ आरोह वाली वसुन्धरे ! भगवान् श्री कृष्ण के एक सो आठ नामों का एक शतक स्तोत्र है और वह मानवों के लिए मुक्ति के प्रदान करने वाला है ।१६। यह शतक सभी प्रकार के मङ्गल कार्यों में शिरोमणि है तथा लौकिक साधारण वैभवों की प्राप्ति की तो बात

ही क्या है यह तो अणिमा-महिमा आदि जो आठ सिद्धियाँ हैं उनको भी देने वाला है। बड़े-बड़े महान् जो करोड़ों प्रकार के पातक हैं उनका भी विनाश कर देने वाला और समस्त तीर्थों के स्नान-ध्यान तथा अटन का जो पुण्यफल हुआ करता है उनके प्रदान कर देने वाला होता है।१७। सभी तरह के अश्वमेधादि यज्ञों एवं जपों का जो भी फल होता है उसके देने वाला है और सभी पापों के नाश करने वाला है। हे देवि ! अब आप उस नामों के शतक को सुनिए, मैं आपको बतलाता हूँ जो एक सौ आठ भगवान् के नामों वाला है।१८। परम पुण्यमय अन्य सहस्र नामों की तीन बार आवृत्ति के करने से जो फल प्राप्त होता है वह पुण्य-फल भगवान् श्रीकृष्ण के नाम की एक ही आवृत्ति के द्वारा एक ही नाम दिया करता है।१९। इस कारण से यह स्तोत्र विशेष पुण्य वाला है और पातकों का विनाशक है। हे प्रिये ! इस परम शुभ नामों के अष्टोत्तर शत का मैं ही ऋषि हूँ।२०। इसका छन्द अनुष्टुप् है और इसका देवता श्री कृष्ण के प्रिय का आवहन करने वाला योग है। अब यहाँ से आगे वह अष्टोत्तर शतक का आरम्भ होता है—श्रीकृष्ण-कमला (महालक्ष्मी) के नाथ-वसुदेव के पुत्र वासुदेव- और सनातन अर्थात् सदा सर्वदा से चले आने वाले हैं।२१।

वसुदेवात्मजः पुण्यो लीलामानुषविग्रहः।
श्रीवत्सकौस्तुभधरो यशोदावत्सलो हरिः ॥२२

चतुर्भुजात्तचक्रासिगदाशंखाद्युदायुधः।
देवकीनन्दनः श्रीशो नन्दगोपप्रियात्मजः ॥२३
यमुनावेगसंहारी बलभद्रप्रियानुजः।
पूतनाजीवितहरः शकटासुरभंजनः ॥२४
नन्दव्रजजनानन्दी सच्चिदानंदविग्रहः।
नवनीतविलिप्तांगो नवनीतनटोऽनघः ॥२५
नवनीतलवाहारी मुचुकुंदप्रसादकृत्।
षोडशस्त्रीसहस्रेशस्त्रिभंगी मधुराकृतिः ॥२६
शुकवागमृताब्धींदुर्गोविंदो गोविदांपतिः।
वत्सपालनसंचारी धेनुकासुरमर्द्दनः ॥२७

तृणीकृततृणावर्त्तो यमलार्जुनभंजनः ।
उत्तालतालभेत्ता च तमालश्यामलाकृतिः ॥२८

वसुदेव को पुत्र—परम पुण्यमय—लीला ही से मानुष शरीर के धारण करने वाले हैं। श्रीवत्स का चिह्न और कौस्तुभ मणि धारण के करने वाले-यशोदा के वत्सल और हरि हैं। हरि का अर्थ होता है पापों के हरण करने वाले हैं।२२। चार भुजाओं में सुदर्शन चक्र, कौमोदकी गदा, शङ्ख और असि आदि आयुधों के धारण करने वाले हैं। देवकी के नन्दन—श्रीदेवी के स्वामी और नन्दगोप की प्रिया यशोदा के आत्मज अर्थात् पुत्र हैं।२३। यमुना के वेग का संहार करने वाले | बलभद्रजी परम प्रिय अनुज अर्थात् छोटे भाई हैं। पूतना के जीवन का हरण करने वाले तथा शकटासुर का हनन करने वाले हैं।२४। नन्दगोप ब्रह्मजन अर्थात् ब्रजवासी मनुष्यों को आनन्द देने वाले और सत्-चित् (ज्ञान) तथा आनन्द के शरीर वाले हैं अर्थात् सत्-चित् और आनन्द ये तीनों ही वस्तुएं उनके शरीर में विद्यमान हैं। नवनीत (मक्खन) से विलिप्त अङ्गों वाले हैं जिस समय में यशोदाजी दधि मन्थन कर रही थी उस समय में दधिभाण्ड का भयंकर नवनीत अपने समस्त अङ्गों में लपेट लिया था। नवनीत के लिए नट हैं अर्थात् थोड़ा सा नवनीत पाने के लिए गोपाङ्गनाओं के यहाँ अनेक नृत्य आदि की लीलायें करने वाले हैं। अनघ अर्थात् निष्पाप स्वरूप वाले हैं।२५। नवनीत के थोड़े से भाग का आहार करने वाले हैं अर्थात् दधि और मक्खन के विक्रय करने वाली व्रजाङ्गनाओं को मार्ग में रोककर नवनीत का आहार किया करते हैं। राजा मुचुकुन्द के ऊपर कृपा करने वाले हैं। जिस समय जरासन्ध से युद्ध हो रहा था तब स्वयं भाग कर वहाँ पर पहुँच गये थे जहाँ पर विद्रित मुचुकुन्द गुफा में यह वरदान लेकर सो रहा था कि उसे जो भी जगायेगा वह भस्म हो जायगा। उस पर अपनी पीताम्बर डालकर आप छिप गये थे जरासन्ध ने उसे श्रीकृष्ण समझ कर जगाया और भस्म हो गया था फिर भगवान् ने दर्शन देकर उसको प्रसन्न किया था। सोलह सहस्र स्त्रियों के स्वामी हैं—त्रिभङ्गी हैं अर्थात् चरण-कटि और ग्रीवा तीनों को तिरछा करके बंशी वादन करने वाले हैं तथा परमाधिक मधुर आकृति से समन्वित है।२६। अमृत के समान जो शुकदेव की वाणी रूपी सागर है उसके आप चन्द्र हैं अर्थात् शुकदेव जी के द्वारा श्रीमद्भागवत की रचना हुई उसके प्रकाशन चन्द्र हैं। गोविन्दों के पति हैं। जब आप बालक थे तब व्रज में गोवत्सों का पालन करने के लिए वन में सञ्चरण करने वाले हैं तथा धेनुक नामक कंस

के द्वारा प्रेषित असुर का मर्दन करने वाले हैं ।२७। तृणावर्त्त असुर को तृण के समान हनन करके डाल दिया है और जो दो अर्जुन वृक्षों का जोड़ा शाप वश वृक्ष हो गये थे उनका भंजन कर वृक्षों की योनि छुड़ा देने वाले हैं। बहुत ही ऊँचे तालों के भेदन करने वाले हैं तथा तमाल वृक्षों के सदृश श्यामल आकृति वाले हैं ।२८।

गोपगोपीश्वरो तोगी सूर्यकोटिसमप्रभः ।
इलापतिः परंज्योतिर्यादवेंद्रो यदूद्वहः ॥२६
वनमाली पीतवासाः पारिजातापहारकः ।
गोवर्द्धनाचलोद्धर्त्ता गोपालः सर्वपायकः ॥३०
अजो निरंजनः कामजनक कंजलोचनः ।
मधुहा मथुरानाथो द्वापकानाथको बली ॥३१
वृंदावनांतसंचारी तुलसीदामभूषणः ।
स्यमंतकमणेर्हर्त्ता नरनारायणात्मकः ॥३२
कुब्जाकुष्टांबरधरो मायी परमपूरुषः ।
मुष्टिकासुरचाणूरमल्लयुद्धबिशारदः ॥३३
संसारवैरी कंसारिर्मुरारिर्नरकांतकः ।
अनादि ब्रह्मचारी च कृष्णाव्यसनकर्षकः ॥३४
शिशुपालशिरश्छेत्ता दुर्योधनकुलांतकृत ।
विदुराक्रूरवरदो विश्वरूपप्रदर्शकः ॥३५

व्रज में समस्त गोप और जो गोपियाँ थीं उन सबके ईश हैं—महा योगी और करोड़ों सूर्यों की प्रभा के समान प्रदीप्त प्रभा से समन्वित हैं। इला के पति—परम ज्योति स्वरूप यादवों में प्रमुख और यदु कुल के उद्वहन करने वाले हैं ।२६। वनमाला के धारण करने वाले-पीत वर्ण के वस्त्रों के पहिनने वाले तथा पारिजात का महेन्द्रपुरी से आहरण करने वाले हैं—गोवर्द्धन गिरि के उद्धर्त्ता अर्थात् अपनी अंगुलि पर उठाने वाले—गौओं के पालन-पोषण करने वाले और समस्त चरअचरों के पालक हैं ।३०। अजन्मा-निरंजन-कामदेव के जन्म दाता तथा कमलों के सदृश लोचनों वाले हैं। मधु नामक दैत्य के हनन कर्त्ता—मथुरापुरी के नाथ-द्वारका के स्वामी और

बलशाली हैं ।३१। वृन्दावन के मध्य में सञ्चरण करने वाले–तुलसी की माला से सुशोभित अर्थात् तुलसी की माला के भूषण वाले हैं। स्यमन्तक नाम वाली मणि को जाम्बवान् से हरण करने वाले तथा नर और नारायण के स्वरूपधारी हैं ।३२। कुब्जा जो कंस नृप की चन्दन सेविका थी वह थी तो परम सुन्दरी किन्तु टेढ़े-मेढ़े शरीर वाली थी। उसके द्वारा समाकृष्ट वस्त्रों के धारण करने वाले हैं। कुब्जा श्रीकृष्ण पर मोहित हो गयी थी–यह तात्पर्य है। मायी और परम पुरुष हैं। कंस के मल्ल चाणूर और मुष्टिक असुर थे उनके साथ मल्ल युद्ध में परम कोविद हैं ।३३। इस संसार के वैरी हैं अर्थात् संसार में होने वाले दुःखों के विनाशक हैं—कंस के निपात करने वाले—मुर दैत्य के नाशक और नरक नामक असुर के अन्त कर देने वाले हैं। अनादि ब्रह्मचारी हैं अर्थात् ऐसे ब्रह्मचारी हैं जिनका कभी कोई आदि नहीं है तथा कृष्ण-द्रौपदी के व्यसन के अपकर्षण करने वाले हैं अर्थात् दुःशासन के द्वारा चीर खींचकर दुर्योधन की सभा में उसको लज्जित किया जा रहा था उस समय चीर का वर्धन करके उसकी लज्जा की रक्षा करने वाले हैं ।३४। राजा शिशुपाल के शिर के छेदन करने वाले हैं और राजा कौरवेश्वर दुर्योधन के कुल का अन्त कर देने वाले हैं। विदुर और अक्रूर को वरदानों के प्रदाता हैं और विश्वरूप अर्थात् विराट् स्वरूप के प्रदर्शक हैं ।३५।

सत्यवाक्सत्यसंकल्पः सत्यभामारतो जयी ।
सुभद्रापूर्वजो विष्णुर्भीष्ममुक्तिप्रदायकः ॥३६

जगद्गुरुर्जगन्नाथो वेणुवाद्यविशारदः ।
वृषभासुरविध्वंसी बकारिर्बाणबाहुकृत् ॥३७

युधिष्ठिरप्रतिष्ठाता बर्हिबर्हावतंसकः ।
पार्थसारथिरव्यक्तो गीतामृतमहोदधिः ॥३८

कालीयफणिमाणिक्यरंजितः श्रीपदांबुजः ।
दामोदरो यज्ञभोक्ता दानवेंद्रविनाशनः ॥३९

नारायणः परं ब्रह्म पन्नगाशनवाहनः ।
जलक्रीडासमासक्तगोपीवस्त्रापहारकः ॥४०

पुण्यश्लोकस्तीर्थपादो वेदवेद्यो दयानिधिः ।
सर्वतीर्थात्मकः सर्वग्रहरूपी परात्परः ॥४१

इत्येवं कृष्णदेवस्य नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ।
कृष्णेन कृष्णभक्तेन श्रुत्वा गीतामृतं पुरा ।।४२

सदा सत्य वचनों वाले तथा सत्य संकल्पों वाले हैं । सत्यभामा नाम वाली अपनी पटरानी में रति रखने वाले और जयशील हैं सुभद्रा के बड़े भाई हैं—भगवान् साक्षात् विष्णु का स्वरूप हैं तथा भीष्मपितामह को मुक्ति देने वाले हैं ।३५। इस सम्पूर्ण जगत् के गुरु हैं—इस जगत् के नाथ हैं और वेणु (वंशी) के वादन करने में महापंडित हैं । वृषभासुर के विध्वंस करने वाले हैं—बकासुर के निहन्ता और बाणासुर की बाहुओं के कर्त्तन करने वाले हैं ।३७। राजा युधिष्ठिर को राज्य गद्दी पर प्रतिष्ठित करने वाले हैं और मयूर की पंख के भूषण वाले हैं । पार्थ पृथा के पुत्र अर्जुन के रथ के वहन कराने वाले सारथि हैं । इनका ऐसा स्वरूप है जो अव्यक्त है अर्थात् जिसको कोई पहिचान ही नहीं सकता है—गीता के उपदेशों से जो कि अमृत के समान हैं यह महोदधि हैं । जैसे अमृत समुद्र से उत्पन्न हुआ था वैसे ही गीता के उपदेश इनके ही हृदय से निकले हैं ।३८। कालिय नाग के मस्तक पर नृत्य करने से माणिक्य मणि से रञ्जित श्रीपद कमल वाले हैं। दाम से बद्ध उदर वाले हैं । दधिमन्थन के महाभाण्ड का भङ्ग कर देने पर यशोदा माता ने पकड़कर डोरी से बाँध दिया था तभी से दामोदर नाम हुआ है । यज्ञों के भोक्ता और दानवेन्द्रों के विनाशक हैं ।३९। आप साक्षात् क्षीरशायी नारायण—परं ब्रह्म और पन्नगों के अशन करने वाले गरुण के वाहन वाले हैं । यमुना के जल में दिगम्बर होकर क्रीड़ा करने वाली व्रज बाला गोपियों के वस्त्रों का अपहरण करने वाले हैं । आप पुण्य अर्थात् परम पुनीत यश वाले हैं—तीर्थ के समान चरणों वाले वेदों के द्वारा जानने के योग्य और दया के निधि हैं । समस्त तीर्थों के स्वरूप वाले—सब ग्रहों से रूप वाले और पर से भी पर हैं ।४०-४१। इस प्रकार से श्रीकृष्ण देव के एक सौ आठ नामों का यह शतक है । श्रीकृष्ण के भक्त कृष्ण ने अर्थात् वेद व्यासजी ने पहिले गीतामृत का श्रवण दिया था ।४२।

स्तोत्रं कृष्णप्रियकरं कृतं तस्मान्मया श्रुतम् ।
कृष्णप्रेमामृतं नाम परमानन्ददायकम् ।।४३
अत्युपद्रवदुःखघ्नं परमायुष्यवर्द्धनम् ।
दानं व्रतं तपस्तीर्थं यत्कृतं त्विह जन्मनि ।।४४

पठतां शृण्वतां चैव कोटिकोटिगुणं भवेत् ।
पुत्रप्रदमपुत्राणामगतीनां गतिप्रदम् ॥४५
धनवाहं दरिद्राणां जयेच्छूनां जयावहम् ।
शिशूनां गोकुलानां च पुष्टिदं पुण्यवर्द्धनम् ॥४६
बालरोगग्रहादीनां शमनं शांतिकारकम् ।
अंते कृष्णस्मरणदं भवतापत्रयापहम् ॥४७
असिद्धसाधकं भद्रे जपादिकरमात्मनाम् ।
कृष्णाय यादवेंद्राय ज्ञानमुद्राय योगिने ॥४८
नाथाय रुक्मिणीशाय नमो वेदांतवेदिने ।
इमं मंत्रं महादेवि जपन्नेव दिवानिशम् ॥४९

कृष्ण द्वैपायन महामुनि ने यह श्रीकृष्ण के प्रिय को करने वाला स्तोत्र रचित किया था। उन्हीं से इसका श्रवण मैंने किया था। यह श्रीकृष्ण प्रेमामृत नामक स्तोत्र परमाधिक आनन्द के प्रदान करने वाला है।४३। यह अत्यधिक उपद्रव और दुःखों का हनन करने वाला है तथा इसके श्रवण और पठन से अधिकाधिक आयु का वर्धन होता है। इस लोक में जन्म ग्रहण करके जो भी कुछ दान-व्रत-तप-तीर्थ आदि किया है वह सभी इस परम पुनीत स्तोत्र के पढ़ने वालों तथा श्रवण किया है वह सभी इस परम पुनीत स्तोत्र के पढ़ने वालों तथा श्रवण करने वालों को करोड़ों गुना फल देने वाला होती है। जो पुत्रों से रहित है उनको यह पुत्रों के प्रदान करने वाला है तथा जिनकी सद्गति का कोई भी साधन नहीं है उनको सुगति अर्थात् उद्धार के प्रदान करने वाला है।४४-४५। जो धन से महीन महान् दरिद्र है उनको धन का वहन कराने वाला है और जो सर्वत्र युद्ध स्थल में अपनी विजय के इच्छुक हैं उनको जय देने वाला है। यह स्तोत्र शिशुओं की और गोकुलों की पुष्टि का बढ़ाने वाला है।४६। बालरोग और ग्रहों आदि का शमन करने वाला तथा परम शान्ति के करने वाला है। यह समय में श्रीकृष्ण की स्मृति का देने वाला तथा संसार के तीनों (आध्यात्मिक-आधिभौतिक-आधिदैविक) तापों का अपहरण करने वाला है।४७। हे भद्रे ! यह स्तोत्र अपने असिद्ध जप आदि के साधन करने वाला अर्थात् सिद्धि कारक है। यादवेन्द्र-ज्ञान की मुद्रा वाले-योगी—रुक्मिणी के स्वामी—

वेदान्त के वेदी नाथ श्री कृष्ण के लिए नमस्कार है—हे महादेवि ! यह मन्त्र है इसका अहर्निश जाप करते रहना चाहिए ।४८-४९।

सर्वग्रहानुग्रहभावसर्वप्रियतमो भवेत् ।
पुत्रपौत्रैः परिवृतः सर्वसिद्धिसमृद्धिमान् ॥५०
निषेव्य भोगानंतेऽपि कृष्णसायुज्यमाप्नुयात् ।
अगस्त्य उवाच—
एतावदुक्तो भगवाननंतो मूर्त्तिस्तु संकर्षणसंज्ञिता विभो ॥५१
धराधरोऽलं जगतां धरायै निर्दिश्य भूयो विरराम मानदः ।
ततस्तु सर्वे सनकादयो ये समास्थितास्तत्परितः कथादृताः ।
आनंदपूर्णा बुनिधौ निमग्नाः
सभाजयामासुरहीश्वरं तम् ॥५२
ऋषय ऊचुः—
नमो नमस्तेऽखिलविश्वभावन प्रपन्नभक्ता-
र्त्तिहराव्ययात्मन् ।
धराधरायापि कृपार्णवाय शेषाय विश्वप्रभवे नमस्ते ॥५३
कृष्णामृतं नः परिपायितं विभो विधूतपापा
भवता कृता वयम् ।
भवादृशा दीनदयालवो विभो समुद्धरंत्येव
निजाङ्घ्रि संनतान् ॥५४
एवं नमस्कृत्य फणीश पादयोर्मनो विधायाखिलकामपूरयोः ।
प्रदक्षिणीकृत्य धराधराधरं सर्वे वयं स्वावसथानुपागताः ॥५५

इस परमोत्तम एवं दिव्य स्तोत्र का सेवन करने वाला पुरुष समस्त ग्रहों के अनुग्रह को प्राप्त करने वाला हो जाता है और वह सभी का परम प्रिय बन जाया करता है । इस अष्टोत्तर शतक कृष्ण स्तोत्र के श्रवण तथा पठन करने से भजन पुत्र-पौत्रादि से परिवृत होता है और उसके सभी प्रकार की सिद्धियों की समृद्धि हो जाया करती है ।५०। वह मनुष्य इस लोक में सब प्रकार के सुखों का उपभोग करके भी अन्त समय में भगवान् श्री

कृष्ण के सायुज्य की प्राप्ति किया करता है। अगस्त्य मुनि ने कहा—हे विभो ! इतना कहकर भगवान् अनन्त देव चुप हो गये थे जो कि संकर्षण की संज्ञा वाली मूर्त्ति थी। यह भगवान् समस्त जगतों की इस धरा के धारण करने में पूर्णतया समर्थ थे। मान के देने वाले प्रभु ने पुनः धरा के लिए निर्देश किया था। इसके अनन्तर कथा का आदर करने वाले सनकादिक मुनिगण सब जो उनको चारों ओर से घेरकर समवस्थित थे आनन्द से परिपूर्ण सागर में निमग्न हो गये थे और उन सबने अहीश्वर प्रभु को सभाजित किया था।५१-५१। ऋषिगणों ने कहा—हे प्रभो ! आप तो इस सम्पूर्ण विश्व पर अनुकम्पा करते हुए इसका परिपालन किया करते हैं। हे अव्यय स्वरूप वाले ! आप तो शरण में समागत अपने भक्तों की आर्त्ति के हरण करने वाले हैं आपके लिए हमारा सबका बारम्बार प्रणाम है। आप इस धरा के धारण करने वाले होते हुए भी परम कृपा के सागर हैं और आप समग्र विश्व की समुत्पत्ति करने वाले हैं। ऐसे शेष भगवान् आपकी सेवा में हमारा प्रणिपात है।५३। हे विभो ! आपने हम सबको श्रीकृष्ण के नामों का जो अष्टोत्तर शतक रूपी अमृत है उसका भली भाँति से पान कराया है और आपने हम सबको पापों से रहित कर दिया है। हे विभो ! आप सरीखे महापुरुष ही दीनों पर दया की वृष्टि करने वाले होते हैं जो कि अपने चरणों की शरण में समागत अपने भक्तों का भली भाँति उद्धार किया करते हैं।५४। इस रीति से नमस्कार करके और समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले भगवान् शेष के चरणों में मन लगाकर तथा धराधर की परिक्रमा करके हम सब अपने-अपने निवास स्थानों को उपागत हो गये थे।५५।

इति तेऽभिहितं राम स्तोत्रं प्रेमामृताभिधम् ।
कृष्णस्य परिपूर्णस्य राधाकांतस्य सिद्धिदम् ॥५६
इदं राम महाभाग स्तोत्रं परमदुर्लभम् ।
श्रुतं साक्षाद्भगवतः शेषात्कथयतः कथाः ॥५७
यावंति मन्त्रजालानि स्तोत्राणि कवचानि च ॥५८
त्रैलोक्ये तानि सर्वाणि सिद्ध्यंत्येवास्य शीलनात् ।
वसिष्ठ उवाच—
एवमुक्त्वा महाराज कृष्णप्रेमामृतं स्तवम् ।
यावद्ध्यरंसीत्स मुनिस्तावत्स्वर्यानमागतम् ॥५९

चतुर्भिरद्भुतैः सिद्धैः कामरूपैर्मनोजवैः ।
अनुयातमथोत्प्लुत्य स्त्रीपुंसौ हरिणौ तदा ।
अगस्त्यचरणौ नत्वा समारुरुहतुर्मुदा ॥६०
दिव्यदेहधरौ भूत्वा शंखचक्रादिचिह्नितौ ।
गतौ च वैष्णवं लोकं सर्वदेवनमस्कृतम् ।
पश्यतां सर्वभूतानां भार्गवागस्त्ययोस्तथा ॥६१

अगस्त्य महामुनि ने कहा कि हे राम ! श्री राधा के कान्त-परिपूर्ण भगवान् श्रीकृष्ण का यह समस्त सिद्धियों का प्रदान कर देने वाला प्रेमामृत नाम वाला स्तोत्र मैंने आपको बता दिया है ।५६। हे महाभाग राम ! यह स्तोत्र अत्यन्त दुर्लभ है । मैंने कथाओं का वर्णन करते हुए साक्षात् भगवान् शेष के ही मुख से इसका श्रवण किया है ।५७। इस लोक में जितने भी मन्त्रों के समूह है तथा स्तोत्र और कवच आदि हैं इस त्रिभुवन में वे सभी इस स्तोत्र के ही परिशीलन करने से सिद्ध हो जाया करते हैं । वसिष्ठजी ने कहा—हे महाराज ! इस रीति से श्रीकृष्ण प्रेमामृत स्तव को बतलाकर जब तक अगस्त्य मुनि विरत हुए थे तभी तक वहाँ स्वर्ग से एक यान आ गया था ।५८-५९। उस यान में चार स्वेच्छया स्वरूप धारण करने वाले—मन के ही समान वेग से समन्वित और अतीव अद्भुत सिद्धों से युक्त था । इसके अनन्तर वे दोनों हरिण और हरिणी स्त्री एवं पुरुष के स्वरूप में होकर अगस्त्य मुनि को प्रणाम करके उस समय में परम हर्ष से उछल कर उस यान में समारूढ़ हो गये ।६०। वे दोनों परम दिव्य देह के धारण करने वाले हो गये थे जो शङ्ख-चक्र आदि भगवान् के चिह्नों से संयुत थे । इसके पश्चात् वे समस्त देवगणों के द्वारा वन्दित भगवान् विष्णु के लोक में चले गये थे । उस समय इस विलक्षण घटना को वहाँ पर संस्थित सभी प्राणी तथा भार्गव राम और अगस्त्य मुनि भी देख रहे थे उन सबकी आँखों के ही सामने ऐसा हुआ था ।६१।

भार्गव चरित्र (१)

वसिष्ठ उवाच—

दृष्ट्वा परशुरामस्तु तदाश्चर्यं महाद्भुतम् ।
जगाद सर्ववृत्तांतं मृगयोस्तु यथाश्रुतम् ॥१

तच्छ्रुत्वा भगवान्साक्षादगस्त्यः कुंभसंभवः ।
मोदमान उवाचेदं भार्गवं पुरतः स्थितम् ॥२
अगस्त्य उवाच–
श्रृणु राम महाभाग कार्याकार्यविशारद ।
हितं वदामि यत्तेऽद्य तत्कुरुष्व समाहितः ॥३
इतो विदूरे सुमहत्स्थानं विष्णोः सुदुर्लभम् ।
पदानि यत्र दृश्यंते न्यस्तानि सुमहात्मना ॥४
यत्र गंगा समुद्भूता वामनस्य महात्मनः ।
पदाग्रात्क्रमतो लोकांस्तद्बलेस्तु विनिग्रहे ॥५
तत्र गत्वा स्तवं चेदं मासमेकमनन्यधीः ।
पठस्व नियमेनैव नियतो नियताशनः ॥६
यत्वया कवचं पूर्वमभ्यस्तं सिद्धिमिच्छता ।
शत्रूणां निग्रहार्थाय तच्च ते सिद्धिदं भवेत् ॥७

श्री वसिष्ठजी ने कहा—उस समय में परशुराम ने इस महान आश्चर्य को देखकर उन दोनों हरिण-हरिणियों का सम्पूर्ण वृत्तान्त जैसा भी सुना गया था अगस्त्य मुनि से कह दिया था ।१। साक्षात् कुम्भ से समुत्पत्ति ग्रहण करने वाले अगस्त्य भगवान् ने इस वृत्तान्त का श्रवण करके बहुत ही अधिक प्रसन्न होते हुए अपने समक्ष में संस्थित भार्गव राम से यह कहा था ।२। अगस्त्य जी ने कहा—हे राम ! आप तो महान् भाग वाले हो और क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए—इस विषय में आप बहुत विद्वान हैं । आज मैं जो आपके हित की बात है उसको आपको बतलाता हूँ । उसे आप बहुत ही सावधान होते हुए कर डालिए ।३। इस स्थल से विशेष दूरी पर भगवान विष्णु का परम दुर्लभ एक बड़ा भारी स्थान है जहाँ पर भगवान् के कमनीय कोमल चरणों के चिह्न दिखलाई दिया करते हैं जहाँ पर महान् आत्मा वाले प्रभु ने उन अपने चरणों को रक्खा था ।४। यह वह स्थल है जहाँ पर प्रभु ने वामन का अवतार लेकर राजा बलि को विनिगृहीत करने के कार्य में अपने चरण के अग्रभाग से सभी लोकों को समाक्रान्त कर लिया था । उस समय में ब्रह्माजी ने भगवान के चरणों को प्रक्षालित किया था और जहाँ पर महात्मा वामन के चरणों के जलसे गङ्गा

का समुद्भव हुआ था ।५। अब आप उसी स्थल में जाकर अनन्य बुद्धि वाले होते हुए एक मास तक इस स्तोत्र का पाठ करो और पूर्ण नियम से ही नियत तथा नियत अशन (भोजन) वाले होकर रहो ।६। आपने सिद्धि की इच्छा रखते हुए जिस कवच का पूर्व में अभ्यास किया था और अपने समस्त शत्रुओं के निग्रह करने की कामना से ही किया था वही अब आपको सिद्धि के देने वाला हो जायगा ।७।

वसिष्ठ उवाच–

एवमुक्तो ह्यगस्त्येन रामः शत्रुनिबर्हणः ।
नमस्कृत्य मुनिं शांतं निर्जगाश्रमाद्बहिः ॥८
पुनस्तेनैव मार्गेण संप्राप्तस्तत्र सत्वरम् ।
यत्रोत्तरात्पदन्यासान्निर्गता स्वर्णदी नृप ॥९
तत्र वासं प्रकल्प्यासावकृतव्रणसंयुतः ।
समभ्यस्यत्स्तवं दिव्यं कृष्णप्रेमामृताभिधम् ॥१०
नित्यं व्रतपतेस्तस्य स्तोत्रं तुष्टोऽभवद्धरिः ।
जगाम दर्शनं तस्य जायदग्न्यस्य भूपते ॥११
चतुर्व्यूहाधिपः साक्षात्कृष्णः कमललोचनः ।
किरीटेनार्कवर्णेन कुंडलाभ्यां च राजितः ॥१२
कौस्तुभोद्भासितोरस्कः पीतवासा घनप्रभः ।
मुरलीवादनपरः साक्षान्मोहनरूपधृक् ॥१३
तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय जामदग्न्यो मुदान्वितः ।
प्रणम्य दंडवद्भूमौ तुष्टाव प्रयतो विभुम् ॥१४

वसिष्ठजी ने कहा—इस प्रकार से शत्रुओं के निबर्हण करने वाले राम से जब अगस्त्य मुनि के द्वारा कहा गया था तो फिर राम ने मुनि को नमस्कार करके जो महा मुनि परम शान्त स्वभाव वाले थे उस आश्रम से राम बाहिर निकलकर चला गया था ।८। हे भूप ! फिर उसी मार्ग से वह बहुत शीघ्र वहाँ पर पहुँच गया था जहाँ पर उत्तर पद के न्यास से स्वर्ग गङ्गा निकली थी ।९। उस स्थल पर उस परशुराम ने अकृतव्रण के साथ ही रहकर निवास करने का अपने मन में संकल्प किया था और श्रीकृष्ण प्रेमा-

मृत नामक दिव्य स्तव का भली-भाँति अभ्यास किया था ।१०। हे भूपते ! ब्रज के स्वामी उन भगवान श्रीकृष्ण उस पर परम प्रसन्न हो गये थे और उन्होंने जमदग्नि के पुत्र के लिए अपना दर्शन दिया था ।११। अब भगवान के स्वरूप का वर्णन किया जाता है जिस रूप से राम को उन्होंने दर्शन दिया था—उनके नेत्र कमलों के समान परम सुन्दर थे—भगवान कृष्ण साक्षात् चतुर्व्यूहों के अधिप थे–सूर्य के वर्ण के सदृश जाज्वल्यमान किरीट और दोनों कानों में कुण्डलों की शोभा से समन्वित थे ।१२। वक्षःस्थल में कौस्तुभ महामणि धारण किये हुए थे जिसकी प्रभा से उनका उरःस्थल समुद्भासित हो रहा था—पीताम्बर का परिधान करने वाले नील जलद के समान प्रभा वाले थे । उनके करकमलों में वंशी थी जिसका वादन वे कर रहे थे तथा वे साक्षात् मोहन करने वाले स्वरूप को धारण करने वाले थे । ।१३। ऐसे उन भगवान् श्री कृष्ण के दर्शन करके जमदग्नि के पुत्र परशुराम ने तुरन्त ही अपने आसन से उठकर गात्रोत्थान दिया था और वह बहुत ही हर्ष के समन्वित हो गये थे । उस राम ने उनके सामने चरणों में दण्ड की भाँति गिरकर उन विभु को प्रणाम किया था और फिर बहुत ही प्रणत होकर उनकी स्तुति की थी ।१४।

परशुराम उवाच–

नमो नमः कारणविग्रहाय प्रपन्नपालाय सुरार्त्तिहारिणे ।
ब्रह्मेशविष्ण्विंद्रमुखस्तुताय ततोऽस्मि नित्यं
परमेश्वराय ॥१५

यं वेदवादैर्विविधप्रकारैर्निर्णेतुमीशानमुखा न शक्नुयुः ।
तं त्वामनिर्देश्यमजं पुराणमनंतमीडे भव मे दयापरः ॥१६

यस्त्वेक ईशो निजवांछितप्रदो धत्ते तनूर्लोकविहाररक्षणे ।
नानाविधा देवमनुष्यतिर्यग्यादःसु भूमेर्भरवारणाय ॥१७
तं त्वामहं भक्तजनानुरक्तं विरक्तमत्यंतमपीदिरादिषु ।
स्वयं समक्षं व्यभिचारदुष्टचित्तास्वपि प्रेमनिबद्धमानसम् ॥१८
यं वै प्रसन्ना असुराः सुरा नराः
सकिन्नरास्तिर्यग्योतयोऽपि हि ।

गताः स्वरूपं निखिलं विहाय ते देहस्त्र्यपत्यार्थम-
मत्वमीश्वर ॥१९

तं देवदेवं भजतामभीप्सितप्रदं निरीहं गुणवर्जितं च ।
अचिंत्यमव्यक्तमघौघनाशनं प्राप्तोऽरणं
प्रेमनिधानमादरात् ॥२०

तर्पंति तापैर्विविधैः स्वदेहमन्ये तु यज्ञैर्विविधैर्यजंति ।
स्वप्नेऽपि ते रूपमलौकिकं विभो पश्यन्ति
नैवार्थनिबद्धवासनाः ॥२१

परशुराम ने कहा—भक्तों की सुरक्षा करने के कारणों से शरीर धारण करने वाले—अपनी शरणागति में सम्प्राप्त जनों का प्रतिपालन करने वाले और सुरगणों की पीड़ा का हरण करने वाले आपके लिए मेरा बारम्बार नमस्कार है । ब्रह्मा-शिव-विष्णु और इन्द्र जिनमें प्रमुख हैं ऐसे समस्त देवगणों के द्वारा जिनका स्तवन किया गया है ऐसे परमेश्वर प्रभु के लिए मैं नित्य ही प्रणाम निवेदन करने वाला हूँ ।१५। शिव आदि प्रमुख देव भी अनेक प्रकार के वेदों के वादों के द्वारा जिनके स्वरूप का निर्णय करने में समर्थ नहीं हुआ करते हैं उन निर्देशन करने के योग्य-अजन्मा-पुराण पुरुष तथा अनन्त प्रभु का मैं स्तवन करता हूँ । आप मेरे ऊपर दया में परायण हो जाइए ।१६। जो एक ही ईश हैं और नित्य ही अपने भक्तों के मनोवाञ्छितों को प्रदान करने वाले हैं वे आप इस भूमि के भार को उतारने के लिए लोकों में विहार और उनकी रक्षा करने के वास्ते अनेक प्रकार के देव-मनुष्य-तिर्यग् तथा जल जीवों में शरीर धारण करके अवतार ग्रहण किया करते हैं ।१७। ऐसे उन प्रभु आपको मैं स्वयं साक्षात् देख रहा हूँ जो अपने ही भक्तों में अनुराग रखने वाले हैं और इन्दिरा आदि में भी अत्यन्त विरक्त रहते हैं तथा व्यभिचार से दुष्ट चित्त वालियों में भी प्रेम से निबद्ध मन वाले हैं ।१८। हे ईश्वर ! जिन आपके स्वरूप की प्राप्ति परम प्रसन्न होते हुए सम्पूर्ण अपने देह-स्त्री-सन्तति और वैभव की ममता का त्यागकर असुर-सुर-नर-किन्नर-और तिर्यग् योनि वाले भी कर चुके हैं ।१९। उन्हीं देवों के भी देव-भजन करने वालों के लिये अभीप्सित प्रदान करने वाले-निरीह गुणों से रहित अर्थात् रजोगुणादि से रहित-न चिन्तन करने के योग्य-अव्यक्त और अघों के समुदायों के विनाश करने वाले-अरण तथा प्रेम के निधान

आपको मैंने आदर से इस समय साक्षात् प्राप्त कर लिया है ।२०। अन्य जन तो नाना भाँति के तपश्चर्या जनित तापों से अपने देह को संतप्त किया करते हैं और विविध यज्ञों के द्वारा आपका यजन किया करते हैं । हे विभो ! इस प्रकार के परम क्लिष्ट विधानों के करते हुए भी वे सब किसी प्रयोजनों की सिद्धि के लिए निबद्ध वासना वाले आपके इस अलौकिक स्वरूप का दर्शन स्वप्न में भी नेत्रों से नहीं किया करते हैं ।२१।

ये वै त्वदीयं चरणं भवभ्रमान्निर्विण्णचित्ता
विधिवत्स्मरंति ।
नमन्ति भक्त्याऽथ समर्चयन्ति वै परस्परं संसदि
वर्णयंति ।।२२
तेनैकजन्मोद्भवपंकभेदनप्रसक्तचित्ता भवतोंऽघ्रिपद्मे ।
तरंति चान्यानपि तारयंति हि भवौषधं नाम
मुधा तवेश ।।२३
अहं प्रभो कामनिबद्धचित्तो भवंतमार्यं विविधप्रयत्नैः ।
आराधये नाथ भवानभिज्ञः किं ते ह
विज्ञाप्यमिहास्ति लोके ।।२४

वसिष्ठ उवाच–

इत्येवं जामदग्न्यं तु स्तुवंतं प्रणतं पुरः ।
उवाचागाधया वाचा मोहयन्निव मायया ।।२५

कृष्ण उवाच–

हंत राम महाभाग सिद्धं ते कार्यमुत्तमम् ।
कवचस्य स्तवस्यापि प्रभावादवधारय ।।२६
हत्वा तं कार्त्तवीर्यं हि राजानं दृप्तमानसम् ।
साधयित्वा पितुर्वैरं कुरु निःक्षत्रियां महीम् ।।२७
मम चक्रावतारो हि कार्त्तवीर्यो धरातले ।
कुलकार्यों द्विजश्रेष्ठ तं समापय मानद ।।२८

जो-जो भी भक्तगण आपके चरणाम्बुजों का इस संसार के बारम्बार जन्म-मरण के घोर श्रम से वैराग्य वाले होकर विधि के साथ स्मरण किया करते हैं—भक्ति की परम पूत भावना से नमन करते हैं और आपके चरणों का भली भाँति अर्चन किया करते हैं तथा परस्पर में एक-दूसरे सभा में इनका वर्णन किया करते हैं ।२२। उस रीति से आपके चरण कमल में एक जन्म में समुत्पन्न पङ्क के भेदन करने में प्रसक्त चित्त वाले भक्तजन स्वयं तर जाते हैं और दूसरों को तार दिया करते हैं। हे ईश ! आपका परम पुनीत नाम निश्चित रूप से इस सांसारिक रोग के दूर करने के लिए अमृत स्वरूप महौषध है ।२३। हे प्रभो ! मैं तो कुछ कामना से निबद्ध चित्त वाला वाला हूँ। मैंने परम श्रेष्ठतम आपकी विधिपूर्वक प्रबल प्रयत्नों के साथ आराधना की थी। हे नाथ ! आप तो स्वयं ही इसके अभिज्ञ हैं अर्थात् आपको सभी कुछ ज्ञात है। आपके लिए इस लोक में क्या बात विज्ञापित करने के योग्य है ? अर्थात् कुछ भी नहीं है ।२४। वसिष्ठ जी ने कहा—इस प्रकार से स्तवन करते हुए अपने चरणों में आगे प्रणत होने वाले परशुराम से माया से मोहित करते हुए के समान ही अगाध वाणी से प्रभु ने कहा था ।२५। श्रीकृष्ण चन्द्र भगवान् ने कहा—बड़ी ही प्रसन्नता की बात है हे राम ! आप महान् भाग्य वाले हो। आपका उत्तम कार्य सिद्ध हो गया है। इसकी सिद्धि कवच और स्तव के ही प्रभाव से हुई है—इसको मन में समझ लीजिए ।२६। बहुत ही दर्प से युक्त मन वाले राजा कार्त्तवीर्य का हनन करके अपने पिता के साथ किये हुए कुत्सित व्यवहार के वैर का बदला लेकर इस भूमि को क्षत्रियों से रहित कर डालिए ।२७। इस धरातल में यह कार्त्तवीर्य मेरे ही चक्र का अवतार है हे मानद द्विजसत्तम ! उसको समाप्त करके आप सफल हो जाइए ।२८।

अद्य प्रभृति लोकेऽस्मिन्नंशावेशेन मे भवान् ।
चरिष्यति यथाकालं कर्त्ता हर्त्ता स्वयं प्रभुः ।।२९

चतुर्विंशे युगे वत्स त्रेतायां रघुवंशजः ।
रामो नाम भविष्यामि चतुर्व्यूहः सनातनः ।।३०

कौसल्यानन्दजनको राज्ञो दशरथादहम् ।
तदा कौशिकयज्ञं तु साधयित्वा सलक्ष्मणः ।।३१

गमिष्यामि महाभाग जनकस्य पुरं महत् ।
तत्रेशचापं निर्भज्य परिणीय विदेहजाम् ।।३२

तदा यास्यन्नयोध्यां ते हरिष्ये तेज उन्मदम् ।

वसिष्ठ उवाच–

कृष्ण एवं समादिश्य जामदग्न्यं तपोनिधिम् ।

पश्यतोऽन्तर्दधे तत्र रामस्य सुमहात्मनः ।।३३

आज से ही आरम्भ करके आप इस लोक में मेरे ही अंश के वेश से चरण करेंगे और यथा समय आप स्वयं ही कर्त्ता और हर्त्ता प्रभु हो जायगे ।२९। हे वत्स ! आगे चौबीसवें युग में अब त्रेतायुग होगा तब मैं राजा रघु के वंश में चतुर्व्यूह सनातन राम नाम वाला होऊँगा अर्थात् मेरा रामावतार होगा ।३०। मैं राजा दशरथ के वीर्य से उसकी रानी कौशल्या के गर्भ से जन्म ग्रहण कर उसके आनन्द को उत्पन्न करने वाला आत्मज होऊँगा । उस समय में लक्ष्मण के साथ कौशिक विश्वामित्र महर्षि के यज्ञ को पूर्ण कराकर जिसमें दानव बाधा डाल रहे थे मैं फिर हे महाभाग ! राजा जनक के महान् नगर को जाऊँगा । वहाँ पर धनुषशाला में समस्त वीर नृपों के मध्य में शिव के धनुष का भञ्जन करके विदेह की पुत्री जानकी के साथ विवाह करूँगा ।३१-३२। उस समय में अपनी राजधानी अयोध्यापुरी के लिये गमन करते हुए आपके उन्मदतेज का हनन कर दूँगा । वसिष्ठ जी ने कहा—इस रीति से भगवान् श्रीकृष्ण ने जमदग्नि के पुत्र परशुराम को अपना आदेश भली-भाँति देकर जो कि राम तप की निधि थे । वहीं पर महात्मा राम के देखते-देखते हुए ही भगवान् कृष्ण अन्तर्हित हो गये थे ।३३।

भार्गव-चरित्र (२)

वसिष्ठ उवाच–

अंतर्द्धानं गते कृष्णे रामस्तु सुमहायशाः ।

समुद्रिक्तमथात्मानं मेने कृष्णानुभावतः ।।१

अकृतव्रणसंयुक्तः प्रदीप्ताग्निरिव ज्वलन् ।

समायातो भार्गवोऽसौ पुरीं माहिष्मतीं प्रति ।।२

यत्र पापहरा पुण्या नर्मदा सरितां वरा ।

पुनाति दर्शनादेव प्राणिनः पापिनो ह्यपि ।।३

पुरा यत्रहरेणापि निविष्टेन महात्मना ।
त्रिपुरस्य विनाशाय कृतो यत्नो महीपते ॥४
तत्र किं वर्ण्यते पुण्यं नृणां देवस्वरूपिणाम् ।
स दृष्ट्वा नर्मदां भूप भार्गवः कुलनन्दनः ॥५
नमश्चकार सुप्रीतः शत्रुसाधनतत्परः ।
नमोऽस्तु नर्मदे तुभ्यं हरदेहसमुद्भवे ॥६
क्षिप्रं नाशय शत्रून्मे वरदा भव शोभने ।
इत्येवं स नमस्कृत्य नर्मदां पापनाशिनीम् ॥७

श्री वसिष्ठ जी ने कहा—भगवान् श्री कृष्ण के अन्तर्द्धान हो जाने पर सुमहान् यश वाले परशुराम ने इसके उपरान्त अपने आपको श्रीकृष्ण चन्द्र के अनुभाव समुद्रिक्त मान लिया था अर्थात् अपने आपको उच्चस्तरीय व्यक्ति मान लिया था ।१। अकृतव्रण से समन्वित होकर जलती हुई अग्नि के ही समान जलता हुआ यह भार्गव राम माहिष्मती नगरी की ओर आ गया था ।२। यह पुरी वहाँ पर थी जहाँ पर समस्त सरिताओं में परम श्रेष्ठ-पुण्य प्रदा और पापों का हरण करने वाली नर्मदा नाम वाली नदी बहती है। यह नदी बहती है। यह नदी केवल दर्शन मात्र ही से महापापी प्राणियों को पुनीत बना दिया करती है ।३। हे महीपते ! प्राचीन काल में त्रिपुर के हनन करने वाले भगवान् शम्भु ने भी जो कि महान् आत्मा वाले हैं यहीं पर निविष्ट होते हुए त्रिपुरासुर के विनाश के लिये यत्न किया था ।४। वहाँ पर जो भी मनुष्य हैं वे महापुण्य शाली देवों के समान स्वरूप वाले हैं। उनके महान् पुण्य का क्या वर्णन किया जावे अर्थात् उनका पुण्य तो अवर्णनीय है। उस भार्गव परशुराम ने जो अपने कुल को अभिनन्दित करने वाले थे, हे भूप ! उस पुण्यमयी परम पावनी नदी का दर्शन किया था ।५। फिर राम ने जो अपने महाशत्रु कार्त्तवीर्य के साधन करने में परायण थे परम-प्रीतिमान् होकर नर्मदा को प्रणाम किया था और सविनय प्रार्थना की थी कि हे नर्मदे ! आप तो साक्षात् भगवान् शङ्कर के देह से शरीर धारण करने वाली हैं। आपकी सेवा में मेरा प्रणिपात स्वीकार होवे ।६। हे शोभने ! मेरा यही विनम्र निवेदन है कि आप मेरे शत्रुओं का बहुत ही शीघ्र विनाश करने की मेरे ऊपर अनुकम्पा कीजिए और मेरे लिए वर-

दान देने वाली हो जाइए। इस प्रकार से अभ्यर्थना करते हुए उस परशुराम ने पापों के विनाश कर देने वाली नर्मदा के लिए नमस्कार की थी।७।

दूतं प्रस्थापयामास कार्त्तवीर्यार्जुनं प्रति।
दूत राजा त्वया वाच्यो यदहं वच्मि तेऽनघ ॥८
न संदेहस्त्वया कार्यो दूतः क्वापि न वध्यते।
यद्बलं तु समाश्रित्य जमदग्निमुनि नृपः ॥९
तिरस्त्वं कृतवान्मूढ तत्पुत्रो योद्धुमागतः।
शीघ्रं निर्गच्छ मंदात्मन्युद्धं रामाय देहि तत् ॥१०
भार्गवं त्वं समासाद्य गच्छ लोकांतरं त्वरा।
इत्येवमुक्त्वा राजानं श्रुत्वा तस्य वचस्तथा ॥११
शीघ्रमागच्छ भद्रं ते विलम्बो नेह शस्यते।
तेनैवमुक्तो दूतस्तु गतो हैहयभूपतिम् ॥१२
रामोदितं तत्सकलं श्रावयामास संसदि।
स राजाग्र्यभक्तस्तु महाबलपराक्रमः ॥१३
चुक्रोध श्रुत्वा वाक्यं तद्दूतमुत्तरमावहत्।
कार्त्तवीर्य उवाच–
मया भुजबलेनैव दत्तदत्तेन मेदिनी ॥१४

उसके अनन्तर वहीं से एक दूत को कार्त्तवीर्यार्जुन के राजा के पास भेजा था। उन्होंने उस दूत से कहा था कि हे दूत! तुमको वहाँ पहुँच कर उस राजा कार्त्तवीर्य से यह कहना चाहिए हे अनघ! अर्थात् निष्पाप! जो कुछ भी मैं इस समय मैं तुमको बोल रहा हूँ।८। ऐसे कहने में तुमको डरना नहीं चाहिए और अपने लिये पाये जाने वाले किसी तरह के दण्ड का हृदय में कुछ भी सन्देह नहीं करना चाहिए क्योंकि राजाओं के यहाँ पर ऐसा नियम है कि जो दूत बनकर आता है वह चाहे कैसी ही सूचना लेकर क्यों न आया हो उसका वध किसी भी दशा में कहीं पर भी नहीं किया जाता है। उस राजा से तुम कह देना कि हे नृप! जिस बल का समाश्रय लेकर तू ने जमदग्नि महामुनि का महान् तिरस्कार किया था हे मूढ़! उसी मुनि का पुत्र तुझसे युद्ध करके बदला लेने के लिए समागत हुआ है। हे मन्द

आत्मा वाले ! अब तनिक भी विलम्ब न करके बहुत ही शीघ्र अपनी नगरी से बाहर निकलकर आ जाओ और राम के साथ युद्ध करो।६-१०। उस भार्गव राम के समीप में पहुँच कर शीघ्र ही दूसरे लोक को गमन कर अर्थात् मृत्यु के मुख में चला जा। इस तरह से स्पष्टतया उस राजा से कह देना और वह इसका उत्तर क्या देता है उसके वचनों का श्रवण करना।११। हे दूत! तुम बहुत ही शीघ्र वापिस आ जाना। तुम्हारा इसमें ही ही कल्याण होगा। इस कार्य में विलम्ब बिल्कुल भी न होवे—इसी में तुम्हारी प्रशंसा है। जब इस रीति से उस दूत से कहा गया था तो वह दूत तुरन्त ही हैहय भूपति के समीप में वहाँ से चला गया था।१२। उस राजा की सभा में उस दूत ने जैसा भी जो कुछ परशुराम के द्वारा गया था वह सब उसी प्रकार से उसने राजा को सुना दिया था। वह राजा कार्त्तवीर्य तो दत्तात्रेय महामुनि का परम भक्त था—इसका भी उसको बड़ा अभिमान था और वह महान् बल-पराक्रम से भी संयुत था।१३। जब उसने दूत के द्वारा परशुराम का कहा हुआ सन्देश सुना तो उसको बहुत ही अधिक क्रोध आ गया था और उसने उस दूत को इसका उत्तर दिया था। कार्त्तवीर्य राजा ने कहा—मैंने इस सम्पूर्ण मेदिनी को दत्तात्रेय के द्वारा प्रदान किये हुए अपनी भुजाओं के ही बल-पराक्रम से अपने अधिकार में किया है।१४।

जित्वा प्रसह्य भूपालान्बद्ध्वानीय निजं पुरम् ।
तद्बलं मयि वर्त्तेत युद्धं दास्ये तवाधुना ॥१५

इत्युक्त्वा विससर्जाशु दूतं हैहयभूपतिः ।
सेनाध्यक्षं समाहूय प्रोवाच वदतांवरः ॥१६

सज्जं कुरु महाभाग सैन्यं मे वीरसंमत ।
योत्स्ये रामेण भृगुणा विलंबो मा भवत्विति ॥१७

एवमुक्तो महावीरः सेनाध्यक्षः प्रतापनः ।
सैन्यं सज्जं विधायाशु चतुरंगं न्यवेदयत् ॥१८

सैन्यं सज्जं समाकर्ण्य कार्त्तवीर्यो नृपो मुदा ।
सूतोपनीतं स्वरथमारुरोह विशांपते ॥१९

तस्य राज्ञः समंतात्तु सामंता मंडलेश्वराः ।
अनेकाक्षौहिणीयुक्ताः परिवार्योपतस्थिरे ॥२०

नागास्तु कोटिशस्तत्र ह्यस्यंदनपत्तयः ।
असंख्याता महाराज सैन्ये सागरसन्निभे ।।२१

मैंने इस समस्त भूमि को जीत लिया है और बलात् समस्त भूपालों को बाँधकर अपने पुर में मैं ले आया हूँ। वह सभी बल मुझमें विद्यमान है। एतएव अब मैं तुम्हारे साथ युद्ध अवश्य करूँगा ।१५। इतना कहकर उस हैहय पति ने उस दूत को अपने यहाँ से शीघ्र ही विदाकर दिया था। और फिर बोलने वालों में परम श्रेष्ठ ने अपनी समस्त सेना के अध्यक्ष को बुला कर उसको आदेश दिया था ।१६। हे महाभाग ! आप तो महान् वीरों के द्वारा माने हुए वीर हैं। इसी समय मेरी अपनी सब सेना को सज्जित करिए। मैं अभी भृगु राम के साथ युद्ध करूँगा अतः इस कार्य में बिलम्ब न होवे ।१७। जब इस रीति से शीघ्र ही सेना के सुसज्जित करने के लिये सेनाध्यक्ष से कहा गया था तो उस प्रतापन नामक सेनाध्यक्ष ने चतुरङ्गिणी सेना को बहुत ही शीघ्र सज्जित करके राजा से निवेदन कर दिया था कि सब सेना प्रस्तुत है ।१८। हे बिशांपते ! जिस समय में कार्त्तवीर्य नृप ने आनन्द से युक्त होते हुए अपनी सेना को पूर्णतया सुसज्जित सुना था तो वे सारथि के द्वारा लाये हुए अपने रथ पर समारूढ़ हो गये थे ।१९। उस राजा कार्त्तवीर्य के चारों ओर अनेक अक्षौहिणीयों से समन्वित होकर बड़े-बड़े सामन्त मंडलेश्वर उस राजा को परिवारित करके स्थित हो गये थे ।२०। हे महाराज ! वहाँ पर सेना में करोड़ों की संख्या में हाथी-अश्व-रथ और पैदल सैनिज थे जिनकी कोई भी संख्या नहीं थी और वह सेना एक महान् सागर के ही सदृश थी ।२१।

दृश्यन्ते तत्र भूपाला नानावंशसमुद्भवाः ।
महावीरा महाकाया नानायुद्धविशारदाः ।।२२
नानाशस्त्रास्त्रकुशला नानावाहगता नृपाः ।
नानालंकारसंयुक्ता मत्ता दानविभूषिताः ।।२३
महामात्रकृतोद्देशा भांति नागा ह्यनेकशः ।
नानाजातिसमुत्पन्ना हयाः पवनरंहसः ।।२४
प्लवंतो भांति भूपाल सादिभिः कृतशिक्षणाः ।
स्यन्दनानि सुदीर्घाणि जवनाश्वयुतानि च ।।२५

चक्रनिर्घोषयुक्तानि प्रावृण्मेघोपमानि च ।
पदातयस्तु राजंते खड्गचर्मधरा नृप ॥२६
अहंपूर्वमहंपूर्वमित्यहंपूर्वकान्विताः ।
यदा प्रचलितं सैन्यं कार्त्तवीर्यार्जुनस्य वै ॥२७
तदा प्राच्छादितं व्योम रजसा च दिशो दश ।
नानावादित्रनिर्घोषैर्हयानां ह्रेषितैस्तथा ॥२८

वहाँ पर उस सेना में अनेक वंशों में समुत्पन्न हुए भूपाल दिखलाई दे रहे थे जो परम महान् वीर-बड़े विशाल शरीर को धारण करने वाले तथा अनेक प्रकार के युद्ध करने के कौशल में विशारद थे ।२२। वे सब नृप विविध प्रकार के शस्त्रों और अस्त्रों के चलाने में प्रवीण थे और बहुत के वाहनों से युक्त थे । ये सब नृप नाना भाँति के अलङ्कारों से भूषित थे । इस सेना में बड़े मदमत्त हाथी थे जो मद से विभूषित थे ।२३। उस सेना में अनेक प्रकार के नाग शोभा दे रहे थे । जिनका उद्देश बड़े-बड़े कार्य करना ही था । विविध प्रकार की शानियों में समुत्पन्न होने वाले अश्व थे जिनकी गति का वेग वायु के ही सदृश था ।२४। हे भूपाल ! उन अश्वों को उनके साईसों के द्वारा ऐसी शिक्षा दी गयी थी कि वे प्लवन करते हुए शोभा दे रहे थे । उस सेना में बड़े-बड़े सुविशाल और लम्बे-चौड़े रथ थे जिनमें ऐसे घोड़े जुड़े हुए थे जो बड़ी ही शीघ्रता से गमन किया करते थे ।२५। रथों के पहियों के चलने के समय में बड़ी जोरदार ध्वनि होती थी जो ऐसे ही प्रतीत हो रहे थे मानों वर्षा काल के मेघ गर्जते चले जा रहे होवें। हे नृप ! जो पैदल सैनिक थे वे सब ढाल और तलवार धारण करने वाले थे ।२६। ये पैदल सैनिक परस्पर में चलने के लिये—मैं आगे चलूँगा—मैं सबसे पहिले बढ़ूँगा—इस प्रकार से सभी आगे-आगे बढ़कर सेना में युद्ध के लिये वीर भावना से समन्वित थे । इस रीति से जिस समय में राजा कार्त्तवीर्य की वह सुमहान् विशाल सेना युद्ध के लिए वहाँ से चल दी थी उस समय से सम्पूर्ण दशों दिशाएँ और आकाश सेना के सैनिकों और उनके वाहनों के चलने से उठकर उड़ी हुई धूलि से आच्छादित हो गये थे अर्थात् चारों ओर रज छा गयी थी । सेना के प्रस्थान के समय में अनेक तरह के बाजे बज रहे थे इनके घोष से तथा अश्वों के हिन-हिनाने से आकाश मण्डल व्याप्त हो गया था अर्थात् नभ में गूँज उठ रही थी ।२७-२८।

गजानां बृंहितै राजन्व्याप्तं गगनमंडलम् ।
मार्गे ददर्श राजेंद्रो विपरीतानि भूपते ॥२९
शकुनानि रणे तस्य मृत्युदौत्यकराणि च ।
मुक्तकेशां छिन्ननासां रुदतीं च दिगंबराम् ॥३०
कृष्णवस्त्रपरीधानां वनितां स ददर्श ह ।
कुचैलं पतितं भग्नं नग्नं काषायवाससम् ॥३१
अंगहीनं ददर्शासौ नरं दुःखितमानसम् ।
गोधां च शशकं शल्यं रिक्तकुम्भं सरीसृपम् ॥३२
कार्पासं कच्छपं तैलं लवणं चास्थिखंडकम् ।
स्वदक्षिणे शृगालं च कुर्वंतं भैरवं रवम् ॥३३
रोगिणं पुल्कसं चैव वृषं च श्येनभल्लुकौ ।
दृष्ट्वापि प्रययौ योद्धुं कालपाशावृतो हठात् ॥३४
नर्मदोत्तरतीरस्थो ह्यकृतव्रणसंयुतः ।
वटच्छायासमासीनो रामोऽपश्यदुपागतम् ॥३५

हे राजन् ! हाथियों की चिंघाड़ों से सम्पूर्ण गगन मण्डल भर कर गूँज गया था। हे भूपते ! जिस समय वह राजेन्द्र अपनी महती सेना को लेकर परशुराम से युद्ध करने के लिए गमन कर रहा था उस समय में मार्ग में विपरीत बहुत से शकुन देखे थे जो कि रण स्थल में मृत्यु के होने की सूचना देने वाले दूतों के ही समान थे। यहाँ से आगे उन बुरे असगुनों के विषय में बतलाया जाता है जो-जो उस राजा ने मार्ग में देखे थे–उस राजा ने एक ऐसी नारी को देखा था जो अपने शिर के केशों को खोले हुई थी—वह रुदन कर रही थी और बिल्कुल नग्न थी।२९-३०। वह काले वर्ण का परिधान की हुई थी। इसका तात्पर्य यह है कि ऐसी स्त्री मार्ग में मिले तो बड़ा ही बुरा सगुन है। ऐसा पुरुष भी यदि मिल जावे तो वह भी बुरा सगुन है जैसा उस कार्त्तवीर्य ने देखा था। उसे एक ऐसा पुरुष दिखाई दिया था जो बहुत ही मैले–कुचैले वस्त्र पहिने हुए था—भूमि पप पड़ा था—उनका शरीर जीर्ण-शीर्ण था और काषाय (गेहुआ) रङ्ग के वस्त्र धारण किये हुए था।३१। वह पुरुष अङ्गों से हीन था और उनके मन में बड़ा ही

अधिक दु:ख था। काना-नकटा-लूला-लंगड़ा मनुष्य जो किसी भी अपने अङ्ग से हीन हो वह शुभ कार्य के करने के समय में मार्ग में मिल जावे तो असगुन होता है। मार्ग से तात्पर्य अपने स्थान से निकलते ही मिल जाने से है। उस राजा ने इसके अतिरिक्त अन्य भी बुरे-बुरे असगुन थे। उनके नाम बताये जाते हैं—उसने गोधा (गोह)—शशक (खरगोश)—शल्य जल से रिक्त कलश और सरीसृप को देखा था।३२। उसने फिर कपास-कच्छ-तैल-लवण-हड्डी का टुकड़ा और अपनी दाहिनी ओर भैरव शब्द करते हुए शृंगाल को देखा था।३३। इनमें से कोई भी एक यदि मार्ग में गृह से निकलते ही देखने को मिल जाता है तो असगुन होता है जिसमें उस राजा ने इन सभी बुरे सगुनों को देखा था। फिर राजा ने पुल्कस–रोगी मनुष्य-वृष-श्येन और भल्लुक को देखा था। इन सब बुरे-बुरे असुगुनों को बार-बार देखकर भी हठ के वश वह राजा युद्ध करने के लिये चल ही दिया था क्योंकि वह तो काल के पाश से समावृत था।३४। राम अकृतव्रण के सहित नर्मदा नदी के उत्तर की ओर तट पर स्थित था और एक वट वृक्ष की छाया का समाश्रय ग्रहण कर रक्खा था। उस परशुराम ने इस राजा कार्त्तवीर्य को सेना सहित आया हुआ देख लिया था।३५।

कार्त्तवीर्यं नृपवरं शतकोटिनृपान्वितम्।
सहस्राक्षौहिणीयुक्तं दृष्ट्वा हृष्टो बभूव ह ॥३६

अद्य मे सिद्धिमायातं कार्यं चिरसमीहितम्।
यद्दृष्टिगोचरो जात: कार्त्तवीर्यो नृपाधम: ॥३७
इत्येवमुक्त्वा चोत्थाय धृत्वा परशुमायुधम्।
व्यंजृभतारिनाशाय सिंह: क्रुद्धो यथा तथा ॥३८
दृष्ट्वा समुद्यतं रामं सैनिकानां वधाय च।
चकंपिरे भृशं सर्वे मृत्योरिव शरीरिण: ॥३९
स यत्र यत्रानिलरंहसा भृगुश्चिक्षेप रोषेण युत: परश्वधम्।
ततस्ततश्छिन्नभुजोरुकंधरा नागा हया: शूरनरा
निपेतु: ॥४०

यथा गजेंद्रो मदयुक्समंततो नालं वनं मर्द्दयति प्रधावन्।

तथैव रामोऽपि मनोनिलौजा विमर्द्यामास
नृपस्य सेनाम् ।।४१

दृष्ट्वा ममिस्थं प्ररंतमोजसा रामं रणे शस्त्रभृतां वरिष्ठम् ।
उद्यम्य चाप महदास्थितो रथं सज्यं च कृत्वा
किल मत्स्यराजः ।।४२

परशुराम ने श्रेष्ठ नृप कार्त्तवीर्यार्जुन को देखा था जो सौ करोड़ राजाओं के साथ संयुत था और सहस्र अक्षौहिणी सेनाएं भी उसके साथ थीं—ऐसे विशाल समुदायों को देखकर परशुराम मन में बहुत ही प्रसन्न हुए थे। हर्षातिरेक का कारण यही था कि जब मेदिनी को क्षत्रियों से हीन ही करना है तो इस समय में एक ही साथ बहुत से क्षत्रिय समागत हो गये हैं।३६। परशुराम ने अपने मन में विचार किया कि बहुत समय से चाहा हुआ मेरा कार्य आज सिद्धि को प्राप्त हुआ है कि यह महान् अधम नृप कार्त्तवीर्य मेरी दृष्टि के सामने आ गया है।३७। अपने मन में यह कहकर वह वहाँ से उठकर खड़े हो गये थे और अपने आयुध परशु को धारण कर लिया था। फिर अपने शत्रु के विनाश करने के लिए परशुराम ने गर्जना की थी जिस तरह से क्रुद्ध हुआ सिंह गर्जा करता है।३८। फिर समस्त है।३८। फिर समस्त सैनिकों के वध करने के लिए समुद्यत हुए परशुराम को देखकर सभी मृत्यु से शरीर धारियों के ही समान बहुत ही अधिक काँप गये थे।३९। उन महावीर परशुराम ने रोष से युक्त होकर जहाँ-जहाँ पर अपने परशु को फैंककर प्रहार किया था जो कि वायु के वेग के ही समान किया गया था वहाँ-वहाँ पर ही कटे हुए बाहु-वक्षःस्थल और गरदन वाले करी—अश्व और शूर वीर मनुष्य मरकर भूमि पर गिर गये थे।४०। जिस तरह से भद्र से ग्रस्त कोई गजेन्द्र दौड़ लगाता हुआ नाल वनका मर्दन कर दिया करता है ठीक उसी भाँति से परशुराम ने भी मन और वायु के सदृश ओज से युक्त होकर उस नृप की सेना का मर्दन कर कर दिया था।४१। उस रणस्थल में इस रीति से अपने ओज के द्वारा प्रहार करते हुए शस्त्रधारियों में परमश्रेष्ठ परशुराम को देखकर मत्स्यराज नामक राजा ने अपने धनुष को उठाया था तथा फिर वह अपने विशाल रथ पर समास्थित हो गया था।४२।

आकृष्य बाणाननलोग्रतेजसः समाकिरन्भार्गवमाससाद ।
दृष्ट्वा तमायांतमथो महात्मा रामो
गृहीत्वा धनुषं महोग्रम् ॥४३
वायव्यमस्त्रं विदधे रुषाप्लुतो निवारयन्मंगलबाणवर्षम् ।
स चापि राजाऽतिबलो मनस्वी ससर्ज रामाय तु
पर्वतास्त्रम् ॥४४
तस्तंभ तेनातिबलं तदस्त्रं वायव्यमिष्वस्त्रविधानदक्षः ।
रामोऽपि तत्रातिबलं विदित्वा तं मत्स्यराजं
विविधास्त्रपूगैः ॥४५
किरंतमाजौ प्रसभं मुमोच नारायणास्त्रं विधिमन्त्रयुक्तम् ।
नारायणास्त्रे भृगुणा प्रयुक्ते रामेण राजन्नृपतेर्वधाय ॥४६
दिशस्तु सर्वाः सुभृशं हि तेजसा प्रजज्वलुर्मत्स्यपतिश्चकंपे ।
रामस्तु तस्याथ विलक्ष्य कम्पं बाणैश्चतुर्भि-
र्निजघान वाहान् ॥४७
शरेण चैकेन ध्वजं महात्मा चिच्छेद चापं च शरद्वयेन ।
बाणेन चैकेन प्रसह्य सारथिं निपात्य
भूमौ रथमार्दयत्त्रिभिः ॥४८
त्यक्त्वा रथं भूमिगतं च मंगलं परश्वधेनाशु जघान मूर्द्धनि ।
स भिन्नशीर्षो रुधिरं वमन्मुहुर्मूर्च्छामवाप्याथ
ममार च क्षणात् ॥४९
तत्सैन्यमस्त्रेण च संप्रदग्धं विनाशमायादथ भस्मसात्क्षणात् ।
तस्मिन्निपतिते राज्ञि चन्द्रवंशसमुद्भवे ॥५०
मंगले नृपतिश्रेष्ठे रामो हर्षमुपागतः ॥५१

उस राजा मत्स्यराज ने अपने धनुष की प्रत्यञ्चा को खींचकर उसने अग्नि के समान उग्र तेज वाले बाणों की चारों ओर भली-भाँति वर्षा करते हुए भार्गव के समीप में वह प्राप्त हो गया था। इसके अनन्तर

महात्मा परशुराम ने भी अपने ऊपर आक्रमण करके आये हुए उसको देख कर अपने महान उस धनुष को ग्रहण कर लिया था ।४३। राम ने भी क्रोध से आप्लुत होकर उस मंगल वाणों की वृष्टि का निवारण करते हुए अपने वायव्य कस्त्र का प्रयोग किया था । वह राजा मत्स्यराज भी बहुत अधिक बली था और बड़ा मनस्वी था उसने परशुराम के ऊपर पर्वतास्त्र का प्रयोग किया था अर्थात् राम के ऊपर छोड़ दिया था ।४४। वाणों और अस्त्रों के विधान में परम दक्ष उसने उस राम के अति बलशाली वायव्य अस्त्र को स्तम्भित कर दिया था अर्थात् जहाँ की तहाँ रोककर क्रियाहीन बना दिया था । परशुराम ने भी वहाँ पर उस मत्स्यराज को अत्यधिक बल-विक्रम वाला समझकर विविध भाँति के अस्त्रों के समुदाओं की मत्स्यराज पर वर्षा करते हुए फिर रणभूमि में विधि के साथ मन्त्र से युक्त बलपूर्वक नारायणास्त्र को छोड़ दिया था । हे राजन् ! उस राजा के वध के लिए भृगुराम के द्वारा नारायणास्त्र का प्रयोग करने पर सर्वत्र दाह उत्पन्न हो गया था ।४५-४६। उस अस्त्र के तेज से समस्त दिशाएं बहुत ही अधिक प्रज्वलित हो गयी थी और वह मत्स्य देश का राजा भी उस भीषण दशा को देखकर काँप गया था । परशुराम ने जब उस राजा के कम्प को देखा तो फिर उसमें चार वाणों से उसके वाहनों का हनन किया था ।४७। उस महात्मा ने एक वाण से उसकी ध्वजा को काट दिया था और दोशरों से धनु का छेदन किया था तथा एक वाण से बल पूर्वक सारथि का निपातन करके तीन वाणों से भूमि पर रथ को चूर्ण कर दिया था ।४८। अपने रथ का त्याग करके भूमि पर स्थित मंगल के मस्तक में शीघ्र ही परशु से प्रहार करके उसका हनन कर दिया था । जब उसका शिर भग्न हो गया था तो वह रुधिर का वमन करता हुआ बार-बार मूर्च्छा प्राप्त करके एक ही क्षण में मृत्यु के मुख में चला गया था ।४९। उसकी समस्त सेना भी अस्त्र से प्रदग्ध हो गयी थी और क्षण भर में ही इसके उपरान्त भस्मसात् होकर विनाश को प्राप्त हो गयी थी । चन्द्रवंश में समुत्पन्न नृपों में श्रेष्ठ उस राजा मङ्गल के निपतित हो जाने पर राम को परम हर्ष प्राप्त हुआ ।५०-५१।

—x—

भार्गव-चरित्र (३)

वसिष्ठ उवाच—

मत्स्यराजे निपतिते राजा युद्धविशारदः ।
राजेंद्रान्प्रेरयामास कार्त्तवीर्यो महाबलः ॥१
बृहद्बलः सोमदत्तो विदर्भो मिथिलेश्वरः ।
निषधाधिपतिश्चैव मगधाधिपतिस्तथा ॥२
आययुः समरे योद्धुं भार्गवेंद्रेण भूपते ।
वर्षतः शरजालानि नानायुद्धविशारदाः ॥३
वीराभिमानिनः सर्वे हैहयस्याज्ञया तदा ।
पिनाकहस्तः स भृगुर्ज्वलदग्निशिखोपमः ॥४
चिक्षेप नागपाशं च अभिमंत्र्य शरोत्तमम् ।
तदस्त्रं भार्गवेन्द्रेण क्षिप्तं संग्राममूर्द्धनि ॥५
चकर्त गारुडास्त्रेण सोमदत्तो महाबलः ।
ततः क्रुद्धो महाभागो रामः शत्रुविदारणः ॥६
रुद्रदत्तेन शस्त्रेण सोमदत्तं जघान ह ।
बृहद्बलं च गदया विदर्भं मुष्टिना तथा ॥७

वसिष्ठजी ने कहा—मत्स्यराज के मर जाने पर युद्ध करने की कला के महामनीषी—महान बलशाली कार्त्तवीर्य ने फिर वहाँ रणभूमि में अन्य राजेन्द्रों को भेजा था ।१। मिथिला का स्वामी विदर्भ सोमदत्त बहुत अधिक बल वाला था । निषध देश का अधिपति और मगध देश का स्वामी—ये सब हे भूपते ! भार्गवेन्द्र परशुराम के साथ युद्ध करने के लिए समागत हो गये थे । ये सभी अनेक प्रकार के युद्ध करने में परम पण्डित थे और ये वहाँ अपने बाणों के जालों की वर्षा कर रहे थे ।२-३। ये सभी वीरता के अभिमान रखने वाले थे और उस समय में राजा हैहय की आज्ञा पाकर ही युद्ध करने के लिए आये थे । वह भृगु परशुराम अपने हाथ में धनुष ग्रहण किये थे तथा जलती हुई अग्नि के समान परम तेजस्वी थे ।४। भार्गवेन्द्र परशुराम ने नागपाश नामक एक अस्त्र या उसके उत्तम शर को अभिमन्त्रित करके

संग्राम में फेंका था ।५। किन्तु भार्गवेन्द्र के द्वारा प्रक्षिप्त किये उस अस्त्र को महा बलवान् सोमदत्त ने काट दिया था और उसको अपने गरुड़ास्त्र से ही खण्डित कर दिया था। इसके अनन्तर महाभाग राम अत्यन्त क्रुद्ध हुए थे जो कि अपने शत्रुओं का विदारण करने वाले थे ।६। इसके पश्चात् परशुराम ने भगवान रुद्र के द्वारा दिये हुए शूल में सोमदत्त का हनन कर दिया था—गदा से बृहद्बल का और मुष्टि के प्रहार से विदर्भ का निपातन कर दिया था ।७।

मैथिलं मुद्गरेणैव शक्त्या च निषधाधिपम् ।
मागधं चरणाघातैरस्त्रजालेन सैनिकान् ।।८
निहत्य निखिलां सेनां संहाराग्निसमीरणे ।
दुद्राव कार्त्तवीर्यं च जामदग्न्यो महाबलः ।।९
दृष्ट्वा तं योद्धुमायांतं राजानोऽन्ये महारथाः ।
कार्य्याकार्यविधानज्ञाः पृष्ठे कृत्वा च हैहयम् ।।१०
रामेण युयुधुश्चैव दर्शयंतश्च सौहृदम् ।
कान्यकुब्जाश्च शतशः सौराष्ट्राऽवंतयस्तथा ।।११
चक्रुश्च शरजालानि रामस्य च समंततः ।
शरजालावृतस्तेषां रामः संग्राममूर्द्धनि ।।१२
न चादृश्यत राजेंद्र तदा स त्वकृतव्रणः ।
सस्मार रामचरितं यदुक्तं हरिणेन वै ।।१३
कुशलं भार्गवेंद्रस्य याचमानो हरिं मुनिः ।
एतस्मिन्नेव काले तु रामः शस्त्रास्त्रकोविदः ।।१४

राम ने मिथिला के नृप का हनन मुद्गर के द्वारा और शक्ति से निषध देश के नृप का वध तथा मगधदेशाधिपति का निपातन चरणों के आघातों से एवं उनके सब सैनिकों का वध अपने अनेक अस्त्रों के प्रहारों से कर दिया ।८। इस रीति से परशुरामजी ने वहाँ पर स्थित सम्पूर्ण सेना को मारकर महान् बलवान् जामदग्नि के पुत्र ने उस संहार की अग्नि के समीरण में राजा कार्त्तवीर्य पर दौड़कर आक्रमण किया था ।९। उस समय में महारथी अन्य राजाओं ने जो कि कार्य और अकार्य के विधान के ज्ञाता थे जब

यह देखा कि परशुराम कार्त्तवीर्य से युद्ध करने के लिए आ रहे हैं तो उन सबने उस कार्त्तवीर्य को अपने पीठ पीछे कर दिया था।१०। और हैहय राजा के प्रति अपना सौहार्द दिखलाते हुए वे सब परशुराम के साथ युद्ध कर रहे थे। इन राजाओं में कान्य कुब्ज-सौराष्ट्र और सैंकड़ों ही अवन्ति के नृप थे।११। इन सभी ने परशुराम पर सभी ओर अपने शरों के जालों की ऐसी घोर वर्षा की थी कि उस समय में परशुराम उनके बाणों से उस संग्राम भूमि में चारों ओर से ढक गये थे।१२। हे राजेन्द्र ! इस बाणों की वृष्टि से राम दिखाई नहीं दे रहे थे। तब उस अकृतव्रण ने उस श्रीराम के चरित का स्मरण किया था जो हरिण के द्वारा कहा गया था।१३। उस मुनि ने भगवान् श्रीहरि से भार्गवेन्द्र परशुराम के कुशल रहने की याचना की थी। इतने ही बीच में ऐसा हुआ कि समस्त शस्त्रों और अस्त्रों के महा-पण्डित परशुराम ने अपने महान् आयुधों का प्रयोग किया था।१४।

विधूय शरजालानि वायव्यास्त्रेण मंत्रवित् ।
उदतिष्ठद्रणाकांक्षी नीहारादिव भास्करः ॥१५
त्रिरात्रं समरे रामस्तैः सार्द्धं युयुधे बली ।
द्वादशाक्षौहिणीस्तत्र चिच्छेद लघुविक्रमः ॥१६
रम्भास्तम्भवनं यद्वत् परश्वधवरायुधः ।
सर्वांस्तान्भूपवर्गांश्च तदीयाश्च महाचमूः ॥१७
दृष्ट्वा विनिहतां तेन रामेण सुमहात्मना ।
आजगाम महावीर्यः सुचन्द्रः सूर्यवंशजः ॥१८
लक्षराजन्यसंयुक्तः सप्ताक्षौहिणिसंयुतः ।
तत्रानेकमहावीरा गर्जतस्तोयदा इव ॥१९
कंपयंतो भुवं राजन् युयुधुर्भार्गवेण च ।
तैः प्रयुक्तानि शस्त्राणि महास्त्राणि च भूपते ॥२०
क्षणेन नाशयामास भार्गवेन्द्रः प्रतापवान् ।
गृहीत्वा परशुं दिव्यं कालांतकयमोपमम् ॥२१

मन्त्रों के परमज्ञाता राम ने अपने अस्त्र के द्वारा समस्त शरों के समुदाय को दूर करके कुहरे से निकले हुए भगवान् सूर्य देवकी भाँति वहाँ

पर रण करने की इच्छा वाले उठकर खड़े हो गये थे ।१५। महान् बलवान् उन परशुराम ने उन सबके साथ तीन दिन और रात्रि पर्यन्त समराङ्गण में घोर युद्ध किया था । और परम लघु विक्रम वाले परशुराम ने वहाँ पर बारह अक्षौहिणी सेनाओं का छेदन कर दिया था अर्थात् सबको काटकर मार गिराया था ।१६। जिस तरह से केलाओं के वन को काटकर गिरा दिया जाया करता है उसी भाँति से परम श्रेष्ठ परशुराम ने अपने परशु से उन सब भूपों को और उनकी बड़ी भारी सेनाओं को काटकर मार दिया था । जब सूर्यवंश में समुत्पन्न महान् वीर्य वाले सुचन्द्र नामक नृप ने यह देखा था कि उस महात्मा राम ने सब सेना को मार गिराया है तो वह वहाँ पर युद्ध करने के लिए स्वयं सामने आगया था ।१८-१६। उसके साथ लाखों अन्य राजा थे और सात अक्षौहिणी सेना भी थी। उनमें बहुत से ऐसे महान् वीर थे जो घनघोर मेघों के ही समान गर्जन कर रहे थे ।१६। हे राजन् ! वे अपनी गर्जना-तर्जना से सम्पूर्ण भूमि के प्राणियों को कंपा रहे थे और उन्होंने वहाँ आकर परशुराम के साथ घोर युद्ध किया था । हे भूपते ! उन्होंने अनेक शस्त्रों और अस्त्रों का वहाँ पर प्रयोग किया था ।२०। तब एक ही क्षण में महान् प्रताप वाले परशुराम ने कालान्तक यमराज के सदृश अपने परम दिव्य परशु (फर्सा) का ग्रहण करके उन सबका विनाश कर दिया था ।२१।

कालयन्सकलां सेनां चिच्छेद भृगुनन्दनः ।
कर्षकस्तु यथा क्षेत्रे पक्वं धान्यं तथा तृणम् ॥२२
निःशेषयति दात्रेण तथा रामेण तत्कृतम् ।
लक्षराजन्यसैन्यं तद्दृष्ट्वा रामेण दारितम् ॥२३
सुचन्द्रः पृथिवीपालो युयुधे संगरे नृप ।
तावुभौ तत्र संक्षुब्धौ नानाशस्त्रास्त्रकोविदौ ॥२४
युयुधाते महावीरौ मुनीशनृपतीश्वरौ ।
रामोऽस्मै यानि शस्त्राणि चिक्षेपास्त्राणि चापि हि ॥२५
तानि सर्वाणि चिच्छेद सुचंद्रो युद्धपंडितः ।
ततः क्रुद्धो रणे रामः सुचंद्रं पृथिवीश्वरम् ॥२६

कृतप्रतिकृताभिज्ञं ज्ञात्वोपस्पृश्य वार्यथ ।
नारायणास्त्रं विशिखे संदधे चानिवारितम् ।।२७
तदस्त्रं शतसूर्याभं क्षिप्तं रामेण धीमता ।
दृष्टोत्तीर्यं रथात्सद्यः सुचंद्रः प्रणनाम ह ।।२८

उस सम्पूर्ण सेना को काटते हुए भृगुनन्दन ने छिन्न-भिन्न करके मार गिराया था जिस तरह से कोई खेतिहर किसान अपने खेत में पकी हुई फसल को तथा घास फूँस को काट दिया करता है ।२२। कृषक अपनी दराँत से जैसे काट देता है वैसे ही परशुरामजी ने उस सेना को काट दिया था । जब लाखों राजाओं की सेना को राम के परशु के द्वारा विदीर्ण हुई देखा गया था ।२३। तो हे नृप ! राजा सुचन्द्र ने समर में परशुराम के साथ स्वयं ही समागत होकर युद्ध किया था । वे दोनों ही बहुत अधिक क्षुब्ध हो रहे थे और दोनों अनेक शस्त्रास्त्रों के प्रयोग करने में बहुत ही कुशल पंडित थे ।२४। वे दोनों मुनीन्द्र और राजा महान् वीर थे और और युद्ध कर रहे थे । परशुराम ने जिन-जिन शस्त्रों तथा अस्त्रों का भी उस पर प्रक्षेप किया था ।२५। युद्ध में परम प्रवीण पण्डित उस सुचन्द्र नृपने उन सभी शस्त्रास्त्रों को काट गिया था । इसके अनन्तर परशुराम को उस रण में बहुत अधिक क्रोध आ गया था और परशुराम को ऐसा ज्ञान हुआ था कि यह सुचन्द्र नृप ऐसा कुशल है कि जिसका भी इस पर प्रयोग किया जाता है उसी का प्रतिकार करना यह अच्छी तरह से जानता है तो उस समय में जल का उपस्पर्शन किया था और फिर विशिख नारायण अस्त्र का सन्धान किया था। जो कि किसी भी प्रकार से निवारित नहीं हो सकता था ।२६-२७। वह नारायणास्त्र सैंकड़ों सूर्यों की आभा वाला था जिसका कि प्रक्षेप बुद्धिमान् परशुराम ने सुचन्द्र पर किया था । उस समय में इस नारायणास्त्र को देख कर सुचन्द्र नृप तुरन्त ही अपने रथ से नीचे उतर गया था और उसने उस अस्त्र को प्रणाम किया था ।२८।

सर्वास्त्रपूज्यं तच्चापि नारायणविनिर्मितम् ।
तमेवं प्रणतं त्यक्त्वा ययौ नारायणांतिकम् ।।२९
विस्मितोऽभूत्तदा रामः समरे शत्रुसूदनः ।
दृष्ट्वा व्यर्थं महास्त्रं तद्भूपं स्वस्थं विलोक्य च ।।३०

राम: शक्ति च मुसलं तोमरं पट्टिशं तथा ।
गदां च परशुं कोपाच्चिक्षेप नृपमूर्द्धनि ।।३१
जग्राह तानि सर्वाणि सुचंद्रो लीलयैव हि ।
चिक्षेप शिवशूलं च रामो नृपतये यदा ।।३२
बभूव पुष्पमालां च तच्छूलं नृपतेर्गले ।
ददर्श च पुरस्तस्य भद्रकालीं जगत्प्रसूम् ।।३३
वहंतीं मुंडमालां च विकटास्यां भयंकरीम् ।
सिंहस्थां च त्रिनेत्रां च त्रिशूलवरधारिणीम् ।।३४
दृष्ट्वा विहाय शस्त्रास्त्रं नमस्कृत्य समैडत ।
राम उवाच–
नमोस्तु ते शंकरवल्लभायै जगत्सवित्र्यै समलंकृतायै ।।३५

और वह अस्त्र भी समस्त अस्त्रों में परम पूज्य था क्योंकि साक्षात् भगवान् नारायण ने ही उसका निर्माण किया था । जब उस सुचन्द्र को इस भाँति से प्रणाम करते हुए देखा तो वह अस्त्र उसको छोड़कर भगवान् नारायण के ही समीप में चला गया था ।२९। अपने शत्रुओं के विनाश करने वाले परशुराम को उस समय में समर स्थल में बहुत ही अधिक विस्मय हो गया था जबकि उन्होंने यह देखा था कि उनके द्वारा प्रयोग किया हुआ वह महान् अस्त्र भी व्यर्थ हो गया था और कुछ भी शत्रु का न करके उसी रूप में स्वस्थ वह बना रहा था ।३०। फिर राम ने अनेक शक्ति–मुसल–तोमर–पट्टिश–गदा और परशु आदि का उस सुचन्द्र पर प्रक्षेप बड़े ही क्रोध पूर्वक किया था ।३१। किन्तु इन सबका कुछ भी प्रभाव उस पर नहीं हुआ था और उसने उन सबको यों ही लीला से ही ग्रहण कर लिया था । जिस समय में परशुराम ने उस सुचन्द्र पर शिवशूल का प्रक्षेप किया था ।३२। तो वह शिव शूल भी आकर उस राजा के गले में पुष्पों की माला होकर गिर गया था । उस समय में परशुराम ने यह देखा था कि उसके आगे समस्त जगत् की जननी भद्रकाली संस्थित हो रही है ।३३। वह भद्रकाली देवी नरमुण्डों की माला कण्ठ में पहिने हुई थीं तथा उसका मुख बहुत ही भीषण था और सबको भय देने वाली थी । वह एक सिंह के ऊपर सवार रही थी—तीन उसके नेत्र थे और हाथों में त्रिशूल धारण कर रही थी

।२४। ऐसी भगवती भद्रकाली का दर्शन करके परशुराम जी ने अपने सभी शस्त्र-अस्त्रों का परित्याग कर दिया था और देवी के चरणों में प्रणाम करके फिर उसकी भली भाँति स्तुति की थी। परशुराम ने कहा—आप तो भगवान् शङ्कर की प्रियवल्लभा हैं और इस सम्पूर्ण जगत् को जन्म देने वाली हैं। आपके लिए मेरा नमस्कार है।३५।

नानाविभूषाभिरिभारिगायै प्रपन्नरक्षाविहितोद्यमायै ।
दक्षप्रसूत्यै हिमवद्भवायै महेश्वराद्धांगसमास्थितायै ।।३६

काल्यै कलानाथकलाधरायै भक्तप्रियायै भुवनाधिपायै ।
ताराभिधायै शिवतत्परायै गणेश्वराराधितपादुकायै ।।३७

परात्परायै परमेष्ठिदायै तापत्रयोन्मूलनचिंतनायै ।
जगद्धितायास्तपुरत्रगायै बालादिकायै त्रिपुराभिधायै ।।३८

समस्तविद्यासुविलासदायै जगज्जनन्यै निहिताहितायै ।
वक्राननायै बहुसौख्यदायै विध्वस्तनानासुरदानवायै ।।३९

वराभयालंकृतदोर्लतायै समस्तगीर्वाणनमस्कृतायै ।
पीतांबरायै पवनाशुगायै शुभप्रदायै शिवसंस्तुतायै ।।४०

नागारिगायै नवखण्डपायै नीलाचलाभांगलसत्प्रभायै ।
लघुक्रमायै ललिताभिधायै लेखाधिपायै लवणाकरायै ।।४१

लोलेक्षणायै लयवर्जितायै लाक्षारसालंकृतपंकजायै ।
रमाभिधायै रतिसुप्रियायै रोगापहायै रचिताखिलायै ।।४२

आप विविध प्रकार के आभूषणों से समलंकृता हैं और इभारि के द्वारा गान की गयी हैं। आपकी शरणागति में प्रपन्न हो जाते हैं उनकी सुरक्षा के लिये आप उद्यम करने वाली हैं। आपने प्रजापति दक्ष के घर में जन्म धारण किया है और हिमवान् के यहाँ भी आप समुत्पन्न हुई हैं। आप साक्षात् महेश्वर की पाणिपरिणीता प्रिय पत्नी बनकर उनके अर्द्धाङ्ग में समास्थित हुई है।३६। आप कला नाथ की कला के धारण करने वाली हैं—अपने भक्तों की प्रिय कालो हैं और समस्त भुवनों की स्वामिनी हैं। तारा नाम वाली हैं—भगवान् शिव को सेवा में सर्वदा तत्पर रहा करती हैं

और विश्वेश्वर गणेश आपकी पादुकाओं का समाराधन किया करते हैं ।३७। आप पर से भी परा हैं—परमेष्ठी के पद को प्रदान करने वाली हैं और आध्यात्मिक-आधिदैविक-आधिभौतिक—इन तीनों प्रकार के तापों का उन्मूलन करने वाला आपका चिन्तन हुआ करता है—इस जगत् के हित के लिए ही आपने त्रिपुरासुर को निहत किया था । बाला से आदि लेकर अनेक आपके शुभ नाम हैं तथा आपका परम शुभ त्रिपुरा—यह भी नाम है। ऐसी आपके लिये मेरा प्रणाम है ।३८। आप समस्त विद्याओं के सुविलास के प्रदान करने वाली हैं—इस सम्पूर्ण जगत् के जनन देने वाली जननी हैं—आप अहित करने वाले शत्रुओं को निहत कर देने वाली हैं—आप बकानना है अर्थात् बगुलामुखी हैं—आपके अनेक असुरों और दानवों का निहनन किया है और अत्यधिक सौख्य प्रदान किया है ।३९। आपके कर कमलों में वरदान और अभयदान रहते हैं और इनसे आपकी भुजलताएँ भूषित रहा करती हैं—समस्त देवगणों के द्वारा आपके चरण कमल वन्दित हैं—आप पीताम्बरा अर्थात् पीतवर्ण के वस्त्र धारण करने वाली हैं—आप पवन के ही समान अपने भक्तों की पीड़ा दूर करने के लिये शीघ्र गमन करने वाली हैं—आपका संस्तवन भगवान् शङ्कर भी किया करते हैं तथा आप आप सबको शुभ प्रदान करने वाली है—ऐसी आपकी चरण सेवा में मेरा अनेक बार प्रणिपात है ।४०। आप नागारि के द्वारा गान की गयी हैं—नव खण्डों वाले विश्व का पालन एवं रक्षण करने वाली हैं तथा नीलाचल की आभा वाले अंगों की प्रभा से शोभित हैं । आप लघुक्रमा—ललिता नाम धारिणी—लेखाधिपा और लवणाकारा हैं—।४१। आपके नेत्र परमाधिक चञ्चल हैं-आप लय से वर्जित हैं और आपके चरणों में लाक्षारस लगा हुआ है जिससे आपके चरण कमल समलंकृत हैं । आपका शुभ नाम रमा है—आप सुरति से प्यार करने वाली हैं—आप सभी रोगों का अपहरण करने वाली हैं और आपने ही सबकी रचना की है—ऐसी आपके लिए मेरा प्रणाम निवेदित है ।४२।

राज्यप्रदायै रमणोत्सुकायै रत्नप्रभायै रुचिरांबरायै ।
नमो नमस्ते परतः पुरस्तात् पार्श्वाधरोर्ध्वं च
नमो नमस्ते ।।४३

सदा च सर्वत्र नमो नमस्ते नमो नमस्तेऽखिलविग्रहायै ।
प्रसीद देवेशि मम प्रतिज्ञां पुरां कृतां पालय भद्रकालि ।।४४

त्वमेव माता च पिता त्वमेव जगत्त्रयस्यापि नमो नमस्ते ।

वसिष्ठ उवाच–

एवं स्तुता तदा देवी भद्रकाली तपस्विनी ॥४५

उवाच भार्गवं प्रीता वरदानकृतोत्सवा ।

भद्रकाल्युवाच–

वत्स राम महाभाग प्रीतास्मि तव सांप्रतम् ॥४६

वरं वरय मत्तो यस्त्वया चाभ्यर्थितो हृदि ।

राम उवाच–

मातर्यदि वरो देयस्त्वया मे भक्तवत्सले ॥४७

तत्सुचंद्रं जये युद्धे तवानुग्रहभाजनम् ।

इति मेऽभिहितं देवि कुरु प्रीतेन चेतसा ॥४८

आप राज्य के प्रदान करने वाली हैं—आप रमण करने के लिए परम समुत्सुक रहा करती है—आपकी रत्नों के सदृश प्रभा है और आप रुचिर वस्त्रों के परिधान करने वाली हैं—ऐसी आपके लिए बारम्बार मेरा नमस्कार है ।४३। आपकी सेवा में मेरा सदा और सर्वत्र अनेक बार नमस्कार है । आप समस्त प्रकार के शरीर को धारण करने वाली हैं। आपकी सेवा में बारम्बार प्रणिपात है । हे देवेशि ! आप मेरे ऊपर अनुकम्पा करके प्रसन्न हो जाइए और हे भद्रकालि ! मैंने जो समग्र भूमि को क्षत्रियों से हीन कर देने की पहिले प्रतिज्ञा की है उसको परिपूर्ण करा दीजिए।४४। आप ही मेरी माता-पिता हैं और मेरी ही क्या इन तीन जगतों की माता हैं और आप ही पिता हैं—ऐसी आपके चरणों में मेरा बार-बार प्रणाम निवेदित है । वसिष्ठ जी ने कहा—उस समय में परमाधिक वेगवाली भद्रकाली देवी इस प्रकार से संस्तुत की गयी थी ।४५। तो वह देवी परम प्रसन्न होकर वरदान द्वारा आनन्द देने वाली होती हुई भार्गव परशुराम से बोली—भद्रकाली ने कहा—हे वत्स राम ! आप महान भाग वाले हैं। अब इस समय में मैं आपके ऊपर बहुत प्रसन्न हो गई हूँ ।४६। आप मुझसे वरदान प्राप्त कर लो जो भी कुछ तुमने अपने हृदय में विचार करके मेरी प्रार्थना की है । परशुराम ने कहा—हे भक्तवत्सले ! यदि आप हे माता !

मुझे कोई वरदान ही देना चाहती हैं तो मैं यही वरदान चाहता हूँ कि यह राजा सुचन्द्र से इस युद्ध में मेरा जय हो जावे तभी मैं आपकी अनुकम्पा का पात्र होऊँगा। हे देवि ! यही मेरा निवेदन आपकी सेवा में मैंने किया है सो आप परम प्रसन्न चित्त से हो कर दीजिए।४७-४८।

येन केनाप्युपायेन जगन्मातर्नमोऽस्तु ते।
भद्रकाल्युवाच–
आग्नेयास्त्रेण राजेंद्रं सुचंद्रं नय मद्गृहम् ॥४६
ममातिप्रियमद्यैव पार्षदो मे भवत्वयम्।
वसिष्ठ उवाच–
इत्युक्तमाकर्ण्यं स भार्गवेंद्रो देव्याः प्रियं
कर्तुं मथोद्यतोऽभूत् ॥५०
प्राणान्नियम्याचमनं च कृत्वा सुचंद्रमुद्दिश्य च तत्समादधे।
अस्त्रं प्रयुक्तं नृपतेर्वधाय रामेण राजन् प्रसभं तदा तत् ॥५१
दग्ध्वा वपुर्भूतमयं तदीयं निनाय लोकं परदेवतायाः।
ततस्तु रामेण कृतप्रणामा सा भद्रकाली जगदादिकर्त्री ॥५२
अंतर्हिताभूदथ जामदग्न्यस्तस्थौ रणे भूपवधाभिकांक्षी ॥५३

हे जगत् की माता ! जिस किसी भी उपाय से मेरा विजय हो जावे यही मेरी इच्छा है। मेरा आपके लिए नमस्कार है। भद्रकाली देवी ने कहा—राजेन्द्र सुचन्द्र को तुम आग्नेयास्त्र द्वारा ही मेरे स्थान में पहुँचा दो।४६। यह मेरा अत्यधिक प्रिय भक्त है सो आज ही यह मेरे गृह में पहुँचकर मेरा पार्षद हो जावेगा। वसिष्ठ जी ने कहा—उस भार्गव परशुराम जी ने यह इतना ही देवी के द्वारा कहा हुआ श्रवण करके इसके अनन्तर वह देवी का प्रिय कार्य करने के लिए समुद्यत हो गया था।५०। फिर परशुराम जी ने प्राणों का आयाम करके आचमन किया था और फिर राजा सुचन्द्र को उद्दिष्ट करके वह अस्त्र धारण किया था उस अस्त्र का हे राजन ! राम ने नृप के वध के लिए बलपूर्वक उस समय में प्रयोग किया था।५१। उसके उस भौतिक शरीर को अपने अस्त्र से भस्मीभूत करके उसको फिर पर देवता के लोक को पहुँचा दिया था। इसके अनन्तर परशुराम के द्वारा प्रणिपात

की हुई वह जगत की आदि कर्त्री भद्रकाली देवी वहाँ पर अन्तर्हित हो गयी थी और परशुराम उस रण स्थल में भूप के वध की आकांक्षा वाला होकर स्थित हो गये थे ।५२-५३।

—×—

परशुराम द्वारा कार्त्तवीर्य-वध

वसिष्ठ उवाच–

सुचंद्रे पतिते राजान् राजेंद्राणां शिरोमणौ ।
तत्पुत्रः पुष्कराक्षस्तु रामं योद्धुमथागतः ।।१
स रथस्थो महावीर्यः सर्वशस्त्रास्त्रकोविदः ।
अभिवीक्ष्य रणेत्युग्रं रामं कालांतकोपमम् ।।२
चकार शरजालं च भार्गवेंद्रस्य सर्वतः ।
मुहूर्त्तं जामदग्न्योऽपि बाणैः संछादितोऽभवत् ।।३
ततो निष्क्रम्य सहसा भार्गवेंद्रो महाबलः ।
शरबंधान्महाराज समुदैक्षत सर्वतः ।।४
दृष्ट्वा तं पुष्कराक्षं तु सुचंद्रतनयं तदा ।
क्रोधमाहारयामास दिधक्षन्निव पावकः ।।५
स क्रोधेन समाविष्टो वारुणं समवासृजत् ।
ततो मेघाः समुत्पन्ना गर्जंतो भैरवानुवान् ।।६
ववृषुर्जलधाराभिः प्लावयंतो धरां नृप ।
पुष्कराक्षो महावीर्यो वायव्यास्त्रमवासृजत् ।।७

श्री वसिष्ठजी ने कहा—हे राजन् ! अब राजा सुचन्द्र का निपातन हो गया था जो कि सभी राजेन्द्रों को शिरोमणि था तब उसका पुत्र पुष्कराक्ष परशुरामजी से युद्ध करने के लिए वहाँ पर आगया था ।१। वह महान बल वीर्य वाला था और अपने रथ पर संस्थित था और सभी प्रकार के शस्त्रास्त्रों के प्रयोग करने में बहुत बड़ा पण्डित था तथापि उसकी दृष्टि में परशुराम रण में अतीव उग्र और कालान्तक यम के समान दिखाई दिये थे ।२। उस पुष्कराक्ष ने ऐसी बाणों की वृष्टि उनके सभी ओर की थी एक

घड़ी के लिए परशुरामजी को शरों के जाल से भली भाँति ढक दिया था ।३। इसके अनन्तर भार्गवेन्द्र जो महान बल से समन्वित थे उस बाणों के जाल से सहसा बाहिर निकल आये और हे महाराज ! उसने शरों के बन्धों को सभी ओर देखा था ।४। उस समय में परशुराम ने सुचन्द्र के पुत्र पुष्कराक्ष के ऊपर अपनी दृष्टि डाली थी और उनको बड़ा भारी क्रोध उत्पन्न हो गया था । उस समय में क्रोध से वे जलती हुई अग्नि के ही समान दिखाई दे रहे थे ।५। उस काल में क्रोध से समाविष्ट होकर वारुण अस्त्र को छोड़ा था । इसके अस्त्र के प्रभाव से सभी ओर से महान भैरव गर्जना करते हुए मेघ समुत्पन्न हो गये थे ।६। हे नृप ! उन मेघों ने जल के धारा सम्पात से इस पृथ्वी को प्लावित करते हुए बड़ी घोर वृष्टि की थी । पुष्कराक्ष महान वीर्य वाला था उसने भी उस समय में वायव्य अस्त्र को छोड़ दिया था ।७।

तेन तेऽदर्शनं नीताः सद्य एव बलाहकाः ।
अथ रामो भृशं क्रुद्धो ब्राह्मं तत्राभिसंदधे ।।८
पुष्कराक्षोऽपि तेनैव विचकर्ष महाबलः ।
ब्राह्मं सोऽप्याहितं दृष्ट्वा दंडाहत इवोरगः ।।९
घोरं परशुमादाय निःश्वसंस्तमधावत ।
रामस्याधावतस्तत्र पुष्कराक्षो धनुर्धरः ।।१०
संदधे पंचविशिखान्दीप्तास्यानुरगानिव ।
एकैकेन च बाणेन हृदि शीर्षे भुजद्वये ।।११
शिखायां च क्रमाद्भित्त्वा तस्तंभ भृशमातुरम् ।
स चैवं पीडितो रामः पुष्कराक्षेण संयुगे ।।१२
क्षणं स्थित्वा भृशं धावन्परशुं मूर्ध्न्यपातयत् ।
शिखामारभ्य पादांतं पुष्कराक्षं द्विधाऽकरोत् ।।१३
पतिते शकले भूमौ तत्कालं पश्यतां नृणाम् ।
आश्चर्यं सुमहज्जातं दिवि चैव दिवौकसाम् ।।१४

उसने वायव्य अस्त्र के द्वारा उन सभी मेघों को तितर-बितर करके तुरन्त ही दूर भगा दिया था जो कि वहाँ बिल्कुल भी दिखाई न दे रहे थे ।

इसके अनन्तर परमाधिक क्रुद्ध हुए और उन्होंने ब्रह्मास्त्र अभिसन्धान किया था ।८। महान बली पुष्कराक्ष ने भी उसी समय में ब्रह्म अस्त्र का ही प्रयोग करके उसको निकृष्ट कर दिया था। तब वह इतना क्रोधित हो गया था जैसे दण्ड से आहत सर्प हो जाया करता है ऐसा जब परशुराम ने उसको देखा था ।६। फिर उष्ण श्वास लेते हुए राम ने अपना महान घोर परशु ले लिया था और उसकी ओर दौड़े थे। धनुर्धारी पुष्कराक्ष ने वहाँ पर दौड़ते हुए परशुराम के ऊपर पाँच बाण छोड़े थे जो परम दीप्त उरगों के ही समान थे। उसने एक-एक बाण से परशुराम के शरीर का वेधन किया था और एक हृदय में—एक शिर में दो भुजाओं में और एक शिखा में मारकर इनका भेदन कर दिया था तथा बहुत ही आतुर करके स्तम्भित कर दिया था। वह राम इस प्रकार से प्रपीड़ित हो गये थे और युद्ध स्थल में पुष्कराक्ष ने उनको जहाँ तहाँ रोक दिया था ।१०-१२। पर क्षण भर स्थित रहकर बहुत ही बहुत अधिक बल से दौड़कर उन्होंने फिर उस पुष्कराक्ष के मस्तक में अपने परशु का प्रहार किया था और चोटी से लेकर पैरों तक उसके दो टुकड़े कर दिये थे ।१३। दो खण्डों में कटकर उसके भूमि पर निपतित हो जाने पर जो भी मनुष्य वहाँ पर देख रहे थे उनको तथा देवलोक में देवों को बहुत बड़ा आश्चर्य हुआ था कि इतने बड़े बलशाली को किस तरह से टुकड़े कर मार गिराया है ।१४।

विदार्य रामस्तं क्रोधात्पुष्कराक्षं महाबलम् ।
तत्सैन्यमदहत्क्रुद्धः पावको विपिनं यथा ॥१५
यतो यतो धावति भार्गवेंद्रो मनोऽनिलौजाः प्रहरन्परश्वधम् ।
ततस्ततो वाजिरथेभमानवा निकृत्तगात्राः शतशो निपेतुः॥१६
रामेण तत्रातिबलेन संगरे निहन्यमानास्तु परश्वधेन ।
हा तात मातस्त्विति जल्पमाना भस्मीबभूवुः
सुविचूर्णितास्तदा ॥१७
मुहूर्त्तमात्रेण च भार्गवेण तत्पुष्कराक्षस्य बलं समग्रम् ।
अनेकराजन्यकुलं हतेश्वरं हृतं नवाक्षौहिणिकं भृशातुरम् ॥१८
पतिते पुष्कराक्षे तु कार्त्तवीर्यार्जुनः स्वयम् ।
आजगाम महावीर्यः सुवर्णरथमास्थितः ॥१९

नानाशस्त्रसमाकीर्णं नानारत्नपरिच्छदम् ।
दशनल्वप्रमाणं च शतवाजियुतं नृपः ॥२०
युते बाहुसहस्रेण नानायुधधरेण च ।
बभौ स्वर्लोकमारोक्ष्यन्देहांते सुकृती यथा ॥२१

परशुराम ने क्रोध करके उस महाबली पुष्कराक्ष को विदीर्ण करके फिर क्रुद्ध होकर उसकी जो परम विशाल सेना थी उसको भी भस्मीभूत करके जला दिया जिस तरह से दावाग्नि बड़े भारी वन को जला दिया करता है ।१५। मन और वायु के सदृश ओज वाले परशुराम जहाँ-जहाँ पर भी दौड़कर जाते थे और अपने फरशा से प्रहार कर रहे थे वहीं-वहीं पर अश्व-रथ-हाथी और मानव सैनिक कट-कटकर छिन्न भिन्न शरीर वाले सैकड़ों ही गिर गये थे ।१६। अत्यन्त बल वाले राम ने वहाँ युद्ध भूमि में अपने परशु से जिनको मारकर गिरा दिया था अथवा अधमरे होकर गिर गये थे वे उस समय में मूर्च्छित होकर पड़े हुए चीत्कार कर रहे थे और हे तात ! हे माता ! हम मर रहे हैं—यह कहते हुए भस्मीभूत हो गये थे ।१७। मुहूर्त मात्र में ही अर्थात् दो घड़ियों के समय में भार्गव ने उस पुष्कराक्ष की सम्पूर्ण सेना को तथा बहुत से राजाओं के समुदाय को जिनके स्वामी निहत हो गये हैं एवं अत्यन्त आतुर नौ अक्षौहिणी सैन्य को निहत कर दिया था ।१८। जब यह देखा गया था कि पुष्कराक्ष जैसा महाबली मर गया तो कार्त्तवीर्यार्जुन जिसका महान बल-वीर्य था स्वयं एक सुवर्ण से निर्मित रथ पर समास्थित होकर वहाँ पर युद्ध करने के लिए समागत हो गया था ।१९। उसका वह ऐसा रथ था जिसमें अनेक भाँति के शस्त्र भरे हुए थे और विविध भाँति के रत्नों का परिच्छद था । उसका प्रमाण दशनल्व था और उसमें सौ अश्व लगे हुए थे ।२०। वह राजा भी अनेक आयुध धारी सहस्र बाहुओं से युक्त था । उसकी उस समय में ऐसी शोभा हो रही थी जैसे कोई पुण्यात्मा देह के अन्त समय में स्वर्गलोक को जा रहा होवे ।२१।

पुत्रास्तस्य महावीर्या शतं युद्धविशारदाः ।
सेनाः संव्यूह्य संतस्थुः संग्रामे पितुराज्ञया ॥२२
कार्त्तवीर्यस्तु बलवान्रामं दृष्ट्वा रणाजिरे ।
कालांतकयमप्रख्यं योद्धुं समुपचक्रमे ॥२३

दक्षे पंचशतं बाणान्वामे पंचशतं धनुः ।
जग्राह भार्गवेंद्रस्य समरे जेतुमुद्यतः ॥२४
बाणवर्षं चकाराथ रामस्योपरि भूपते ।
यथा बलाहको वीर पर्वतोपरि वर्षति ॥२५
बाणवर्षेण तेनाजौ सत्कृतो भृगुनन्दनः ।
जग्राह स्वधनुर्दिव्यं बाणवर्षं तथाऽकरोत् ॥२६
तावुभौ रणसंदृप्तौ तदा भार्गवहैहयौ ।
चक्रतुर्युद्धमतुलं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥२७
ब्रह्मास्त्रं च स भूपालः संदधे रणमूर्द्धनि ।
वधाय भार्गवेंद्रस्य सर्वशस्त्रास्त्रधृग्बली ॥२८

उस कार्त्तवीर्य के पुत्र भी सौ थे जो महान वीर्य वाले थे और युद्ध करने की विद्या में महान पण्डित थे। वे भी सब अपने पिता की आज्ञा से सेनाओं का संग्रह करके संग्राम में समवस्थित हो गये थे।२२। उस बलवान कार्त्तवीर्य ने रणभूमि में जब परशुराम को देखा था उसको उनका स्वरूप ऐसा प्रतीत होता था मानों वह कालान्तक यम ही होवें फिर भी वह युद्ध करने को प्रस्तुत हो गया था।२३। भार्गव को युद्ध में जीतने के लिए उसके दाहिनी ओर पाँच सौ बाण थे और बामभाग में पाँच सौ धनुष थे।२४। हे भूपते ! उस सहस्रार्जुन ने परशुराम के ऊपर बाणों का प्रक्षेप ऐसा किया था जैसे मेघ वृष्टि कर रहे होवें। जिस प्रकार बलाहक मेघ किसी पर्वत पर धुँआधार जल की वर्षा किया करते हैं।२५। उसने बाणों की वर्षा के द्वारा ही उस रणभूमि में भृगुनन्दन का सत्कार किया था। उसने अपना दिव्य धनुष ग्रहण किया था। और उसी भाँति से बाणों की थी।२६। वे दोनों ही कार्त्तवीर्य और भार्गव राम उस समय में रण करके के दर्प वाले थे और उन दोनों ने अनुपम युद्ध किया था जो बड़ा ही तुमुल और रोम हर्षण था उस रण के प्राङ्गण में उस राजा ने ब्रह्मास्त्र का सन्धान किया था। वह राजा सभी शस्त्रों और अस्त्रों के धारण करने वाला और बलवान था जिसने के वध के ही लिए इस अस्त्र का प्रयोग किया था।२८।

रामोऽपि वायुंपस्पृश्य ब्राह्मं ब्रह्माय संदधे ।
ततो व्योम्नि सदा सक्ते द्वे चाप्यस्त्रे नराधिप ॥२९

ववृधाते जगत्प्रांते तेजसा ज्वलनार्कवत् ।
त्रयो लोकाः सपाताला दृष्ट्वा तन्महदद्भुतम् ॥३०
ज्वलदस्त्रयुगं तप्ता मेनिरेऽस्योपसंयमम् ।
रामस्तदा वीक्ष्य जगत्प्रणाशं जगन्निवासोक्त-
मथास्मरत्तदा ॥३१
रक्षा विधेयाऽद्य मयाऽस्य संयमो निवारणीयः
परमांशधारिणा ।
इति व्यवस्य प्रभुरुग्रतेजा नेत्रद्वयेनाथ तदस्त्रयुग्मम् ॥३२
पीत्वातिरामं जगदाकलय्य तस्थौ क्षणं ध्यानगतो महात्मा ।
ध्यानप्रभावेण ततस्तु तस्य ब्रह्मास्त्रयुग्मं विगतप्रभावम् ॥३३
पपात भूमौ सहसाऽथ यत्क्षणं सर्वं जगत्स्वास्थ्यमुपाजगाम ।
स जामदग्न्यो महतां महीयान्स्रष्टुं तथा
पालयितुं निहंतुम् ॥३४
विभुस्तथापीह निजं प्रभावं गोपायितुं लोकविधिं चकार ।
धनुर्द्धरः शूरतमो महस्वान्सदग्रणीः संसदि तथ्यवक्ता ॥३५

इधर परशुराम जी ने भी जल का उपस्पर्शन करके ब्रह्मास्त्र के निराकरण करने के लिए ब्रह्मास्त्र का ही सन्धान किया था । हे नराधिप ! उस समय में वे दोनों अस्त्र सदा ही अन्तरिक्ष में प्रसक्त हो गये थे ।२९। वे दोनों ही तेज से जाज्वल्यमान सूर्यों के समान जग द्प्रान्त में विशेष रूप से बढ़ रहे थे । उस समय में पाताल के सहित तीनों लोक इस महान अद्भुत अस्त्रों के पारस्परिक संघर्ष को देख रहे थे ।३०। वे दोनों ब्रह्मास्त्र जाज्वल्यमान थे और सभी लोग उनके तेज से संतप्त हो रहे थे। उस समय में इसका उपसंयम सभी ने माना था । परशराम ने भी तब सम्पूर्ण जगत का प्रकृष्ट नाश देखकर उसी समय में जगन्निवास के कथन का स्मरण किया था ।३१। आज मेरे द्वारा किसी भी रीति से सुरक्षा करनी चाहिए और इसका संयम करके निवारण करना ही चाहिए क्योंकि मैं तो परमांश का अर्थात् प्रभु के ही अंश का धारण करने वाला हूँ जिसकी यह सृष्टि है । यह निश्चय करके अतीव उग्र तेज वाले प्रभु ने अपने दोनों नेत्रों से उन दोनों

नेत्रों से उन दोनों अस्त्रों का पान कर लिया था ।३२। जगत के कल्याण का विचार करके ही उनका पान किया और फिर महान आत्मा वाले उनने क्षण भर के लिए ध्यान में अवस्थित होकर चुपचाप वे खड़े रह गये थे । इसके उपरान्त उनके ध्यान के प्रबल प्रभाव से वे दोनों ही ब्रह्मास्त्र प्रभाव हीन हो गये थे ।३३। फिर इसके अनन्तर वह दोनों अस्त्रों का जोड़ा भूमि पर गिर गया था ।३४। वह परशुराम तो महान पुरुषों में भी परम महान थे और इस संसार के सृजन-पालन और निहनन करने में पूर्ण समर्थ थे । ।३४। वे साक्षात् विभु थे तो भी अपने वास्तविक प्रभाव को छिपाने के ही लिए इस लौकिक विधान को किया करते थे जिससे लोग उनके असली स्वरूप को न पहिचान पावें । वह ऐसा ही सबकी दृष्टि में दर्शित किया करते थे कि वे बड़े धनुर्धारी-विशिष्टशूर-तेजस्वी-सभा में प्रमुख और संसद में तथ्य के बोलने वाले हैं ।३५।

कलाकलापेषु कृतप्रयत्नो विद्यासु शास्त्रेषु बुधो विधिज्ञः
एवं नृलोके प्रथयन्स्वभावं सर्वाणि कल्यानि
करोति नित्यम् ।।३६

सर्वे तु लोका विजितास्तु तेन रामेण राजन्यनिषूदनेत ।
एवं स रामः प्रथित प्रभावः प्रशामयित्वा तु तदस्त्रयुग्मम् ।।३७
पुनः प्रवृत्तो निधनं प्रकर्तुं रणांगणे हैहयवंशकेतोः ।
तूणीरतः पत्रियुगं गृहीत्वा पुंखे निधायाथ धनुर्ज्यकायाम् ।।३८
आलक्ष्य लक्ष्यं नृपकर्णयुग्मं चकर्त्त चूडामणिहर्तुकामः ।
स कृत्तकर्णो नृपतिर्महात्मा विनिर्जिताशेषजगत्प्रवीरः ।।३९
मेने निजं वीर्यमिह प्रणष्टं रामेण भूमीश तिरस्कृतात्मा ।
क्षणं धराधीशतनुर्विवर्णा गतानुभावा नृपतेर्बभूव ।।४०
लेख्येव सच्चित्रकरप्रयुक्ता सुदीनचित्तस्य विलक्ष्यतेऽग ।
ततः स राजा निजवीर्यवैभवं समस्तलोकाधिकतां
प्रयातम् ।।४१
विचिन्त्य पौलस्त्यजयादिलब्धं शोचन्निवासीत्स
जयाभिकांक्षी ।
दध्यौ पुनर्मीलितलोचनो नृपो दत्तं तमात्रेयकुलप्रदीपम् ।।४२

जितनी भी कलायें हैं उन सबके ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करने वाले हैं तथा समस्त विद्याओं में एवं शास्त्रों में बुध है और विधि के ज्ञाता हैं। इसी रीति से लोक में अपने प्रभाव एवं स्वभाव को दिखलाते हुए सभी कल्पों नित्य किया करते हैं।३६। क्षत्रियों का निषूदन करने वाले परशुराम ने समस्त लोकों को जीत लिया है इस प्रकार से ही परशुराम प्रथित प्रभाव वाथे थे। उन्होंने उसी समय में उन दोनों ब्रह्मास्त्रों को प्रशामित कर दिया था।३७। फिर वे उस रण भूमि में हैहय वंश के केतु कार्त्त-बीर्य का निधन करने के लिये युद्ध में प्रवृत्त हो गये थे। तुणीर से दो बाणों को लेकर धनुष की प्रत्यञ्चा को खींचकर उसमें वाणों को चढ़ाया था। ।३८। नृप की चूड़ामणि का हरण करने की कामना वाले रामने लक्ष्य पर निशाना लगाकर नृप के दोनों कानों को काट गिराया था। जिस कार्त-बीर्य ने जगत् में समस्त महान् वीरों को पराजित कर लिया था वह महात्मा जब कटे हुए कानों वाला हो गया था तो अपने मन में भयभीत हो गया था तो अपने मन में भयभीत हो गया था।३९। उस समय में यह मान लिया था कि हे भूमीश ! वह राम के द्वारा तिरस्कृत आत्मा वाला होगया है और अब उसका वीर्य-विक्रम सब नष्ट होगया है। हे नृपते ! एक ही क्षण में उनका शरीर विवर्ण होकर भूमि पर गिर गया था और उनके सभी अनुभाव विगत हो गये थे।४०। उसके अनन्तर उस कार्त्तवीर्य राजाने देखा था कि समस्त लोकों में अधिकता को प्राप्त होने वाला अपने वीर्यविक्रम से सर्वथा गया हुआ है और उस दीनचित्त वाले का शरीर किसी अच्छे चित्रकार के द्वारा निर्मित चित्र के ही समान हो गया है।४१। वह अपने विजय की आकाङ्क्षा वाला राजा यही चिन्तन करके कि मैंने पौलस्त्य रावण जैसे बलवान् पर भी विजय प्राप्त की थी जब मेरी क्या दशा हो रही है-यही सोच करता हुआ वह वहाँ पड़ा था। फिर उस राजा ने अपने दोनों नेत्र मूँद लिये थे और आत्रेय कुल के प्रदीप दत्तात्रेय का उसने ध्यान किया था।४२।

यस्य प्रभावानुगृहीत ओजसा तिरश्चकारा-
खिलयोकपालकान् ।
यदास्य हृद्येष महानुभावो दत्तः प्रयातो न हि
दर्शनं तदा ।।४३
खिन्नोऽतिमात्रं धरणीपतिस्तदा पुनः पुनर्ध्यानपथं जगाम ।

स ध्यायमानोऽपि न चाजगाम दत्तो मनोगोचरमस्य
राजन् ॥४४
तपस्विनो दांततमस्य साधोरनागसो दुष्कृतिकारिणो विभुः ।
एवं यदात्रेस्तनयो महात्मा दृष्टो न ध्यानपथे नृपेण ॥४५
तदाऽतिदुःखेन विदूयमानः शोकेन मोहेन युतो बभूव ।
तं शोकमग्नं नृपतिं महात्मा रामो
जगादाखिलचित्तदर्शी ॥४६
मा शोकभावं नृपते प्रयाहि नैवानुशोचंति महानुभावाः ।
यस्ते वरायाभवमादिसर्गे स एव चाहं तव सादनाम ॥४७
समागतस्त्वं भव धीरचित्तः संग्रामकाले न विषादचर्चा ।
सर्वो हि लोकः स्वकृतं भुनक्ति शुभाशुभं
दैतकृतं विपाके ॥४८
अन्योन कोऽप्यस्य शुभाशुभस्य विपर्ययं कर्तुमलं नरेश ।
यत्तो सुपुण्यं बहुजन्मसंचितं तेनेहं दत्तस्य वरार्हपात्रम् ॥४९

जिस दत्तात्रेय के प्रभाव एवं अनुग्रह से मैंने इतना अधिक अनुपम ओज प्राप्त किया था कि उससे मैंने समस्त लोकपालों का भी तिरस्कार कर दिया था और वे भी मेरे सामने नहीं पड़ते थे। जिस समय में यह यह महापुरुष मेरे हृदय में विराजमान थे वे महानुभाव भी अब मेरे हृदय का त्याग करके प्रयाण कर गये हैं क्योंकि उस समय में उनके भी दर्शन नहीं हो रहे थे।४३। वह राजा कार्त्तवीर्य बहुत ही अधिक खिन्न हो गया था और बार-बार ध्यान करता था। हे राजन्! बहुत ही अच्छी तरह से ध्यान किये गये भी वे दत्तात्रेय इस राजा के मन में गोचर नहीं हुए थे।४४। दत्तात्रेय मुनि उसके ध्यान में इसीलिए समागत नहीं हुए थे क्योंकि वे तो विभु थे और यह जानते थे कि यह परमाधिक दमन शील-तपस्वी-निरपराध साधु जमदग्नि के साथ भी इसने परम-दुष्कृत किया है। इसी कारण से राजा के द्वारा बार-बार ध्यान करने पर भी महान् आत्मा वाले अत्रि के पुत्र उसके ध्यान में नहीं आये थे और उस राजा को उनका दर्शन प्राप्त नहीं हुआ था।४५। उस समय में यह कार्त्तवीर्य अत्यधिक दुःख से

विशेष परितप्त हो रहा था और शोक एवं मोह से भी युक्त हो गया था। जब वह इस रीति से राजा शोक में मग्न हो रहा था तो सबके चित्तों की गति के देखने वाले महात्मा राम ने उससे कहा था।४६। हे राजन् ! अब तुम इतने अधिक शोक को मत करो। जो महानुभाव होते हैं वे कभी भी ऐसा शोक नहीं किया करते हैं आदि सर्ग में जो तुझे वरदान देने के लिए हुआ था वही मैं अब तेरे मादन करने के लिए हुआ है।४७। वही तू यहाँ पर समागत हुआ है। अब तुम चित्त में धैर्य धारण करो। यह तो संग्राम करने का समय है। इसमें विषाद करने की तो कोई चर्चा का अवसर ही नहीं आना चाहिए। तुम तो ज्ञानी हो यह भी भली भाँति समझते ही हो कि सभी प्राणी अपने किये हुए ही कर्मों का भोग चाहे वह शुभ हो या अशुभ हो विपाक हो जाने पर दैव के द्वारा किये हुए का भोगा करते हैं। ।४८। हे नरेश ! इस शुभ और अशुभ का विपर्यय करने के लिये अन्य कोई भी सामर्थ्य नहीं रखता है। जो कुछ भी बहुत से जन्मों में किये गये पुण्य कर्मों का सञ्चय था उसी का यह प्रभाव था कि भगवान् दत्तात्रेय महामुनि का इस लोक में तुम वरदान के योग्य पात्र बन गये थे। तात्पर्य यही है कि सभी फलाफल किये हुए कर्मों के ही अनुसार हुआ करते हैं यह सभी कर्माधीन हैं जिस का विचार कोई भी नहीं किया करता है।४९।

जातो भवानद्य तु दुष्कृतस्य फलं प्रभुंक्ष्व स्वमिहार्जितस्य।
गुर्वर्विमस्यापकृतस्त्वया मे यतस्ततः
कर्णनिकृन्तनं ते ।।५०

कृतं मया पश्य हरंतमोजसा चूडामणिं मामपहृत्य ते यशः।
इत्येवमुक्त्वा स भृगुर्महात्मा नियोज्य बाणं च
विकृष्य चापम् ।।५१

चिक्षेप राज्ञः स तु लाघवेन च्छित्त्वा मणिं राममुपाजगाम।
तद्वीक्ष्य कर्माग्र्य मुनेः सुतस्य स चार्जुनो
हैहयवंशधर्त्ता ।।५२

समुद्यतोऽभूत्पुनरप्युदायुधस्तं हंतुमाजो द्विजमात्मशत्रुम्।
शूलशक्तिगदाचक्रखड्गपट्टिशतोमरैः ।।५३

नानाप्रहरणैश्चान्यैरराजघान द्विजात्मजम् ।
स रामो लाघवेनैव संप्रक्षिप्तान्यनेन च ॥५४
शूलादीनि चकर्त्ताशु मध्य एव निजाशुगैः ।
स राजा वायुंपस्पृश्य ससर्जाग्नेयमुत्तमम ॥५५
अस्त्रं रामो वारुणेन शमयामास सत्वरम् ।
गांधर्वं विदधे राजा वायव्येनाहनद्विभुम् ॥५६

आज आपको यह परम दुष्कृत का ही फल प्राप्त हुआ है । अब यहाँ पर जो भी पाप किया है उसका फल भोगिए क्योंकि यह दुष्कृत आपने ही जो अर्जित किया है फिर इसका फल भी आप ही को भोगना है । आपने मेरे गुरु जमदग्नि का अपमान करके बड़ा भारी अपकार किया है । यही कारण है कि आपके कानों का कृन्तन हुआ है ।५०। तुम्हारे यश का अपहरण करके मैंने ओज से तुम्हारी चूड़ामणि का अपहरण किया है यह तुम देख लो । इतना कहकर उन महात्मा भृगु ने बाण चढ़ाकर धनुष की प्रत्यञ्चा को खींच लिया था ।५१। उन्होंने उस राजा के ऊपर उस बाण का प्रक्षेप किया था और बड़े ही लाघव से उस मणि का छेदन किया था जिससे कि वह मणि परशुराम के समीप में उपागत हो गयी थी । उस मुनिकुमार के इस कर्म का अभिवीक्षण करके वह हैहय के वंश के धारण करने वाले सहस्रार्जुन युद्ध को तैयार हो गया था ।५२। वह कार्त्तवीर्य राजा आयुध ग्रहण करके युद्ध में उस द्विज सुत को जिसको वह अपना शत्रु समझता था मारने के लिये समुद्यत हो गया था । शूल-शक्ति-गदा-चक्र-खड्ग-पट्टिश और तोमर तथा अन्यान्य नाना प्रकार के प्रहरणों से उस कार्त्तवीर्य द्विजवर के पुत्र परशुराम पर प्रहार किये थे किन्तु परशुराम ने उनके द्वारा जो भी अस्त्रों का प्रक्षेप किया गया था वे सब बहुत ही लाघव से उन सबको काट दिया था और जब तक वे अस्त्र लक्ष्य तक पहुँचने भी नहीं पाये थे तभी तक बीच में ही अपने बाणों के द्वारा उन सबको राम ने काटकर शीघ्र ही गिरा दिया था । उस राजा ने भी जल का उपस्पर्शन करके फिर अपने उत्तम आग्नेय अस्त्र को छोड़ दिया था ।५३-५५। रामने अपने वारुण अस्त्र के द्वारा शीघ्र ही उस आग्नेय अस्त्र का शमन कर दिया था । फिर राजा ने गान्धर्व अस्त्र को छोड़ा था और वायव्य अस्त्र से विभु परशुराम के ऊपर प्रहार किया था ।५६।

नागास्त्रं गारुडेनापि रामश्चिच्छेद भूपते ।
दत्तेन दत्तं यच्छूलमव्यर्थं मंत्रपूर्वकम् ॥५७
जग्राह समरे राजा भार्गवस्य वधाय च ।
तच्छूलं शतसूर्याभमनिवार्यं सुरासुरैः ॥५८
चिक्षेप राममुद्दिश्य समग्रेण बलेन सः ।
मूर्ध्नि तद्भार्गवस्याथ निपपात महीपते ॥५९
तेन शूलप्रहारेण व्यथितो भार्गवस्तदा ।
मूर्च्छामवाप राजेंद्र पपात च हरिं स्मरन् ॥६०
पतिते भार्गवे तत्र सर्वे देवा भयाकुलाः ।
समाजग्मुः पुरस्कृत्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ॥६१
शंकरस्तु महाज्ञानी साक्षान्मृत्युंजयः प्रभुः ।
भार्गवं जीवयामास संजीवन्या स विद्यया ॥६२
रामस्तु चेतनां प्राप्य ददर्श पुरतः सुरान् ।
प्रणनाम च राजेंद्र भक्त्या ब्रह्मादिकांस्तु तान् ॥६३

हे भूपते ! अपने गरुड़ अस्त्र के द्वारा उस नागास्त्र का छेदन कर दिया था । दत्तात्रेय महामुनि ने जो एक शूल इस कार्त्तवीर्य को प्रदान किया था वह अव्यर्थ था अर्थात् उस का प्रयोग कभी भी व्यर्थ एवं असफल नहीं हुआ करता था । इस का प्रयोग मन्त्रोच्चारण के ही साथ हुआ करता था ।५७। इस शूल का ग्रहण राजा कार्त्तवीर्य ने परशुराम जी के वध करने के लिए किया था । यह शूल बड़ा ही तेज से युक्त था-सैकड़ों सूर्यों की आभा के ही समान उसकी आभा थी और यह ऐसा था कि जिसका प्रयोग किसी प्रकार से भी निवारित नहीं किया जा सकता था और सुर तथा असुर कोई भी उसको विफल नहीं कर सकते थे ।५८। उस कार्त्तवीर्य ने अपने सम्पूर्ण बल के द्वारा परशुराम का उद्देश्य करके इसको फेंका था । हे महीपते ! वह शूल भार्गवेन्द्र के मस्तक पर गिरा था ।५९। उस शूल के प्रहार से उस समय में परशुराम बहुत व्यथित हो गये थे और हे राजेन्द्र ! उनको इसके प्रबल प्रहार से मूर्च्छा हो गयी थी । वे श्री हरि का स्मरण करते हुए भूमि पर गिर गये थे ।६०। वहाँ पर जिस समय में भृगु वंशोद्भूत परशु-राम भूमि पर गिर गये थे उस समय में समस्त देवगण महान् भय से

समाकुल हो गये थे और वे सब ब्रह्मा-विष्णु और महेश्वर को अपने आगे करके वहाँ पर समागत हो गये थे ।६१। भगवान् शङ्कर तो महाज्ञानी थे और मृत्यु के ऊपर भी विजय प्राप्त करने वाले साक्षात् प्रभु थे। उन्होंने तुरन्त ही अपनी संजीवनी विद्या से भार्गव को जीवन प्रदान करके जीवित कर दिया था ।६२। परशुराम जी को जब चेतना प्राप्त हो गयी थी तो सम्हलकर खड़े हुए थे और उन्होंने अपने आगे सभी सुरगणों को देखा था। हे राजेन्द्र ! उन्होंने ब्रह्मा आदिक उन महान् देवों के चरणों में बड़े ही भक्ति के भाव से प्रणाम किया था ।६३।

ते स्तुता भार्गवेंद्रेण सद्योऽदर्शनमागताः ।
स रामो वायुं स्पृश्य जजाप कवचं तु तत् ॥६४
उत्थितश्च सुसंरब्धो निर्दहन्निव चक्षुषा ।
स्मृत्वा पाशुपतं चास्त्रं शिवदत्तं स भार्गवः ॥६५
सद्यः संहृतवांस्तत्तु कार्त्तवीर्यं महाबलम् ।
स राजा दत्तभक्तस्तु विष्णोश्चक्रं सुदर्शनम् ।
प्रविष्टो भस्मसाज्जातं शरीरं बाहुनन्दन ॥६६

भार्गवेन्द्र के द्वारा उनकी स्तुति की गयी थी और फिर वे सभी सुरगण तुरन्त ही अन्तर्हित हो गये थे। उन परशुराम प्रभु ने जल का आचमन करके उस समय में उस कवच का जप किया था ।६४। और भली भाँति संरब्ध होकर वे उठ खड़े हुए थे। उस समय में उनके नेत्रों में ऐसा अद्भुत तेज हो गया था जिससे ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों वे चक्षु से सब को दग्ध ही कर रहे होंवे। उन भार्गव ने भगवान् शिव के द्वारा कृपा करके प्रदान किये पाशुपत अस्त्र का स्मरण किया था ।६५। उस पाशुपत अस्त्र ने महान् बलवान् उस कार्त्तवीर्य को तुरन्त ही संहृत कर दिया था अर्थात् मार गिराया था। वह राजा दत्तात्रेय महामुनि का परम भक्त था और भगवान् विष्णु के सुदर्शन चक्र में प्रविष्ट हो गया था और सहस्रों बाहुओं के द्वारा आनन्द करने वाले उसका शरीर भस्मसात् हो गया था ।६६।

—×—

भार्गव चरित्र वर्णन (१)

वसिष्ठ उवाच–

दृष्ट्वा पितुर्वधं घोरं तत्पुत्रास्ते शतं त्वरा ।
वारयामासुरत्युग्रं भार्गवं स्वबलैः पृथक् ॥१
एकैकाक्षौहिणीयुक्ताः सर्वे ते युद्धदुर्मदाः ।
संग्रामं तुमुलं चक्रुः संरब्धास्तु पितुर्वधात् ॥२
रामस्तु दृष्ट्वा तत्पुत्राञ्छूरान्रणविशारदान् ।
परश्वधं समादाय युयुधे तैश्च संगरे ॥३
तां सेनां भगवान्रामः शताक्षौहिणिसंमिताम् ।
निजघान त्वरायुक्तो मुहूर्तद्वयमात्रतः ॥४
निःशेषितं स्वसैन्यं तु कुठारेणैव लीलया ।
दृष्ट्वा रामेण ते सर्वे युयुधुर्वीर्यसंमताः ॥५
नानाविधानि दिव्यानि प्रहरंतो महौजसः ।
परितो मंडलं चक्रुर्भार्गवस्य महात्मनः ॥६
अथ रामोऽपि बलवांस्तेषां मंडलमध्यगः ।
विरेजे भगवान्साक्षाद्यथा नाभिस्तु चक्रगा ॥७

श्री वसिष्ठ जी ने कहा—उसके पुत्रों ने जब यह महान् घोर अपने पिता का वध देखा था तो उन सौ पुत्रों ने पृथक्-पृथक् अपने सैन्य बलों लेकर अतीव उग्र भार्गव का वारण किया था ।१। वे सभी युद्ध करने में अत्यन्त दुर्मद थे और सबके साथ एक-एक अक्षौहिणी सेना थी । अपने पिता के वध हो जाने से वे अत्यन्त ही क्रोध में भरे हुए थे और उन्होंने तुमुल संग्राम किया था ।२। परशुराम जी ने देखा था कि उसके सभी पुत्र बड़े शूरवीर हैं और रण करने में बहुत कुशल हैं तब उन्होंने अपना फर्शा उठा लिया था और उन सबके साथ युद्ध क्षेत्र में घोर युद्ध किया था ।३। भगवान् राम ने सौ अक्षौहिणियों से संयुत उस समग्र सेना को बड़ी ही त्वरा से युक्त होकर दो ही मुहूर्त्त के समय में विहनन करके मार गिराया था ।४। महान् वीर्य से संमत उन्होंने जब यह देखा था कि परशुराम ने अपने कुठार के

द्वारा खेल ही खेल में लीला से ही बिना कुछ अधिक आयास किये सम्पूर्ण अपनी सेना को मारकर समाप्त कर दिया है तो सबने बड़ा भारी घोर युद्ध किया था ।५। महान् आत्मा वाले भार्गव के चारों ओर विविध प्रकार के दिव्य अस्त्रों के द्वारा प्रहार करते हुए उन महान् ओज वालों ने सबने एक मण्डल सा बना लिया था अर्थात् सब ओर से घेर कर बीच में दे लिया था ।६। इसके अनन्तर महान् बलशाली परशुराम भी उन सबके मण्डल (घेरा) में मध्य में स्थित होकर वह साक्षात् भगवान् परम सुशोभित हुए थे जिस तरह से समस्त नाड़ियों के चक्र के मध्य में स्थित नाभि शोभा दिया करती है ।७।

नृत्यन्निवाजौ विरराज रामः गतं पुनस्ते परितो भ्रमंतः ।
रेजुश्च गोपीगणमध्यसंस्थः कृष्णो यथा ताः
परितो भ्रमंत्यः ॥८
तदा तु सर्वे द्रुहिणप्रधानाः समागताः स्वस्वविमानसंस्थाः ।
समाकिरन्मन्दनमाल्यवर्गः समततो राममहीनवीर्यम् ॥९
यः शस्त्रपादादुवतिष्ठत ध्वनिर्हुंकारगर्भो
दिवमस्पृशत्स वै ।
तीर्यत्रिकस्येव शरक्षतानि भांतीव यद्वन्नखदंतपाताः ॥१०
क्रंदंति शस्त्रैः क्षतविक्षतांगा गायंति यद्वत्किल गीतविज्ञाः ।
एवं प्रवृत्तं नृपयुद्धमण्डलं पश्यंति देवा
भृशविस्मिताक्षाः ॥११
ततस्तु रामोऽवनिपालपुत्रान्जिघांसुराजौ विविधास्त्रपूगैः ।
पृथक्चकारातिबलांस्तु मंडलाद्विच्छिद्य पंक्तिं
प्रभुरात्तचापः ॥१२
एकैकशस्तान्निजघान वीरान्छतं तदा पंच
ततः पलायिताः ।
शूरो वृषास्यो वृषशूरसेनौ जयध्वजश्चापि
विभिन्नधैर्याः ॥१३

महाभयेनाथ परीतचित्ता हिमाद्रिपादांतरकाननं च ।
पृथग्गतास्ते सुपरोप्सवो नृपा न कोऽपि
कांस्विद्ददृशे भृशार्त्तः ॥१४

उस संग्राम भूमि में परशुराम नृत्य करते हुए जैसे परमाधिक शोभा को प्राप्त हुए थे और एक सौ वे कार्त्तवीर्य के पुत्र फिरते हुए चारों ओर शोभित हो रहे थे। उस समय में उन सब की शोभा ऐसी हो रही थी जैसी नित्य विहार स्थल वृन्दावन की निकुञ्जों में व्रजाङ्गना गोपियों के समुदाय के मध्य में महारास के समय में भगवान् श्री कृष्ण विराजमान थे और उनके चारों ओर गोपाङ्गनाएं परिभ्रमण कर रही थीं उनकी शोभा हो रही।८। उस समय सब जिनमें द्रुहिण प्रमुख थे अपने-अपने विमानों पर समवस्थित होकर वहाँ पर समागत हो गये थे और उन अहीनवीर्य वाले परशुराम के ऊपर सब ओर से नन्दन वन के कमनीय कुसुमों की वर्षा कर रहे थे।९। इस प्रकार जो शस्त्रों का पात उनके ऊपर हो रहा था तब वे परशुराम उस शरों की वृष्टि में उठकर खड़े हो गये थे और उनकी ध्वनि हुङ्कार करने वाली थी तब ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों वे स्वर्ग का ही स्पर्श कर रहे होवें। उनके शरों के क्षत ऐसे मालूम हो रहे थे जैसे नृत्यगीत करने वाले के दन्तों और नखों के पातों के ही चिन्ह दिखाई दे रहे हों।१०। वे शस्त्रों से क्षत विक्षत अङ्गों वाले क्रन्दन कर रहे थे मानो कोई गीतों के गान में विज्ञ पुरुष गान कर रहे होवे। इसी रीति से उन नृपों के साथ युद्ध का मण्डल प्रवृत्त हुआ था जिसको देवगण अत्यन्त विस्मित नेत्रों वाले होकर देख रहे थे।११। इसके अनन्तर प्रभु राम ने धनुष ग्रहण करके विविध अस्त्रों के समुदाय से उन राजा के पुत्रों का रण में हनन करने की इच्छा वाला होकर यद्यपि वे अतीव बलवान् थे तो भी उनको उस मण्डल से विच्छिन्न करके पंक्ति से पृथक् कर दिया था।१२। वे सौ वीर थे उनमें से एक-एक को पकड़कर उन्होंने मार डाला था। उस समय में केवल उनमें से पाँच ही बच गये थे जो वहाँ से भाग गये थे। उन पाँचों का धैर्य टूट गया था। उनके नाम शूर-वृषास्य-वृष-शूरसेन और जयध्वज ये थे।१३। वे पाँचों नृप पृथक् होकर ही चले गये थे और वे सब नृप अपने प्राणों के बचाने की इच्छा वाले थे। उन में से अत्यन्त आर्त्त होकर किसी ने भी किन को भी वहाँ नहीं देखा था। तात्पर्य यह है कि सबको अपनी रक्षा की पड़ी थी और कोई भी किसी को न देख पाया था।१४।

रामोऽपि हत्वा नृपचक्रमाजौ राज्ञः सहायार्थमुपागतं च ।
समन्वितोऽसावकृतव्रणेन सस्नौ मुदाऽऽगत्य च
नर्मदायाम् ॥१५
स्नात्वा नित्यक्रियां कृत्वा संपूज्य वृषभध्वजम् ।
प्रतस्थे द्रष्टुमुर्वीश शिवं कैलासवासिनम् ॥१६
गुरुपत्नीमुमां चापि सुतौ स्कन्दविनायकौ ।
मनोयायी महात्माऽसावकृतव्रणसंयुतः ॥१७
कृतकार्यो मुदा युक्तः कैलासं प्राप्य तत्क्षणम् ।
ददर्श तत्र नगरीं महतीमलकाभिधाम् ॥१८
नानामणिगणाकीर्णभवनैरुपशोभिताम् ।
नानारूपधरैर्यक्षैः शोभितां चित्रभूषणैः ॥१९
नानावृक्षसमाकीर्णैर्वनैश्चोपवनैर्युताम् ।
दीर्घिकाभिः सुदीर्घाभिस्तडागैश्चोपशोभिताम् ॥२०
सर्वतोऽप्यावृतां बाह्ये सीतयालकनंदया ।
तत्र देवांगनास्नानमुक्तकुंकुमपिंजरम् ॥२१

भगवान् परशुराम ने भी उस रण में उस सम्पूर्ण नृपों के चक्र का हनन कर दिया था तथा जो राजा की सहायता करने के लिये वहाँ उपागत हुआ था उसका भी हनन कर डाला था। फिर वह अकृतव्रण के साथ रहकर नर्मदा नदी के समीप में समागत हुए थे और उस नदी में इन्होंने स्नान किया था।१५। वहाँ पर स्नान करके अपना दैनिक कृत्य समाप्त किया था तथा फिर भगवान् वृषभध्वज का भली भाँति अर्चन किया था। इसके उपरान्त कैलाश के निवासी प्रभु शिव का दर्शन प्राप्त करने के लिये वहाँ से परशुराम जी ने प्रस्थान किया था।१६। अपने मन के ही समान शीघ्र गमन करने वाले परशुराम जी अपने पालित अकृतव्रण शिष्य के साथ गुरु पत्नी जगदम्बा उमा देवी—और उनके दोनों पुत्र स्कन्द और विनायक के दर्शनार्थ वह महात्मा वहाँ पर गये थे।१७। अपने सम्पूर्ण कार्यों में सफल होकर समस्त क्षत्रिय शत्रुओं को निहत करके बड़ी ही प्रसन्नता से युक्त होते हुए उसी क्षण में कैलास गिरि पर पहुँच गये थे और भगवान् शङ्कर की अलका

नाम वाली नगरी को देखा था जो नगरी बहुत ही विशाल थी ।१८। उस नगरी की छटा का वर्णन किया जाता है—उस नगरी में अनेक भवन ऐसे बने हुए थे जो नाना भांति के रत्नों से संयुत थे, उन भवनों की शोभा से वह परम सुशोभित थी। उसमें बहुत से यक्ष विद्यमान थे जो विचित्र प्रकार के भूषणों के धारण करने वाले तथा विविध स्वरूपों वाले थे। इनसे भी उसकी बड़ी शोभा हो रही थी ।१९। उस नगरी में बहुत तरह के वन और उपवन थे जिनमें अनेक प्रकार के वृक्ष थे। वह नगरी अनेक विशाल वापियों (बावड़ियों) से तथा तालावों से भी परम सुशोभित थी ।२०। उस पुरी का बाहिरी सब ओर से सीता और अलकनन्दा नाम वाली सुन्दर सरिताओं से समावृत था। वहाँ पर देवों की अङ्गनाएं स्नान कर रही थीं जिससे उनके अङ्गों में लगा हुआ कुंकुम छूटकर उनके जल में प्रवाहित हो रहा था ।२१।

तृषाविरहिताश्चांभः पिबन्ति करिणो मुदा ।
यत्र संगीतसंनादा श्रूयन्ते तत्र तत्र ह ॥२२
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च सततं सहकारिभिः ।
तां दृष्ट्वा भार्गवो राजन्मुदा परमया युतः ॥२३
ययौ तदूर्ध्वं शिखरं यत्र शैवपरं गृहम् ।
ततो ददर्श राजेंद्र स्निग्धच्छायं महावटम् ॥२४
तस्याधस्ताद्वरावासं सुसेव्यं सिद्धसंयुतम् ।
ददर्श तत्र प्राकारं शतयोजनमंडलम् ॥२५
नानारत्नाचितं रम्यं चतुर्द्वारं गणावृतम् ।
नन्दीश्वरं महाकालं रक्ताक्षं विकटोदरम् ॥२६
पिंगलाक्षं विशालाक्षं विरूपाक्षं घटोदरम् ।
मंदारं भैरवं बाण रुरुं भैरवमेव च ॥२७
वीरकं वीरभद्रं च चांडं भृङ्गि रिटिं मुखम् ।
सिद्धेंद्रनाथरुद्रांश्च विद्याधरमहोरगान् ॥२८

उन सरिताओं में तृषा से विरहित करी बड़े ही आनन्द से उनका जल पी रहे थे। वहाँ पर जहाँ-तहाँ संगीत की परम मधुर ध्वनियाँ सुनाई दे रही थी ।२२। वहाँ पर बहुत से गन्धर्व गण अप्सराओं को अपने साथ में

लिए हुए निरन्तर रंगरेलियाँ कर रहे थे। भार्गव श्री परशुराम जी ने जिस समय में उस परम सुन्दर पुरी का अवलोकन किया उनको अत्यन्त हर्ष हुआ था ।२३। इसके अनन्तर वे उसके ऊपर गये थे जिस शिखर पर भगवान् शिव का परम सुरम्य निवास करने का गृह था। हे राजेन्द्र! वहाँ पर एक महान विशाल बहुत ही घनी छाया वाला वट का वृक्ष उन्होंने देखा था ।२४। उस वट वृक्ष के नीचे एक आवास गृह बना हुआ था जो भली भाँति सेवन करने के योग्य था और बड़े-बड़े महान् सिद्धगणों से समन्वित था। वहाँ पर उसका एक प्रकार (बहार दीवारी) उन्होंने देखा था जिसका मण्डल (घेरा) एक सौ योजन वाला था ।२५। उस नगर में अनेक प्रकार के रत्न खचित हो रहे थे तथा परम रम्य और चार प्रधान द्वारों से बहु समन्वित था। वहाँ पर गण सब ओर थे। अब उन प्रधान गणों में नन्दीश्वर–महाकाल–रक्ताक्ष और विकटोदर थे ।२६। इनके अतिरिक्त पिंगलाक्ष–विरूपाक्ष–घटोदर–मन्दार–भैरव–बाण–रुरु—भैरव भी थे ।२७। उन गणों में वीरभद्र–चण्ड-रिटि–मुख भी थे। वहाँ पर सिद्धेन्द्र-नाथ और रुद्र थे तथा विद्याधर और महोरग भी विद्यमान थे ।२८।

भूतं तपिशाचांश्च कूष्मांडान्ब्रह्मराक्षसान् ।
वेतालान्दानवेंद्रांश्च योगीन्द्रांश्च जटाधरान् ॥२६

यक्षकिंपुरुषांश्चैव डाकिनीयोगिनीस्तथा ।
दृष्ट्वा नंद्याज्ञया तत्र प्रविष्टोऽतमुदान्वितः ॥३०

ददर्श तत्र भुवनैरावृतं शिवमंदिरम् ।
चतुर्योजनविस्तीर्णं तत्र प्राग्द्वारसंस्थितौ ॥३१

दृष्ट्वा वामे कार्त्तिकेयं दक्षे चैव विनायकम् ।
ननाम भार्गवस्तौ द्वौ शिवतुल्यपराक्रमौ ॥३२

पार्षदप्रवरास्तत्र क्षेत्रपालाश्च संस्थिताः ।
रत्नसिंहासनस्थाश्च रत्नभूषणभूषिता ॥३३

भार्गवं प्रविशन्तं तु ह्यपृच्छच्छिवमंदिरम् ।
विनायको महाराज क्षणं तिष्ठेत्युवाच ह ॥३४

निद्रितो ह्युमया युक्तो महादेवोऽधुनेति च ।
ईश्वराज्ञां गृहीत्वाहमत्रागत्य क्षणांतरे ॥३५

वहाँ पर इन उपर्युक्त गणों के अतिरिक्त बहुत से भूत-प्रेत-पिशाच कूष्मांड-ब्रह्मराक्षस-वेताल-दानवेन्द्र और जटाजूट धारी बड़े-बड़े योगीन्द्र भी थे ।२६। वहाँ उस शिव की नगरी में यक्ष-किम्पुरुष-डाकिनी और योगिनियाँ भी थीं । इन सबको वहाँ पर परशुरामजी ने अवलोकन किया था । भगवान् शङ्कर के भाई और स्वामी कार्त्तिकेय और उनके बाँई ओर विघ्नेश्वर विनायक विराजमान थे । भार्गवेन्द्र ने उन दोनों को प्रणाम किया था क्योंकि ये दोनों शिव के पुत्र शङ्कर के ही समान पराक्रम वाले थे । इससे पूर्व परशुरामजी ने नन्दी की आज्ञा ग्रहण करके ही उस पुर के अन्दर प्रवेश किया था । अन्दर प्रवेश करने की आज्ञा पाकर उनको बहुत ही प्रसन्नता हुई थी । वहाँ पर भुवनों से सदावृत शिवजी के मन्दिर का अवलोकन किया था । यह मन्दिर चार योजन के विस्तार वाला था ।३०-३१-३२। वहाँ पर परम श्रेष्ठ पार्षद और क्षेत्रपाल भी समवस्थित थे ये लोग रत्न जटित सिंहासनों पर रत्नों के विविध भूषणों से विभूषित होकर विराजमान थे ।३३। जिस समय में भार्गव शिव मन्दिर में प्रवेश कर रहे थे तब उन सबने इनसे पूछा था हे महाराज ! उस समय में विनायक ने उनसे यही कहा था कि एक क्षण मात्र आप यहीं पर ठहरिए ।३४। इस समय में महादेव जी अपनी प्रिय पत्नी जगदम्बा उमा के साथ शयन किये हुए हैं । मैं एक ही क्षण भर में ईश्वर की आज्ञा प्राप्त करके यहीं पर समागत होता हूँ ।३५।

त्वया सार्द्धं प्रवेक्ष्यामि भ्रातस्तिष्ठात्र सांप्रतम् ।
विनायकश्चैतं श्रुत्वा ह्ययचिटं भार्गवनंदनः ॥३६
प्रवक्तुमुपचक्राम गणेशं त्वरयान्वितः ।
राम उवाच—
गत्वा ह्यंतःपुरं भ्रातः प्रणम्य जगदीश्वरौ ॥३७
पार्वतीशंकरौ सद्यो यास्यामि निजमंदिरम् ।
कार्त्तवीर्यः सुचन्द्रश्च सपुत्रबलबांधवः ॥३८
अन्ये सहस्रशो भूपाः कांबोजाः पह्लवाः शकाः ।
कान्यकुब्जाः कोशलेशा मायावन्तो महाबलाः ॥३९
निहताः समरे सर्वे मया शम्भुप्रसादतः ।

तमिमं प्रणिपत्यैव यास्यामि स्वगृहं प्रति ॥४०

इत्युक्त्वा भार्गवस्तत्र तस्थौ गणपतेः पुरः ।

प्रोवाच मधुरं वाक्यं भार्गवे स गणाधिपः ॥४१

विनायक उवाच -

क्षणं तिष्ठ महाभाग दर्शनं ते भविष्यति ।

अद्य विश्वेश्वरो भ्रातर्भवान्या सह वर्त्तते ॥४२

मैं फिर हे भाई ! आपको साथ ही लेकर आपका प्रवेश वहाँ पर अभी करा दूँगा। अतएव यहाँ पर कुछ समय तक आप रुकिए। भार्गव नन्दन ने विनायक के इस वचन का श्रवण करके बड़ी ही शीघ्रता से युक्त होकर श्री गणेशजी से कुछ कथन करने का उपक्रम किया था। राम ने कहा—हे भाई ! आप अन्तः पुर में जाकर उन दोनों जगदीश्वरों को प्रणाम करिए अर्थात् मेरा प्रणिपात निवेदित कर दीजिए। पार्वती और शङ्कर इन दोनों को प्रणाम करके मैं तुरन्त ही अपने मन्दिर को गमन करूँगा। कार्त्तवीर्य और सुचन्द्र जो अपने पुत्रों-सैनिकों और बान्धवों के सहित थे एवं अन्य भी सहस्रों नृप जो कि काम्बोज—पह्लव शक—कान्यकुब्ज—कोशलेश्वर थे जो कि बड़ी ही अधिक माया वाले और महान् बलवान् थे।३६-३७-३८-३९। मैंने भगवान् शम्भु की ही कृपा से तथा परिपूर्ण प्रसाद से युद्ध में सबका निहनन किया है। अतएव अब मैं उन्हीं प्रभु के चरणों में प्रणाम करके फिर अपने घर को चला जाऊँगा।४०। इतना निवेदन करके परशुराम वहाँ पर गणपति के आगे स्थित हो गये थे। फिर उन गणाधिप प्रभु ने भार्गव से बहुत मधुर स्वर में कहा था।४१। विनायक ने कहा—हे महाभाग ! एक मात्र आप यहाँ पर ठहरिए आपको भगवान् शङ्कर का दर्शन हो जायगा। हे भाई ! आज वे विश्वेश्वर प्रभु भवानी के साथ में विद्यमान हैं।४२।

स्त्रीपुंसोर्युक्तयोस्तात सहैकासनसंस्थयोः ।

करोति सुखभंगं यो नरकं स व्रजेद्ध्रुवम् ॥४३

विशेषतस्तु पितरं गुरुं वा भूपतिं द्विज ।

रहस्यं समुपासीनं न पश्येदिति निश्चयः ॥४४

कामतोऽकामतो वापि पश्येद्यः सुरतोन्मुखम् ।

स्त्रीविच्छेदो भवेत्तस्य ध्रुवं सप्तसु जन्मसु ॥४५

श्रोणिं वक्षःस्थलं वक्त्रं यः पश्यति परस्त्रियः ।
मातुर्वापि भगिन्या वा दुहितुः स नराधमः ॥४६

भार्गव उवाच–

अहो श्रुतमपूर्वं किं वचनं तव वक्त्रतः ।
भ्रांत्या विनिर्गतं वापि हास्यार्थमथवोदितम् ॥४७

कामिनां सविकाराणामेतच्छास्त्रनिदर्शनम् ।
निर्विकारस्य च शिशोर्न दोषः कश्चिदेव हि ॥४८

यास्याम्यंतः पुरं भ्रातस्तत्र किं तिष्ठ बालक ।
यथादृष्टं करिष्यामि तत्र यत्समयोचितम् ॥४९

हे तात ! पति और पत्नी जब एक ही आसन पर संस्थित होकर संयुक्त होवें और साथ में निरत होवें उस समय में जो कोई भी सुरत-सुख का भङ्ग किया करता है वह निश्चय ही नरक में गमन किया करता है ।४३। यह तो सर्व साधारण के लिए नियम है और विशेष रूप से हे द्विज ! जो कोई अपने पिता–गुरु अथवा भूपति को जबकि ये रहस्य में समुपासीन हों तो इनको कभी भी बाधा डालते हुए नहीं देखना चाहिए—यह निश्चित सिद्धान्त की बात है ।४४। चाहे इच्छा से या बिना ही इच्छा के कहीं पर भी सुरत क्रीड़ा में उन्मुख पति-पत्नी को जो कोई देखता है अर्थात् देखा करता है उसकी स्त्री का विच्छेद सात जन्मों तक हो जाया करता है यह परम निश्चित है ।४५। जो पराई स्त्री के श्रोणि–वक्षः स्थल और मुख को देखता है तात्पर्य यह है कि बुरी दृष्टि से देखा करता है वह चाहे अपनी माता हो–भगिनी हो या दुहिता हो इनमें कोई भी हो तो वह नरों में बड़ा ही अधम होता है ।४६। भार्गव ने कहा—आज मैंने आपके मुख से निकले हुए अपूर्व ही वचन सुने हैं। ये वचन भ्रान्ति से ही निकल गये हैं अथवा आपने हास्य के ही लिये कहे हैं ? ।४७। यह तो सब विकारों से युक्त कामियों के शास्त्र का निदर्शन है अर्थात् कामवासना से वासित अन्तःकरण वाले ही ऐसे विषय की चर्चा किया करते हैं। आप तो विकारों से रहित है और शिशु हैं क्या आपको ऐसा कथन करने से कोई दोष नहीं होता है ? ।४८। हे भाई ! मैं तो अन्तः पुर में जाऊँगा । आप तो बालक हैं, आपको इस बात से क्या

प्रयोजन है आप यहाँ पर ही रहिए। मैं वहाँ पर जैसा भी देखूँगा और जो भी उस समय में उचित होगा, करूँगा ।४६।

अत्रैव माता तातश्च त्वया नाम निरूपितौ ।
जगतां पितरौ तौ च पार्वतीपरमेश्वरौ ।।५०
इत्युक्त्वा भार्गवो राजन्नंतर्गन्तुं समुद्यतः ।
विनायकस्तदोत्थाय वारयामास सत्वरम् ।।५१
वाग्युद्धं च तयोरासीन्मिथो हस्तविकर्षणम् ।
दृष्ट्वा स्कन्दस्तु सम्भ्रांतो बोधयामास तौ तदा ।।५२
बाहुभ्यां द्वौ समुद्गृह्य पृथगुत्सारितौ तथा ।
अथ क्रुद्धो गणेशाय भार्गवः परवीरहा ।
परश्वधं समादाय संप्रक्षेप्तुं समुद्यतः ।।५३
तं दृष्ट्वा गजाननो भृगुवरं क्रोधात्क्षिपंतं त्वरा
स्वात्मार्थं परशुं तदा निजकरेणोद्धृत्य वेगेन तु ।
भूर्लोकं भुवः स्वरपि तस्योर्ध्वं महर्वैजनं लोकं
चापि तपोऽथ सत्यमपरं वैकुंठमप्यानयत् ।।५४
तस्योर्ध्वं च निदर्शयन्भृगुवरं गोलोकमीशात्मजो
निष्पात्या धरलोक सप्तकमपदिथ दर्शयामास च ।
उद्धृत्याथ ततो हि गर्भसलिले प्रक्षिप्तमात्रं त्वरा
भीतं प्राणपरिप्सुमानयदथो तत्रैव तत्रास्थितः ।।५५

वहीं पर माता जगदम्बा हैं और पिता भगवान शंकर हैं, आपने दोनों के नाम निरूपित कर ही दिये हैं। वे पार्वती और परमेश्वर तो सम्पूर्ण जगतों के पिता-माता हैं ।५०। हे राजन ! इतना भर कहकर भार्गव राम अन्दर जाने के लिए उद्यत हो गये थे। उसी समय में विनायक ने शीघ्र ही उठकर उनका वारण कर दिया था अर्थात् अन्तः पुर में जाने से रोक दिया था ।५१। पहिले तो उन दोनों का वाग्युद्ध अर्थात् कहा सुनी हुई और फिर हाथों को खींच तान हुई, जब कार्त्तिकेय जी ने देखा तो उनको बहुत सम्भ्रान्ति हुई थी और उस समय में उन्होंने दोनों को समझाया था ।५२। स्वामी स्कन्द ने अपनी बाहुओं से पकड़कर उन दोनों को अलग-अलग

कर दिया था। इसके अनन्तर शत्रु वीरों के हनन करने वाले भार्गव गणेश जी पर बहुत क्रुद्ध हो गये थे और अपनी परशु लेकर उसका प्रहार करने के लिए उद्यत हो गये थे।५३। गजानन ने जब यह देखा था कि भृगुवर बड़ी शीघ्रता से क्रोध में भरकर अपने लिए परशु को प्रक्षिप्त कर रहे हैं तो उन्होंने उसी समय में बड़े ही वेग से अपने हाथ से परशुराम को ऊपर उठा कर भूर्लोक-भुवर्लोक-स्वर्लोक-और उसके भी ऊपर महर्लोक-जनलोक तप-लोक-सत्यलोक और दूसरे वैकुण्ठ लोक में ले आये थे।५४। उन भगवान शम्भु के पुत्र गजानन ने उन भृगुवर उसके ऊपर गोलोक को दिखाते हुए फिर गिराकर नीचे के सातों अतल-वितल-सुतल-तला-तल-रसातल-महातल और पाताल लोकों को दिखा दिया था। फिर नीचे के लोकों से ऊपर उठाकर सलिल के गर्भ में शीघ्रता से प्रक्षिप्त किया था। जब यह देखा कि वह भयभीत होकर अपने प्राणों की रक्षा करने की इच्छा वाले हैं तो फिर वहाँ पर उनको लाकर खड़ा कर दिया था जहाँ पर वे पहिले स्थित थे।५५।

भार्गव-चरित्र वर्णन (२)

वसिष्ठ उवाच—

एवं संभ्रामितो रामो गणाधीशेन भूपते।
हर्षशोकसमाविष्टो विचिन्त्यात्मपराभवम् ।।१
गणेशं चाभितो वीक्ष्य निर्विकारमवस्थितम्।
क्रोधाविष्टो भृशं भूत्वा प्राक्षिपत्स्वपरश्वधम् ।।२
गणेशस्त्वभिवीक्ष्याथ पित्रा दत्तं परश्वधम्।
अमोघं कर्त्तुकामस्तु वामे तं दशनेऽग्रहीत् ।।३
स तु दंत: कुठारेण विच्छिन्नो भूतलेऽपतत्।
भुवि शोणितसंदिग्धो वज्राहत इवाचल: ।।४
दंतपातेन विध्वस्ता साब्धिद्वीपधरा धरा।
चकंपे पृथिवीपाल लोकास्त्रासमुपागता: ।।५

हाहाकारो महानासीद्देवानां दिवि पश्यताम् ।
कार्त्तिकेयादयस्तत्र चुक्रुशुर्भृशमातुराः ॥६
अथ कोलाहलं श्रुत्वा दंतपातध्वनि तथा ।
पार्वतीशंकरौ तत्र समाजग्मतुरीश्वरौ ॥७

वसिष्ठ जी ने कहा—हे भूपते ! इस रीति से गणाधीश के द्वारा परशुराम भली भाँति भ्रमित किये गये थे । तब उनको बहुत से अद्भुत लोकों के दर्शन से हर्ष हुआ था और अपने बल पराक्रम की तुच्छता समझ कर बड़ा भारी शोक भी हुआ था ऐसे हर्ष और शोक से समाविष्ट होकर उन्होंने अपने पराभव का चिन्तन किया था ।१। उस समय में गणेश जी को सामने देखा था कि वे बिना विकार वाले अवस्थित हैं तो फिर अत्यन्त क्रोध में भरकर परशुरामजी ने अपने परशु को फेंककर चलाया था ।२। गणेशजी ने यह देखा था कि वह परशु अपने पिताजी के द्वारा राम को दिया गया था । उस परशु के प्रहार को अमोघ अर्थात् सफल करने की ही इच्छा वाले गणेशजी ने उस परशु को अपने बाँये दाँत पर ग्रहण कर लिया था ।३। गणेश जी का वह बाँया दाँत उस कुठार से विच्छिन्न होकर भूतल पर गिर गया था । रुधिर से संदिग्ध (लथपथ) वह दाँत भूमि पर एक पर्वत के ही समान गिर गया था ।४। उस दाँत का पात ऐसा भीषण हुआ था कि सम्पूर्ण सागरों और द्वीपों के सहित यह धरातल विध्वस्त हो गया था और पृथिवीपाल काँप उठे थे तथा सभी लोकों को बड़ा भारी त्रास उत्पन्न हो गया था ।५। स्वर्ग में जो देवगण देख रहे थे उनमें बड़ा भारी हाहाकार मच गया था और वहाँ पर कार्त्तिकेय आदि जो सब थे वे सभी अत्यन्त आतुर होकर क्रन्दन करने लगे थे ।६। इसके अनन्तर जब बड़ा भारी वहाँ पर कोलाहल हो गया था तो उस दाँत के गिरने की ध्वनि को सुनकर ईश्वर पार्वती तथा भगवान् शङ्कर वहाँ पर समागत हो गये थे ।७।

हेरम्बं पुरतो दृष्ट्वा वक्रतुंडैकदंतिनम् ।
पप्रच्छ स्कन्दं पार्वती किमेतदिति कारणम् ॥८
स तु पृष्टस्तदा मात्रा सेनानीः सर्वमादितः ।
वृत्तांतं कथयामास मात्रे रामस्य शृण्वतः ॥९
सा श्रुत्वोदंतमखिलं जगतां जननी नृप ।

उवाच शंकरं दृष्ट्वा पार्वती प्राणनायकम् ॥१०
पार्वत्युवाच–अयं ते भार्गवः शंभो शिष्यः पुत्रः समोऽभवत् ।
त्वत्तो लब्ध्वा परं तेजो वर्म त्रैलोक्यजिद्विभो ॥११
कार्त्तवीर्यार्जुनं संख्ये जितवानूर्जितं नृपम् ।
स्वकार्यं साधयित्वा तु प्रादात्तुभ्यं च दक्षिणाम् ॥१२
तत्ते सुतस्य दशनं कुठारेण न्यपातयत् ।
अनेनैव कृतार्थस्त्वं भविष्यसि न संशयः ॥१३
त्वमिमं भार्गव शम्भो रक्षांतेवासिसत्तमम् ।
तव कार्याणि सर्वाणि साधयिष्यति सद्गुरोः ॥१४

भगवान शङ्कर ने गणेशजी को अपने सामने देखा था जिनका मुख तिरछा हो गया था और केवल एक ही दाँत था। पार्वतीजी ने स्वामी कार्त्तिकेय से पूछा था कि इस दुर्घटना के घटित होने का क्या कारण था ।८। माताजी द्वारा जब स्वामी कार्त्तिकेय से पूछा गया तो सेनानी ने आदि से सम्पूर्ण वृत्तान्त माताजी को कहकर सुना दिया था। उस समय में वहाँ पर परशुराम भी इसको सुन ही रहे थे ।९। हे नृप ! जगतों की जननी पार्वतीजी ने पूर्ण समाचार श्रवण करके रुष्ट होती हुई अपने प्राणनायक भगवान शङ्कर से बोलीं ।१०। पार्वतीजी ने कहा—हे शम्भो ! यह भार्गव तो आपका ही शिष्य है और पुत्र के ही समान हुआ था। हे विभो ! इसने आप ही से ऐसा परम तेज और त्रैलोक्य को जीतने वाला वर्म प्राप्त किया है ।११। इसने महान अजित कार्त्तवीर्यार्जुन नृप को युद्ध में जीत लिया है यह आप ही के द्वारा प्रदत्त बलविक्रम से इसकी विजय हुई है। इसने अपने कार्य को साधित करके अर्थात् अपने शत्रु का निहनन करके अब यह आपकी सेवा में दक्षिणा दी है ।१२। वह यही तो दक्षिणा है कि आप ही के पुत्र के दाँत को अपने कुठार से तोड़कर नीचे गिरा दिया है। आप इसी कार्य से कृतार्थ होंगे—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है ।१३। हे शम्भो ! आप इस परम श्रेष्ठ अपने छात्र तथा शिष्य की रक्षा कीजिए। आप इसके बड़े ही अच्छे गुरु हैं अब आपके समस्त कार्यों को यह ही सिद्ध करेगा ।१४।

अहं नैवात्र तिष्ठामि यस्त्वया विमता विभो ।
पुत्राभ्यां सहिता यास्ये पितुः स्वस्य निकेतनम् ॥१५

संतो भुजिष्यातनयं सत्कुर्वंत्यात्मपुत्रवत् ।
भवता तु कृतो नैव सत्कारो वचसाऽपि हि ॥१६
आत्मनस्तनयस्यास्य ततो यास्यामि दुःखिता ।
वसिष्ठ उवाच–
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं पार्वत्या भगवान्भवः ॥१७
नोवाच किंचिद्वचनं साधु वासाधु भूपते ।
सस्मार मनसा कृष्णं प्रणतक्लेशनाशनम् ॥१८
गोलोकनाथं गोपीशं नानानुनयकोविदम् ।
स्मृतमात्रोऽथ भगवान् केशवः प्रणतार्त्तिहा ।
आजगाम दयासिंधुर्भक्तवश्योऽखिलेश्वरः ॥१६
मेघश्यामो विशदवदनो रत्नकेयूरहारो विद्युद्वासा
मकरसदृशे कुण्डले संदधानः ।
बर्हापीडं मणिगणयुतं बिभ्रदीषत्स्मितास्यो गोपीनाथो
गदितसुयशाः कौस्तुभोद्भासिवक्षाः ॥२०
राधया सहितः श्रीमान् श्रीदाम्ना चापराजितः ॥२१

हे विभो ! मैं अब यहाँ पर नहीं रहूँगी क्योंकि आपने मेरा अपमान कर दिया है अर्थात् मुझको अपनी नहीं समझा है, अब मैं तो अपने दोनों पुत्रों को साथ में लेकर अपने पिताजी के घर में चली जाऊँगी ।१५। सत्पुरुष तो अपनी पुत्री के पुत्रों को अपने ही पुत्रों के समान सत्कार किया करते हैं । आपने तो अपने वचनों से भी कभी सत्कार नहीं किया है ।१६। यह तो आपका ही पुत्र है फिर भी कभी इसका आदर-सम्मान वाणी के द्वारा भी नहीं किया है । इसी कारण से मैं अधिक दुःखित होकर ही चली जाऊँगी । वसिष्ठ जी ने कहा—भगवान शङ्कर ने अपनी परम प्रिया पत्नी पार्वती के इस वचन का श्रवण किया था ।१७। हे राजन् ! किन्तु इस वचन को सुनकर भी उन्होंने पार्वती जी से अच्छा या कुछ भी वचन उत्तर के स्वरूप में नहीं कहा था । और प्रणतों के क्लेशों का विनाश कर देने वाले भगवान श्री कृष्णचन्द्र का मन में स्मरण किया था ।१८। व्रज की गोपियों के नाथ और गोलोक के स्वामी तथा अनेक भाँति के अनुनयो-विनयों के ज्ञाता महान

मनीषी भगवान ने ध्यान में मन के द्वारा स्मरण किया था केवल स्मरण करने ही से अपने चरणों में शिर झुकाकर प्रणत होने वाले भक्तों की पीड़ा का हनन कर देने वाले केशव भगवान् वहाँ पर आकर उपस्थित हो गये थे क्योंकि प्रभु तो समस्त चराचर के ईश्वर हैं—दया के सागर हैं और अपने भक्तों के वश में होने वाले हैं।१६। अब भगवान् के सुन्दर जगत मोहन स्वरूप का वर्णन किया जाता है—उनका वर्ण नील सजल मेघ के समान था—आपका मुख विकसित कमल के सदृश था और आप रत्न जटित केयूर और हार धारण किये हुए थे। सौदामिनी विद्युत के समान पीताम्बर पहिने हुए थे और मकरों की आकृति वाले दो कुण्डल कानों में धारण कर रहे थे। मयूर पिच्छों से निर्मित्त और अनेक मणियों से संयुत मस्तक पर मुकुट पहिन रहे थे तथा उनके मुख कमल पर मन्द मुस्कान झलक रही थी। वे गोपियों के नाथ जिनके यश का वर्णन किया है कौस्तुभ मणि से उद्भासित वक्षःस्थल वाले थे।२०। अद्भुत श्री से सम्पन्न श्रीकृष्ण के साथ में रासेश्वरी राधा भी थीं और श्रीदामा से अपराजित थे।२१।

मुष्णंस्तेजांसि सर्वेषां स्वरुचा ज्ञानवारिधिः ।
अथैनमागतं दृष्ट्वा शिवः संहृष्टमानसः ॥२२
प्रणिपत्य यथान्यायं पूजयामास चागतम् ।
प्रवेश्याभ्यंतरे वेश्म राधया सहितं विभुम् ॥२३
रत्नसिंहासने रम्ये सदारं स न्यवेशयत् ।
अथ तत्र गता देवी पार्वती तनयान्विता ॥२४
ननाम चरणान्प्रभ्वोः पुत्राभ्यां सहिता मुदा ।
अथ रामोऽपि तत्रैव गत्वा नमितकंधरः ॥२५
पार्वत्याश्चरणोपांते पपाताकुलमानसः ।
सा यदा नाभ्यनंदत्तं भार्गवं प्रणतं पुरः ॥२६
तदोवाच जगन्नाथः पार्वतीं प्रीणयन्गिरा ॥२७
श्रीकृष्ण उवाच—
अयि नगनंदिनि निंदितचंद्रमुखि त्वमिमं जमदग्निसुतम् ।
नय निजहस्तसरोजसमर्पितमस्तकमंकमनंतगुणे ॥२८

भगवान् श्रीकृष्ण ज्ञान के महान् सागर थे और अपने दिव्य देह की कान्ति से सबके तेज को तिरस्कृत कर रहे थे। इसके अनन्तर जिस समय में भगवान् श्रीकृष्ण ने वहाँ पर पदार्पण किया था तो उनका दर्शन करके भगवान् शिव के मन में परमाधिक प्रसन्नता हुई थी।२२। उन वहाँ पर समागत हुए प्रभु को न्याय के अनुसार जैसा भी महापुरुषों के लिये अभिवादन किया जाता है प्रणिपात किया और अर्चन किया था। फिर बड़े ही आदर से राधिकाजी के साथ प्रभु का अपने सदन में प्रवेश कराया था।२३। वहाँ पर एक रत्न जटिल परम सुरम्य सिंहासन पर राधिका जी के सहित उनको विराजमान कराया था। इसके अनन्तर जब पार्वती जी ने साक्षात् प्रभु का आगमन देखा तो वह भी अपने दोनों पुत्रों के सहित वहाँ पर पहुँच गयी थीं।२४। बड़े ही हर्षोल्लास के साथ इन्होंने अपने दोनों पुत्रों के सहित श्रीकृष्ण और श्रीराधा चरणों में प्रणाम किया था। इसके उपरान्त परशुराम भी वहीं पर पहुँच गये थे और अपनी गरदन को नीचे की ओर झुकाये हुए आकुलित मन वाले होकर पार्वती जी के चरणों के समीप में ही भूमि में गिर गये थे। किन्तु जब अपने आगे प्रणिपात करते हुए भार्गव को पार्वती जी ने अभिनन्दित नहीं किया था तो यह भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं उनके हृद्गत अमर्ष का अवलोकन किया था।२५-२६। उस समय जगतों के नाथ प्रभु श्रीकृष्ण ने अपनी परम मधुर वाणी से पार्वती जी को प्रसन्न करते हुए उनसे कहा था।२७। श्रीकृष्ण ने कहा—अयि ! नगराज की पुत्रि ! आप तो इतने अधिक सुन्दर मुख वाली हैं कि जिसकी छटा के सामने चन्द्र भी तुच्छ है। आपके अन्दर तो अनन्त गुण गण विद्यमान हैं। अब आप इस जमदग्नि के पुत्र परशुराम को अपने कर कमलों से इसका मस्तक पकड़ कर अपनी गोद में बिठा लीजिए।२८।

भवभयहारिणि शंभुविहारिणि कल्मषनाशिनि कुंभिगते।
तव चरणे पतितं सततं कृतकिल्विषमप्यव देहि वरम् ॥२९
शृणु देवि महाभागे वेदोक्तं वचनं मम।
यच्छ्रुत्वा हर्षिता नूनं भविष्यसि न संशयः।
विनायकस्ते तनयो महात्मा महतां महान् ॥३०
यं कामः क्रोध उद्वेगो भयं नाविशते कदा।
वेदस्मृतिपुराणेषु संहितासु च भामिनि ॥३१

नामान्यस्योपदिष्टानि सुपुण्यानि महात्मभिः ।
यानि तानि प्रवक्ष्यामि निखिलाघहराणि च ॥३२
प्रमथानां गणा ये च नानारूपा महाबलाः ।
तेषामीशस्त्वयं यस्माद्गणेशस्तेन कीर्त्तितः ॥३३
भूतानि च भविष्याणि वर्त्तमानानि यानि च ।
ब्रह्मांडान्यखिलान्येव यस्मिँल्लंबोदरः स तु ॥३४
यः स्थिरो देवयोगेन च्छिन्नं संयोजितं पुनः ।
गजस्य शिरसा देवि तेन प्रोक्तो गजाननः ॥३५

हे शम्भु के साथ बिहार करने वाली देवि ! आप तो समस्त सांसारिक भयों को दूर करने वाली हैं और सभी प्रकार के कल्मषों का विनाश कर देने वाली हैं । हे कुम्भिगते ! अर्थात् मत्तकरिणी के समान मन्द गति वाली ! यह परशुराम अब आपके चरणों में पड़ा हुआ आप को प्रणिपात कर रहा है । यद्यपि इसने निरन्तर आपके अपराध रूपी पाप किया है तथापि इसको क्षमा करके अब वरदान दे दीजिए ।२९। हे देवि ! आप तो महान् भाग वाली हैं । अब आप मेरे वेदों में कहे हुए वचन का श्रवण कीजिए । मुझे पूर्ण विश्वास है कि उस मेरे वचन को सुनकर आप निश्चय ही परम हर्षित हो जायगी । इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है । यह विनायक (गणेश) आपका पुत्र है और यह महान् आत्मा वाले तथा महान् पुरुषों में भी शिरोमणि महान् पुरुषों में भी शिरोमणि महान् हैं ।३०। इनके हृदय में कभी भी काम-क्रोध-उद्वेग और भय आदि का प्रवेश नहीं हुआ करता है । हे भामिनि ! वेदों में स्मृतियों में पुराणों में तथा संहिताओं में सर्वत्र इनके शुभमानों का वर्णन है ।३१। बड़े-बड़े महात्माओं के द्वारा सुपुण्यमय इनके नामों का उपदेश दिया गया है । वे इनके परम शुभ नाम समस्त अघों के दूर कर देने वाले हैं । जो भी वे नाम हैं उनको मैं अभी आपको बतला दूँगा ।३२। जो भी प्रमथों के गण हैं जिनके विविध स्वरूप हैं और जो महान् बल वाले हैं । उन सबके यह गणेश स्वामी हैं । यही कारण है कि इनका नाम 'गणेश' यह संसार में कहा जाया करता है ।३३। जितने भी जो भी भविष्य में होने वाले हैं और समस्त जो भी ब्रह्माण्ड हैं जिनमें यही लम्बोदर हैं अर्थात् लम्बे विशाल उदर वाले यही हैं ।३४। जो भी इस समय में स्थिर है यह पहिले एक बार दैव के योग से इनका मस्तक छिन्न हो गया

था और फिर उसको संयोजित किया था जो कि एक गज के शिर से ही जोड़ दिया गया था। हे देवि ! इसीलिए यह गजानन नाम वाले हैं।३५।

चतुर्थ्यामुदितश्चन्द्रो दर्भिणा शप्त आतुरः।
अनेन विधृतो भाले भालचन्द्रस्ततः स्मृतः ॥३६
शप्तः पुरा सप्तभिस्तु मुनिभिः संक्षयं गतः।
जातवेदा दीपितोऽभूद्येनासौ शूर्पकर्णकः ॥३७
पुरा देवासुरे युद्धे पूजितो दिविषद्गणैः।
विघ्नं निवारयामास विघ्ननाशस्ततः स्मृतः ॥३८
अद्यायं देवि रामेण कुठारेण निपात्य च।
दशनं दैवतो भद्रे ह्येकदंतः कृतोऽमुना ॥३९
भविष्यस्यथ पर्याये ब्रह्मणो हरवल्लभे।
वक्रीभविष्यत्तुंडत्वाद्वक्रतुंडः स्मृतो बुधैः ॥४०
एवं तवास्य पुत्रस्य संति नामानि पार्वति।
स्मरणात्पापहारीणि त्रिकालानुगतान्यपि ॥४१
अस्मात्त्रयोदशीकल्पात्पूर्वस्मिन्दशमीभवे।
मयास्मै तु वरो दत्तः सर्वदेवाग्रपूजने ॥४२

चतुर्थी तिथि में चन्द्रमा उदित हुआ था और दर्भी के द्वारा इसको शाप दे दिया गया था तब यह अत्यन्त आतुर हो गया था। उस समय में इन्हीं गणेश ने इसको अपने भाल में धारण कर लिया था। तभी से इनका नाम भाल चन्द्र कहा गया है।३६। प्राचीन काल में पहिले सात मुनियों ने एक बार इसको शाप दे दिया था। इसी कारण से यह क्षीणता को प्राप्त हो गया था। इनके द्वारा एक बार जातवेदा (अग्नि) दीपित किया गया था। इसी कारण से तभी से इनका शूर्पकर्णक नाम हो गया था।३७। पहिले समय में देवों और असुरों का महान् भीषण देवासुर संग्राम हुआ था उसमें देवगणों के द्वारा इनकी बड़ी अर्चना हुई थी। उससे परम प्रसन्न होकर इन्होंने सभी विघ्नों का निवारण कर दिया था। फिर तभी से इनका विघ्न नाश—यह शुभ नाम पड़ गया था।३८। हे देवि ! आज परशुराम के द्वारा इसके ऊपर अपने कुठार का प्रहार किया गया है हे भद्रे ! इससे दैववशात् इनका एक

दाँत टूटकर गिर गया है। इसीलिये इनने इसको एकदन्त कर दिया है ।३९। हे हर ! बल्लभे ! इसके अनन्तर यह ब्रह्मा के पर्य्याय में होंगे। कुठार के ही प्रहार से इनका मुख कुछ वक्र सा हो गया है तभी से बुधों के द्वारा इनको वक्रतुण्ड कहा गया है ।४०। हे पार्वति ! इसी भाँति से आपके इस पुत्र (गणेश) के अनेक नाम हैं। जिनका तीनों कालों में अर्थात् प्रातः- मध्याह्न और सायंकाल में स्मरण करने वाले होते हैं ।४१। इस त्रयोदशी कल्प से पूर्व कदर्मोभव में मैंने ही इनको यह वरदान दे दिया था कि समस्त देवों के पूजन के पहिले इन्हीं का सर्वप्रथम पूजन हुआ करेगा ।४२।

जातकर्मादिसंस्कारे गर्भाधानादिकेऽपि च ।
यात्रायां च वणिज्यादौ युद्धे देवार्चने शुभे ।।४३
संकष्टे काम्यसिद्ध्यर्थं पूजयेद्यो गजाननम् ।
तस्य सर्वाणि कार्याणि सिद्ध्यंत्येव न संशयः ।।४४
वसिष्ठ उवाच–
इत्युक्तं तु समाकर्ण्य कृष्णेन सुमहात्मना ।
पार्वती जगतां नाथा विस्मिताऽसीच्छुभानना ।।४५
यदा नैवोत्तरं प्रादात्पार्वती शिवसन्निधौ ।
तदा राधाऽब्रवीद्देवीं शिवरूपा सनातनी ।।४६
श्री राधोवाच–
प्रकृतिः पुरुषश्चोभावन्योन्याश्रयविग्रहौ ।
द्विधा भिन्नौ प्रकाशेते प्रपंचेस्मिन् यथा तथा ।।४७
त्वं चाहमावयोर्देवि भेदो नैवास्ति कश्चन ।
विष्णुस्त्वमहमेवास्मि शिवो द्विगुणतां गतः ।।४८
शिवस्य हृदये विष्णुर्भवत्या रूपमास्थितः ।
मम रूपं समास्थाय विष्णोश्च हृदये शिवः ।।४९

जातकर्म आदि षोडश संस्कारों के कराने के समय में तथा गर्भ के आधान आदि कर्मों में—यात्रा के करने के समय में वाणिज्य आदि व्यसायों के करने के काल में—संग्राम के आरम्भ करने के समय में एवं किसी भी

शुभ कार्य के करने के समय में तथा सङ्कट के आ पड़ने पर और किसी भी कामना से युक्त कार्य की सिद्धि के लिए जो भी कोई इन गजानन प्रभु का पूजन करेगा उस पुरुष के समस्त कार्य अवश्यमेव सिद्ध हो जाया करते हैं—इनमें कुछ भी संशय नहीं है ।४३-४४। श्री वसिष्ठजी ने कहा—परम शुभ मुख वाली जगतों की स्वामिनी पार्वती श्रीकृष्ण महान् आत्मा वाले प्रभु के द्वारा इस प्रकार से कहे हुए वचन का श्रवण करके अत्यन्त विस्मित हो गयी थीं ।४५। जब भगवान् शिव की सन्निधि में पार्वतीजी ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया था उस समय में सनातनी शिव के स्वरूप वाली राधा जी ने देवी से कहा था ।४६। श्री राधाजी ने कहा—जिस रीति से इस प्रपञ्च में पुरुष और प्रकृति दोनों परस्पर में एक दूसरे के आश्रम में विग्रहों (स्वरूपों) को रखने वाले हैं और दो रूपों में भिन्न प्रकाशित हुआ करते हैं उसी रीति से हे देवि ! तुम और मैं दोनों में दो रूप तो हैं किन्तु वस्तुत कोई भी भेद नहीं है। तुम विष्णु और मैं ही शिव हूँ और द्विगुणता को प्राप्त हुआ है ।४७-४८। भगवान् शिव के हृदय में विष्णु आपके रूप में समास्थित हैं और मेरे रूप में समास्थित होकर भगवान् विष्णु के हृदय में शिव है ।४९।

एष रामो महाभागे वैष्णवः शैवतां गतः ।
गणेशोऽयं शिवः साक्षाद्वैष्णवत्वं समास्थितः ।।५०
एतयोरावयोः प्रभ्वोश्चापि भेदो न दृश्यते ।
एवमुक्त्वा तु सा राधा क्रोडे कृत्वा गजाननम् ।।५१
मूर्ध्न्युपाघ्राय पस्पर्श स्वहस्तेन कपोलके ।
स्पृष्टमात्रे कपोले तु क्षतं पूर्त्तिमुदागतम् ।।५२
पार्वतीसुप्रसन्नाभूदनुनीताऽथ राधया ।
पादयोः पतितं राममुत्थाप्य निजपाणिना ।।५३
क्रोडीचकार सुप्रीता मूर्ध्न्युपाघ्राय पार्वती ।
एवं तयोस्तु सत्कारं दृष्ट्वा रामगणेशयोः ।।५४
कृष्णः स्कन्दमुपाकृष्य स्वांके [illegible]ष्णा न्यवेशयत् ।
अथ शम्भुरपि प्रीतः श्रीदामानमुपस्थितम् ।।५५
स्वोत्संगे स्थापयामास प्रेम्णा सत्कृत्य मानदः ।।५६

हे महाभागे ! यह वैष्णव परशुराम शैवता को प्राप्त हुआ है अर्थात् शिव के स्वरूप को प्राप्त होजाने वाला हो गया है। और साक्षात् यह गणेश शिव हैं जो वैष्णवत्व को प्राप्त हुआ है अर्थात् विष्णु के स्वरूप में समास्थित है। इन हम दोनों प्रभुओं का भी भेद दिखलाई नहीं दिया करता है। इस प्रकार से कहकर श्री राधा ने अपनी गोद में गजानन को बैठा लिया था।५०-५१। फिर गणेशजी का मस्तक सूंघ कर अपने हाथ से उनके कपोलों का स्पर्श किया था। उनके केवल कर कमल के स्पर्श करते ही तत्क्षण जो भी दाँत के टूट जाने से क्षत हो गया था वह भरकर ठीक हो गया था।५२। इसके अनन्तर श्री राधा जी के द्वारा अनुनय की गयी पार्वतीजी भी परम प्रसन्न हो गयी थीं और अपने चरणों में मस्तक नवाकर पड़े हुए परशुराम को उन्होंने भी अपने करकमल से पकड़ कर उठा लिया था। पार्वती जी ने परम प्रसन्न होकर उसको अपनी गोद में बिठाकर उसके शिर का उपघ्राण किया था। आर्य संस्कृति में वृद्ध एवं बड़े लोग अपने छोटे बालकों का शिर सूंघ कर उनकी आयु की वृद्धि किया करते थे। इस रीति से उन दोनों राम और गणेश का सत्कार भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने नेत्रों से देखा था। तब श्रीकृष्ण ने भी स्कन्द को अपनी ओर उठाकर बहुत ही प्रेम के साथ अपनी गोद में बैठा लिया था। इसके अनन्तर भगवान् शम्भु ने भी परम प्रसन्न होकर वहाँ पर समुपस्थित श्रीदामा को अपनी गोद में संस्थापित कर लिया था और मान प्रदान करने वाले प्रभु ने उसका बड़ा सत्कार किया था।५३-५४-५५-५६।

—×—

भार्गव-चरित्र वर्णन (३)

वसिष्ठ उवाच–

एवं सुस्निग्धचित्तेषु तेषु तिष्ठत्सु भूपते ।
भवान्युत्संगतो रामः समुत्थाय कृतांजलिः ॥१
तुष्टाव प्रयतो भूत्वा निर्विशेषं विशेषवत् ।
अद्वयं द्वैतमापन्नं निर्गुणं सगुणात्मकम् ॥२

राम उवाच–

प्रकृतिविकृतिजातं विश्वमेतद्विधातुं मम कियदनुभातं वैभवं तत्प्रमातुम् ।

अविदिततनुनामाऽनीष्टवस्त्वेकधामाऽभवदथ भव-
भामा पातु मां पूर्णकामा ॥३
प्रकटितगुणमानं कालसंख्याविधानं सकलभवनिदानं
कीर्त्यते यत्प्रधानम् ।
तदिह निखिलतातः संबभूवोक्षपातः कृतकृतकनिपातः
पातु मामद्य मातः ॥४
दनुजकुलविनाशी लेखपाताविनाशी प्रथम-
कुलविकाशी सर्वविद्याप्रकाशी ।
प्रसभरचितकाशी भक्तदत्ताखिलाशीरवतु विजितपाशी
मां सदा षण्मुखाशी ॥५
हरनिकटनिवासी कृष्णसेवाविलासी
प्रणतजनविभासी गोपकन्याप्रहासी ।
हरकृतबहुमानो गोपिकेशैकतानो विदितबहुविधानो
जायतां कीर्तिहा नो ॥६
प्रभुनियतमना यो नुन्नभक्तांतरायो हृतदुरितनिकायो
ज्ञानदातापरायोः ।
सकलगुणगरिष्ठो राधिकांके निविष्टो मम
कृतमपराधं क्षंतुमर्हत्वगाधम् ॥७

श्री वसिष्ठ जी ने कहा—हे भूपते ! इस रीति से उन सबके परमार्थिक स्नेह से युक्त चित्त वाले हो जाने पर समवस्थित हुए देखा था तो परशुराम भवानी की गोद से उतर कर दोनों हाथों को जोड़कर पूर्णतया प्रणत हो गये थे ।१। फिर परम प्रयत्नशील होकर विशेषता से रहित की भी विशेष की भाँति स्तुति की थी । आप द्वैत से रहित होते हुए भी अर्थात् एक ही स्वरूप वाले होकर भी इस समय में द्वैत भाव को प्राप्त हो रहे हैं अर्थात् दो स्वरूपों में दर्शन दे रहे हैं । वास्तव में आप गुणों से रहित हैं तो भी अब सगुण स्वरूप से संयुत हैं ।२। परशुराम ने कहा—यह सम्पूर्ण विश्व प्रकृति के विकारों से ही समुत्पन्न हुआ है । इसकी रचना करने के लिए जो

भी आपका वैभव है उसके जानने के लिये मेरा ज्ञान कितना है अर्थात् मैं बहुत ही तुच्छ ज्ञान वाला उसको नहीं जान सकता हूँ। आपका स्वरूप और नाम किसी को भी विदित नहीं हैं किन्तु फिर भी आप अभीष्ट वस्तुओं के एक ही धाम हैं। आप भगवान् शङ्कर की भामिनी हैं और पूर्ण काम वाली हैं। आप मेरी रक्षा कीजिए।३। सत्व-रज और तम-इन गुणों का ज्ञान करने वाला—काल की सख्या का विधान करने वाला—इस सम्पूर्ण संसार का जो मूल कारण है वह प्रधान-इस नाम से कीत्तित किया जाया करता है वह यहाँ पर पूर्णतया कृतकृतक निपात वाला उत्पात जिससे हुआ था हे माता! वह आप आज मेरा परित्राण कीजिए।४। सम्पूर्ण दनुओं के कुलों का विनाश करने वाले—लेख पातों में अविनाशी-अपने कुल का सर्वप्रथम विकास करने वाले—समस्त विद्याओं के प्रकाश से समन्वित-अपने बल से ही काशी की रचना के कर्त्ता-अपने भक्तों के लिए सभी प्रकार का आशीर्वाद देने वाले और जिन्होंने पाश को भी जीत लिया है ऐसे षण्मुखों से अशन करने वाले स्वामी कात्तिकेय मेरी सदा-सर्वदा रक्षा करें।५। भगवान् हर के समीप में निवास करने वाले—श्रीकृष्ण की सेवा के विलास वाले-जो भक्त चरणों में प्रणत होते हैं उनको विशेष ज्ञान प्रदान करने वाले-गोपों की कन्याओं के द्वारा प्रहास किये गये-भगवान् शङ्कर जिनका बड़ा मान दिया करते हैं गोपिकेश्वर के एक ध्यान वाले और जिनको बहुत से विधान ज्ञान हैं वे मेरे कीत्तिहा होवे।६। जो प्रभु के चरणों में नियत मन वाले हैं तथा भक्तों के अन्तःकरण में प्रेरणा प्रदान करने वाले-समस्त पापों के समुदाय का हरण करने वाले-ज्ञान के प्रदान में तत्पर-सब प्रकार के गुणगणों में परमश्रेष्ठ और श्री राधाकाजी को गोद में विराजमान प्रभु मेरे किये हुए अगाध अपराध को क्षमा करने के योग्य होते हैं।७।

या राधा जगदुद्भवस्थितिलयेष्वाराध्यते वा जनैः
शब्दं बोधयतीशवक्त्र विगलत्प्रेमामृतास्वादनम्।
रासेशी रसिकेश्वरी रमणहृन्निष्ठानिजानंदिनी
नेत्री सा परिपातु मामवनतं राधेति या कीर्त्यंते ॥८

यस्या गर्भसमुद्भवो ह्यतिविराड्यस्यांशभूतो विराड्
यन्नाभ्यंबुरुहोद्भवेन विधिनैकांतोपदिष्टेन वै
सृष्टं सर्वमिदं चराचरमयं विश्वं च यद्रोमसु
ब्रह्मांडानि विभांति तस्य जननी शश्वत्प्रसन्नाऽस्तु सा ॥९

पायाद्यः स चराचरस्य जगतो व्यापी विभुः सच्चिदा-
नंदाब्धिः प्रकटस्थितो विलसति प्रेमांधया राधया ।
कृष्णः पूर्णतमो ममोपरि दयाक्लिन्नांतरः स्यात्सदा
येनाहं सुकृती भवामि च भवाम्यानंदलीनांतरः ॥१०

वसिष्ठ उवाच–

स्तुत्वैवं जामदग्न्यस्तु विरराम ह तत्परम् ।
विज्ञाताखिलतत्त्वार्थो हृष्टरोमा कृतार्थवत् ॥११
अथोवाच प्रसन्नात्मा कृष्णः कमललोचनः ।
भार्गवं प्रणतं भक्त्या कृपापात्रं पुरःस्थितम् ॥१२

कृष्ण उवाच–

सिद्धोऽसि भार्गवेंद्र त्वं प्रसादान्मम सांप्रतम् ।
अद्य प्रभृति वत्सास्मिँल्लोके श्रेष्ठतमो भव ॥१३
तुभ्यं वरो मया दत्तः पुरा विष्णुपदाश्रमे ।
तत्सर्वं क्रमतो भाव्यं समा बह्वीस्त्वया विभो ॥१४

जो श्री राधा इस जगत् के लय-उद्भव और स्थिति काल में भी जनों के द्वार समाराधित होती हैं-स्वामी के मुख से विगलित प्रेमरूपी अमृत के रसास्वाद का शब्द से ज्ञान कराती हैं—जो रास लीला की स्वामिनी हैं—रसिकों की ईश्वरी है अपने रमण कराने वाले के हृदय में निष्ठा वाली तथा अपने आपको आनन्द पाने वाली वह नेत्री अर्थात् गोपीगणाधीश्वरी जिनका शुभ नाम श्री राधा कीर्त्तित किया जाया करता है वह अवनत मेरी की रक्षा करें ।८। जिसके गर्भ से अति विराट् स्वरूप का उद्भव हुआ था और जिसका वह विराट् स्वरूप एक अंशभूत ही था—जिसकी नाभि से समुत्पन्न कमल से समुत्पन्न हुए विधाता ने जिसको एकान्त में उपदेश दिया गया था—इस स्थावर जङ्गम सम्पूर्ण विश्व की रचना की है और जिसके रोमों में ये समस्त ब्रह्माण्ड शोभित हो रहे हैं उस पूर्ण परमेश्वर को जन्म देने वाली जननी मेरे ऊपर निरन्तर प्रसन्न होवे ।९। जो इस चराचर जगत् में व्यापक विभु है और जो सत्-चित् और आनन्द का सागर प्रकट स्वरूप में स्थित होकर प्रेमान्ध श्रीराधा के साथ शोभा प्राप्त करता है वह मेरी रक्षा

करें। परम पूर्णतम परमेश्वर श्रीकृष्ण मेरे ऊपर करुणा से पसीजे हुए हृदय वाले मेरे ऊपर होवें जिससे मैं कृतकृती हो जाऊँ और आनन्द में लीन अन्तःकरण वाला बन जाऊँ ।१०। वसिष्ठजी ने कहा—इस रीति से जमदग्नि महामुनि के पुत्र परशुराम ने भगवान श्रीकृष्णचन्द्र की स्तुति करके फिर इसके पश्चात् वह विरत होकर चुप हो गए थे। वह सम्पूर्ण तत्वों के अर्थों का ज्ञाता एक सफलता प्राप्त होने वाले के ही समान परम प्रसन्न पुलकोद्गम वाला हो गया था ।११। इसके अनन्तर कमलों के सदृश लोचनों वाले परम प्रसन्न आत्मा से युक्त होते हुए श्रीकृष्ण ने अपने आगे उपस्थित-भक्ति भावना से प्रणत तथा कृपा के पात्र भार्गव से कहा—।१२। श्रीकृष्ण बोले—हे भार्गवेन्द्र ! तुम इस समय मेरे प्रसाद (पूर्ण प्रसन्नता) से सिद्ध हो गये हो। हे वत्स ! तुम आज से लेकर इस लोक में सबसे अधिक श्रेष्ठ हो गए हो ।१३। पहिले समय में विष्णु महाश्रम में मैंने आपको वर दिया था। वह सब कुछ हे विभो ! क्रम से बहुत से वर्षों में पूर्ण होना चाहिए अर्थात् पूर्ण हो ही जायगा ।१४।

दया विधेया दीनेषु श्रेय उत्तममिच्छता ।
योगश्च साधनीयो वै शत्रूणां निग्रहस्तथा ।।१५

त्वत्समो नास्ति लोकेऽस्मिस्तेजसा च बलेन च ।
ज्ञानेन यशसा वापि सर्वश्रेष्ठतमो भवान् ।।१६

अथ स्वगृहमासाद्य पित्रोः शुश्रूषणं कुरु ।
तपश्चर यथाकालं तेन सिद्धिः करस्थिता ।।१७
राधोत्संगात्समुत्थाप्य गणेशं राधिकेश्वरः ।
आलिंग्य गाढं रामेण मैत्रीं तस्य चकार ह ।।१८

अथोभावपि संप्रीतौ तदा रामगणेश्वरौ ।
कृष्णाज्ञया महाभागौ बभूवतुररिंदम ।।१९
एतस्मिन्नंतरे देवी राधा कृष्णप्रिया सती ।
उभाभ्यां च वरं प्रादात्प्रसन्नास्या मुदान्विता ।।२०

राधोवाच—सर्वस्य जगतो वंद्यौ दुराधर्षौ प्रियावहौ ।
मद्भक्तौ च विशेषेण भवंतौ भवतां सुतौ ।।२१

अब मेरा तुम्हारे लिए यह उपदेश है कि परम श्रेयकी अभिलाषा रखने वाले आपको जो विचारे दीन प्राणी हैं उन पर दया करनी चाहिए। और तुमको योग की साधना करनी चाहिए तथा अपने शत्रुओं का निग्रह

भी करना चाहिए ।१५। इस लोक में आपके समान अन्य कोई भी तेज-बल-ज्ञान और यश में समानता रखने वाला नहीं है और आप सबमें परम श्रेष्ठतम हैं ।१६। उसके अनन्तर आप अपने निवास गृह में पहुँचकर अपने माता-पिता की शुश्रूषा करो। और जब भी समय प्राप्त हो तब तपश्चर्या करो। इससे सिद्धि आपके करतल में स्थित हो जायगी ।१७। फिर श्री-राधिका के ईश्वर ने भी राधाजी की गोद से गणेशजी को अपनी बाहुओं से स्वयं उठाकर अपने वक्ष:स्थल से लगा लिया था और भली-भाँति स्नेहालिङ्गन करके फिर उनकी मित्रता परशुराम के साथ करादी थी ।१८। हे शत्रुओं दमन करने वाले ! इसके उपरान्त उस समय में भगवान श्रीकृष्ण की आज्ञा से महान भाग वाले वे दोनों ही परशुराम और गणेश बहुत प्रीति वाले हो गये थे अर्थात् उन दोनों की बहुत ही गहरी प्रीतिमयी मित्रता हो गयी थी और पहिले हुआ द्वेष भाव बिल्कुल ही उनके हृदयों से निकल गया था ।१९। इसी बीच में परम सती-साध्वी श्रीकृष्ण चन्द्र की प्रिया श्रीराधा देवी अधिक आनन्द से समन्वित होकर प्रसन्न मुख कमल वाली ने उन दोनों के लिए वर दिया था ।२०। श्रीराधाजी ने कहा—हे पुत्रो ! इस सम्पूर्ण जगत के द्वारा वन्दना करने के योग्य—असह्य तेज वाले और प्रिय कार्य का आवाहन करने वाले तथा आप दोनों ही विशेष रूप से मेरे भक्त हो जावें ।२१।

भवतोर्नाम चोच्चार्य यत्कार्यं यः समारभेत् ।
सिद्धिं प्रयातु तत्सर्वं मत्प्रसादाद्धि तस्य तु ।।२२
अथोवाच जगन्माता भवानी भववल्लभा ।
वत्स राम प्रसन्नाऽहं तुभ्यं कं प्रददे वरम् ।
तं ब्रूहि महाभाग भयं त्यक्त्वा सुदूरतः ।
राम उवाच—
जन्मांतरसहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम् ।।२३
कृष्णयोर्भवयोर्भक्तो भविष्यामीति देहि मे ।
अभेदेन च पश्यामि कृष्णौ चापि भवौ तथा ।।२४
पार्वत्युवाच—
एवमस्तु महाभाग भक्तोऽसि भवकृष्णयोः ।

चिरंजीवी भवाशु त्वं प्रसादान्मम सुव्रत ॥२५
अथोवाच धराधीशः प्रसन्नस्तमुमापतिः ।
प्रणतं भार्गवेंद्रं तु वरार्हं जगदीश्वरः ॥२६
शिव उवाच—
रामभक्तोऽसि मे वत्स यस्ते दत्तो वरो मया ।
स भविष्यति कार्त्स्न्येन सत्यमुक्तं न चान्यथा ॥२७
अद्यप्रभृति लोकेऽस्मिन् भवतो वलवत्तरः ।
न कोऽपि भवतादृत्स तेजस्वी च भवत्परः ॥२८

जो कोई पुरुष आपके शुभ नाम का उच्चारण करके जो भी कुछ कार्य का समारम्भ किया करता है उसका वह कार्य मेरे प्रसाद से निश्चित रूप से सिद्धि को प्राप्त हो जाता है ।२२। इसके उपरान्त भगवान भव (शिव) की वल्लभा भवानी देवी जो इस समस्त जगत को जन्म देने वाली माता हैं, बोली थीं । हे राम, हे वत्स ! मैं तुम से बहुत प्रसन्न हूँ, मुझे तुम यह बतला दो कि तुम्हारे लिए मैं क्या वरदान दे दूँ । हे महान भाग वाले ! उसी वरदान को जो तुमको अभिलाषित हो मुझे स्पष्ट बतलाओ और इसमें सर्वथा भय मत करो तथा भय को तो एकदम बहुत दूर हटा दो । परशुराम जी ने कहा—मैं अपने सहस्रों जन्मों में भी जिन जिन देहों में गमन करके समुत्पन्न होऊँ ।२३। श्री राधा कृष्ण और भवानी-भव का अनन्य भक्त होऊँ यही वरदान आप मुझे प्रदान कीजिए। श्री राधा कृष्ण और भव-भवानी—इन दोनों युगलों का मैं कोई भेद भी नहीं देखूँ अर्थात् इनका एक ही स्वरूप मेरी दृष्टि में बना रहे ।२४। जगदम्बा पार्वतीजी ने कहा—हे महाभाग ! इसी प्रकार से होगा । तुम तो भगवान शंकर और श्रीकृष्ण-चन्द्र के परम भक्त हो । हे सुव्रत ! अर्थात् परम सुन्दर व्रत वाले ! मेरी कृपा के प्रसाद से तुम बहुत शीघ्र चिरकाल पर्यन्त जीवित रहने वाले हो जाओ ।२५। इसके पश्चात् इस वसुन्धरा के स्वामी भगवान उमापति परमाधिक प्रसन्न होकर उस राम से बोले और जगत के स्वामी ने जब देखा था कि वह भार्गवेन्द्र परशुराम उनके चरणों में प्रणत हो रहा है तथा वरदान प्राप्त करने का परम योग्य पात्र है तो उन्होंने कहा—।२६। भगवान शिव ने कहा—हे वत्स ! तुम मेरे राम के भक्त हो—यह वरदान मैंने तुमको दिया था । वह वरदान सम्पूर्णतया कहा हुआ सत्य ही होगा और इस वरमें

अन्यथा कुछ भी नहीं होगा अर्थात् इसमें कुछ भी अन्तर न होगा ।२७। हे वत्स ! इस समस्त लोक में आज ही से आरम्भ करके आपसे अधिक बलवान कोई भी नहीं होगा और न कोई आपसे अधिक तेज के धारण करने वाला तेजस्वी ही होगा ।२८।

वसिष्ठ उवाच-

अथ कृष्णोऽप्यनुज्ञाप्य शिवं च नगनंदिनीम् ।
गोलोकं प्रययौ युक्तः श्रीदाम्ना चापि राधया ॥२९
अथ रामोऽपि धर्मात्मा भवानीं च भवं तथा ।
संपूज्य चाभिवाद्याथ प्रदक्षिणमुपाक्रमीत् ॥३०
गणेशं कार्त्तिकेयं च नत्वापृच्छ्य च भूपते ।
अकृतव्रणसंयुक्तो निश्चक्राम गृहांतरात् ॥३१
निष्क्रम्यमाणो रामस्तु नंदीश्वरमुखैर्गणैः ।
नमस्कृतो ययौ राजन्स्वगृहं परया मुदा ॥३२

वसिष्ठजी ने कहा—इसके अनन्तर भगवान श्रीकृष्ण शिव और नगराज की पुत्री को अनुज्ञापित करके श्रीराधा और श्री दामा के साथ अपने गोलोक धाम को चले गये थे ।२९। इसके पश्चात् धर्मात्मा राम ने भी भगवान शिव और जगदम्बा का भली-भाँति अर्चन करके और अभिवादन करके इसके अनन्तर उन्होंने प्रदक्षिणा करने का उपक्रम किया था ।३०। हे भूपते ! फिर राम ने गणेशजी और स्वामी कार्त्तिकेय की सेवा में प्रणिपात करके तथा उनसे पूछकर उस गृह के मध्य भाग से बाहिर निष्क्रमण किया था ।३१। हे राजन् ! जिस वेला में राम वहाँ से बाहर निकल कर जा रहे थे उस अवसर पर नन्दीश्वर प्रभृति शिव के मुख्य गणों के द्वारा उनको प्रणाम किया गया था और फिर वह राम बड़ी ही प्रसन्नता से अपने गृह को चले गये थे ।३२।

सगरोपाख्यान (१)

वसिष्ठ उवाच-

राजन्नेवं भृगुर्विद्वान्पश्यञ्जनपदान्बहून् ।
समाजगाम धर्मात्माऽकृतव्रणसमन्वितः ॥१

निलिल्युः क्षत्रियाः सर्वे यत्र तत्र निरीक्ष्य तम् ।
व्रजंतं भार्गवं मार्गे प्राणरक्षणतत्पराः ॥२
अथाससाद राजेंद्र रामः स्वपितुराश्रमम् ।
शांतसत्त्वसमाकीर्णं वेदध्वनिनिनादितम् ॥३
यत्र सिंहा मृगा गावो नागमार्ज्जारमूषकाः ।
समं चरंति संहृष्टा भयं त्यक्त्वा सुदूरतः ॥४
यत्र धूमं समीक्ष्यैव ह्यग्निहोत्रसमुद्भवम् ।
उन्नदंति मयूराश्च नृत्यंति च महीपते ॥५
यत्र सायंतने काले सूर्यस्याभिमुखं द्विजैः ।
जलांजलीन्प्रक्षिपद्भिः क्रियते भूर्जलाविला ॥६
यत्रांतेवासिभिर्नित्यं वेदाः शास्त्राणि संहिताः ।
अभ्यस्यंते मुदा युक्तैर्ब्रह्मचर्यव्रते स्थितैः ॥७

श्री वसिष्ठ महामुनि ने कहा—हे राजन् ! इस प्रकार से विद्वान् भृगु बहुत-से जन पदों का अवलोकन करते हुए वे धर्मात्मा राम अकृत व्रण से समन्वित होकर समागत हो गये थे ।१। मार्ग में जहाँ पर भी क्षत्रिय मिले थे वे सब उन परशुराम को देखकर छिप गये थे क्योंकि मार्ग में राम गमन करते हुए उन्हें दिखलाई पड़े थे और वे बिचारे अपने प्राणों की रक्षा में परायण होकर इधर-उधर भागे-भागे फिर रहे थे ।२। हे राजेन्द्र ! इसके पश्चात् परशुराम अपने पिता के आश्रम में पहुँच गए थे जो आश्रम परम शान्त जीवों से घिरा हुआ था और जिसमें वेद मन्त्रों की ध्वनि गूँज रही थी ।३। उस आश्रम में स्वभाव जनित वैर भाव भी नाम मात्र को भी नहीं था और परस्पर में निसर्ग शत्रु जीव भी जैसे सिंह और मृग तथा गौ-सर्प-मार्जार और मूषक भी सब मिले-जुले एक साथ सञ्चरण करते थे और अपने स्वाभाविक शत्रुओं का भी भय दूर करके त्याग दिया था ।४। हे महीपते ! जिस आश्रम में निरन्तर अग्नि होत्र के होते रहने से समुत्पन्न हुए धूम (धूँआ) को देखकर ही मेघावरण की भ्रान्ति से अर्थात् घने धूम के द्वारा समावृत अन्तरिक्ष को मेघाच्छन्न समझकर मयूर बहुत प्रसन्न हो रहे थे और अपने चित्रविचित्र पिच्छों को फैला कर नृत्य कर रहे थे जहाँ पर सायंकाल के समय में द्विजगण सूर्यदेव के सम्मुख में जल की अञ्जलियों

का प्रक्षेप कर रहे थे जिस जल से सारी भूमि आविल हो गई थी अर्थात् भीगकर मटमैले रङ्ग की हो रही थी ।६। जहाँ पर अध्ययन शील बटु ब्रह्मचारियों के द्वारा नित्य ही वेदों-शास्त्रों और संहिताओं का अभ्यास किया जाता था । ये सभी छात्र परमाधिक हर्ष से समन्वित तथा ब्रह्मचर्य व्रत में समास्थित रहा करते थे ।७।

अथ रामः प्रसन्नात्मा पश्यन्नाश्रमसंपदम् ।
प्रविवेश शनैं राजन्नकृतव्रणसंयुतः ॥८
जयशब्दं नमः शब्दं प्रोच्चरद्भिर्द्विजात्मजैः ।
द्विजैश्च सत्कृतो रामः परं हर्षमुपागतः ॥९
आश्रमाभ्यंतरे तत्र संप्रविश्य निजं गृहम् ।
ददर्श पितरं रामो जमदग्निं तपोनिधिम् ॥१०
साक्षाद्भृगुमिवासीनं निग्रहानुग्रहक्षमम् ।
पपात चरणोपान्ते ह्यष्टांगालिंगितावनिः ॥११
रामोऽहं तव दासोऽस्मि प्रोच्चरन्निति भूपते ।
जग्राह चरणौ चापि विधिवत्सज्जनाग्रणीः ॥१२
अथ मातुश्च चरणावभिवाद्य कृतांजलिः ।
उवाच प्रणतो वाक्यं तयोः संहर्षकारणम् ॥१३
राम उवाच—
पितस्तव प्रभावेण तपसोऽतिदुरासदः ।
कार्त्तवीर्यो हतो युद्धे सपुत्रबलवाहनः ॥१४

इसके अनन्तर उस परम पुनीत आश्रम की अनिर्वचनीय विशाल विभूति का अवलोकन करने से प्रसन्न आत्मा वाले राम ने हे राजन् ! अपने पालित अकृत व्रण के सहित मन्दगति से उस आश्रम में प्रवेश किया था ।८। जैसे ही राम ने भीतर अपना पदार्पण किया था वैसे ही उनका दर्शन करके वहाँ पर स्थित द्विजों के बालकों ने जय-जयकार और नमस्कार की ध्वनियों को प्रोच्चारण किया था और विप्रों के द्वारा भार्गवेन्द्र राम का बड़ा ही अधिक सम्मान-सत्कार किया गया था । इस रीति से अपने स्वागत-समादर को देखते हुए राम को परमाधिक हर्ष हुआ था ।९। उस आश्रम के

अन्दर अपने गृह में जब राम ने प्रवेश किया था तो वहाँ पर परशुराम जी ने तपस्या के परम निधि अपने पिताश्री जमदग्नि महामुनि का दर्शन किया था।१०। वे जमदग्नि मुनि साक्षात् अपने पूर्व पुरुष भृगु मुनि के समान वहाँ पर विराजमान थे जो अपने तपोबल से विग्रह और अनुग्रह करने की विशाल सामर्थ्य धारण करने वाले थे। उनके समीप में पहुँचकर राम ने उनके चरण कमलों के निकट में अपने आठों अङ्गों से भूमि का आलिङ्गन करते हुए गिर गये थे अर्थात् भूमि पड़कर साष्टाङ्ग प्रणाम किया था।११। हे भूपते! परशुराम ने प्रणिपात करते हुए—मैं आपका दासानुदास राम हूँ—आपकी सेवा में मेरा सादर प्रणाम निवेदित है—ऐसा मुख से उच्चारण करते हुए उस सज्जनों में प्रमुख राम ने प्रणाम करने की विधि से साथ पिताश्री के दोनों चरणों का ग्रहण किया था।१२। इसके अनन्तर उन्होंने अपनी माता श्री के चरणों में करबद्ध होते हुए अभिवादन किया था। फिर परम प्रणत होकर उन दोनों माता-पिता के अतीव हर्ष का कारण स्वरूप वाक्य कहा था।१३। राम ने कहा—हे पिताजी, आपके परम दुरासद तप के प्रभाव से ही मैंने बड़े बलवान कार्त्तवीर्य राजा का पुत्रों-सैनिकों और वाहनों के सहित हनन कर दिया है। इस निवेदन का तात्पर्य यही है कि उस इतने बलशाली शत्रु के निपातन करने में मेरा पुरुषार्थ कुछ भी नहीं है यह सब कुछ आपके ही तप का प्रभाव है जिस से मेरे द्वारा वह दुष्ट मारा गया है।१४।

यस्तेऽपराधं कृतवान्दुष्टमंत्रिप्रचोचितः।
तस्य दण्डो मया दत्तः प्रसह्य मुनिपुंगव ॥१५
भवन्तं तु नमस्कृत्य गतोऽहं ब्रह्मणोऽतिकम्।
तं नमस्कृत्य विधिवत्स्वकार्यं प्रत्यवेदयम् ॥१६
स मामुवाच भगवाञ्छ्रुत्वा वृत्तांतमादितः।
व्रज स्वकार्यसिद्ध्यर्थं शिवलोकं सनातनम् ॥१७
श्रुत्वाऽहं तद्वचस्तात नमस्कृत्य पितामहम्।
गतवाञ्छिवलोकं वै हरदर्शनकांक्षया ॥१८
प्रविश्य तत्र भगवन्नुमया सहितः शिवः।
नमस्कृतो मया देवो वांछितार्थप्रदायकः ॥१९

तदग्रे निखिलः स्वीयो वृत्तांतो विनिवेदितः ।
मया समाहितधिया स सर्वं श्रुतवानपि ॥२०
श्रुत्वा विचार्य तत्सर्वं ददौ मह्यं कृपान्वितः ।
त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं सर्वसिद्धिदम् ॥२१

यह वही अधम राजा था । जिसने अपने परम दुष्ट मन्त्री की प्रेरणा से प्रेरित होकर आपका महान् अपराध किया था । उस अपराध का दण्ड मेरे द्वारा उसको दे दिया गया है । हे मुनियों में परम श्रेष्ठ ! मैंने बलपूर्वक उसको दण्डित किया है । मैंने जिस रीति से अब तक जो कुछ भी किया है उसका पूर्ण विवरण क्रमानुसार मैं आपकी सन्निधि में निवेदित करता हूँ ।१५। मैंने आपको नमस्कार करके सर्वप्रथम ब्रह्माजी के समीप में गमन किया था क्योंकि समस्त सृष्टि ब्रह्मा जी के ही द्वारा हुई है । अतः उनको उसके निपातन से कुछ बुरा प्रतीत न हो, उनकी आज्ञा प्राप्त करना न्यायोचित एवं आवश्यक था । मैंने वहाँ जाकर उनको विधि के साथ प्रणिपात किया था और अपना सङ्कल्पित कार्य उनसे निवेदित कर दिया था ।१६। ब्रह्माजी ने आरम्भ से लेकर सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना था और मुझसे कहा था । समस्त क्षत्रियगण भगवान् शिव के परम भक्त हैं अतः अपने कार्य की सिद्धि के लिए सनातन शिवलोक में जाना चाहिए ।१७। हे तात ! पितामह के इस वचन का श्रवण करके ब्रह्माजी को नमस्कार करके भगवान् शिव के दर्शन की आकाङ्क्षा से फिर मैं शिवजी के लोक में गया था ।१८। हे भगवन् ! वहां पर शिव लोक में प्रवेश करके उमा देवी के सहित भगवान् शिव को नमस्कार किया था । भगवान् शिव तो ऐसे देव हैं जो सबके लिए वाञ्छित अर्थ का प्रदान कर दिया करते हैं ।१९। उन प्रभु के सामने मैंने अपना पूरा वृत्तान्त आवेदित कर दिया था । जो भी उनकी सेवा में निवेदित किया था उस सबको उन्होंने परम समाहित बुद्धि से उस सबका श्रवण भी किया था । उस सम्पूर्ण वृत्तान्त का श्रवण करके उन्होंने एक क्षण तक विचार किया था और फिर परमाधिक कृपा से समन्वित होकर समस्त सिद्धियों के देने वाले त्रलोक्य विजय नाम वाला कवच मुझे उन्होंने प्रदान किया था ।२०-२१।

तल्लब्ध्वा तं नमस्कृत्य पुष्करं समुपागतः ।
तत्राहं साधयित्वा तु कवचं हृष्टमानसः ॥२२

कार्त्तवीर्यं निहत्याजौ शिवलोकं पुनर्गतः ।
तत्र तौ तु मया दृष्टौ द्वारे स्कन्दविनायकौ ॥२३
तौ नमस्कृत्य धर्मज्ञ प्रवेष्टुं चोद्यतोऽभवम् ।
स मामवेक्ष्य गणपो विशन्तं त्वरयान्वितम् ॥२४
वारयामास सहसा नाद्यावसर इत्यथ ।
मम तेन पितस्तत्र वाग्युद्धं हस्तकर्षणम् ॥२५
सञ्जातपरशुक्षेममतोऽभूद्भृगुनन्दन ।
तज्ज्ञात्वा समुद्गृह्य मामधश्चोर्द्ध्वमेव च ॥२६
करेण भ्रामयामास पुनश्चानीतवांस्ततः ।
तं दृष्ट्वातिक्रुधा क्षिप्तः कुठारो हि मया ततः ॥२७
दंतो निपतितस्तस्य ततो देव उपागतः ।
पार्वती तत्र रुष्टाऽभूत्तदा कृष्णः समागतः ॥२८

उस कवच की सिद्धि पुष्कर तीर्थ में बतलायी थी अतएव मैंने उस को प्राप्तकर भगवान् शङ्कर को प्रणाम किया और मैं फिर उसकी सिद्धि के लिये पुष्कर में समागत हो गया था। वहाँ पर मैंने उस कवच की सिद्धि प्राप्त कर ली थी। और उसे साधित करके मेरे मन में बड़ी प्रसन्नता हुई थी।२२। फिर संग्राम भूमि में कार्त्तवीर्य का निपातन करके मैं पुनः शिव-लोक में गया था कि अपनी विजय का सम्वाद प्रभु को सुनावूँ। वहाँ पर मैंने द्वारपर स्कन्द और विनायक को समवस्थित देखा।२३। हे धर्म के ज्ञान वाले भगवान् ! मैंने उन दोनों की सेवा में प्रणाम किया और मैं अन्दर प्रवेश करने के लिए समुद्यत हो गया था। उस समय में बड़ी शीघ्रता से युक्त होकर अन्दर प्रविष्ट होने वाले मुझ को देखकर गणेश जी ने रोक दिया था।२४। उन्होंने मुझ से यही कह मुझको अन्दर प्रवेश करने से सहसा रोका था कि आज अन्दर गमन करने का अवसर नहीं है। हे पिताजी ! उस समय में मेरा उन गणेश जी के साथ पहिले तो वाग्युद्ध अर्थात् अच्छी तरह से कहा सुनी हुई थी और फिर हाथों का कर्षण अर्थात् मेरा हाथ पकड़कर खींचातानी हुई थी।२५। उस समय में गणेश जी ने यह देखा कि भृगु नन्दन अपने परशु का प्रहार करने वाला हो रहा था। उन्होंने यह जानकर मुझको पकड़ लिया था और ऊपर उठाकर नीचे की ओर कर दिया था।२६।

गणेश जी ने अपने हाथ से उठाकर अच्छी तरह से ऊपर के अनेक लोकों में घुमाया था और फिर नीचे के लोकों में घुमाकर यहीं पर मुझे लाकर रख दिया था। फिर मुझको बड़ा भारी क्रोध आ गया था और मैंने अपना कुठार उनके ऊपर प्रक्षिप्त कर दिया था ।२७। उस प्रहार से गणेशजी का एक बांया दाँत टूटकर भूमि पर गिर गया था। उसी समय में महादेवजी वहाँ पर आ गये थे। उस समय में पार्वतीजी ने अपने पुत्र के दाँत के टूट जाने की दुर्घटना देखी तो वे बहुत रुष्ट हो गयी थी। उसी समय में भगवान् श्री कृष्ण भी आ गये थे ।२८।

राधया सहितस्तेन सानुनीता वरं ददौ ।
मह्यं कृष्णो जगामाथ तेन मैत्रीं विधाय च ॥२९

ततः प्रणम्य देवेशौ पार्वतीपरमेश्वरौ ।
आगतस्तव सान्निध्यमकृतव्रणसंयुतः ॥३०

वसिष्ठ उवाच–

इत्युक्त्वा भार्गवो रामो विरराम च भूपते ।
जमदग्निरुवाचेदं रामं शत्रुनिबर्हणम् ॥३१

जमदग्निरुवाच–

क्षत्रहत्याभिभूतस्त्वं तावद्दोषोपशांतये ।
प्रायश्चित्तं ततस्तावद्यथावत्कर्तुमर्हसि ॥३२

इत्युक्तः प्राह पितरं रामो मतिमतां वरः ।
प्रायश्चित्तं तु तद्योग्यं त्वं मे निर्देष्टुमर्हसि ॥३३

जमदग्निरुवाच–

व्रतैश्च नियमैश्चैव कर्षयन्देहमात्मनः ।
शाकमूलफलाहारो द्वादशाब्दं तपश्चर ॥३४

वसिष्ठ उवाच–

इत्युक्तः प्रणिपत्यैनं मातरं च भृगूद्वहः ।
प्रययौ तपसे राजन्नकृतव्रणसंयुतः ॥३५

स गत्वा पर्वतं वरं महेंद्रमरिकर्षणः ।

कृत्वाऽऽश्रमपदं तस्मिस्तपस्तेपे सुदुश्चरम् ॥३६
व्रतैस्तपोभिर्नियमैर्देवताराधनैरपि ।
निन्ये वर्षाणि कति चिद्रामस्तस्मिन्महात्मना: ॥३७

भगवान् श्रीकृष्ण श्रीराधा जी को साथ में लेकर ही पधारे थे। उनके द्वारा पार्वतीजी का अनुभव किया था और पार्वती जगज्जनी ने मुझे वरदान प्रदान किया था। और भगवान् कृष्ण ने हम दोनों की मित्रता कराकर प्रणाम किया था और वहाँ से वे चले गये थे।२६। इसके अनन्तर देवेश्वर पार्वती और परमेश्वर दोनोंको सादर प्रणिपात करके में अकृत व्रण के ही साथ में उनके समीप में उपस्थित हो गया था ।३०। वसिष्ठजी ने कहा—हे भूपते ! इतना ही सम्पूर्ण अपना वृत्तान्त कहकर फिर परशुराम चुप हो गये थे। इसके अनन्तर महामुनि जमदग्नि ने उन शत्रुओं के विनाश कर देने वाले राम से बोले ।३१। जमदग्नि ने कहा—हे राम ! आप तो अब समस्त क्षत्रियों की हत्या से अभिभूत हो गये हैं अर्थात् क्षत्रियों के वध की हत्या आपके ऊपर छायी हुई है। अतएव अब आप उस की हुई हत्या के निवारण करने के लिये यथाविधि प्रायश्चित्त करने के योग्य हैं अर्थात् उसके शोधन के वास्ते शास्त्रोक्त प्रायश्चित्त करना ही चाहिए ।३२। इस तरह से कथन करने वाले अपने पिताजी से मतिमानों में श्रेष्ठ राम ने यह प्रार्थना की थी कि उस विशाल वध के शोधन के योग्य जो भी कोई प्रायश्चित्त हो उसको आप ही मुझे निर्देश करने के लिए परम योग्य हैं ।३३। महामुनीन्द्र जमदग्नि जी ने कहा—बहुत-से व्रतों और नियमों के द्वारा अपने शरीर का कर्षण करते हुए केवल वन्य शाकों और मूलों का आहार करने वाले होकर बारह वर्षों तक निरन्तर तपश्चर्या का समाचरण करो ।३४। जब इस प्रकार से आत्म-शोधन के लये पिताश्री के द्वारा कहा गया था तो परशुराम जी ने अपने माता-पिता के चरणों में प्रणिपात किया और अकृतव्रण को अपने साथ में लेकर हे राजन् ! वह तपस्या करने के लिये वहाँ से चले गये थे ।३५। वे परशुराम जिन्होंने अपने समस्त शत्रुओं का विनाश करके पूर्णतया कर्षणकार दिया था वे अब अपने देह की शुद्धि के लिए कर्षण करने के वास्ते महेन्द्र नामक पर्वत पर गये थे। उस गिरि पर अपना एक आश्रम बनाकर उन्होंने वहाँ पर परम दुश्चर तप किया था ।३६। वहाँ पर राम ने अनेक व्रत-तप-नियम और देवता के समाराधन के द्वारा उस आश्रम में महान् मन वाले भार्गव ने कुछ वर्ष व्यतीत कर दिये थे अर्थात् ऐसे ही अनेक साधनों को करके बहुत से वर्ष बिता दिये थे ।३७।

सगरोपाख्यान (२)

वसिष्ठ उवाच–

ततः कदाचिद्विपिने चतुरंगबलान्वितः ।
मृगयामगमच्छूरः शूरसेनादिभिः सह ॥१
ते प्रविश्य महारण्यं हत्वा बहुविधान्मृगान् ।
जग्मुस्तृषार्त्ता मध्याह्ने सरितं नर्मदामनु ॥२
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च वारि नद्या गतश्रमाः ।
गच्छंतो ददृशुर्मार्गे जमदग्नेरथाश्रमम् ॥३
दृष्ट्वाश्रमपदं रम्यं मुनीनागच्छतः पथि ।
कस्येदमिति पप्रच्छुर्भाविकर्मप्रचोदिताः ॥४
ते प्रोचुरतिशांतात्मा जमदग्नेर्महातपाः ।
वसत्यस्मिन्सुतो यस्य रामः शस्त्रभृतां वरः ॥५
तच्छ्रुत्वा भीरभूत्तेषां रामनामानुकीर्तनात् ।
क्रोधं प्रसह्यानृशंस्य पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥६
अथ ते प्रोचुरन्योन्यं पितृहंतुर्वधात्पितुः ।
वैर निर्यातनं किं तु करिष्यामो दिशाधुना ॥७

श्री वसिष्ठ जी ने कहा—इसके उपरान्त यह हुआ था कि किसी समय में शूर शूरसेन आदि के साथ चतुरङ्गिणी सेना लेकर उसी वन में मृगया (शिकार) के लिये गया था। जिसमें पैदल-अश्व-हाथी और रथ ये सभी चारों साधन होते हैं वही चतुरङ्गिणी सेना कही जाती है।१। उन्होंने उस महान् विशाल अरण्य में प्रवेश करके बहुत-से मृगों का हनन किया था। जब मध्याह्न काल हो गया तो वे सब पिपासा बेचैन होकर नर्मदा नदी की ओर पहुँच गये थे।२। वहाँ पर उनने जल पान किया और स्नान किया था और अपने श्रम को दूर किया था। जब वहाँ से वे जा रहे थे तो भृगुवर जमदग्नि मुनि का आश्रम उनने देखा था।३। वह आश्रम का स्थान बहुत ही सुरम्य था। उसका अवलोकन करके उन्होंने मार्ग में आगमन करते हुए मुनिगणों से पूछा था कि यह किसका ऐसा परम सुन्दर आश्रम है। उस समय में होनहार ऐसा ही था और भविष्य में होने वाले कर्मों से वे प्रेरित

हो गये थे ।४। उन मुनिगणों ने उस नृप से कहा था कि इस आश्रम में अत्यन्त ही प्रशान्त आत्मा वाले और महान् तपस्वी जमदग्नि मुनि निवास किया करते हैं जिनके पुत्र शस्त्र धारियों में परम श्रेष्ठ परशुराम हैं ।५। यह श्रवण करके परशुराम जी के नाम के अनुकीर्त्तन से पहिले तो सुनने के साथ ही उनके हृदय में बड़ा भारी भय उत्पन्न हो गया था किन्तु फिर क्रोध को सहन करके उनको परशुराम की बड़ी भारी क्रूरता के साथ किये हुए पूर्व वैर का अनुस्मरण हो गया था ।६। इसके अनन्तर उन्होंने एक दूसरे से आपस में कहा था कि इन्होंने तो हमारे पिता का वध किया था तो ऐसे पिता के हनन करने वाले के पिता का अब इस समय में वध करके हम सब इस रीति से अपने वैर का बदला अवश्य निकालेंगे ।७।

इत्युक्त्वा खड्गहस्तास्ते संप्रविश्य तदाश्रमम् ।
प्रजघ्निरे प्रयातेषु मुनिवीरेषु सर्वतः ॥८
तं हत्वाऽस्य शिरो हृत्वा निषादा इव निर्दयाः ।
प्रययुस्ते दुरात्मानः सबलाः स्वपुरीं प्रति ॥९
पुत्रास्तस्य महात्मानो दृष्ट्वा स्वपितरं हतम् ।
परिवार्य महाराज रुरुदुः शोककर्शिताः ॥१०
भर्त्तारं निहतं भूमौ पतितं वीक्ष्य रेणुका ।
पपात मूर्च्छिता सद्यो लतेवाशनिताडिता ॥११
सा स्वचेतसि संमूर्च्छ्य शोकपावकदीपितान् ।
दूरप्रनष्टसंज्ञेव सद्यः प्राणैर्व्ययुज्यत ॥१२
अनालपंत्यां तस्यां तु संज्ञां याता हि ते पुनः ।
न्यपतन्मूर्च्छिता भूमौ निमग्नाः शोकसागरे ॥१३
ततस्तपोधना येऽन्ये तत्तपोवनवासिनः ।
समेत्याश्वासयामासुस्तुल्यदुःखाः सुतान्मुने ॥१४

इतना कहकर वे सब करों में खड्ग लेकर उस आश्रम के अन्दर प्रविष्ट हो गये थे और सभी ओर से गमनागमन करने वाले मुनियों का हनन किया था ।८। फिर उनने जमदग्नि मुनि का हनन कर दिया था और दया से रहित निषादों के ही समान उस जमदग्नि का मस्तक काटकर हरण कर लिया था । वे महान् दुष्ट आत्मा वाले अपनी सेना के सहित

अपनी नगरी की ओर चले गये थे ।९। हे महाराज ! उस महामुनि जमदग्नि के जो अन्य पुत्र थे वे परम साधु प्रकृति से सुसम्पन्न महान् आत्मा वाले तापस ही थे जब उन्होंने देखा कि उनके पिता का बड़ी निर्दयता से हनन कर दिया गया है तो उस मृत पिता ने शव के चारों बैठकर महान शोक से उत्पीड़ित होते हुए रुदन करने लग गये थे ।१०। अपने प्राणनाथ स्वामी को निहत और भूमि पर पड़े हुए देखकर मुनि पत्नी रेणुका देवी तुरन्त ही भूमि पर पछाड़ खाकर वज्राघात से गिरी हुई कोमल लता के ही समान मूच्छित होकर गिर गयी थी ।११। उसके मन में मूर्च्छा आ गयी थी और उसको अपने देह का अनुसन्धान नहीं रहा था। वह शोक की अग्नि से दीपित हो गयी थी। वह बहुत अधिक संज्ञा से हीन के समान ही होकर तुरन्त ही अपने प्रिय प्राणों से वियुक्त हो गयी थी अर्थात् उसके प्राण पखेरू तुरन्त ही उड़ गए थे ।१२। जब उसके पुत्रों ने देखा कि वह कुछ भी नहीं बोल रही है तो फिर उनको होश आया था और अपनी माता का मृत शरीर देखकर वे सभी शोक के अगाध सागर में निमग्न होते हुए मूच्छित होकर भूमि में पछाड़ खाकर गिर गये थे ।१३। जब ऐसा शोक से वहाँ बड़ा हाहाकार मच गया तो जो अन्य तप के ही धन वाले तपस्वी गण थे जो कि उसी तपोवन में निवास करने वाले थे हे मुने ! उन सबको भी उन मुनि पति-पत्नियों के वियोग से समान ही दुःख हो रहा था और वे सब वहीं पर इकट्ठे हो गये थे तथा रेणुका के पुत्रों को समाश्वासन दिया था ।१४।

सांत्व्यमाना मुनिगणैर्जामदग्न्या यथाविधि ।
आधुक्षुर्वचसा तेषामग्नौ पित्रोः कलेवरे ॥१५
चक्रुरेव तदूर्द्ध्वं वै यत्कर्त्तव्यमनंतरम् ।
पित्रोर्मरणदुःखेन पीड्यमाना दिवानिशम् ॥१६
तत काले गते रामः समानां द्वादशावधौ ।
निवृत्तस्तपसः सख्या सहागादाश्रमं पितुः ॥१७

समस्त समागत मुनिगणों के द्वारा अब अच्छी तरह से उन पुत्रों को सान्त्वना दी गयी थी तो जमदग्नि के उन मुनियों के कहने से अपने माता-पिता के शवों का कर्मकाण्ड के अनुसार अग्नि में दाह कर दिया था ।१५। अन्त्येष्टि के अनन्तर फिर जो भी करने के योग्य ऊर्ध्व क्रिया कलाप था उस

सबको भी पूर्णतया सम्पन्न किया था। वे सभी जमदग्नि के आत्मज अपने दोनों ही माता-पिता के मरण के असह्य दुःख से रात दिन पीड़ित होते हुए रहा करते थे।१६। इसके अनन्तर कुछ काल के व्यतीत हो जाने पर जबकि बारह वर्षों की अवधि पूर्ण हो गयी थी तो अपनी तपश्चर्या से निवृत्त होकर राम अकृत व्रण के साथ अपने पिता श्री में आये थे।१७।

क्षत्रिय वंश नाश प्रतिज्ञा

वसिष्ठ उवाच–

स गच्छन्पथि शुश्राव मुनिभ्यस्तत्त्वमादितः ।
राजपुत्रव्यवसितं पित्रोः स्वर्गतिमेव च ॥१
पितुस्तु जीवहरणं शिरोहरणमेव च ।
तन्मृतेरेव मरणं श्रुत्वा मातुश्च केवलम् ॥२
विललाप महाबाहुर्दुःखशोकसमन्वितः ।
तमथाश्वासयामास तुल्यदुःखोऽकृतव्रणः ॥३
हेतुभिः शास्त्रनिर्दिष्टैर्वीर्यसामर्थ्यसूचकैः ।
युक्तिलौकिकदृष्टान्तैस्तच्छोकं संव्यशामयत् ॥४
सांत्वितस्तेन मेधावी धृतिमालंब्य भार्गवः ।
प्रययौ सहितः सख्या भ्रातॄणां तु दिदृक्षया ॥५
स तान् दृष्ट्वाभिवाद्यैताम् भार्गवो दुःखकर्षितः ।
शोकामर्षयुतस्तैश्च सह तस्थौ दिनत्रयम् ॥६
ततोऽस्य सुमहान्क्रोधः स्मरतो निधनं पितुः ।
बभूव सहसा सर्वलोकसंहरणक्षमः ॥७

श्री महामुनीन्द्र वसिष्ठजी ने कहा—परशुराम ने मार्ग में गमन करते हुए मुनि मण्डल से आरम्भ से सब तत्त्व सुन लिया था अर्थात् वहाँ पर किस तरह से सब घटनाएँ हुईं थीं यह श्रवण कर लिया था। उनको यह भी ज्ञात हो गया था कि उन महान दुष्ट राज पुत्रों ने यह कुचेष्टाएँ की थीं और उनके द्वारा पिता की मृत्यु तथा शोक में माता का देहान्त हो गया है

।१। अपने पिताजी के जीवन का हरण और उनके शिर को काटकर ले जाने का समाचार भी उन्होंने जानकर यह भी उनको ज्ञात हो गया था कि उनकी माताश्री का मरण पिताजी की मृत्यु हो जाने ही से शोकोद्रेक वश हो गयी थी ।२। वह महाबाहु को बड़ा भारी शोक और असह्य दुःख हुआ था । इससे वे राम बहुत अधिक विलाप करने लग गये थे । यद्यपि अकृत व्रण को भी परशुराम के ही समान दुःख हुआ था किन्तु फिर भी उसने राम को बहुत कुछ समाश्वासन दिया था ।३। वीर्य की सामर्थ्य के सूचक शास्त्रों में निर्दिष्ट किये गए हेतुओं के द्वारा और युक्तियों से तथा लोक में होने वाले अनेक दृष्टान्तों के द्वारा परशुराम जी के उस महान शोक को अकृत व्रण ने शमित कर दिया था ।४। उस अकृत व्रण के द्वारा सान्त्वना दिए गए परशुराम ने धैर्य का अवलम्बन लिया था क्योंकि वह बहुत अधिक मेधावी थे । इसके अनन्तर परशुरामजी अपने सखा अकृत व्रण के साथ अपने भाइयों के देखने की इच्छा से अपने गृह की ओर चल दिये थे ।५। वहाँ पर भार्गव ने जाकर अभिवादन किया था और इन सबको परम दुःखित देखकर परशुरामजी को भी अत्यधिक दुःख हुआ था । उन सबके साथ में पुनः उस शोक का नवीनीकरण हो गया था और परम शोक में मग्न होकर वह वहाँ तीन दिन तक स्थित रहे थे ।६। इसके अनन्तर अपने पिता श्री के निधन का स्मरण करते हुए उनको महान क्रोध उत्पन्न हो गया था और तुरन्त ही वह सम्पूर्ण लोक के संहार कर देने में समर्थ हो गये थे ।७।

मातुरर्थे कृतां पूर्वं प्रतिज्ञां सत्यसंगरः ।
दृढीचकार हृदये सर्वक्षत्रवधोद्यतः ॥८

क्षत्रवंश्यानशेषेण हत्वा तद्दहलोहितैः ।
करिष्ये तर्पणं पित्रोरिति निश्चित्य भार्गवः ॥९

भ्रातॄणां चैव सर्वेषामाख्यायात्मसमीहितम् ।
प्रययौ तदनुज्ञातः कृत्वा संस्थां पितुः क्रियाम् ॥१०

अकृतव्रणसंयुक्तः प्राप्य माहिष्मतीं ततः ।
तद्बाह्योपवने स्थित्वा सस्मार स महोदरम् ॥११

स तस्मै रथचापाद्यं सहसा श्वसमन्वितम् ।
प्रेषयामास रामाय सर्वसंहननानि च ॥१२

रामोऽपि रथमारुह्य सन्नद्धः सशरं धनुः ।
गृहीत्वापूरयच्छंखं रुद्रदत्तममित्रजित् ॥१३
ज्याघोषं च चकारोच्चैं रोदसी कंपयन्निव ।
सहसाह्नोथ सारथ्यं चक्रे सारथिनां वरः ॥१४

माता रेणुका ने अपने पति के वियोग में विलाप करते हुए इक्कीस बार अपने वक्षःस्थल को पीटा था अतः परशुरामजी ने उसी समय में यह प्रतिज्ञा की थी कि मेरे पिता को क्षत्रिय जातीय नृप ने निहत किया है इसलिए मैं भी इक्कीस बार भूमण्डल को संहार करके क्षत्रियों से रहित कर दूँगा—माता के लिए की हुई इस प्रतिज्ञा को सत्यवादी दिया था ।८। ने समस्त क्षत्रियों के वध करने के लिये समुद्यत होकर हृदय में सुदृढ़ कर भार्गवेन्द्र ने ऐसा निश्चय कर लिया था कि क्षत्रियों के वंश में समुत्पन्न सबका निहनन करके उनके शरीरों के रुधिर से मैं अपने माता-पिता का तर्पण करूँगा ।९। अपने समस्त भाइयों से यह अपना समीहित सत्य संकल्प कहकर अपने पिताजी की सस्थित क्रिया को पूर्ण करके भाइयों की आज्ञा प्राप्त करके परशुराम चले गये थे ।१०। फिर अकृतव्रण को साथ में लेकर माहिष्मती नगरी में स्थित होकर उन्होंने महोदर (श्रीगणेश जी) का स्मरण किया था ।११। उन्होंने तुरन्त ही राम के लिए रथ-चाप आदि सभी आयुधों तथा अश्वों आदि को भेज दिया था ।१२। फिर परशुराम प्रभु भी उस रथ पर समारूढ़ होकर सन्नद्ध हो गये थे और शत्रुओं पर विजय पाने वाले ने शरके सहित धनुष का ग्रहण कर लिया था तथा भगवान रुद्र के द्वारा प्रदत्त शंख की ध्वनि करके उससे सम्पूर्ण भाग को पूरित कर दिया था ।१३। अपने धनुष की प्रत्यंचा की टंकार से अन्तरिक्ष और भूमण्डल को प्रकम्पित करते हुए बड़ा ही उच्च घोष किया था । सारथियों में परम श्रेष्ठ सहसाह्न ने उनके रथ का सारथि होने का कार्य ग्रहण किया था ।१४।

रथज्याशंखनादैस्तु वधात्पित्रोरमर्षिणः ।
तस्याभून्नगरी सर्वा संक्षुब्धाश्च नरद्विपाः ॥१५
रामं त्वागतमाज्ञाय सर्वक्षत्रकुलांतकम् ।
संक्षुब्धाश्चक्रुरुद्योगं संग्रामाय नृपात्मजाः ॥१६
अथ पंचरथाः शूराः शूरसेनादयो नृप ।

रामेण योद्धुं सहिता राजभिश्चक्रुरुद्यमम् ॥१७
चतुरंगबलोपेतास्ततस्ते क्षत्रियर्षभाः ।
राममासादयामासुः पतंगा इव पावकम् ॥१८
निवार्य तानापततो रथेनैकेन भार्गवः ।
युयुधे पार्थिवैः सर्वैः समरेऽमितविक्रमः ॥१९
ततः पुनरभूद्युद्धं रामस्य सह राजभिः ।
जघान यत्र संक्रुद्धो राज्ञां शतमुदारधीः ॥२०
ततः स शूरसेनादीन्हत्वा सबलवाहनान् ।
क्षणेन पातयामास क्षितौ क्षत्रियमंडलम् ॥२१

अपने माता और पिता दोनों के वध हो जाने से परशुरामजी को बड़ा भारी क्रोध हो गया था। जब परम क्रुद्ध भार्गव के रथ प्रत्यञ्चा और शंख के नाद हुए तो इनसे उस नृप की समस्त नगरी और नर तथा द्विप सभी अत्यन्त संक्षुब्ध हो गये थे।१५। उन नृप के पुत्रों ने जब यह समझ लिया था कि सब क्षत्रियों के कुलों का अन्त कर देने वाले परशुराम समागत हो गये हैं तो वे बहुत ही क्षुब्ध हुए थे और फिर उन्होंने राम के साथ संग्राम करने के लिए उद्योग किया था।१६। इसके अनन्तर हे नृप ! पञ्चरथ शूरसेन प्रभृति शूरों ने अनेक अन्य राजाओं के साथ परशुरामजी युद्ध करने के लिए उद्यम किया था।१७। इसके उपरान्त वे श्रेष्ठ क्षत्रिय अपनी चतुरङ्गिणी सेनाओं से समन्वित हुए थे और सब राम के पास प्राप्त हो गये थे। जिस तरह पावक पर गिरने वाले पतङ्गों को अग्नि भस्मसात् करके निवारित कर दिया करता है उसी भाँति भार्गवेन्द्र ने अपने एक ही रथ के द्वारा उस पर संस्थित होकर अपने ऊपर चारों ओर से आक्रमण करके आपतन करने वालों को निवारित कर दिया था। अपरिमित बल-विक्रम से सुसम्पन्न राम ने समराङ्गण में उन सभी नृपों के साथ घोर युद्ध किया था।१८-१९। इसके अनन्तर फिर भार्गव का युद्ध राजाओं के साथ हुआ था और उस उदार बुद्धि वाले परशुराम ने उन सौ राजाओं का वध कर दिया था।२०। फिर शूरसेन आदि नृपों का सेना और वाहनों के सहित हनन करके एक ही क्षण में उस पूर्ण क्षत्रियों के मण्डल को भूमि पर गिरा दिया था।२१।

ततस्ते भग्नसंकल्पा हृतस्वबलवाहना: ।
हृतशिष्टा नृपतयो दुद्रुवु: सर्वतो दिशम् ॥२२
एवं विद्राव्य सैन्यानि हत्वा जित्वाथ संयुगे ।
जघान शतशो राज्ञ: शूराञ्छरवराग्निना ॥२३
तत: क्रोधपरीतात्मा दग्धुकामोऽखिलां पुरीम् ।
उदैरयद्भार्गवोऽस्त्रं कालाग्निसदृशप्रभम् ॥२४
ज्वालाकवलिताशेषपुरप्राकारमालिनीम् ।
पुरीं सहस्त्यश्वनरां स ददाहास्त्रपावक: ॥२५
दह्यमानां पुरीं दृष्ट्वा प्राणत्राणपरायण: ।
जीवनाय जगामाशु वीतिहोत्रो भयातुर: ॥२६
अस्त्राग्निना पुरीं सर्वां दग्ध्वा हत्वा च शात्रवान् ।
प्राशयानोऽखिलान् लोकान् साक्षात्काल इवांतक: ॥२७
अकृतव्रणसंयुक्त: सहसाह्नेन चान्वित: ।
जगाम रथघोषेण कंपयन्निव मेदिनीम् ॥२८

इसके अनन्तर वे समस्त नृप भग्न सङ्कल्प वाले हो गये थे और उनके सैनिक तथा सब वाहन हाथी घोड़े आदि नष्ट हो गये थे। जो भी नृप हनन करने से बच गये थे वे भय से भीत होकर सब दिशाओं की ओर इधर-उधर भाग गये।२२। इस रीति से सम्पूर्ण सेना के सैनिकों को खदेड़ कर तथा हनन करके भार्गवेन्द्र ने युद्ध में विजय प्राप्त की थी और अपने बाणों की अग्नि के द्वारा सैकड़ों शूर नृपों का वध कर दिया था।२३। फिर महान् क्रोध से भरी हुई आत्मा वाले परशुराम ने उस पुरी को दग्ध करने की इच्छा की थी तथा भार्गव ने कालाग्नि अपने अस्त्र को छोड़ दिया था।२४। उस अस्त्र की अग्नि ने उस नगरी को जिसमें सभी हाथी-घोड़े और मनुष्य थे जला दिया था और वह पुरी अस्त्राग्नि के जल कर ज्वालाओं से उसके पुरप्राकार आदि की माला से कवलित हो गयी थी अर्थात् उस महान् प्रदीप्त अग्नि ने सबको स्वाहा कर दिया था और वहाँ पर कुछ भी शेष नहीं रहा था।२५। उस समस्त पुरी को जलती हुई देखकर अपने प्राणों की रक्षा में तत्पर वीतिहोत्र भय से आतुर होकर वहाँ से जीवन के परित्राण

करने के लिये शीघ्र ही चला गया था ।२६। अपनी अस्त्र की अग्नि से उस सम्पूर्ण नगरी को जलाकर तथा सब शत्रुओं का हनन करके उस समय में भार्गवेन्द्र राम समस्त लोकों का विनाश करते हुए साक्षात् अन्त कर देने वाले काल की ही भाँति हो गये थे ।२७। फिर अकृतव्रण के सहित और सहसाह से समन्वित होकर अपने रथ के महान् घोष से सम्पूर्ण पृथ्वी को कम्पित करते हुए वहाँ से गये थे ।२८।

विनिघ्नन् क्षत्रियान्सर्वान् संशाम्य पृथिवीतले ।
महेंद्राद्रिं ययौ रामस्तपसे धृतमानसः ॥२९
तस्मिन्नष्टचतुष्कं च यावत्क्षत्रसमुद्गमम् ।
प्रत्येत्य भूयस्यद्धत्यै बद्धदीक्षो धृतव्रतः ॥३०
क्षत्रक्षेत्रेषु भूयश्च क्षत्रमुत्पादितं द्विजैः ।
निजघान पुनर्भूमौ राज्ञः शतसहस्रशः ॥३१
वर्षद्वयेन भूयोऽपि कृत्वा निःक्षत्रियां महीम् ।
षट्चतुष्टयवर्षान्तं तपस्तेपे पुनश्च सः ॥३२
भूयोऽपि राजन् संबुद्धं क्षत्रमुत्पादितं द्विजैः ।
जघान भूमौ निःशेषं साक्षात्काल इवांतकः ॥३३
कालेन तावता भूयः समुत्पन्नं नृपान्वयम् ।
निघ्नंश्चचार पृथिवीं वर्षद्वयमनारतम् ॥३४
अलं रामेण राजेंद्र स्मरता निधनं पितुः ।
त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवी तेन निःक्षत्रिया कृता ॥३५

इस पृथ्वी तल पर क्षत्रियों का निहनन करते हुए पूर्णतया इस भूमि पर शान्ति स्थापित करके फिर भार्गव राम तपश्चर्या करने के लिये मन में निश्चय करके महेन्द्र पर्वत पर वहाँ से चले गये थे ।२९। उसमें जितना भी क्षत्रियों का समुद्गम था बारह थे उनके प्रति भी आकर फिर उनके हनन करने के वास्ते व्रत धारण करने वाले परशुराम बद्ध दीक्षा वाले हुए थे ।३०। और द्विजों ने क्षत्रियों के क्षेत्रों में फिर क्षत्रियों का उत्पादन कर दिया था। जब परशुरामजी को क्षत्रियों की उत्पत्ति का ज्ञान हुआ था कि अभी और भी क्षत्रिय समुत्पन्न हो गये हैं तो पुनः उन्होंने सैकड़ों और

सहस्रों क्षत्रिय नृपों का भूमि पर हनन कर दिया था।३१। फिर भी दो वर्षों में इस भूमि को क्षत्रियों का वध करके क्षत्रियों से रहित बना दिया था और फिर दश वर्षों के लम्बे समय तक तपस्या का तपन किया था।३२। हे राजन् ! जब फिर भी उनको यह ज्ञान हुआ था कि ब्राह्मणों ने क्षत्रियों को अपने तपोबल से समुत्पन्न कर दिया है तो फिर भी उन्होंने साक्षात् विनाश करने वाले काल के ही समान इस भूमण्डल में क्षत्रियों को मार-काटकर समाप्त कर दिया था।३३। उतने में समय में फिर क्षत्रिय लोग समुत्पन्न हो गये थे तब दो वर्ष पर्यन्त निरन्तर पृथ्वी पर उन सबका हनन करते भार्गवेन्द्र ने किया था।३४। हे राजेन्द्र ! अपने पिताश्री के क्षत्रियों के द्वारा निधन का स्मरण करते हुए पूर्ण रूप से उन्होंने इक्कीस बार इस भूमि को इसी रीति से क्षत्रियों से रहित कर दिया था। उनकी माता रेणुका ने अपने पति के वियोग के शोक में रुदन करते हुए इक्कीस बार अपने वक्षःस्थल को करों से प्रताड़ित किया था उतनी ही बार परशुरामजी ने इस भूमण्डल क्षत्रियों से रहित कर दिया था।३५।

—×—

॥ वसिष्ठ गमन वर्णन ॥

वसिष्ठ उवाच–

ततो मूर्द्धाभिषिक्तानां राज्ञाममिततेजसाम् ।
षट्सहस्रद्वयं रामो जीवग्राहं गृहीतवान् ॥१

ततो राजसहस्राणि गृहीत्वा मुनिभिः सह ।
स जगाम महातेजाः कुरुक्षेत्रं तपोमयम् ॥२

सरसां पंचकं तत्र खानयित्वा भृगूद्वहः ।
सुखावगाहतीर्थानि तानि चक्रे समंततः ॥३

जघान तत्र वै राज्ञः शरीरप्रभवासृजा ।
सरांसि तानि वै पंच पूरयामास भार्गवः ॥४

स्नात्वा तेषु यथान्यायं जामदग्न्यः प्रतापवान् ।
पितॄन्संतर्पयामास यत्राशास्त्रमतंद्रितः ॥५

पितुः प्रेतस्य राजेंद्र श्राद्धादिकमशेषतः ।
ब्राह्मणैः सह मातुश्च तत्र चक्रे यथोदितम् ॥६
एवं तीर्णप्रतीकः स कुरुक्षेत्रे तपोमये ।
उवासातंद्रितः सम्यक् पितृपूजापरायणः ॥७

श्री वसिष्ठ जी ने कहा—इसके अनन्तर अपरिमित तेज वाले मूर्द्धाभिषिक्त अर्थात् सर्व शिरोमणि बारह सहस्र राजाओं का परशुरामजी ने जीवनों का ग्रहण किया था अर्थात् मार गिराया था ।१। इसके अनन्तर एक सहस्र राजाओं को पकड़ कर मुनिगणों के साथ महान् तेजस्वी वे परशुराम जी तपोमय कुरुक्षेत्र में गमन कर गये थे ।२। भृगुद्वह ने वहाँ पर पाँच सरोवर खुदवा कर उनको सब ओर परम सुख का आवाहन करने वाले तीर्थ कर दिया था ।३। वहीं पर उन सहस्र नृपों का हनन किया था और उनके शरीरों से निकले हुए रुधिर से भार्गव ने उन पाँचों सरोवरों को भर दिया था ।४। परमाधिक प्रतापी जमदग्नि के पुत्र ने न्यायानुसार उन सरोवरों में स्नान किया था और तन्द्रा से रहित होकर शास्त्रोक्त विधान से अपने पितरों को तृप्त किया था अर्थात् पितृगणों के लिए तर्पण किया था ।५। हे राजेन्द्र ! वहीं पर परशुरामजी ने जैसा भी शास्त्र में कहा गया है वही ब्राह्मणों के साथ रहकर अपने मृत पिता का और माता का श्राद्ध आदि पूर्ण रूप से सुसम्पन्न किया था ।६। इस रीति से पितृऋण से उत्तीर्ण होने वाले उन्होंने उस तप से परिपूर्ण कुरुक्षेत्र में पितृगणों की अर्चना में तत्पर होते हुए अतन्द्रित रहकर भली भाँति निवास किया था ।७।

ततः प्रभृत्यभूद्राजंस्तीर्थानामुत्तमोत्तमम् ।
विहितं जामदग्न्येन कुरुक्षेत्रे तपोवने ॥८
स्यमंतपंचकमिति स्थानं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
यत्र चक्रे भृगुश्रेष्ठः पितॄणां तृप्तिमक्षयाम् ॥९
स्नानदानतपोहोमद्विजभोजनतर्पणैः ।
भृशमाप्यायितास्तेन यत्र ते पितरोऽखिलाः ॥१०
अवापुरक्षयां तृप्तिं पितृलोकं च शाश्वतम् ।
समंतपंचकं नाम तीर्थं लोके परिश्रुतम् ॥११

सर्वपापक्षयकरं महापुण्योपबृंहितम् ।
मर्त्यानां यत्र यातानामेनांसि निखिलानि तु ।।१२

दूरादेवापयास्यंति प्रवाते शुष्कपर्णवत् ।
तत्क्षेत्रचर्यागमनं मर्त्यानामसतामिह ।।१३

न लभ्यते महाराज जातु जन्मशतैरपि ।
समंतपंचकं तीर्थं कुरुक्षेत्रेऽतिपावनम् ।।१४

इसके पश्चात् हे राजन् ! तपश्चर्या करने के उस वन कुरुक्षेत्र में जमदग्नि के पुत्र के द्वारा किया हुआ वह कुरु क्षेत्रधाम तभी से आरम्भ करके तीर्थों से सबसे परम श्रेष्ठ तीर्थ बन गया था ।८। वह स्थान सस्मयमन्तक---इस नाम से तीनों लोकों में प्रख्यात हो गया था ! क्योंकि वहाँ पर परशुरामजी ने अपने पितृगणों की अक्षय तृप्ति की थी ।९। वहाँ पर उन्होंने पितरों को बहुत ही अच्छी तरह से स्नान-दान-तप-होम-विप्रों के लिए भोजन और तर्पण आदि के द्वारा सन्तृप्त कर दिया था ।१०। और पितृगणों के लोक ने निरन्तर अक्षय तृप्ति प्राप्त की थी। स्यमन्तक नाम वाला तीर्थ लोक से परिश्रु्त है ।११। यह तीर्थ समस्त पापों के क्षय का करने वाला है और महान पुण्य से उपबृहन्ति है । जहाँ पर समागत हुए मनुष्यों के सम्पूर्ण से उपबृहन्ति है । जहाँ पर समागत हुए मनुष्यों के सम्पूर्ण पार दूर से ही वायु में शुष्क पत्तों की ही भाँति उपगत हो जाता करते हैं । मनुष्यों का जो असत् है उनकी चर्या तथा गमन बड़ी ही कठिनाई से प्राप्त हुआ करता है । यह हे महाराज ! कभी भी सौ में जन्मों भी प्राप्त नहीं करता है। स्यमन्तक पंचक तीर्थ कुरुक्षेत्र में बहुत ही अधिक पावन है ।१२-१४।

यत्र स्नातः सर्वतीर्थैः स्नातो भवति मानवः ।
कृतकृत्यस्ततो रामः सम्यक् पूर्णमनोरथः ।।१५

उवास तत्र नियतः कंचित्कालं महामतिः ।
ततः संवत्सरस्यांते ब्राह्मणैः सहितो वशी ।।१६

पितृपिंडप्रदानाय जामदग्न्योऽगमद्गयाम् ।
ततो गत्वा ततः श्राद्धे यथाशास्त्रमरिंदमः ।।१७

ब्राह्मणांस्तर्पयामास पितॄनुद्दिश्य सत्कृतान् ।
शैवं तत्र परं स्थानं चन्द्रपादमिति स्मृतम ॥१८
पितृतृप्तिकरं क्षेत्रं तादृग्लोके न विद्यते ।
यत्रार्चिताः स्वकुलजैर्यथाशक्ति मनागपि ॥१९
पितरः पिंडदानाद्यैः प्राप्स्यंति गतिमक्षयाम् ।
पितॄनुद्दिश्य तत्रासौ तर्प्पितेषु द्विजातेषु ॥२०
ददौ च विधिवत्पिंडं पितृभक्तिसमन्वितः ।
ततस्तत्पितरः सर्वे पितृलोकादुपागताः ॥२१

वह तीर्थ ऐसा महिमामय है कि जहाँ पर स्नान कर लेने वाला मनुष्य संसार के समस्त तीर्थों के स्नान का पुण्य फल प्राप्त कर लेने वाला हो जाता है। इसके अनन्तर राम अपने सब कृत्यों को पूर्ण कर लेने वाले सफल तथा भली भाँति पूर्ण मनोरथों वाले हो गये थे ।१५। फिर वे महती मति वाले नियत होकर कुछ काल तक निवासी हो गये थे। फिर सम्वत्सर के अन्त में वशी ब्राह्मणों के सहित पितृगणों के लिए पिण्ड समर्पित करने के लिये जमदग्नि के पुत्र गया गये थे। वहाँ पर जाकर शत्रुओं के दमन करने वाले ने शास्त्र की पद्धति के ही अनुसार श्राद्ध किया था ।१६-१७। उन्होंने श्राद्ध से अपने पितृगणों का उद्देश्य ग्रहण करके ब्राह्मणों का सत्कार किया था और उनको संतृप्त किया था। उसके आगे शैव स्थान है जो चन्द्रपाद नाम से कहा गया है ।१८। पितृगणों की तृप्ति करने वाला उसके समान लोक में अन्य कोई भी क्षेत्र नहीं है। यह ऐसा स्थान है जहाँ पर अपने कुल में समुत्पन्न मानवों के द्वारा शक्ति के अनुसार अत्यल्प रूप से भी अर्चित हुए पितृगण पिण्ड दानादिक के द्वारा अक्षय गति को प्राप्त कर लेंगे। वहाँ पर पितृगणों का उद्देश्य लेकर द्विजातियों को तृप्त किया था। जब वे पूर्णतया तृप्त हो गये थे तो पितृगण के प्रति भक्तिभाव से समन्वित होकर विधि पूर्वक पिण्डदान दिया था। इसके अनन्तर सभी पितृलोक से वहीं पर उपागत हो गये थे ।१९-२१।

जुगृहुस्तत्कृतां पूजां जमदग्निपुरोगमाः ।
अथ संप्रीतमनसः समेत्य भृगुनंदनम् ॥२२
ऊचुस्तत्पितरः सर्वेऽदृश्या भूत्वांतरिक्षगाः ।

पितर ऊचु :-

महत्कर्म कृतं वीर भवतान्यैः सुदुष्करम् ॥२३

अस्मानपि यथान्यायं सम्यक् तर्पितवानसि ।

अस्माकमक्षयां प्रीतिं तथापि त्वं न यच्छसि ॥२४

क्षत्रहत्यां हि कृत्वा तु कृतकर्माभिवद्यतः ।

क्षेत्रस्यास्य प्रभावेण भक्त्या च तव दर्शनम् ॥२५

प्राप्ताः स्म पूजिताः किं तु नाक्षय्यफलभागिनः ।

तस्मात्त्वं वीरहत्यादिपापप्रशमनाय हि ॥२६

प्रायश्चित्तं यथान्यायं कुरु धर्मं च शाश्वतम् ।

वधाच्च विनिवर्तस्व क्षत्रियाणामतः परम् ॥२७

पितुर्न्नं तेऽपराध्यंते न स्वतंत्रं यतो जगत् ।

तन्निमित्तं तु मरणं पितुस्ते विहितं पुरा ॥२८

जमदग्नि जिनमें अग्रगामी थे ऐसे उन सब पितृगणों ने वहाँ पर आकर उसके द्वारा की गयी पूजा का ग्रहण किया था और वे सब भृगुनन्दन पर बहुत अधिक प्रसन्न मन वाले हो गये थे ।२२। उन समस्त पितृगणों ने आकाश में स्थित होते हुए अदृश्य होकर ही उससे कहा था। पितृगण ने कहा—हे वीर ! तुमने बहुत ही बड़ा कार्य किया है जो कि अन्य जनों के द्वारा कभी भी नहीं हो सकता है अर्थात् महान् कठिन है ।२३। आपने न्याय पूर्वक बहुत ही अच्छी तरह से सन्तृप्त किया है तो भी हमारी कभी क्षीण न होने वाली प्रीति तुमने हमको नहीं दी है ।२४। कारण यह है कि आपने समस्त क्षत्रियों की हत्या करके ही आप कर्म करने वाले हुए हैं। यह तो इस क्षेत्र का ही प्रभाव है कि हमने आपको दर्शन दिया है तथा भक्ति भी इसका एक कारण है ।२५। हम लोग यहाँ पर पूजित तो अवश्य हुए हैं किन्तु फिर भी अक्षय फल के भागी नहीं हुए हैं। इस कारण से आपको उस महान् पाप के निवारण करने के लिये कुछ अवश्य ही कुछ करना ही होगा जो कि बड़े-बड़े वीरों की हत्या के प्रशमन के लिये होना चाहिए ।२६। अब आपका कर्त्तव्य है कि न्याय के अनुरूप इसका प्रायश्चित करो और निरन्तर रहने वाला धर्म का कर्म करो। तथा इससे आगे भविष्य में क्षत्रियों के वध करने के कार्य से दूर हो जाओ। अर्थात् क्षत्रियों की हत्या

करना बन्द कर दो।२७। इन विचारों के द्वारा तुम्हारे पिता का कोई भी अपराध नहीं किया गया है क्योंकि यह जगत् स्वतन्त्र नहीं है अर्थात् जगत् के प्राणी स्वेच्छा से ही कर्मों के करने में कभी भी स्वतन्त्र नहीं हुआ करते हैं। पहिले आपके पिता का जो मरण हुआ है उसके यह कोई भी निमित्त नहीं है क्योंकि स्वाधीनता किसी में भी कर्मों के करने की हुआ ही नहीं करती है।२८।

हंतुं कं कः समर्थः स्याल्लोके रक्षितुमेव वा।
निमित्तमात्रमेवेह सर्वः सर्वस्य चैतयोः ।।२९
ध्रुवं कर्मानुरूपं ते चेष्टंते सर्व एव हि।
कालानुवृत्तं बलवान्नृलोको नात्र संशयः ।।३०
बाधितुं भुवि भूतानि भूतानां न विधिं विना।
शक्यते वत्स सर्वोऽपि यतः शक्त्या स्वकर्मकृत् ।।३१
क्षत्रं प्रति ततो रोषं विमुच्यास्मत्प्रियेप्सया।
शममाप्नुहि भद्रं ते स ह्यस्माकं परं बलम् ।।३२
वसिष्ठ उवाच—
इत्युक्त्वांतर्दधुः सर्वे पितरो भृगुनन्दनम्।
स चापि तद्वचः सर्वं प्रतिजग्राह सादरम् ।।३३
अकृतव्रणसंयुक्तो मुदा परमया युतः।
प्रययौ च तदा रामस्तस्मात्सिद्धवनाश्रमम् ।।३४
तस्मिन्स्थित्वा भृगुश्रेष्ठो ब्राह्मणैः सहितो नृप।
तपसे धृतसंकल्पो बभूव स महामनाः ।।३५

इस लोक में कौन है जो किसी का हनन या रक्षण करने की सामर्थ्य रखता हो। तात्पर्य यही है कि किसी में भी किसी के मारने या रक्षा करने की शक्ति नहीं है। मरण और संरक्षण इन दोनों के विषय में सभी केवल इस लोक में एक निमित्त ही हुआ करते हैं और वस्तुतः स्वयं कोई भी कुछ करने वाला नहीं होता है।२९। जो भी कोई यहाँ पर किया करते हैं वे सभी यह निश्चय है कि अपने पूर्व कृत कर्मों के ही अनुसार चेष्टा किया करते हैं। तात्पर्य यही है कि जैसा भी जिसका कर्म पूर्व में किया हुआ होता

है वही करने के लिए सबको यहाँ पर विवश होना ही पड़ता है। यहाँ पर मानवगण काल के ही अनुसार चला करते हैं। यह निस्सन्देह सत्य है कि नृलोक बलवान् है ।३०। इस भूमण्डल में कोई भी हे वत्स ! विधि के बिना प्राणियों को कोई बाधा पहुँचा कर शक्ति के द्वारा सामर्थ्य नहीं रखा करता है कारण यही है कि यहाँ पर सभी अपने कृत कर्मों के अनुसार ही सब किया करते हैं। तात्पर्य यही है कि कर्म ही बड़ा बलवान् है जिसके वशीभूत होकर प्राणी कार्य करने को प्रेरित होता है ।३१। आपने जो क्षत्रियों के वध करने का क्रोध किया है उसको अब त्याग दो यदि आपके मन में हमारे प्रिय करने की अभिलाषा है। अब आप शम को ग्रहण करो। इस भूमण्डल में इसी शम से आपका श्रेय होगा। यह शम तो हमारा बड़ा भारी बल है ।३२। वसिष्ठजी ने कहा—उन भृगुनन्दन जी से इतना ही कहकर सब पितृगण अन्तर्हित हो गये थे। फिर उन परशुरामजी ने भी बहुत ही आदर के साथ उनके उस वचन का ग्रहण किया था ।३३। अकृतव्रण को अपने साथ में लेकर परमाधिक प्रसन्नता से संयुत होकर उसी समय में परशुराम वहाँ से सिद्धों के वन में स्थित आश्रम को चले गये थे ।३४। महान् विशाल मन वाले राम उस आश्रम में समवस्थित होकर जहाँ कि बहुत से ब्राह्मण भी उनके साथ में थे हे नृप ! फिर वे तप करने के लिए मन में सङ्कल्प धारण करने वाले हो गये थे ।३५।

सरथं सहसाहं च धनुः संहननानि च ।
पुनरागमसंकेतं कृत्वा प्रास्थापयत्तदा ।।३६
ततः स सर्वतीर्थेषु चक्रे स्नानमतंद्रितः ।
परीत्य पृथिवीं सर्वां पितृदेवादिपूजकः ।।३७
एवं क्रमेण पृथिवीं त्रिवारं भृगुनन्दनः ।
परिचक्राम राजेंद्र लोकवृत्तमनुव्रतः ।।३८
ततः स पर्वतश्रेष्ठं महेंद्रं पुनरप्यथ ।
जगाम तपसे राजन्ब्राह्मणैरभिसंवृतः ।।३९
स तस्मिंश्चिररात्राय मुनिसिद्धनिषेविते ।
निवासमात्मनो राजन्कल्पयामास धर्मवित् ।।४०
मुनयस्तं तपस्यंतं सर्वेऽत्रनिवासिनः ।

द्रष्टुकामाः समाजग्मुर्नियता ब्रह्मवादिनः ।। ४१
ददृशुस्ते मुनिगणास्तपस्यासक्तमानसम् ।
क्षात्रं कक्षमशेषेण दग्ध्वा शांतमिवानलम् ।।४२

उस समय में परशुरामजी ने रथ के सहित सहसाह् को और धनुष तथा समस्त आयुधों को पुनः आवश्यकता पड़ने पर आगमन का संकेत करके वहाँ से प्रस्थापित कर दिया था ।३६। इसके पश्चात् उन्होंने सभी तीर्थों में अतन्द्रित होकर स्नान किया था और पितृगण तथा देवों का पूजन रीति से हे राजेन्द्र ! भृगुनन्दन ने लोक व्रत का अनुवर्त्तन करते हुए तीन बार सम्पूर्ण पृथ्वी का परिक्रमण किया था ।३८। हे राजन् ! इसके अनन्तर उन्होंने ब्राह्मणों से अभिसंवृत होकर फिर तपस्या करने के लिए महेन्द्र पर्वत पर जो कि पर्वतोंमें परमश्रेष्ठ था आगमन किया था ।३९। हे राजन् ! धर्म के ज्ञाता उन्होंने मुनिगण और सिद्ध-समुदायों के द्वारा सेवित उस पर्वत पर अधिक समय तक अपने निवास करने का विचार कर लिया था ।४०। फिर वहाँ पर समस्त क्षेत्रों के निवासी नियत और ब्रह्मवादी मुनियों ने तपश्चर्या करने वाले उन भार्गवेन्द्र के दर्शन करने की कामना रखकर वहाँ पर समागमन किया था ।४१। उन मुनिगणों ने तपश्चर्या में समासक्त उनका पूर्ण रूप से क्षत्रियों के कक्ष को दग्ध करके परम शान्त अग्नि की भाँति दर्शन किया था ।४२।

अथ तानागतान्दृष्ट्वा मुनीन्दिव्यांस्तपोमयान् ।
अर्घ्यादिसमुदाचारैः पूजयामास भार्गवः ।।४३
कृतकौशलसंप्रश्नपूर्वकाः सुमहोदयाः ।
तेषां तस्य च संवृत्ताः कथाः पुण्या मनोहराः ।।४४
ततस्तेषामनुमते मुनीनां भावितात्मनाम् ।
हयमेधं महायज्ञमाहर्तुमुपचक्रमे ।।४५
संभृत्य सर्वसंभारानौर्वाद्यैः सहितो नृप ।
विश्वामित्रभरद्वाजमार्कंडेयादिभिस्तथा ।।४६
तेषामनुमते कृत्वा काश्यपं गुरुमात्मनः ।
वाजिमेधं ततो राजन्नाजहार महाक्रतुम् ।।४७

तस्याभूत्काश्यपोऽध्वर्यु रुद्गाता गौतमो मुनिः ।
विश्वामित्रोऽभवद्धोता रामस्य विदितात्मनः ।।४८
ब्रह्मत्वमकरोत्तस्य मार्कण्डेयो महामुनिः ।
भरद्वाजाग्निवेश्याद्या वेदवेदांगपारगाः ।।४६

भार्गवेन्द्र मुनि ने जिस समय में उन समस्त परम दिव्य तप से परिपूर्ण मुनियों को वहाँ पर समागत हुए देखा था तो उन्होंने अर्घ्य आदि सब उपचारों के द्वारा सहर्ष उनका अर्चन किया था ।४३। उन समस्त महोदयों ने सर्व प्रथम तो क्षेम-कुशल का प्रश्नोत्तर किया था फिर उन सबकी और भार्गवेन्द्र की परस्पर में परम पुण्यमय मनोहर कथाएँ हुई थीं ।४४। इसको उपरान्त भावित आत्मा वाले उन्हीं मुनियों की अनुमति से भृगुनन्दन ने महायज्ञ के आहरण करने का उपक्रम किया था ।४५। इसके अनन्तर हे नृप ! और्वादि तथा विश्वामित्र—भरद्वाज और मार्कण्डेय आदि के सहित यज्ञ के उपयुक्त समस्त संभारों का संग्रह किया गया था ।४६। फिर उन्हीं सबकी अनुमति हो जाने पर भृगुनन्दन ने काश्यप को अपना गुरु बनाकर हे राजन् ! फिर वाजिमेध महान् क्रतु का समाहरण किया था ।४७। विदित आत्मा वाले भृगुनन्दन के गुरु तो काश्यप हुए थे और उद्गाता गौतम मुनि हुए थे और उस यज्ञ में विश्वामित्र ऋषि होता हुए थे ।४८। महामुनि मार्कण्डेय ने वहाँ पर ब्रह्मा के पद को ग्रहण किया था । भरद्वाज-अग्निवेश्य आदि जो भी वेदों तथा वेदों के अङ्ग शास्त्रों के पारगामी प्रकाण्ड पण्डित थे ।४९।

मुनयश्चक्रुरन्यानि कर्माण्यन्ये यथाक्रमम् ।
पुत्रैः शिष्यैः प्रशिष्यैश्च सहितो भगवान्भृगुः ।।५०
सादस्यमकरोद्राजन्नन्यैश्च मुनिभिः सह ।
स तैः सहाखिलं कर्म समाप्य भृगुपुंगवः ।।५१
ब्रह्माणं पूजयामास यथावद्गुरुणा सह ।
अलंकृत्य यथान्यायं कन्यां रूपवतीं महीम् ।।५२
पुरनामशतोपेतां समुद्राम्बरमालिनीम् ।
आहूय भृगुशार्दूलः सशैलवनकाननाम् ।।५३

काश्यपाय ददौ सर्वामृते तं शैलमुत्तमम् ।
आत्मनः सन्निवासार्थं त रामः पर्यकल्पयत् ।।५४
ततः प्रभृति राजेंद्र पूजयामास शास्त्रतः ।
हिरण्यरत्नवस्त्राश्वगोगजान्नादिभिस्तथा ।।५५
पुरा समाप्य यज्ञांते तथा चावभृथाप्लुतः ।
चक्रे द्रव्यपरित्यागं तेषामनुमते तदा ।।५६

इन समस्त मुनियों ने तथा अन्यों ने क्रम के अनुसार अन्यान्य जो भी कर्म उस यज्ञशाला में थे उनको किया था। उस यज्ञ में भगवान् भृगु भी अपने पुत्रों-शिष्यों और प्रशिष्यों के सहित पधारे थे। उन्होंने अन्यान्य मुनियों के साथ हे राजन् ! यज्ञ की सदस्यता की थी अर्थात् सब सदस्य बन गये थे और उन सबके साथ मिलकर भृगुपुङ्गव परशुरामजी ने उस सम्पूर्ण कर्म को सुसम्पन्न किया था ।५०-५१। जब सम्पूर्ण कर्म समाप्त हो गया था यथा रीति अपने गुरुदेव के ही साथ ब्रह्माजी का पूजन किया था। फिर रूप लावण्य वाली मही कन्या को महामूल्यवान् आभूषणों से समलंकृत किया था ।५२। फिर उस मही कन्या को जो सहस्रों पुरों और ग्रामों से समन्वित एवं सागरों और अम्बर की माला वाली थी तथा उसमें अनेकों शैल-वन और कानन भी थे। उन मुनि शार्दूल ने उसको अपने समीप में बुला लिया था ।५३। फिर सम्पूर्ण उसको काश्यप मुनि को दे दिया था केवल उस उत्तम महेन्द्र पर्वत को नहीं दिया था जिस पर वे स्वयं निवास किया करते थे क्यों कि परशुरामजी ने उस पर्वत को अपने ही निवास करने के लिए कल्पित कर लिया था ।५४। तभी से लेकर हे राजेन्द्र ! शास्त्रानुसार सुवर्ण-रत्न-वस्त्र-अश्व-गौ-गज आदि के द्वारा उसका पूजन किया था। पहिले इस सब कर्म को समाप्त करके फिर यज्ञ के अवसान समय में वे यज्ञान्त अवभृथ स्नान से आप्लुत हुए थे और उसी अवसर पर उन समस्त महा मुनियों के के अनुमति से फिर द्रव्य का परित्याग कर दिया था ।५५-५६।

दत्वा च सर्वभूतानामभयं भृगुनन्दनः ।
तत्रापि पर्वतवरे तपश्चर्तुं समारभत् ।।५७
ततस्तं समनुज्ञाय सदस्या ऋत्विजस्तथा ।
ययुर्यथागतं सर्वे मुनयः शंसितव्रताः ।।५८

गतेषु तेषु भगवानकृतव्रणसंयुत: ।
तपो महत्समास्थाय तत्रैव न्यवसत्सुखी ॥५९
काश्यपी तु ततो भूमिर्जननाथा ह्यनेकश: ।
सर्वदु:खप्रशांत्यर्थं मारीचानुमतेन तु ॥६०
तत्र दीपप्रतिष्ठाख्यव्रतं विष्णुमुखोदितम् ।
चचार धरणीं सम्यक् दुखै:मुक्ताऽभवच्च सा ॥६१
इत्येष जामदग्न्यस्य प्रादुर्भाव उदाहृत: ।
यस्मिञ्छ्रुते नर: सर्वपातकैर्विप्रमुच्यते ॥६२
प्रभाव: कार्त्तवीर्यस्य लोके प्रथिततेजस: ।
प्रसंगात्कथित: सम्यङ्नातिसंक्षेपविस्तर: ॥६३

इसके पश्चात् भृगुनन्दन ने समस्त प्राणियों के लिए अभय का दान दे दिया था और वहीं ही उस पर्वत पर तपस्या करने का आरम्भ कर दिया था ।५७। इसके अनन्तर जो भी यज्ञ में समागत सदस्य तथा ऋत्विज थे उन्होंने एवं शंसित व्रतों वाले मुनियों ने सभी ने जैसे-जैसे जहाँ से वहाँ आगमन किया वैसे ही विदा होकर चले गये थे ।५८। उन सबके चले जाने पर भगवान ने अकृतव्रण से संयुत होकर महान तप में समास्थित होकर सुख से सम्पन्न उसी स्थान पर निवास किया करते थे ।५९। इसके पश्चात् जानना था काश्यपी भूमि ने अनेक प्रकार के समस्त दु:खों की प्रशान्ति के लिए मारीच की अनुमति से एक व्रत किया था ।६०। वहाँ पर दीप प्रतिष्ठा नाम वाला व्रत जो कि भगवान विष्णु के मुख से कहा गया था उसको धरणी ने भली भाँति किया था और फिर समस्त दु:खों से मुक्त हो गयी थी ।६१। वह भगवान जामदग्न्य का प्रादुर्भाव सब बता दिया गया है जिसके श्रवण करने पर मनुष्य समस्त पातकों से मुक्त हो जाया करता है ।६२। अपरिमित तेज वाले कार्तवीर्य का लोक में जो प्रबल प्रभाव था वह भी प्रसङ्ग से दिया गया था जो न तो अति संक्षिप्त था और न विशेष विस्तृत ही था ।६३।

एवंप्रभाव: स नृप: कार्त्तवीर्योऽभवद्भुवि ।
न तादृश: पुमान्कश्चिद्भावी भूतोऽथवा श्रुत: ॥६४

दत्तात्रेयाद्वरं वव्रे मृतिमुत्तमपूरुषात् ।
यत्पुरा सोऽगमन्मुक्तिं रणे रामेण घातितः ॥६५
तस्यासीत्पंचमः पुत्रः प्रख्यातो यो जयध्वजः ।
पुत्रस्तस्य महाबाहुस्तालजंघोऽभवन्नृप ॥६६
अभूत्तस्यापि पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम् ।
तालजंघाभिधा येषां वीतिहोत्रोऽग्रजोऽभवत् ॥६७
पुत्रैः सवीतिहोत्राद्यैर्हैहयाद्यैश्च राजभिः ।
कालं महांतमवसद्धिमाद्रिवनगह्वरे ॥६८
यः पूर्वं रामबाणेन द्रवन्पृष्ठेऽभिताडितः ।
तालजंघोऽपतद्भूमौ मूर्छितो गाढवेदनः ॥६९
ददर्श वीतिहोत्रस्तं द्रवन्दैववशादिव ।
रथमारोप्य वेगेन पलायनपरोऽभवत् ॥७०

वह नृप कार्त्तवीर्य इस भूमण्डल में इस प्रकार के प्रभाव वाला हुआ था कि उस प्रकार का कोई भी पुरुष न कभी हुआ और न भविष्य में भी होगा तथा न कभी सुना ही गया है ।६४। उसने दत्तात्रेय मुनीन्द्र से यह वरदान प्राप्त किया था कि उसकी मृत्यु किसी महान उत्तम पुरुष से होवे । रण से वह परशुरामजी के द्वारा निहत होकर पहिले मुक्ति को प्राप्त हो गया था ।६५। उस राजा का पाँचवां पुत्र प्रख्यात था जिसका नाम जयध्वज था । हे नृप ! उसका पुत्र महाबाहु तालजङ्घ हुआ था ।६६। उसके भी उत्तम धनुर्धारी सौ पुत्र हुए थे । उन सबके नाम तालजङ्घ था उनमें वीति-होत्र सबमें बड़ा भाई था ।६७। वह वीतिहोत्र प्रभृति पुत्रों के तथा हैहय वंशज नृपों के सहित उस हिमाद्रि पर्वत के वन गह्वर में बहुत लम्बे समय तक उसने निवास किया था ।६८। जो पहिले राम के बाण के द्वारा भागता हुआ भी पृष्ठ भाग में प्रताड़ित हो गया था । फिर वह तालजङ्घ गहरी वेदना से युक्त होकर मूर्च्छा को प्राप्त हो गया था और भूमि पर गिर गया था ।६९। भाग्यवश उसको भागते हुए वीतिहोत्र ने देखा था । बड़े ही वेग से उसको रथ पर समारोपित करके वह भाग जाने में तत्पर हो गया था ।७०।

ते तत्र न्यवसन्सर्वे हिमाद्रौ भयपीडिताः ।
कृच्छ्रं महांतमासाद्य शाकमूलफलाशनः ॥७१
ततः शांति गते रामे तपस्यासक्तमानसे ।
तालजंघः स्वकं राज्यं सपुत्रः प्रत्यपद्यत ॥७२
सन्निवेश्य पुरीं भूयः पूर्ववन्नृपसत्तमः ।
वसंस्तदा निजं राज्यमपालयदरिंदमः ॥७३
सुपुत्रः सानुगबलः पूर्ववैरमनुस्मरन् ।
अभ्याययौ महाराज तालजंघः पुरं तव ॥७४
चतुरंगबलोपेतः कंपयन्निव मेदिनीम् ।
रुरोदाभ्येत्य नगरीमयोध्यां स महीपतिः ॥७५
ततो निष्क्रम्य नगरात्फल्गुतंत्रोऽपि ते पिता ।
युयुधे तैर्नृपैः सर्वैर्वृद्धोऽपि तरुणो यथा ॥७६
निहतानेकमातंगतुरंगरथसैनिकः ।
शत्रुभिर्निर्जितो वृद्धः पलायनपरोऽभवत् ॥७७

वे सभी भागते हुए आकर भय से बहुत पीड़ित हो गये थे और हिमाद्रि पर्वत में बस गये थे । उन सबको महान कष्ट प्राप्त हुआ था और वहाँ पर वे सब शाक-मूल और फलों का अशन करने वाले हुए थे ।७१। जब वहाँ पर परशुराम परम शान्ति को प्राप्त हो जाने पर केवल तपस्या में ही आसक्त मन वाले हो गये थे और फिर उनका कोई भी भय नहीं रहा था तो तालजङ्घ ने अपने पुत्रों के सहित अपना राज्य कर लिया था ।७२। उस श्रेष्ठ राजा ने फिर पूर्व की ही भाँति अपनी नगरी को सन्निवेशित करके उस समय में वहीं पर निवास करते हुए उस अरिन्दम ने अपने राज्य का परिपालन किया था ।७३। हे महाराज ! सुन्दर पुत्र वाले और अपने अनुचरों तथा सेना से युक्त होकर उस तालजङ्घ ने पूर्व वैर का अनुस्मर करके वह तालजङ्घ आपके पुर में अभ्यागत हो गया था ।७४। वह चतुरङ्गिणी सेना से संयुत होकर भूमि को कँपाता हुआ जैसे हो चला था । जब वह अयोध्या नगरी में पहुँचा तो वह राजा रोने लग गया था ।७५। इसके पश्चात् आपके पिता के पास बहुत कम साधन थे तो भी वह नगर से निकल

आये थे और उन समस्त नृपों के साथ वृद्ध होते हुए भी तरुण पुरुष के ही समान उसने घोर युद्ध किया था ।७६। उसके बहुत से हाथी-अश्व-रथ और सैनिक जब निहत हो गये थे तो वह शत्रुओं के द्वारा निर्जित हो गया था और फिर वह वृद्ध वहां से भागने लग गया ।७७।

त्यक्त्वा स नगरं राज्यं सकोशबलवाहनम् ।
अंतर्वत्न्या च ते मात्रा सहितो वनमाविशत् ।।७८
तत्र चौर्वाश्रमोपांते निवसन्नचिरादिव ।
शोकामर्षसमाविष्टो वृद्धभावेन च स्वयम् ।।७९
विलोक्यमानो मात्रा ते बाष्पगद्गदकंठया ।
अनाथ इव राजेन्द्र स्वर्गलोकमितो गतः ।।८०
ततस्ते जननी राजन्दुःखशोकसमन्विता ।
चितामारोपयद्भर्तू रुदती सा कलेवरम् ।।८१
अनगनादिदुःखेन भर्त्तुर्व्यंसनकर्शिता ।
चकाराग्निप्रवेशाय सुदृढां मतिमात्मनः ।।८२
और्वस्तदखिलं श्रुत्वा स्वयमेव महामुनि ।
निर्गत्य चाश्रमात्तां च वारयन्निदमब्रवीत् ।।८३
न मर्त्तव्यं त्वया राज्ञि सांप्रतं जठरे तव ।
पुत्रस्तिष्ठति सर्वेषां प्रवरश्चक्रवर्त्तिनाम् ।।८४

उस वृद्ध नृप ने अपना सम्पूर्ण राज्य-नगर-कोष-बल समस्त वाहनों को छोड़कर गर्भवती तुम्हारी माता को साथ में लेकर वन में प्रवेश कर कर लिया था ।७८। वहाँ वन में और्व मुनि के आश्रम के समीप में अल्प समय तक ही उसने निवास किया था और वह स्वयं वृद्धता के कारण से बहुत ही अधिक शोक तथा अमर्ष से समाविष्ट हो गया था। तुम्हारी माता उसको देख रही थी और उसके नेत्रों से अश्रुपात हो रहा था उसका कण्ठ गद्गद हो गया था। हे राजेन्द्र ! वह वृद्ध नृप एक अनाथ के ही समान यहाँ से स्वर्गलोक में चल बसा था ।७९-८०। इसके अनन्तर हे राजन् ! तुम्हारी माता बिचारी पति वियोग के महा दुःख और शोक से समन्वित हो गयी थी। फिर करुण क्रन्दन करती हुई उसने स्वामी के मृत शरीर को चिता

पर समारोपित कर दिया था ।८१। पति के मृत हो जाने पर उसने कुछ भी खाया नहीं था—शोक हृदय में बैठा ही था—ऐसे दुःखों से अपने स्वामी से वियोग के दुःख से वह बहुत कम्पित हो गयी थी। अतः उसने भी अपने आपको भी अग्नि में पति के ही शव के साथ प्रवेश कर सती हो जाने का सुदृढ़ निश्चय कर लिया था ।८२। और्व महामुनि ने यह सम्पूर्ण समाचार सुना तो वे महामुनि स्वयं ही अपने आश्रम से बाहिर निकलकर आ गये थे और उससे यह वचन कहा था ।८३। हे राज्ञि ! तुमको इस समय में पति के साथ प्राणत्याग नहीं करना चाहिए कारण यह है कि तुम्हारे उदर में पुत्र स्थित है जो कि समस्त चक्रवर्त्तियों में परम श्रेष्ठ होगा ।८४।

इति तद्वचनं श्रुत्वा माता तव मनस्विनी ।
विरराम मृतेस्तां तु मुनिः स्वाश्रममानयत् ।
ततः सा सर्वदुःखानि नियम्य त्वन्मुखांबुजम् ।।८५
दिदृक्षुराश्रमोपांते तस्यैव न्यवसत्सुखम् ।
सुषाव च ततः काले सा त्वामौर्वाश्रमे तदा ।।८६
जातकर्मादिकं सर्वं भवतः सोऽकरोन्मुनिः ।
और्वाश्रमे विवृद्धश्च भवांस्तेनानुकंपितः ।।८७
त्वयैव विदितं सर्वमतः परमरिंदम ।
एवं प्रभावो नृपतिः कार्त्तवीर्योऽभवद्भुवि ।।८८
व्रतस्यास्य प्रभावेण सर्वलोकेषु विश्रुतः ।
यद्वंशजैर्जितो युद्धे पिता ते वनमाविशत् ।।८९
तद्वृत्तांतमशेषेण मया ते समुदीरितम् ।
एतच्च सर्वमाख्यातं व्रतानामुत्तमं तव ।।९०
समन्त्रतन्त्रं लोकेषु सर्वलोकफलप्रदम् ।
न ह्यस्य कर्त्तुर्नृपतेः पुरुषार्थचतुष्टये ।।९१

तुम्हारी मनस्विनी माता ने इस उस मुनि के वचन का श्रवण किया था तो फिर वह सती होकर दग्ध होने से कार्य से विरत हो गयी थी और फिर उसको वह मुनि अपने आश्रम में ले आये थे। इसके पश्चात् उसने सब दुःखों की ओर से अपने मन को नियमित कर लिया था तथा उस गर्भस्थ

अपने बालक के मुख कमल को देखने की इच्छा वाली होकर उसी आश्रम के समीप में सुख पूर्वक निवास कर रही थी ।८५। जब प्रसव काल उपस्थित हुआ तो उसने उसी और्व मुनि के आश्रम में प्रसव किया था ।८६। उसी मुनि ने आपका समस्त जातकर्म आदि संस्कार किया था और आप उसी मुनि की कृपा के भाजन होते हुए और्वाश्रय में ही पालित होकर बड़े हुए हैं ।८७। हे अरिन्दम ! इसके पश्चात् जो भी कुछ हुआ है वह आपको सब ज्ञात ही है । इस प्रकार के प्रभाव वाला राजा कार्त्तवीर्य इस भूमण्डल पर हुआ था ।८८। इसी व्रत के प्रभाव से वह लोकों में प्रख्यात हुआ है । जिसके वंश में समुत्पन्न होने वालों के द्वारा आपके पिता को युद्ध में जीत लिया गया है और वन में चले गये थे ।८९। उसका सम्पूर्ण वृत्तान्त मैंने आपको कहकर सुना दिया है और यह सब व्रतों में उत्तम व्रत मैंने आपको बतला दिया है ।९०। यह ऐसा व्रत है कि लोकों में मन्त्रों और तन्त्रों के सहित सब ही लौकिक फल को प्रदान कर देने वाला है । जो इस व्रत को राजा किया करता है उसको चारों (धर्म-अर्थ—काम -मोक्ष) पुरुषार्थों की प्राप्ति हो जाया करती है ।९१।

भवत्यभीप्सितं किञ्चिद्दुर्लभं भुवनत्रये ।
संक्षेपेण मयाख्यातं व्रतं हैहयभूभुजः ।
जामदग्न्यस्य च मुने किमन्यत्कथयामि ते ॥९२

जैमिनिरुवाच–

ततः स सगरो राजा कृतांजलिपुटो मुनिम् ॥९३
उवाच भगवन्नेतत्कर्तुमिच्छाम्यहं व्रतम् ।
सम्यक्तमुपदेशेन तत्रानुज्ञां प्रयच्छ मे ॥९४
कर्मणानेन विप्रर्षे कृतार्थोऽस्मि न संशयः ।
इत्युक्तस्तेन राज्ञा तु तथेत्युक्त्वा महामुनिः ॥९५
दीक्षयामास राजानं शास्त्रोक्तेनैव वर्त्मना ।
स दीक्षितो वसिष्ठेन सगरो राजसत्तमः ॥९६
द्रव्याण्यानीय विधिवत्प्रचचार शुभव्रतम् ।
पूजयित्वा जगन्नाथं विधिना तेन पार्थिवः ॥९७

समाप्य च यथायोग्यमनुज्ञाय गुरुं ततः ।
प्रतिज्ञामकरोद्राजा व्रतमेतदनुत्तमम् ।।९८
आजीवांतं धरिष्यामि यत्नेनेति महामतिः ।
अथानुज्ञाप्य राजानं वसिष्ठो भगवानृषिः ।।९९
सन्निवर्त्यानुगच्छंतं प्रजगाम निजाश्रमम् ।।१००

फिर इन तीनों भुवनों में कुछ भी ऐसी अभीप्सित वस्तु नहीं है जिसका प्राप्त करना दुर्लभ हो अर्थात् सभी कुछ प्राप्त हो जाया करता है । यह हैहय राजा का व्रत मैंने संक्षेप से कह दिया है और अब जमदग्नि के पुत्र परशुराम मुनि के विषय में मैं आपको क्या बतलाऊँ ? ।९२। जैमिनि ने कहा—इसके अनन्तर राजा सगर अपने हाथों की अञ्जलि को जोड़कर मुनिवर से कहने लगा था ।९३। उसने कहा—हे भगवन् ! मैं इस व्रत के करने की इच्छा करता हूँ सो आप भली भाँति उपदेश के द्वारा इसके करने में मुझे अपनी अनुज्ञा प्रदान कीजिए ।९४। हे विप्रर्षे ! इस कर्म से मैं कृतार्थ हो गया हूँ—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है । जब राजा के द्वारा इस रीति से प्रार्थना की गयी तो उस मुनि ने भी ऐसा ही होगा—यह कह दिया था । फिर उस मुनि ने शास्त्रोक्त मार्ग के द्वारा उस राजा को दीक्षा दी थी और श्रेष्ठ राजा सगर वसिष्ठ मुनि के द्वारा दीक्षित होगया था ।९५-९६। फिर समस्त द्रव्यों को मंगा कर विधि-विधान के साथ उस शुभ व्रतका समाचरण किया था । राजा ने उसी विधि से भगवान् जगन्नाथ का पूजन किया ।९७। यथा योग्य उसको सब समाप्त करके फिर अपने गुरुदेव की आज्ञा प्राप्त की थी और उस राजा ने उस सर्वोत्तम व्रत के करने की दृढ़ प्रतिज्ञा की थी ।९८। महामति उस नृप ने यही प्रतिज्ञा की थी कि मैं इस व्रत को जब तक मेरा जीवन रहेगा तब तक धारण करूँगा और यत्न पूर्वक करता रहूँगा । फिर भगवान् वसिष्ठ ऋषि ने उस राजा को अपनी आज्ञा प्रदान कर दी थी ।९९। फिर अपने पीछे अनुगमन करने वाले राजा को वापिस लौटाकर वसिष्ठ जी अपने आश्रम को चले गये थे ।१००।

———

सगर-प्रतिज्ञा पालन

जैमिनिरुवाच–

गते तस्मिन्मुनिवरे सगरो राजसत्तमः ।
अयोध्यायामधिवसन्पालयामास मेदिनीम् ॥१
सर्वसंपद्गणोपेतः सर्वधर्मार्थतत्त्ववित् ।
वयसैव स बालोऽभूत्कर्मणा वृद्धसंमतः ॥२
तथापि न दिवा भुंक्ते शेते वा निशि संस्मरन् ।
सुदीर्घं निःश्वसित्युष्णमुद्विग्नहृदयोऽनिशम् ॥३
श्रुत्वा राजा स्वराज्यं निजगुरुमवजित्यारिभिः
संगृहीतं मात्रा सार्द्धं प्रयांतं वनमतिगहनं स्वर्गतं
तं च तस्मिन् ।
शोकाविष्टः सरोषं सकलरिपुकुलोच्छित्तये
सत्प्रतिज्ञश्चक्रे सद्यः प्रतिज्ञां परिभवमनलं
सोढुमिक्ष्वाकुवंश्यः ॥४
स कदाचिन्महीपालः कृतकौतुकमंगलः ।
रिपुं जेतुं मनश्चक्रे दिशश्च सकलाः क्रमात् ॥५
अनेकरथसाहस्रैर्गजाश्वरथसैनिकैः ।
सर्वतः संवृतो राजा निश्चक्राम पुरोत्तामात् ॥६
शत्रून्हंतुं प्रतस्थे निजबलनिवहेनोत्पतद्भिस्तुरंगै-
र्नासत्त्वोर्मिजालाकुलजलनिधिनिभेनाथ षाडंगिकेन ।
मत्तैर्मातंगयूथैः सकुलगिरिकुलेनैव भूमंडलेन ।
श्वेतच्छत्रध्वजौघैरपि शशिसुकराभातखेनैव साद्धं म् ॥७

जैमिनि मुनि ने कहा—उस मुनिवर के चले जाने पर श्रेष्ठ नृप सगर ने अयोध्या पुरी में अधिवास करते हुए इस मेदिनी का परिपालन किया था ।१। वह सभी प्रकार की सम्पदाओं से संयुत था और सम्पूर्ण धर्म के तात्विक अर्थों का ज्ञाता था । वह अवस्था से ही बालक था किन्तु उसके

कर्म ऐसे थे कि वह वृद्धों के सम्मत थे ।२। वह दिन में भोजन नहीं करता है अथवा रात्रि में शयन भी नहीं किया करता है और स्मरण करता हुआ बहुत लम्बी श्वास लिया करता है जो कि बहुत गर्म होती हैं तथा उसका हृदय रात दिन अत्यन्त ही उद्विग्न रहता है ।३। जब राजा ने यह श्रवण किया था कि अपने गुरु को अवजित करके अपना सम्पूर्ण राज्य शत्रुओं ने ले लिया है । वह पिता पराजित होकर मेरी माता के सहित बहुत ही गहन वन में प्रयाण कर गये हैं और वहाँ पर ही स्वर्गलोक के प्रवासी हो गये हैं । उस पर इक्ष्वाकु के वंश में समुत्पन्न उसने महान् क्रोध से युक्त होकर तथा शोक से संविष्ट होते हुए सत्प्रतिज्ञा वाले ने समस्त शत्रुओं के कुल का उच्छेदन करने के लिये तुरन्त ही प्रतिज्ञा की थी और इस परिभव की थी और इस परिभव की अग्नि को कठिनाई से सहन किया था ।४। फिर किसी समय में उस महीपाल ने मङ्गल कौतुक करके सब दिशाओं में क्रम से जाकर शत्रु के जीतने का मन में विचार किया था ।५। वह राजा अनेकों सहस्र रथ-अश्व-गज और सैनिकों से सब ओर से संवृत होकर अपने उत्तम-पुर से निकल दिया था ।६। उस राजाने शत्रुओं को जीतने के लिए प्रस्थान कर दिया था । जिस समय में वहाँ से चला है उस समय में उसकी सेनाओं का ऐसा विशाल समुदाय उसके साथ में था कि उसमें जो अश्व थे वे ऊपर की ओर उछालें मार रहे थे कि ऐसा प्रतीत होता था मानों अत्युच्च तरङ्गों से समाकुल जलनिधि ही होवे । वह सेना छओं अङ्गों से युक्त थी । मत्त हाथियों के समूह ऐसे थे मानों भूमण्डल कुलगिरियों के समुदाय से संयुत है । उसकी सेनायें श्वेत ध्वजाओं के समूह आकाश में फहरा रहे थे जो ऐसा आभास हो रहा था कि पूर्ण अन्तरिक्ष चन्द्रमा की किरणों से श्वेत चमक रहा हो । ऐसी महान् विशाल सेना को साथ लेकर ही वह चला था ।७।

तस्याग्रे सरसैन्ययूथचरणप्रक्षुण्णशैलोच्चयः
क्षोदापूरितनिम्नभागमवनीपालस्य संयास्यतः ।
प्रत्येकं चतुरंगसैन्यनिकरप्रक्षोदसंभूतरेणुप्रावृतिरुत्स्थली
समभवद्भूमिस्तु तत्रानिशम् ॥८

निघ्नन्दृप्ताननेकान्द्विपतुरगरथव्यूहसंभिन्नवीरान्सद्यः
शोभां दधानोऽसुरनिकरचमूनिघ्नतश्चन्द्रमौलिः ।
दूरादेवाभिशंसन्नरिनगरनिरोधेषु कर्माभिषंगे
तेषां शीघ्रापयानक्षणमभिदिशति प्राणिधेयं विधत्ते ॥९

विजिगीषुर्दिशो राजा राज्ञो यस्याभियास्यति ॥१०
विषयं स नृपस्तस्य सद्यः प्रणतिमेष्यति ।
विजित्य नृपतीन्सर्वान्कृत्वा च स्वपदानुगान् ॥११
संकेतगामिनः कांश्चित्कृत्वा राज्ये न्यवर्त्तत ।
एवं स विसरन्दिक्षु दक्षिणाभिमुखो नृपः ॥१२
स्मरन्पूर्वकृतं वैरं हैहयानभ्यवर्त्तन ।
ततस्तस्य नृपैः सार्द्धं समग्ररथकुंजरैः ॥१३
बभूव हैहयैर्वीरैः संग्रामो रोमहर्षणः ।
राज्ञां यत्र सहस्राणि स बलानि महाहवे ॥१४

जिस समय में वह राजा सम्प्रयाण कर रहा था उस समय में उसकी जो सबसे आगे चलने वाली सेना के समुदायों के चरणों से शैलों के उच्च-भाग क्षुण्ण हुए थे उनके क्षोदों से निम्न भाग जो भूमि में थे वे भर गये थे और चतुरङ्गिणी सेना के हाथी-अश्व-रथ और पैदल सैनिकों के हर एक के एक के चरणों से जो भूमि खुदकर प्रक्षोद रेणु उठी थी उससे ऊँचे स्थल ढक गये थे। इस तरह से वह भूमि निरन्तर ऐसी ही होगयी थी।८। अनेक दृप्त अर्थात् दर्प से परिपूर्ण हाथी-घोड़े और रथों के व्यूह से सभिन्न वीरों को निहनन करने वाले उसकी शोभा तुरन्त ही असुरों के समूहों की सेनाओं का हनन करने वाले भगवान् शिव की शोभा को धारण वह नृप कर रहा था। उनके कर्मों के अभिषङ्ग होने पर दूर से ही शत्रुओं के नगर के विरोधों में ऐसा अभिशंसन करते हुए कि यहाँ से शीघ्र ही कहीं से भाग जाने के क्षणों का निर्देश करता है और प्राणियों के धैर्य का किया करता है।९। वह राजा जिसको सब दिशाओं में विजय प्राप्त करने की इच्छा है जिस राजा के ऊपर अभिमान करेगा।१०। वह राजा उसके देश को प्रणति को प्राप्त करा देगा। उस नृप ने सभी नृपतियों को जीतकर उनको अपने चरणों का अनुचर बना लिया था।११। उसे महान् वीर राजा ने कुछ नृपों को सङ्केत पर गमन करने वाले बनाकर उनको अपने ही राज्य पर भेज दिया था अर्थात् अपनी आज्ञा के इशारे वाले होना उन्होंने स्वीकार कर लिया था तो उनको राज्य पर बिठा दिया था। इस रीति से विसरण सब दिशाओं में करके फिर राजा दक्षिण की ओर अभिमुख हुआ था।१२। उस राजा ने अपने साथ पूर्व में की हुई शत्रुता स्मरण करके हैहय राजाओं के ऊपर

आक्रमण किया था। फिर उन सबके साथ जो पूर्णतया रथों और हाथियों से संयुत थे इसका महान् युद्ध हुआ था।१३। उन हैहय वीरों के साथ उसका बड़ा ही रोमाञ्चकारी भीषण युद्ध हुआ था जिस युद्ध में सहस्रों राजा थे और बड़ी विशाल सेनाऐं भी थीं।१४।

निजघान महाबाहुः संक्रुद्धः कोसलेश्वरः।
जित्वा हैहयभूपालान्भंक्त्वा दग्ध्वा च तत्पुरीम् ॥१५
निःशेषशून्यामकरोद्वैरांतकरणो नृपः।
समग्रबलसंमर्द्दप्रमृष्टाशेषभूतलः ॥१६
हैहयानामशेषं तु चक्रे राज्यं रजः समम्।
राज्यं पुरीं चापहाय भ्रष्टैश्वर्या हृतत्विषः ॥१७
राजानो हतभूयिष्ठा व्यद्रवंत समंततः।
अभिद्रुत्य नृपांस्तांस्तु द्रवमाणान्महीपतिः ॥१८
जघान सानुगान्मत्तः प्रजाः क्रुद्ध इवांतकः।
ततस्तान्प्रति सक्रोधः सगरः समरेऽरिहा ॥१९
मुमोचास्त्रं महारौद्रं भार्गवं रिपुभीषणम्।
तेनोत्सृष्टातिरौद्रत्रिभुवनभयदप्रस्फुरद्भार्गवास्त्र-
ज्वालादंदह्यमानाव्रणतनुततयस्ते नृपाः सद्य एव।
याऽत्वस्त्रावृत्तधूमोद्गमपटलतमोमुष्टदृष्टिप्रसारा
भ्रेमुर्भू पृष्ठलोठद्बहुलतमरजो गूढमात्रा मुहूर्त्तम् ॥२०
आग्नेयास्त्रप्रतापप्रतिहतगतयोऽदृष्टमार्गाः समंता-
द्भूपाला नष्टसंघाः परवशतनवो व्याकुलीभूतचित्ताः।
भीताः संत्युक्तवस्त्रायुधकवचविभूषादिका मुक्तकेशा
विस्पष्टोन्मत्तभावान्भृशतरमनुकुर्वंत्यग्रतः
शात्रवाणाम् ॥२१

उन सभी का निहनन महान् बाहुओं वाले कोसलेश्वर ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर कर दिया था। फिर हैहय नृपों को जीतकर उनकी पुरी को तोड़कर दग्ध कर दिया था।१५। वैर के अन्त करने वाले नृप ने उनकी पुरी

को पूर्णतया शून्य कर दिया था। वह राजा ऐसा बलवान् था कि उसने अपनी समग्र सेना के द्वारा मर्दन करके सबको भोड़ डाला था और सम्पूर्ण भूतल को प्रमृष्ट कर दिया था।१६। उस राजा ने हैहयों के समस्त राज्य को धूल में मिला दिया था। जब वहाँ कुछ भी शेष न रहा तो वे सब अपने राज्य और पुरोको छोड़कर क्षीण कान्ति वाले और विनष्ट ऐश्वर्य वाले हो गये थे।१७। जो राजा मरने से बच गये थे,ऐसे बहुत से वहाँ चारों ओर भाग गये थे। उस महीपति ने जो भी वहाँ से भाग रहे थे उनको वेग से आगे बढ़कर निग्रहीत कर लिया था।१८। इस मदोन्मत्त बलवान् नृप ने क्रुद्ध अन्तक जैसे प्रजाओं को मार दिया करता है वैसे ही इसने भी सबका संहार कर दिया था। समर में शत्रुओं के हनन करने वाले राजा सगर ने उन पर बड़ा भारी क्रोध किया था।१९। फिर सगर नृप ने महान् रौद्र-शत्रुओं के लिये बहुत ही भीषण भार्गव अस्त्र को उन पर छोड़ा था। इस महास्त्र का बड़ा भारी सब पर प्रभाव पड़ा था। उसके छोड़े जाने पर जो कि अत्यन्त ही रौद्र था, वह तीनों भुवनों को भय देने वाला था। ऐसा प्रस्फुरण करता हुआ जो भार्गव अस्त्र था उसकी ज्वालाओं से दग्ध होते हुए और अवश शरीरों वाले वे समस्त नृपगण हो गये थे। इसके उपरान्त जो वायु-अस्त्र का प्रयोग करने से चारों ओर धूम के समूह ने उनको ऐसा घेर लिया था कि वहाँ पर घोर अन्धकार से उन की दृष्टि भी मुष्ट हो गयी थी अर्थात् देखने की शक्ति समाप्त हो गयी थी और मुहूर्त्त भर तक तो वे सब अधिक अन्धकार और रज से ढके हुए होकर भूमि के पृष्ठ पर लोटते हुए चक्कर काट रहे थे।२०। शत्रुओं के सैनिकों की दशा उस समय में ऐसी हो गयी थी कि छोड़े हुए आग्नेयास्त्र के प्रताप से जिनकी गति प्रतिहत हो गयी है अर्थात् वे चलने में असमर्थ हो गये थे क्योंकि उनको उस समय में मार्ग दिखलाई नहीं दे रहा था—चारों ओर उन नृपों के सङ्ग नष्ट हो गये थे और उनके शरीर परवश हो गये थे तथा उनके चित्त व्याकुल हो गये थे। वे ऐसे भीत हो गये थे कि उन्होने अपने वस्त्र-आयुध-कवच और विभूषा आदि सबका त्याग कर दिया था-उनके मस्तकों के केश खुले हुए थे—वे सब अत्यन्त उन्मत्तों के ही भावों का उस समय में अनुकरण कर रहे थे।२१।

विजित्य हैहयान्सर्वान्समरे सगरो बली ।

संक्षुब्धसागराकारः कांबोजानभ्यवर्तत ॥२२

नानावादित्रघोषाहतपटहरवाकर्णनध्वस्तधैर्याः
सद्यः संत्यक्तराज्यस्वबलपुरपुरंध्रीसमूहा विमूढाः ।
कांबोजास्तालजंघाः शकयवनकिरातादयः
साकमेते भ्रेमुर्भूयंस्त्रभीत्या दिशि दिशि रिपवो
यस्य पूर्वापराधाः ॥२३
भीतास्तस्त नरेश्वरस्य रिपवः केचित्प्रता
पानलज्वालामुष्टदृशो विसृज्य वसति राज्यं च पुत्रादिभिः ।
द्विट्सैन्यैः समभिद्रुता वनभुवं संप्राप्य तत्रापि तेऽ-
स्तैमित्यं समुपागता गिरिगुहासुप्तोत्थितेन द्विपः ॥२४
तालजंघान्निहत्याजौ राजा सबलवाहनान् ।
क्रमेण नाशयामास तद्राज्यमरिकर्षणः ॥२५
ततो यवनकांबोजकिरादीननेकशः ।
निजघान रुषाविष्टः पल्हवान्पारदानपि ॥२६
हन्यमानास्तु ते सर्वे राजानस्तेन संयुगे ।
द्रुद्रुवुः संघशो भीता हयशिष्टाः समंततः ॥२७
युष्माभिर्यस्य राज्यं बहुभिरपहृतं तस्य
पुत्रोऽधुनाऽहं हन्तुं वः सप्रतिज्ञं प्रसभमुपगतो
वैरनिर्यातनैषी ।
इत्युच्चैः श्रावयाणो युधि निजचरितं वैरिभिर्नागवीर्यैः
श्रत्रैर्विध्वंसितेजाः सगरनरपतिः स्मारयामास भूपः ॥२८

समर में उस समय में सगर नृप ने सब हैहय नृपों को पराजित करके वह बलवान् नृप संक्षुब्धसागर के समान आकार वाला हो गया था और फिर उसने काम्बोजों पर आक्रमण किया था ।२२। जिन्होंने सगर नृप का पहिले अपराध किया था वे सब इस समय में बहुत ही बुरी दशा में पड़कर दिशाओं में मारे-मारे इसके शत्रुगण भूमि पर भ्रमण कर रहे थे अर्थात् प्राणों की रक्षा के लिए भटकते हुए घूम रहे थे । जब युद्ध में अनेक तरह के वाद्यों के घोष से और पटहों की ध्वनि के श्रवण करने से उन सब

को धीरज छूट गया था–उन्होंने तुरन्त ही अपना राज्य-सेना और स्त्रियों का भी त्याग कर दिया और किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गये थे। इनके अतिरिक्त तालजङ्घ–काम्बोज–शक–यवन और किरात आदि सब साथ ही साथ अस्त्रों के भय से भ्रमण करे रहे थे।२३। उस सगर नरेश्वर के भय से डरे हुए शत्रुगण उस समय में ऐसे हो गये कि कुछ को तो प्रताप की अग्नि की ज्वाला से दृष्टि ही नष्ट हो गयी थी और वे सब अपना राज्य-वसति का त्यागकर के पुत्रादि के साथ शत्रु की सेनाओं से खदेड़े हुए जङ्गल में पहुँच गये थे वहाँ पर भी उनके नेत्रों में स्तिमता छाया हुआ था जैसे कि गिरियों की गुफाओं में सोकर उठने पर होता है। तात्पर्य यह है कि वन में भी उनको कुछ सुख नहीं रहा था।२४। शत्रुओं से कर्षण करने वाले उस राजा ने रण में तालजङ्घों को निहत करके और उनके सैनिक तथा वाहनों का विनाश करके उसने क्रम से उनके राज्य का ध्वंस कर दिया था।२५। इसके अनन्तर यवन–काम्बोज और किरात आदि तथा बल्हय एवं पारद प्रभृति को सब को क्रोध में समाविष्ट होकर राजा सगर ने मार गिराया था।२६। उस महायुद्ध में मारे जाते हुए वे सब राजा लोग उस प्रतापी राजाके द्वारा प्रताड़ित होकर मरने से जो भी कुछ बच गये थे भयभीत होते हुए समुदाय के समुदाय चारों ओर भाग गये थे।२७। वे सब परस्पर में यह कहते हुए और बहुत ही ऊँचे स्वर से चिल्लाते हुए भाग रहे थे कि आप सब ने जिसके राज्य को बर बश छीन लिया था उसी का पुत्र यह है जो इस समय के अपने बैर को निकालने की इच्छा वाला होकर जबरदस्ती से यहाँ उपगत हुआ है–हाथियों के समान वीर्यवाले सगर नृप ने जिसका तेज ही विध्वस-कारी है उस युद्ध क्षेत्र में वैरियों के द्वारा अपना चरित सुनाता हुआ उन्हें याद करा रहा था।२८।

तं दृष्ट्वा राजवर्यं सकलरिपुकुलप्रक्षयोपात्तदीक्षं
भीताः स्त्रीबालपूर्वं शरणमभिययुः स्वासुसंरक्षणाय।
इक्ष्वाकूणां वसिष्ठं कुलगुरुमभितः सप्त राज्ञां
कुलेषु प्रख्याताः संप्रसूता नृपवरारिपवः
पारदाः पल्हवाद्याः ॥२९
वसिष्ठमाश्रमोपांते वसंतमृषिभिर्वृतम्।
उपगम्याब्रुवन्सर्वे कृतांजलिपुटा नृपाः ॥३०

शरणं भव नो ब्रह्मन्नार्त्तानामभयैषिणाम् ।
सगरास्त्राग्निनिर्दग्धशरीराणां मुमूर्षताम् ॥३१
स हंत्यस्मानशेषेण वैरांतकरणोन्मुखः ।
तस्माद्भयाद्धि निष्क्रांता वयं जीवितकांक्षिणः ॥३२
विभिन्नराज्यभोगर्द्धिस्वदारापत्यबांधवाः ।
केवलं प्राणरक्षार्थं त्वां स्वयं शरणं गतः ॥३३
न ह्यन्योऽस्ति पुमांल्लोके सौहृदेन बलेन वा ।
यस्तं निवर्त्तयित्वास्मान्पालयेन्महतो भयात् ॥३४
त्वं किलार्कान्वयभुवां राज्ञां कुलगुरुवृतः ।
तद्वंशपूर्वजेर्भूपैस्त्वत्प्रभावश्च तादृशः ॥३५

समस्त शत्रुओं के कुलों का पूर्णतया क्षय करने की दीक्षा ग्रहण करने वाले उस राजा को देखकर डरे हुए सब शत्रुगण स्त्री और बच्चों को आगे करके अपने प्राणों की रक्षा के लिए सगर नृप की शरणागति में आ गये। इक्ष्वाकु के वंशजों के कुलगुरु वसिष्ठजी के चारों ओर वे सात राजाओं के कुलों में परम प्रसिद्ध समुत्पन्न हुए पारद और वल्हव आदि सगर के शत्रु राजा उपस्थित हुए थे।२९। वसिष्ठजी के समीप में ही ऋषियों से घिरे हुए निवास कर रहे थे। वहाँ पर उन सबने उपगत होकर हाथ जोड़कर उनसे कहा था।३०। हे ब्रह्मन् आप ही हमारे रक्षा करने वाले होवें। हम बहुत ही आर्त्त हैं और अभय दान के इच्छुक हैं। हम सब राजा सगर के अस्त्र की अग्नि से निर्दग्ध शरीर वाले हैं और मर रहे हैं।३१। वह राजा सगर तो अपने वैर का अन्त करने के लिए उन्मुख हो रहा है और हम सबको ही मार रहा है। उसी के भय से हम निकलकर भागे हुए हैं और अपने जीवन की रक्षा के चाहने वाले हैं।३२। हमारा सबका राज्य-भोग-समृद्धि-स्त्री-सन्तति और बान्धव सभी कुछ विभिन्न हो गया है। अब तो हम केवल अपने प्राणों की रक्षा के लिए आपकी शरणागति में आये हैं।३३। इस लोक में आपके सिवाय अन्य कोई भी पुरुष ऐसा नहीं है जो सौहार्द से तथा बल-विक्रम से उसको हटाकर इस महान भय से हमारी रक्षा कर सके।३४। आप तो निश्चित रूप से सूर्य वंश के भूपों के कुलगुरु माने गये हैं और उस राजा के वंश में जो भी पूर्वज हुए थे उन सबने आपको कुलगुरु बनाया है और इन सब पर भी आपका प्रभाव उसी प्रकार का है।३५।

तेनायं सगरोऽप्यद्य गुरुगौरवयंत्रितः ।
भवन्निदेशं नात्येति वेलामिव महोदधिः ।।३६
त्वं नः सुहृत्पिता माता लोकानां च गुरुर्विभो ।
तस्मादस्मान्महाभाग परित्रातुं त्वमर्हसि ।।६७
जैमिनिरुवाच–
इति तेषां वचः श्रुत्वा वसिष्ठो भगवानृषिः ।
शनैर्विलोकयामास शरणं समुपागतान् ।।३८
वृद्धस्त्रीबालभूयिष्ठान्हतशेषान्नृपान्वयान् ।
दृष्ट्वा त्वतप्यद्भगवान्सर्वभूतानुकंपकः ।।३६
चिरं निरूप्य मनसा तान्विलोक्य च सादरम् ।
उज्जीवयन्कठनैर्वाचा मा भैष्टेति महामतिः ।।४०
अथावोचन्महाभागः कृपया परयान्वितः ।
समये स्थापयामास राज्ञस्ताञ्जीवितार्थिनः ।।४१
भूपक्याकोपदग्धं नृपकुलविहिताशेषधर्मादपेतं
कृत्वा तेषां वसिष्ठः समयमवनिपालप्रतिज्ञानिवृत्त्यै ।
गत्वा तं राजवर्यं स्वयमथ शनकैः सांत्वयित्वा यथावत् ।
सप्राणानामरीणामपगमनविधावभ्यनुज्ञां ययाचे ।।४२

इस कारण से आज भी यह राजा सगर अपने कुलगुरु आपके गौरव से यन्त्रित है । यह कभी भी आपके आदेश का उलंघन अपनी मर्यादा को समुद्र की भाँति नहीं करता है ।३६। हे विभो ! हमारे तो इस समय में आप लोगों के गुरु हैं । इसलिए हे महाभाग ! आप ही इससे हमारी रक्षा करने के योग्य होते हैं ।३७। जैमिनि ने कहा–ऋषिवर भगवान वसिष्ठजी ने उनके इस वचन का श्रवण करके शरणागति में समागत उनको धीरे से अवलोकित किया था ।३८। उनसे सभी वृद्ध-स्त्री-और बालक बहुत से थे और मरने से बचे-बचाये नृप वंशज थे । ऐसी दुरवस्था में स्थित उन सबको देखा था तो वसिष्ठजी का हृदय करुणाद्र हो गया था क्योंकि यह तो सभी प्राणिमात्र पर अनुकम्पा करने वाले महा पुरुष थे ।३६। बहुत काल पर्यन्त उनका निरूपण

किया था और मन में बड़ा आदर करके उनका विलोकन किया था। फिर उन महती मति वाले वसिष्ठजी ने उनको उज्जीवित करते हुए धीरे से कहा था—आप लोग डरो मत।४०। इसके पश्चात् उन महाभाग ने अत्यधिक कृपा से समन्वित होकर कहा था तथा जीवन के चाहने वाले उन समस्त नृपों को समय में (सन्धि करने में) स्थापित कर दिया था।४१। वसिष्ठजी ने राजा सगर की प्रतिज्ञा की निवृत्ति के लिए ऐसा समय किया था कि वह राजा सगर की क्रोधाग्नि से दग्ध नृप समुदाय नृपों के कुल में किए हुए सम्पूर्ण धर्म से अपेत हो गया था। फिर वे स्वयं ही धीरे से उस नृप श्रेष्ठ सगर के समीप में प्राप्त हुए थे और उनको यथा-रीति सान्त्वना दी थी तथा जीवित शत्रुओं के अपगमन के विधान में उनकी आज्ञा की याचना की थी। अर्थात् वे सभी जीवित ही चले जावें—ऐसी याचना की थी।४२।

सक्रोधोऽपि महीपतिर्गुरुवचः संभावयस्तानरीन्
धर्मस्य स्वकुलोचितस्य च तथा वेषस्य सत्यागतः।
श्रौतस्मार्त्तविभिन्नकर्मनिरतान्विप्रैश्च दूरोज्झतान्
सासून्केवलमत्यजन्मृतसमानेकैकशः पार्थिवान्।।४३

अर्द्धमुण्डाञ्छकांश्चक्रे पल्हवान् श्मश्रुधारिणः।
यवनान्विगतश्मश्रून्कांबोजांश्चिबुकान्वितान्।।४४

एवं विरूपानन्यांश्च स चकार नृपान्वयान्।
वेदोक्तकर्मनिर्मुक्तान्विप्रैश्च परिवर्जितान्।।४५

कृत्वा संस्थाप्य समये जीवतस्तान्व्यसर्जयत्।
ततस्ते रिपवस्तस्य त्यक्तस्वाचारलक्षणाः।।४६

व्रात्यतां समनुप्राप्ताः सर्ववर्णविनिन्दिताः।
धिक्कृताः सततं सर्वे नृशंसा निरपत्रपाः।।४७

क्रूराश्च संघशो लोके बभूवुर्म्लेछजातयः।।४८

मुक्तास्तेनाथ राज्ञा शकयवनकिरातादयः सद्य एव
त्यक्तस्वाचारवेषा गिरिगहनगुहाद्याश्रयाः संबभूवुः।
एता अद्यापि सद्भिः सततमवमता जातयोऽसत्प्रवृत्त्या
वर्त्तन्ते दुष्टचेष्टा जगति नरपतेः पालयंतः प्रतिज्ञाम्।।४९

यद्यपि राजा सगर को बहुत अधिक क्रोध हो रहा था तो भी उस नृप ने अपने गुरुदेव की आज्ञा का समादर करते हुए ऐसा स्वीकार कर लिया था वे सब शत्रु तभी जीवित एक-एक छोड़े जा सकते हैं जब कि वे अपने कुल के उचित धर्म और वेष का त्याग कर देवें और श्रौत तथा स्मार्त कर्मों से भिन्न कर्मों में निरत रहें और विप्रों के द्वारा दूर ही से त्यागे हुए रहें मृत के ही समान रहे तो रह सकते हैं।४३। उसमें जो शक जाति वाले थे उनके शिर तो आधे मुण्डित कर दिये गये थे और जो पल्हव थे उनको श्मश्रुधारी करा दिया था। जो यवन थे उनकी श्मश्रुओं को मुंडा दिया गया था और काम्बोज को वुकान्वित करा दिया था।४४। इस तरह से उस सगर ने अन्यों को विरूप विप्रों के द्वारा परिवर्तित बना दिये गये थे।४५। ऐसा ही सबको बनाकर समय में (सन्धि में) अर्थात् इस प्रकार की शर्त में बाँधकर संस्थापित करते हुए जीवित ही छोड़ दिया था अर्थात् ऐसे ढंग से ही उनके रहने पर उनका हनन नहीं किया था। इसके अनन्तर उसके वे समस्त शत्रुगण आचार के लक्षणों के परित्याग कर देने वाले हो गए थे।४६। इस तरह से रहने पर वे सभी व्रात्य हो गये थे और सभी वर्णों के द्वारा विनिन्दित बन गये थे अर्थात् किसी भी वर्ण वाले नहीं रहे थे। सर्वदा उनको धिक्कार दिया जा जाता था—वे बहुत क्रूर हो गये थे तथा एकदम निर्लज्ज भी बन गये थे।४७। वे सभी अत्यन्त क्रूरों के समुदायों वाले हो गये थे जो कि लोक में म्लेच्छ जाति वाले हो गये थे जो कि लोक में म्लेच्छ जाति वाले हुए थे।४८। उस समय में जो भी राजा सगर के द्वारा जीवित ही छोड़ दिये गये थे। वे शकयवन और किरात आदि थे ये तुरन्त ही आचार और वेष के त्याग देने वाले हो गये और फिर वे पर्वतों की गुफाओं में आश्रय लेने वाले हो गये थे। ये जातियाँ अब भी सत्पुरुषों के द्वारा बहुत ही नीच मानी जाती है क्योंकि बहुत ही बुरी प्रवृत्ति होती है और उनकी चेष्टाएँ भी दुष्ट हैं। ये जगत् में राजा सगर की प्रतिज्ञा का पालन किया करते हैं।४९।

—×—

सगर की दिग्विजय

जैमिनिरुवाच—

अथानुज्ञाय सगरो वसिष्ठमृषिसत्तमम् ।
बलेन महता युक्तो विदर्भानभ्यवर्त्तत ।।१

ततो विदर्भराट् तस्मै स्वसुतां प्रीतिपूर्वकम् ।
केशिन्याख्यामनुपमामनुरूपां न्यवेदयत् ॥२
स तस्या राजशार्दूलो विधिवद्वह्निसाक्षिकम् ।
शुभे मुहूर्ते केशिन्याः पाणिं जग्राह भूमिपः ॥३
स्थित्वा दिनानि कतिचिद्गृहे तस्याग्निसत्कृतः ।
विदर्भराज्ञा संमंत्र्य ततो गंतुं प्रचक्रमे ॥४
अनुज्ञातस्ततस्तेन पारिबर्हैश्च सत्कृतः ।
निष्क्रम्य तत्पुराद्राजा शूरसेनानुपेयिवान् ॥५
संभावितस्ततश्चैव यादवैर्मातृसोदरैः ।
धनौघैस्तर्पितस्तैश्च मधुराया विनिर्ययौ ॥६
एवं स सगरो राजा विजित्य वसुधामिमाम् ।
करैश्च स नृपान्सर्वांश्चक्रे संकेतगानपि ॥७

जैमिनी मुनि ने कहा-इसके अनन्तर नृप सगर ने परम श्रेष्ठ ऋषि वसिष्ठजी की अनुज्ञा प्राप्त करके महान सेना से समन्वित होकर विदर्भ देश पर आक्रमण किया था ।१। फिर विदर्भ के नृप ने अपनी केशिनी नाम वाली पुत्री को बहुत ही प्रीति के साथ उनकी सेवा में समर्पित कर दी थी । यह कन्या रूप लावण्यादि सब गुणों में अनुपम थी और उस नृप के सर्वथा अनुरूप थी ।२। उस राजशार्दूल नृप सगर ने अग्नि को साक्षी करके परम शुभ मुहूर्त में उस का पाणिग्रहण किया था ।३। वहाँ पर ससुराल ही में कुछ दिन तक स्थित रहकर उस विदर्भेश्वर के द्वारा बड़ा सत्कार प्राप्त किया था फिर विदर्भाधि अनुमति पाकर वहाँ से गमन करने का उपक्रम किया था ।४। उस राजा ने भी आज्ञा देदी थी तथा पारिबर्हों के अर्थात् दायों के द्वारा उसका अच्छा सत्कार किया था । फिर वहाँ पुर से राजा ने निकल कर शूरसेन देशों में पहुँचा था ।५। वहाँ पर भी माता के सादरों के द्वारा यादवों से असका सम्मान किया गया था और बहुत-सा धन देकर उन्होंने भी उसको पूर्ण सन्तुष्ट किया था । इसके पश्चात् वहाँ से निकल कर चल दिया था ।६। मधुरा से चलकर इस रीति से उस राजा सगर ने इस सम्पूर्ण वसुधा पर विजय प्राप्त की थी और समस्त नृपों पर कर लगाकर उनको अपने ही संकेतों पर चलने वाले अनुगामी बना दिया था ।७।

ततोऽनुमान्य नृपतीन्निजराज्याय सानुगान् ।
अनुजज्ञे नरपतिः समस्ताननुयायिनः ॥८
ततो बलेन महता स्कंधावारसमन्वितः ।
शनैरपीडयन्देशान्स्वराज्यमुपजग्मिवान् ॥६
संभाव्यमानश्च मुहुरुपदाभिरनेकशः ।
नानाजनपदैस्तूर्णमयोध्यां समुपागमत् ॥१०
तदागमनमाज्ञाय नागरः सकलो जनः ।
नगरीं तामलंचक्रे महोत्सवसमुत्सुकः ॥११
ततः स नगरी सर्वा कृतकौतुकमंगला ।
सिक्तसंमृष्टभूभागा पूर्णकुम्भशतावृता ॥१२
समुच्छ्रितध्वजशता पताकाभिरलंकृता ।
सर्वत्रागरुधूपाढ्या विचित्रकुसुमोज्ज्वला ॥१३
सद्रत्नतोरणोत्तुंगगोपुराट्टालभूषिता ।
प्रसूनलाजवर्षैश्च स्वलंकृतमहापथा ॥१४

इसके उपरान्त उन नृपों को अपने राज्य पर स्थित बने रहने का आदेश देकर तथा सम्मान प्रदान करके कि वे अपने अनुगों के साथ अनुयायी रहें राजा ने प्रस्थान किया था इसके पश्चात् स्कन्धावार से संयुत उसने महान सैन्य के साथ सब देशों को पीड़ित करते हुए अन्त में अपनी ही राजधानी में आकर प्राप्त हो गया था।८-६। उस राजा का अनेक प्रकार की भेटों से बड़ा सत्कार अनेक जनपदों के द्वारा किया गया था और फिर वह शीघ्र ही अयोध्या में आ गया था।१०। वहाँ पर समस्त नागरिक जनों को जब ज्ञात हुआ कि राजा अयोध्या में आ गये हैं तो सबने बड़ा महान् उत्सव किया था और बड़ी उत्सुकता के साथ उस अयोध्यापुरी को सजाया था।११। फिर वह समग्र नगरी माङ्गलिक कौतुकों से समलंकृत हुई थी। उसकी समस्त भूमि पर स्वच्छता हुई थी और छिड़काव किया गया था तथा जहाँ-तहाँ सैकड़ों ही पूर्ण कुम्भ स्थापित किये गये थे।१२। उसमें सैकड़ों ध्वजाएँ फहराई गयी थीं तथा अनेक पताकाओं से वह विभूषित बनायी गयी थी। वहाँ पर सभी अगरु की धूपों की महक हो रही थी एवं

नाना भाँति के सुन्दर सुमनों की मालाओं से वह समुज्ज्वल बनायी गयी थीं ।१३। अच्छे-अच्छे रत्नों के द्वारा निर्मित तोरण वन्दनवारें लगायी गयी थी तथा ऊँचे-ऊँचे गोपुर और अट्टालिकाओं से वह परम भूषित थी जो महापथ थे उनमें पुष्पों और लाजाओं की वर्षा की थी जिसमे वे बहुत ही सुन्दर एवं सुशोभित हो रहे थे ।१४।

महोत्सवसमायुक्ता प्रतिगेहमभूत्पुरी ।
संपूजिताशेषवास्तुदेवतागृहमालिनी ।।१५
दिक्चक्रजयिनो राज्ञः संदर्शनमुदान्वितैः ।
पौरजानपदैर्हृष्टैः सर्वतः समलंकृता ।।१६
ततः प्रकृतयः सर्वे तथांतः पुरवासिनः ।
वारकांताकदंबैश्च नगरीभिश्च संवृताः ।।१७
अभ्याययुस्ततः सर्वे समेत्य पुरवासिनः ।
स तैः समेत्य नृपतिर्लब्धाशीर्वादसत्क्रियः ।।१८
बधिरीकृतदिक्चक्रो जयशब्देन भूरिणा ।
नानावादित्रसंघोषमिश्रेण मधुरेण च ।।१९
सत्कृत्य तान्यथायोगं सहितस्तैर्मुदान्वितैः ।
आनंदयन्प्रजाः सर्वाः प्रविवेश पुरोत्तमम् ।।२०
वेदघोषैः सुमधुरैर्ब्राह्मणैरभिनन्दितः ।
संस्तूयमानः सुभृशं सूतमागधवंदिभिः ।।२१

उस समय से अयोध्या पुरी में महान् उल्लास छाया हुआ था तथा प्रत्येक घर में महोत्सव मनाया जा रहा था। वहाँ पर सभी गृहों की पंक्तियों में भलीभाँति समस्त वास्तु देवताओं का पूजन किया गया था ।१५। दिग्विजय करने वाले चक्रवर्ती राजा सगर के दर्शन करने के आनन्द से युक्त नागरिक और देशवासी बहुत ही प्रसन्न थे और इनसे सभी ओर वह पुरी समलंकृत थी ।१६। फिर वहाँ पर सभी प्रकृतियाँ तथा अन्तःपुर के निवासी परम प्रसन्न थे और वार कान्ताओं के समुदायों से और नगरियों से संवृत थी । अर्थात् बहुत सी नर्त्तिका वेश्या से भी एकत्रित थीं ।१७। इसके पश्चात् सभी पुरवासी इकट्ठे होकर वहाँ पर आ गये थे और सबने एकत्रित होकर उस राजा को सत्कृत किया था तथा आशीर्वादों से मुदित किया था ।१८।

उस समय में जयजयकार की समुच्च ध्वनि से सभी दिशाएं बधिर हो गयी थीं अर्थात् जयघोष में कहीं पर भी कुछ भी सुनायी नहीं दे रहा था। वहाँ पर बहुत से प्रकार के वाद्य बज रहे थे उनकी भी ध्वनि बहुत मधुर उसी जयघोष में मिल रही थी ।१६। राजा ने भी उन समस्त स्वागत करने वालों का योग्यता के अनुसार सत्कार किया था जिससे उनको भी परमाधिक हर्ष हो रहा था। इन प्रसन्न पुर वासियों के ही साथ में समस्त प्रजाजनों को आनन्दित करते हुए राजा ने पुर में प्रवेश किया था ।२०। उस समय में ब्राह्मणों ने भी परम मधुर वेद के मन्त्रों की ध्वनि से राजा का अभिनन्दन किया था। तथा सूत–मागध और वन्दियों के द्वारा उस शुभ समागमन के समय में राजा का संस्तवन किया जा रहा था ।२१।

जयशब्दैश्च परितो नानाजनपदेरितैः ।
करतालरवोन्मिश्रवीणावेणुतलस्वनैः ॥२२
गायद्भिर्गायकजनैर्नृत्यद्भिर्गणिकाजनैः ।
अन्वीयमानो विलसच्छ्वेतच्छत्रविराजितः ॥२३
विकीर्यमाणः परितः सल्लाजकुसुमोत्करैः ।
पुरीमयोध्यामविशत्स्वपुरीमिव वासवः ॥२४
दृष्टिपूतेन गंधेन ब्राह्मणानां च वर्त्मना ।
जगाम मध्येनगरं गृहं श्रीमदलंकृतम् ॥२५
अवरुह्य ततो यानाद्भार्याभ्यां सहितो मुदा ।
प्रविवेश गृहं मातुर्हृष्टपुष्टजनायुतम् ॥२६
पर्यंकस्थामुपागम्य मातरं विनयान्वितः ।
तत्पादौ संस्पृशन्मूर्ध्ना प्रणाममकरोत्तदा ॥२७
साभिनंद्य तमाशीभिर्हर्षगद्गदया गिरा ।
ससंभ्रमं समुत्थाय पर्यष्वजत चात्मजम् ॥२८

उस नृपति के दोनों ओर अनेक जनपदों के द्वारा कहे गये जयजयकार का घोष हो रहा था और करताल—की ध्वनि से मिले हुए वीणा और वेणु के मधुर स्वर निकल रहे थे ।२२। राजा के पीछे-पीछे गान करने वाले गान कर रहे थे और गणिकाएं नृत्य करती हुई चली जा रही थीं। राजा के

ऊपर श्वेत छत्र लगा हुआ था ।२३। राजा के ऊपर लाजा और पुष्पों की वर्षा की जा रही थी । इस रीति से राजा ने अपनी पुरी अयोध्या में महेन्द्र देव जिस तरह से इन्द्रपुरी में गमन कर रहे हों उसी भाँति प्रवेश किया था ।२४। दृष्टिपूत गन्ध से युक्त ब्राह्मणों के मार्ग से नगर के मध्य में जो भी सम्पन्न एवं अलंकृत गृह था, उसमें राजा ने गमन किया था ।२५। फिर अपनी दोनों भार्याओं के साथ प्रसन्नता से यान से नीचे उतरकर अपनी माताश्री के घर में राजा ने प्रवेश किया था जहाँ पर सहस्रों परम हृष्टपुष्ट जन विद्यमान थे ।२६। उनकी माताजी एक पर्यङ्क पर विराजमान थीं उनके समीप में परम विनय से युक्त होकर उस समय में उनके चरणों का स्पर्श करके माथा टेककर प्रणाम किया था ।२७। माताजी ने भी शुभाशीर्वाद देकर उसका अभिनन्दन किया था और फिर अत्यधिक हर्ष से गद्गद वाणी के द्वारा बड़े ही सम्भ्रम के साथ उठकर अपने परम प्रिय पुत्र को छाती से लगाकर परिष्वन किया था ।२८।

सहर्षं बहुधाशीर्भिरभ्यनंददुभे स्नुषे ।
मा ना संभाष्य कथया तत्र स्थित्वा चिरादिव ॥२९
अनुज्ञातस्तयो राजा निश्चक्राम तदालयात् ।
ततः सानुचरो राजा श्वेतव्यजनवीजितः ॥३०
सुरराज इव श्रीमान्सभां समगमच्छनैः ।
संप्रविश्य सभां दिव्यामनेकनृपसेविताम् ॥३१
नत्वा गुरुजनं सर्वमाशीर्भिश्चाभिनंदितः ।
सिंहासने शुभे दिव्ये निषसाद नरेश्वरः ॥३२
संसेव्यमानश्च नृपैर्नानाजनपदेश्वरैः ।
नानाविधाः कथाः कुर्वन्स तत्र नृपसत्तमः ॥३३
सम्प्रीयमाणः सुतरामुवास सह बंधुभिः ।
प्रतिज्ञां पालयित्वैवं जितदिङ्मंडलो नृपः ॥३४
अन्वतिष्ठद्यथान्यायमर्थं धर्ममुदारधीः ।
स्वप्रभावजिताशेषवैरिदिङ्मण्डलाधिपः ॥३५

इसके अनन्तर जो परम सुन्दर दो पुत्र वधुएँ समय में ही समुपस्थित हुई थीं उनको भी बहुत आशीर्वादों से माताजी ने अभिनन्दित किया था ।

फिर राजा ने अपनी सब सुन कर कुछ काल पर्यन्त वहाँ पर स्थिति की थी।२९। फिर माताजी से अनुज्ञा प्राप्त करके राजा उनके घर से बाहिर निकल आये थे और इसके अनन्तर अनुचरों के सहित वहाँ से गमन कर रहे थे और श्वेत व्यजनों के द्वारा सेवकगण उनको हवा करते जा रहे थे।३०। देवराज इन्द्र के ही समान श्री सम्पन्न राजा धीरे-धीरे अपनी सभा के मण्डप में समागत हो गये थे। राजा ने अनेक अधीन नृपों से संसेवित परम दिव्य सभा में प्रवेश किया था।३१। सर्व प्रथम वहाँ पर जो गुरुजन बिराजमान थे उनको प्रणाम किया था और उनके द्वारा दिये हुए आशीर्वाद प्राप्त कर अभिनन्दित हुए थे। फिर नरेश्वर ने परम शुभ एवं अतीव दिव्य सिंहासन पर अपनी संस्थिति की थी।३२। वहाँ पर अनेक जनपदों के स्वामी नृपों के द्वारा वह भली-भाँति सेव्यमान हुए थे और अनेक प्रकार की उस श्रेष्ठ नृप ने वहाँ पर कथालाप किया था।३३। इस तरह से बन्धुओं के साथ सुतरा परम प्रसन्नता प्राप्त करते हुए वहाँ पर निवास किया था। इस रीति से नृप ने समस्त दिशाओं को जीतकर अपनी की हुई प्रतिज्ञा का पालन किया था।३४। न्याय के अनुसार उस उदार बुद्धि वाले नृप ने तीनों धर्म-अर्थ और काम को प्राप्त किया था। उस राजा का प्रभाव ही ऐसा था कि जिसके द्वारा विविध एवं समस्त दिशाओं के मण्डल के स्वामियों को पराजित कर दिया था।३५।

एकातपत्रां पृथिवीमन्वशासद्वृषो यथा।
स्वर्यातस्य पितुः पूर्वं परिभावममर्षितः ॥३६
स यां प्रतिज्ञामारूढस्तां सम्यक्परिपूर्य च।
सप्तद्वीपाब्धिनगरग्रामायतनमालिनीम् ॥३७
जित्वा शत्रूनशेषेण पालयामास मेदिनीम्।
एवं गच्छति काले च वसिष्ठो भगवानृषिः ॥३८
अभ्याजगाम तं भूयो द्रष्टुकामो जनेश्वरम्।
तमायांतमतिक्ष्य मुनिवर्यं ससंभ्रमः ॥३९
प्रत्युज्जगामार्घहस्तः सहितस्तैर्नृपैर्नृपः।
अर्घ्यपाद्यादिभिः सम्यक्पूजयित्वा महामतिः ॥४०
प्रणाममकरोत्तस्मै गुरुभक्तिसमन्वितमः।

आशीर्भिर्वर्द्धयित्वा तं वसिष्ठः सगरं तदा ॥४१

आस्यतामिति होवाच सह सर्वैर्नरेश्वरैः ।

उपाविशत्ततो राजा कांचने परमासने ॥४२

स्वर्ग में गये हुए पिताजी के पूर्व में परिभव से यह सगर अत्यन्त क्रुद्ध हुए थे और फिर दिग्विजय करके एक छत्र समग्र वसुधा पर इसने अनुशासन किया था ।३६। उसने जिस प्रतिज्ञा को किया था उसको अच्छी तरह परिपूर्ण करके ही छोड़ा था । समस्त शत्रुओं को जीतकर सातों द्वीप और सागर से युक्त नगर-ग्राम और आयतनों की माला मेदिनी का पालन किया था । इस रीति से जब कुछ काल व्यतीत हो गया था तब भगवान् वसिष्ठ ऋषि ने वहाँ पर पदार्पण किया था ।३७-३८। उस राजा को पुनः देखने की कामना वाले ऋषि वहाँ पर समागत हुए थे । जैसे ही वहाँ पर पदार्पण करते हुए ऋषि का अवलोकन राजा ने किया था वैसे ही सम्भ्रम के साथ राजा ने अपने हाथों में अर्घ-सामग्री ग्रहण कर तुरन्त ही उनका शुभागमन किया था उस समय में उसके साथ अन्य सभी नृप विद्यमान थे। महामति नृप ने अर्घ्य-पाद्य आदि समग्र उपचारों से भली भाँति उन ऋषिवर का अर्चन किया था ।३९-४०। गुरुदेव की भक्ति से युक्त होकर उनको प्रणाम किया था । उस समय में वसिष्ठ जी ने भी आशीर्वचनों से सगर का वर्धन किया था ।४१। मुनि ने राजा को आज्ञा दी थी कि आप बैठ जाइए तब फिर सब नृपों के सहित राजा सुवर्ण निर्मित आसन पर उपविष्ट हो गये थे ।४२।

मुनिना समनुज्ञातः सभार्यं सह राजभिः ।

आगतस्तु नृपश्रेष्ठमुपासीनमुपह्वरे ॥४३

उवाच शृण्वतां राज्ञां गनैर्मृद्वक्षरं वचः ।

वसिष्ठ उवाच–

कुशलं ननु ते राजन्बाह्येष्वाभ्यंतरेषु च ॥४४

मंत्रिष्वमात्यवर्गेषु राज्ये वा सकलेऽधुना ।

दिष्ट्या त्व विजिताः सर्वे समग्रबलवाहनाः ॥४५

अयत्नेनैव युद्धेषु भवता रिपवो हि यत् ।

दिष्ट्यारूढप्रतिज्ञेन मम मानयता वचः ॥४६

अरयस्त्यक्तधर्माणस्त्वया जीवविसर्जिता ।

तान्विजित्यैतान्राजेन्द्र पुनर्दिग्विजयेच्छया ॥४७
गतस्सवाहनबलस्त्वमित्यश्रृणवं वचः।
जितदिङ्मंडलं भूयः श्रुत्वा त्वां नगरस्थितम् ॥४८
प्रीत्याहमागतो द्रष्टुमिदानीं राजसत्तम ।
जैमिनिरुवाच—
वसिष्ठनैवमुक्तस्तु सगरस्तालजंघजित् ॥४९

जब मुनिवर ने अपनी आज्ञा प्रदान की थी तो नृप भार्याओं तथा अधीन नृपों के सहित मुनि के ही समीप में नीचे की ओर उपासीन हो गये थे। वहाँ पर समस्त नृपों का समुदाय श्रवण कर रहा था तभी मुनिवर ने धीरे से कोमल कान्त वचन राजा से कहे थे। वसिष्ठ जी ने कहा—हे राजन्! बाहिर-भीतर सर्वत्र कुशल-क्षेम तो है न? ।४४। समस्त मन्त्रियों में—अमात्य वर्गों में अथवा समग्र राज्य में इस समय कुशल तो है न? यह तो परम हर्ष की बात है कि आपने युद्धों में सेना और वाहनों के सहित सब अपने शत्रुओं को बिना ही किसी प्रयत्न के बहुत ही साधारण कर्मों द्वारा पराजित कर दिया है। मुझे बड़ी प्रसन्नता इसकी है कि अपनी प्रतिज्ञा पर समारूढ़ होते हुए भी आपने मेरे कथित वचनों को मान लिया है ।४५-४६। आपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके उनको समस्त धर्मों का त्याग कर देने वाले बना कर जीवित ही रहने वाले छोड़ दिये हैं। इस रीति से उन सबको जीत कर आप अन्यों को पराजित करने के वास्ते आप दिग्विजय करने की इच्छा से सेना और वाहनों से संयुत होकर गये हैं—यह भी वचन मैंने सुन लिया है। फिर मैंने यह श्रवण किया है कि आप दिग्विजय करके वापिस लौट आये हैं और अपने ही नगर में इस समय समवस्थित हैं ।४७-४८। हे परम श्रेष्ठ राजन्! हम वर्त्तमान काल में प्रीति से ही आपसे मिलने के ही लिये यहाँ पर समागत हुआ है। जैमिनि मुनि ने कहा—महामुनीन्द्र वसिष्ठ जी ने जब इस रीति से कहा था तो तालजङ्घ पर विजय पाने वाले राजा सगर ने उनसे निवेदन किया था ।४९।

कृतांजलिपुटो भूत्वा प्रत्युवाच महामुनिम् ।
सगर उवाच—
कुशलं ननु सर्वत्र महर्षे नात्र संशयः ॥५०
कल्याणाभिमुखाः सर्वे देवताश्च मुनेऽनिशम् ।
भवान्ध्यायति कल्याणं मनसा यस्य संततम् ॥५१

तस्य मे चोपसर्गाश्च संभवंतिकथं मुने।
भवताऽनुगृहीतोऽस्मि कृतार्थश्चाधुना कृतः ॥५२
यन्मां द्रष्टुमिहायातः स्वयमेव भवान्गुरो।
यन्महामाह भगवान्विपक्षविजयादिकम् ॥५३
तत्तथाऽनुष्ठितं किन्तु सर्वं भवदनुग्रहात्।
भवत्प्रसादेन सर्वं मन्ये प्राप्तं महीक्षिताम् ॥५४
अन्यथा मम का शक्तिः शत्रून्हंतुं तथाविधान्।
अनल्पी कुरुते फल्यं यन्मे व्यवसितं भवान् ॥५५
फलमल्पमपि प्रीत्यै स्यादगस्याधिरोपितुः।
जैमिनिरुवाच—
एवं संभावितः सम्यक्सगरेण महामुनिः ॥५६

दोनों हाथों को जोड़कर महामुनि को सगर ने उत्तर दिया था। सगर ने कहा—हे महर्षे! मेरा सर्वत्र कुशल है—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है।५०। जिस मुझ सेवक का निरन्तर ही आप जैसे महापुरुष कल्याण की कामना का ध्यान रक्खा करते हैं उस सेवक मेरे प्रति सभी देवगण कल्याणाभिमुख अर्थात् श्रेय करने वाले सदा ही रहा करते हैं।५१। हे मुने! ऐसे मुझको उपद्रव कैसे हो सकते हैं। मैं तो आपके परमाधिक अनुग्रह का भाजन हो गया हूँ और अब अपने समस्त कार्यों में सफल भी बना दिया गया हूँ।५२। हे गुरुदेव! आप जो स्वयं ही मुझको अपना दर्शन देने के लिए यहाँ पर पधारे हैं और जो आपने विपक्षियों पर विजय आदि प्राप्त करने की बातें मुझसे कही हैं।५३। यह सभी कुछ वैसा ही किया गया है किन्तु यह सब आपकी ही अनुकम्पा से हुआ है। मैं स्वयं ही इस बात को मानता हूँ कि शत्रु तथा अन्य नृपों पर जो भी मैंने विजय प्राप्त की है—यह सब आपके ही प्रसाद से ही हुआ है।५४। नहीं तो ऐसे-ऐसे प्रबल शत्रुओं का हनन कर पराजित करने की मेरे जैसे की क्या शक्ति है। जो भी मेरा व्यवसित है उसको सफल आप जैसे महान् पुरुष ही किया करते हैं।५५। अग अधिरोपिता का अनल्प भी फल प्रीति के लिए ही होता है। जैमिनी मुनि ने कहा—इस रीति से राजा सगर के द्वारा उन महामुनि का समादर किया गया था।

अभ्यनुज्ञाय तं भूयः प्रजगाम निजाश्रमम् ।
वसिष्ठे तु गते राजा सगरः प्रीतमानसः ॥५७
अयोध्यायामभिवसन्प्रशशासाखिलां भुवम् ।
भार्याभ्यां समुपेताभ्यां रूपशीलगुणादिभिः ॥५८
बुभुजे विषयान्ग्राम्यान्यथाकामं यथासुखम् ।
सुमतिर्केशिनी चोभे विकसद्वदनाबुजे ॥५९
रूपौदार्यगुणोपेते पीनवृत्तपयोधरे ।
नील कुंचितकेशाढ्ये सर्वाभरणभूषिते ॥६०
सर्वलक्षणसपन्ने नवयौवनगोचरे ।
प्रिये सन्निहिते तस्य नित्यं प्रियहिते रते ॥६१
स्वाचारभावचेष्टाभिर्जह्रतुस्तुस्तन्मनोऽनिशम् ।
स चापि भरणोत्कर्षं प्रतीतात्मा महीपतिः ॥६२

फिर वह मुनि नृप सगर से आज्ञा ग्रहण करके अपने आश्रम को चले गये थे । वसिष्ठ मुनि के गमन कर जाने पर राजा के मन में परम हर्ष हुआ था ।५७। वह राजा फिर अयोध्या पुरी अपनी राजधानी में निवास करता था और उसने समस्त भूमण्डल पर प्रशासन किया था । दोनों भार्याओं को भी अपने पास में रखता था जो रूप लावण्य, शील स्वभाव और गुण गण आदि से सुसम्पन्न थीं ।५८। उस राजा सगर ने ग्राम्य विषयों के सुख का पूर्ण अपनी इच्छा के अनुरूप ही उपभोग किया था । सुमति और केशिनी ये दोनों ही विकसित कमल के समान परम सुन्दर मुखों वाली थीं ।५९। सुन्दर स्वरूप के साथ-साथ इन दोनों पत्नियों में विशाल उदारता भी थी । इनके उरोज युग्म परिपुष्ट वृत्ताकर एवं समुन्नत थे । इनके केशपाश नील वर्ण के कुञ्चित अर्थात् छल्लेदार परम सुहावने थे । ये सभी आभरणों से विभूषित रहा करती थीं ।६०। नूतन यौवन के उद्गम में दिखलाई देने वाली नारियों में जो गुण गण हुआ करते हैं । उन सभी से ये दोनों रानियाँ सुसम्पन्न थीं । ये दोनों बहुत ही प्रिय थीं और सदा राजा के समीप में रहा करती थीं तथा नित्य ही अपने परम प्रिय स्वामी के हित कार्य में रति रखने वाली थीं ।६१। इन दोनों के अपने आचरण राजा के प्रति इतने सुन्दर थे वे अपने हाव-भाव और चेष्टाओं के द्वारा निरन्तर ही राजा के मन को अपनी ओर आकर्षित रक्खा करती थीं । वह राजा भी उन दोनों के भरण के उत्कर्ष से प्रसन्न मन वाला था ।६२।

रममाणो यथाकामं सह ताभ्यां पुरेऽवसत् ।
अन्येषां भुवि राज्ञां तु राजशब्दो न चाप्यभूत् ॥६३
गणेन चाभवत्तस्य सगरस्य महात्मनः ।
अल्पोऽपि धर्मः सततं यथा भवति मानसे ॥६४
राज्ञस्तस्यार्थकामौ तु न तथा विपुलावपि ।
अलुब्धमानसोऽर्थं च भेजे धर्ममपीडयन् ॥६५
तदर्थमेव राजेंद्र कामं चापीडयंस्तयोः ॥६६

वह राजा सगर उन दोनों अपनी परम प्रिय पत्नियों के साथ अपनी इच्छा के अनुसार रमण करता हुआ अपने नगर में निवास किया करता था। इस भूमि में अन्य राजा के लिए राजा—यह शब्द ही नहीं था। राजा का अर्थ होता जो राजित (शोभित) होता है। वह अर्थ इसी में घटित होता है। अन्य अर्थ यह भी है कि यही एक चक्रवर्ती राजा था।६३। इस राजा में ही ऐसे गुण गण विद्यमान थे कि महान् आत्मा वाले इसके लिए ही राजा शब्द अन्वर्थ होता था। इसके मन में अल्प भी धर्म निरन्तर रहा करता था।६४। इस राजा में विशेष अधिक भी अर्थ और काम वैसे नहीं थे जो उसके मन को अधिक समासक्त कर सकें। इतना लुब्धक नहीं था कि अर्थ संग्रह में ही व्यस्त रहे। यह तो धर्म में कुछ भी बाधा न करके ही अर्थ का सेवन किया करता था। इसमें काम वासना भी उतनी ही थी कि हे राजेन्द्र ! जिससे दोनों पत्नियों को सर्वदा आश्वासित करता रहे।६५-६६।

—×—

॥ सगर का और्वाश्रम में आगमन ॥

जैमिनिरुवाच—

एवं स राजा विधिवत्पालयामास मेदिनीम् ।
सप्तद्वीपवतीं सम्यक्साक्षाद्धर्म इवापरः ॥१
ब्राह्मणादींस्तथा वर्णान्स्वेस्वे धर्मे पृथक्पृथक् ।
स्थापयित्वा यथान्यायं ररक्षाव्याहतेंद्रियः ॥२
प्रजाश्च सर्ववर्णेषु यथाश्रेष्ठानुवर्तिनः ।
वर्णाश्चैवानुलोम्येन तद्वदर्थेषु च क्रमात् ॥३

न सति स्थविरे बाल मृत्युरभ्युपगच्छति ।
सर्ववर्णेषु भूपाले मही तस्मिन्प्रशासति ॥४

स्फीतान्यपेतबाधानि तदा राष्ट्राणि कृत्स्नशः ।
तेष्वसंख्या जनपदाश्चातुर्वर्ण्यजनावृताः ॥५

ते चासंख्यगृहग्रामशतोपेता विभागतः ।
देशाश्चावासभूयिष्ठा नृपे तस्मिन्प्रशासति ॥६

अनाश्रमी द्विजः कश्चिन्न बभूव तदा भुवि ।
प्रजानां सर्ववर्णेषु प्रारम्भाः फलदायिनः ॥७

जैमिनि मुनि ने कहा—उस राजा ने सात द्वीपों वाली मेदिनी का विधि के साथ परिपालन साक्षात् दूसरे मूर्तिमान् धर्म के ही समान किया था ।१। अव्याहत इन्द्रियों वाले उस नृप सगर ने न्यायानुरूप ब्राह्मण आदि चारों वर्णों को अपने-अपने धर्म में पृथक्-पृथक् स्थापित कर दिया था ।२। सब ही वर्णों में जो भी प्रजाजन थे वे उचित रीति से अपने से श्रेष्ठों के अनुवर्त्तन करने वाले थे । जो वर्ण आनुलोम्य से हुए थे उनको भी उसी भाँति कार्यों में क्रम से लगा दिया था । उच्च वर्ण वाले से नीचे वर्ण वाली स्त्री में जो समुत्पन्न होते हैं वे अनुलोम सृष्टि वाले होते हैं । इसके विपरीत क्षत्रिय से ब्राह्मणी आदि में समुत्पन्न विलोम हैं जिसका शास्त्र में सर्वथा निषेध है ।३। वृद्ध माता-पिता के जीवित रहने पर उस नृप के राज्य में बालक की मृत्यु नहीं हुआ करती थी । यह बात उस महीपति के शासन करने पर सभी वर्णों में हुआ करती थी ।४। उस समय में राष्ट्र पूर्णतया बाधा रहित और स्फीत अर्थात् विस्तृत थे । इन राष्ट्रों में अगणित जनपद थे जिनमें चारों वर्णों के मानव रहा करते थे ।५। उस नृप के प्रशासन करने पर सभी देशों में बहुत अधिक आवास गृह थे तथा विभक्त रूप से संख्या रहित सैकड़ों ही गृह और ग्राम थे ।६। वह ऐसा समय था कि इस भू मण्डल में कोई भी द्विज ऐसा नहीं था जिसका कोई आश्रम न होवे । ब्रह्मचर्य—गार्हस्थ्य—वानप्रस्थ और संन्यास ये चार ही आश्रम थे । सभी वर्णों की प्रजाओं में जो भी आरम्भ होते हैं वे सभी निष्फल न होकर फल देने वाले हुआ करते थे ।७।

स्वोचितान्येव कर्माणि प्रारभंत च मानवाः ।
पुरुषार्थोपपन्नानि कर्माणि च तदा नृणाम् ॥८

महोत्सवसमायुक्ताः पुरग्रामव्रजाकराः ।
अन्योन्यप्रियकामाश्च राजभक्तिसमन्विताः ॥९
न निंदितोऽभिशस्तो वा दरिद्रो व्याधितोऽपि वा ।
प्रजासु कश्चिल्लुब्धो वा कृपणो वाऽपि नाऽभवत् ॥१०
जनाः परगुणप्रीताः स्वसंपर्काभिकांक्षिणः ।
गुरुषु प्रणताः नित्यं सद्विद्याव्यसनादृताः ॥११
परापवादभीताश्च स्वदाररतयोऽनिशम् ।
निसर्गात्खिन्नसंसर्गविरताः धर्मतत्पराः ॥१२
आस्तिकाः सर्वशोऽभवन् प्रजास्तस्मिन्प्रशासति ।
एवं सुबाहुतनये स्वप्रतापार्जितां महीम् ॥१३
ऋतवश्च महाभाग यथाकालानुवर्तिनः ।
शालिभूयिष्ठसस्याढ्या सदैव सकला मही ॥१४

सभी मानव उस शासन में अपने जो भी समुचित कर्म थे उन्हीं का प्रारम्भ किया करते थे । उस काल में मानवों के सभी कर्म पुरुषार्थ से समुत्पन्न हुआ करते थे ।८। नगर-ग्राम-व्रज और आकर सब महोत्सवों से समुयुक्त थे । उनमें सभी मानव परस्पर में एक दूसरे के प्रिय करने की कामना वाले थे और सभी मनों में अपने राजा के प्रति भक्ति की भावना विद्यमान रहा करती थी ।९। उस समय में प्रजाओं में कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं दिखाई पड़ता था कि जो निन्दित—अभिशस्त—दरिद्र—व्याधित लुब्धक अथवा कृपण होवे । तात्पर्य यही है कि किसी भी प्रकार से हीनता या खिन्नता आदि नहीं थी ।१०। उस काल में सभी जन ऐसे थे जो दूसरों के गुणों को देख या जानकर परम हर्षित हुआ करते थे तथा अपने से सम्पर्क करने की अभिकाङ्क्षा रक्खा करते थे सभी मानव सद्विद्या के व्यसन से समादृत और ज्ञान दाता गुरुजनों में उनकी नित्य ही प्रणत भावना रहा करती थी ।११। सभी जन दूसरों की बुराई से डरा करते थे—सब लोग निरन्तर अपनी ही स्त्री में रति रखने वाले थे अर्थात् पर स्त्री गामिता का नाम भी नहीं था । सबको स्वाभाविक रूप से खलों के संसर्ग से विरक्तता होती है और सभी धर्म में परायण रहा करते थे ।१२। उस धार्मिक नृप के शासन काल में सभी प्रजा सभी ओर आस्तिक अर्थात् परम प्रभु के अस्तित्व को मानने वाले थे। अपने प्रताप से अर्जित मही पर सबाहु तनय के शासन में इस प्रकार के सब ऋतुएं हे महाभाग ! ठीक-ठीक समय पर अनुवर्तन

किया करती थीं और सम्पूर्ण भूमि सदा ही शालो और सस्य की बहुलता वाली थी। अर्थात् धान्य परिपूर्ण था ।१३-१४।

बभूव नृपशार्दूले तस्मिन् राज्यानि शासति ॥१५
यस्याष्टादशमंडलाधिपतिभिः सेवार्थमभ्यागतैः
प्रख्यातोरुपराक्रमैर्नृपशतैर्मूर्द्धाभिषिक्तैः पृथक् ।
संविष्टैर्मणिविष्टरेषु नितरामध्यास्यमानाऽमरैः
शक्रस्येव विराजते दिवि सभा रत्नप्रभोद्भासिता ॥१६
संकेतादपरांतराभ्युपगमाः सर्वेऽपि सोपायनाः
कृत्वा सैन्यनिवेशनानि परितः पुर्याः पृथक् पार्थिवाः ।
द्रष्टुं कांक्षितराजकाः सतनया विज्ञापयंतो मुहु-
र्द्वास्थैरेव नरेश्वराय सुचिरं वत्स्यन्तमतः पुरं ॥१७
नमन्नरेंद्रमुकुटश्रेणीनामतिघर्षणात् ।
किणीकृतौ विराजेते चरणौ तस्य भूभुजः ॥१८
सेवागतनरेंद्रौघविनिकीर्णैः समंततः ।
रत्नैर्भाति सभा तस्य गुहा सोमे रवौ यथा ॥१९
एवं स राजा धर्मेण भानुवंशशिखामणिः ।
अनन्यशासनामुर्वीमन्वशासदरिंदमः ॥२०
इत्थं पालयतः पृथ्वीं सगरस्य महीपतेः ।
न चापपात मृत पुत्रमुखालोकनजृंभिता ॥२१

जब वह राजशार्दूल इस भूमि पर शासन कर रहा था उस समय में भूमि धान्योत्पत्ति करके सबको सुखी करता था ।१५। उस राजा की सभा रत्नों की प्रभा से उद्भासित स्वर्ग में इन्द्र की सभा के ही समान शोभा दे रही थी जिसमें अठारह मण्डलों की अधिपति राजा की सेवा के लिये समागत हुए विद्यमान थे। इनके अतिरिक्त मूर्द्धाभिषिक्त सैकड़ों ही नृप पृथक् विराजमान थे जिनके विशाल पराक्रम प्रख्यात थे—जिस सभा मे मणि मण्डित आसनों पर नृपगण ऐसे ही संस्थित थे जैसे देवगण निरन्तर इन्द्र देवकी सभा में समवस्थित रहा करते हैं ।१६। वे सभी नृप सङ्केत से ही अन्य विषयों का ज्ञान प्राप्त कर लेने वाले अपने-अपने उपायनों को साथ में लिये हुए थे और उन पार्थिवों ने उस पुरी के चारों ओर अपनी सेनाओं का पृथक् निवेशन कर दिया था। राजा सगर उस समय में अन्तःपुर में थे तो ये नृप गण अपने पुत्रों के सहित राजा के दर्शन करने की इच्छा वाले थे

और द्वार पर स्थित द्वारपालों के द्वारा बारम्बार बहुत काल पर्यन्त राजा को विज्ञापन करते हुए स्थित थे ।१७। उस राजा सगर के चरण युग्म समागत नृपों के मस्तक झुकाने से उनके मुकुटों से रत्नों की अतिवृष्टि होने से किणीकृत हो गये थे अर्थात् रत्नों के कण उन पर बिखरे हुए थे जिससे एक अद्भुत शोभा हो रही थी ।१८। नृप की सेवा करने के लिए जो नृपों का समुदाय वहाँ पर समागत हुआ था उनके द्वारा सभी ओर बिखर गये रत्नों से उस सगर की सभा ऐसी शोभित हो रही थी जैसे चन्द्र और सूर्य के प्रकाश में गुहा विभात हुआ करती है ।१९। इस रीति से अरियों का दमन करने वाला सूर्य वंश का शिरोमणि वह नृप धर्म से इस भूमि का जो किसी भी अन्य के शासन में न होकर इसी नृप के प्रशासन में थी शासन किया करता था ।२०। इस प्रकार से पृथ्वी के पालन करने वाले राजा सगर की उत्कंठा अपने एक पुत्र के मुख का अवलोकन करने की हुई थी क्यों कि उसके कोई भी पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ था ।२१।

विना तां दुःखितोऽत्यर्थं चिंतयामास नैकधा ।
अहो कष्टपुत्रोऽहमस्मिन्वंशे ध्रुवं तु यत् ॥२२

प्रयाति नूनमस्माकं पितरः पिंडविप्लवम् ।
निरयादपि सत्पुत्रे संजाते पितरः किल ॥२३

प्रीत्या प्रयांति तद्गेहं जातकर्मक्रियोत्सुकाः ।
महता सुकृतेनापि संप्राप्तस्य दिवं किल ॥२४

अपुत्रस्यामराः स्वर्गे द्वारं नोद्घाटयंति हि ।
पिता तु लोकमुभयोः स्वर्लोकं तत्पितामहाः ॥२५

जेष्यंति किल सत्पुत्रे जाते वंशद्वयेऽपि च ।
अनपत्यतयाऽहं तु पुत्रिणां या भवेद्गतिः ॥२६

न तां प्राप्स्यामि वै नूनं सुदुर्लभतरा हि सा ।
पदादैंद्रात्किलाभिन्नमृद्धं राज्यमखंडितम् ॥२७

मम यत्तदपुण्यस्य याति निष्फलतामिह ।
इदं मत्पूर्वजैरेव सिंहासनमधिष्ठितम् ॥२८

पुत्रोत्पत्ति के बिना वह अत्यधिक दुःखित रहा करता था और अनेक प्रकार से उसने चिन्तन किया था। अहो ! बड़ा ही कष्ट है इस वंश में मैं बिना पुत्र वाला हूँ । यह परम ध्रुव है कि मैं बड़ा भाग्यहीन हूँ ।२२। निश्चय

ही हमारे पितृगण पिण्डदान के विच्छेद को प्राप्त होंगे। यदि सत्पुत्र जन्म ग्रहण कर लेता है तो फिर वे नरक से भी निकल आया करते हैं। वे प्रीति से जातकर्म में समुत्सुक होकर उसके घर में प्रयाण किया करते हैं। यदि कोई महान् पुण्य उन्होंने किया हो तो उसके प्रभाव से वे स्वर्ग को प्राप्त होते हैं।२३-२४। किन्तु जिसके पुत्र नहीं होता है वह सुकृत के प्रभाव से स्वर्ग के द्वार तक ही पहुँच पाता है और फिर पुत्रहीन के लिए देवगण स्वर्ग का द्वार नहीं खोला करते हैं और अन्दर प्रवेश नहीं कर पाता है। पिता की दोनों लोकों में और उसके पितामह स्वर्गलोक का दोनों वंशों में सत्पुत्र के समुत्पन्न होने पर ही जय प्राप्त करेंगे। मैं तो सन्तान हीन होने से पुत्र वालों की जो गति होती है उसको मैं निश्चय ही प्राप्त नहीं करूँगा क्योंकि पुत्रहीन के लिए वह गति अतीव दुर्लभ है। इन्द्र के पद से अभिन्न यह अखण्ड और समृद्ध राज्य भी व्यर्थ ही है।२५-२७। पुत्रहीन मेरा यह सब कुछ यहाँ पर निष्फलता को ही प्राप्त हो रहा है। यह राज्यासन जिसपर मेरे पूर्वज पुरुष विराजमान हुए थे, सब व्यर्थ ही है।२८।

अपुत्रत्वेन राज्यं च परमाधीनत्वमेष्यति ।
तस्मादौर्वाश्रमम् महं गत्वा तं मुनिपुङ्गवम् ॥२९
प्रसादयिष्ये पुत्रार्थं भार्याभ्यां सहितोऽधुना ।
गत्वा तस्मै स्वपुत्रत्वं विनिवेद्य महात्मने ॥३०
स यद्वक्ष्यति तत्सर्वं करिष्ये नात्र संशयः ।
इति सञ्चिन्त्य मनसा सगरो राजसत्तम ॥३१
इयेष कृत्यविद्राजन्गंतुमौर्वाश्रमं प्रति ।
स मन्त्रिप्रवरे राज्यं प्रतिष्ठाप्य ततो वनम् ॥३२
प्रययौ रथमारुह्य भार्याभ्यां सहितो मुदा ।
जगाम रथघोषेण मेघनादातिशङ्किभिः ॥३३
स्तब्धेक्षणैर्लक्ष्यमाणो मार्गोपान्ते शिखण्डिभिः ।
प्रियाभ्यां दर्शयन्राजन्सारङ्गांस्तिमितेक्षणान् ॥३४
क्षणमूर्ध्वमुखान्सद्यः पलायनपरान्पुनः ।
वृक्षान्पुष्पफलोपेतान्विलोक्य मुदितोऽभवत् ॥३५

अब मेरे कोई पुत्र ही नहीं है तो इस सिंहासन पर भविष्य में कौन बैठेगा। बड़े दुःख का विषय है यह भी आगे किसी दूसरे की ही अधीनता में चला जायेगा। इसलिए मैं अब और्व मुनि के समीप में जाकर उनसे ही

यह प्रार्थना करूँ ।२९। इस समय में दोनों अपनी पत्नियों के सहित वहाँ पहुँच कर उन महामुनि को प्रसन्न करूँगा। वे महान आत्मा वाले महापुरुष हैं वहाँ जाकर अपने पुत्र हीनता के विषय में उनसे विशेष निवेदन करना ही उचित है ।३०। वे इसके लिए जो भी कुछ उपाय बतलायेंगे वह सभी मैं करूँगा इसमें तनिक भी संशय नहीं है। नृपश्रेष्ठ सगर ने ऐसा विचार अपने मन में किया था। हे राजन् ! इसलिए कृत्यों के ज्ञाता उस नृप सगर ने और्व महामुनि की सन्निधि में गमन करने का निश्चय कर लिया था। उसने जो परम श्रेष्ठ मन्त्री था उसको राज्य के प्रशासन का भार सौंपकर फिर वन में चल दिया था ।३१-३२। बड़ी प्रसन्नता से अपनी दोनों पत्नियों को साथ में लेकर रथ पर समारूढ़ हो गया था और वहाँ से चल दिया था। जिस समय में उसका रथ चला है उसका ऐसा महान घोष हुआ था कि मयूरों को मेघों की गर्जना की शंका हो गयी थी ।३३। मार्ग के समीप में मयूरों ने एकटक होकर उसको देखा था। राजा भी उन स्तिमित नेत्रों वाले मयूरों की ओर संकेत करके अपनी पत्नियों को उनकी इस तरह से दृष्टि करने को दिखाता जा रहा था ।३४। उन वन्य मयूरों ने एक क्षण तक तो ऊपर की ओर अपने मुख किये थे और फिर वे वहाँ से पलायन करने में तत्पर हो गये थे। राजा भी उस वन में विविध भाँति के पुष्पों से और फलों से लदे हुए वृक्षों को अवलोकित करके अत्यन्त प्रसन्न हुआ था ।३५।

अम्लानकुसुमैः स्वादुफलैः शाद्वलभूमिकैः ।
सुस्निग्धपल्लवच्छायैरभितः संवृतं नगैः ।।३६
चूताग्रपल्लवास्वादुस्निग्धकण्ठपिकारवैः ।
श्रोत्राभिरामजनकैस्संघुष्टं सर्वतो दिशम् ।।३७

सर्वर्तुकुसुमोपेतं भ्रमद्भ्रमरमण्डितम् ।
प्रसूनस्तवकानम्रवल्लरीवेल्लितद्रुमम् ।।३८
कपियूथसमाक्रान्तवनस्पतिशताकुलम् ।
उन्मत्तशिखिसारंगकूजत्पक्षिगणान्वितम् ।।३९
गायद्विद्याधरवधूगीतिकासुमनोहरम् ।
संचरत्किन्नरीद्वन्द्वविराजद्द्रुमपल्लवम् ।।४०
हंससारसचक्राह्वकारण्डवशुकादिभिः ।
सुस्वरैराकुलोपान्तैः सरोभिः परिवारितम् ।।४१

सरःस्वम्बुजकह्लरकुमुदोत्पलराशिषु ।
शनैः परिवहन्मंदमारुतापूर्णदिङ् मुखम् ॥४२

वह अरण्य वृक्षों से घिरा हुआ था जिनमें अनेक अम्लान पुष्प थे—स्वादिष्ट फल थे और हरी-हरी घास वाली भूमि थी तथा बहुत घनी सुस्निग्ध पत्रों की छाया से सब वृक्ष संयुत थे।३६। वहाँ पर सभी ओर कानों को श्रवण करने में परम प्रिय लगाने वाली आम्र वृक्षों के कोमल पत्रों के खाने से स्निग्ध कण्ठों वाली कोमलों की मधुर ध्वनि थी इससे वह वन संपुष्ट हो रहा था।३७। उसमें सभी ऋतुओं के कुसुम खिल रहे थे जिन पर भ्रमर गुञ्जार करते हुए झूल रहे थे। बहुत सी लताऐं द्रुमों से लिपटी हुई थीं जो अपने ही प्रसूनों के गुच्छों के भार से नीचे की ओर झुक रही थीं।३८। वह महारण्य ऐसा ही सुषमा सम्पन्न था कि वहाँ के वृक्षों पर सैकड़ों वानरों के झुण्ड बैठे हुए थे और उस वन में उन्मत्त शिखी- सारङ्ग भ्रमण कर रहे थे तथा पक्षियों का कल कूजन चहुँ ओर हो रहा था।३९। उस वन में विद्याधरों की वधूटियां गीत गा रही थीं जिससे वह वन मन का हरण करने वाला हो रहा था। उस परम गहन वन में किन्नर-किन्नरियों के जोड़े सञ्चरण करते हुए शोभित हो रहे थे।४०। उस वन में बहुत से सरोवर थे जिनसे चारों ओर वन घिरा हुआ था जिनका उपान्त सुस्वरों वाले हंस-सारस-चक्रवाक-कारण्डव और शुक आदि से समावृत हो रहा था।४१। उन सरोवरों में कमल-कल्हार-कुमुद और उत्पल बहुत अधिक परिमाण में विकसित हो रहे थे। वहाँ पर मन्द मारुत के परिवहन से सभी दिशायें पूरित हो रही थीं।४२।

एवंविधगुणोपेतमधिगाह्य तपोवनम् ।
गच्छन्रथेनाथ नृपः प्रहर्षं परमं ययौ ॥४३
उपगीताश्रयः सोऽथ संप्राप्याश्रममंडलम् ।
भार्याभ्यां सहितः श्रीमान्वाहादवरुरोह वै ॥४४
धुर्यान्विश्रामयेत्युक्त्वा यंतारमवनीपतिः ।
आससादाश्रमोपांतं महर्षेर्भावितात्मनः ॥४५
स श्रुत्वा मुनिशिष्येभ्यः कृतनित्यक्रियादरम् ।
मुनिं द्रष्टुं विनीतात्मा प्रविवेशाश्रमं तदा ॥४६
मुनिमध्ये समासीनमृषिवृंदैः समन्वितम् ।
ननाम शिरसा राजा भार्याभ्यां सहितो मुदा ॥४७

कृतप्रणामं नृपतिमृषिरौर्वः प्रतापवान् ।
उपविशेति प्रेम्णा वै सह ताभ्यां समादिशत् ॥४८
अर्घ्यपाद्यादिभिः सम्यक्पूजयित्वा महामुनिः ।
आतिथ्येन च वन्येन सभार्यं तमतोषयत् ॥४९

इस प्रकार के गुणों से सुसम्पन्न उस तपोवन का अधिगाहन करके रथ के द्वारा गमन करते हुए नृप सगर को परमाधिक प्रसन्नता प्राप्त हुई थी ।४३। उपशान्त आशय के मण्डल में पहुँचकर फिर श्री सम्पन्न वह राजा अपने यान से नीचे उतर गया था ।४४। उस नृप ने सारथि से कहा था कि इन अश्वों को विश्राम करने दो और फिर भावितात्मा महर्षि के आश्रम के उपान्त में पहुँच गया था ।४५। उस राजा ने यह मुनि के शिष्यों से सुन लिया था कि मुनिवर नित्य क्रिया कर चुके हैं तभी उस विनीत आत्मा वाले नृप ने मुनि के दर्शन करने के लिए उस आश्रम में प्रवेश किया था ।४६। वे महामुनीन्द्र अनेक मुनियों के मध्य में विराजमान थे और चारों ओर ऋषियों के समुदाय वहाँ पर संस्थित थे । उसी समय में राजा ने भार्याओं के साथ बड़ी ही प्रसन्नता से मुनिवर के चरणों में शिर झुकाकर प्रणाम किया था ।४७। जब राजा ने प्रणाम किया था तो प्रताप वाले और्व ऋषि ने बड़े ही प्रेम से दोनों पत्नियों के सहित उस नृप को 'बैठ जाओ' यह आज्ञा दी थी ।४८। उस महामुनि ने समागत उस अतिथि नृप का भारतीय संस्कृति की मर्यादानुसारता से अर्घ्य पाद्य आदि से भली-भाँति अर्चन करके भार्याओं के सहित उस नृप को वन्य आतिथ्य सत्कार से भली-भाँति किया था ।४९।

अथातिथ्योपविश्रान्तं प्रणम्यासीनमग्रतः ।
राजानमब्रवीदौर्वः शनैर्मृदक्षरं वचः ॥५०
कुशलं ननु ते राज्ये बाह्येष्वाभ्यंतरेषु च ।
अपि धर्मेण सकलाः प्रजास्त्वं परिरक्षसि ॥५१
अपि जेतुं त्रिवर्गं त्वमुपायैः सम्यगीहसे ।
फलंति हि गुणास्तुभ्यं त्वया सम्यक्प्रयोदिताः ॥५२
दिष्ट्या त्वया जिताः सर्वे रिपवो नृपसत्तम ।
दिष्ट्या च सकलं राज्यं त्वया धर्मेण रक्ष्यते ॥५३
धर्म एव स्थितिर्येषां तेषां नास्त्यत्र विप्लवः ।
न तं रक्षति किं धर्मः स्वयं येनाभिरक्षितः ॥५४

पूर्वमेवाहमश्रौषं विजित्य सकलां महीम् ।
सबलो नगरीं प्राप्तः कृतदारो भवानिति ॥५५
राज्ञां तु प्रवरो धर्मो यत्प्रजापरिपालनम् ।
भवंति सुखिनो नूनं तेनैवेह परत्र च ॥५६
स भवान्राज्यभरणं परित्यज्य मदंतिकम् ।
भार्याभ्यां सहितो राजन्समायातोऽसि मे वद ॥५७
जैमिनिरुवाच-एवमुक्तस्तु मुनिना सगरो राजसत्तमः ।
कृतांजलिपुटो भूत्वा प्राह तं मधुरं वचः ॥५८

इसके अनन्तर आतिथ्य और विश्रान्ति हो जाने पर आगे विराजमान ऋषि को प्रणाम करने के पश्चात् और्व महामुनि ने राजा से धीरे-धीरे मृदु वचन कहे थे ।५०। हे राजन ! आपके राज्य में बाहिर और भीतर सब प्रकार का कुशल-क्षेम तो है न ? और तो धर्मके साथ अपनी समस्त प्रजा की सुरक्षा तो कर ही रहे हैं न ? ।५१। आप तीनों वर्गों को जीतने के लिए उपायों के द्वारा अच्छी तरह से अभिलाषा करते हैं न ? आपके द्वारा भली-भाँति प्रेरित गुण गण आपके लिये फल दिया ही करते हैं न ? ।५२। हे नृपश्रेष्ठ ! यह तो बड़े ही हर्ष की बात है कि आपने समस्त शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर ली है। यह भी बड़ी ही प्रसन्नता है कि आप धर्म पूर्वक सम्पूर्ण राज्य की सुरक्षा किया करते हैं ।५३। जिनकी धर्म में ही स्थिति होती है उनको महालोक में कोई भी विप्लव नहीं हुआ करता है। जब वह धर्म जिसके द्वारा अभिरक्षित होता है तो क्या वह स्वयं ही उसकी रक्षा नहीं किया करता है ? अवश्य धर्म उसको सुरक्षित होकर रक्षा करता है ।५४। यह तो पूर्व में ही सुन लिया था कि आपके सम्पूर्ण वसुन्धरा पर विजय प्राप्त करके अपने बल के साथ सपत्नीक अपनी नगरी में प्राप्त हो गये हैं ।५५। राजाओं का तो यही परमश्रेष्ठ धर्म होता है कि इनके द्वारा अपनी प्रजा का परिपालन किया जाता है। ऐसे ही नृप निश्चय ही इस लोक में और परलोक में सुखी हुआ करते हैं ।५६। ऐसे राजा आप हैं फिर राज्य के भरण का त्याग करके इस समय मैं मेरे समीप में समागत हुए हैं और दोनों पत्नियों को भी साथ में लेकर आये हैं। राजन् ! क्या कारण है मुझे आप-इस आगमन का जो भी कारण हो बतलादो ।५७। जैमिनि मुनि ने कहा—उस मुनि के द्वारा इस रीति से राजा से पूछा था तो उस परम श्रेष्ठ नृप सगर ने दोनों करों को जोड़कर उनसे मधुर वचनों में निवेदन किया था ।५८।